के होते हुए भी आक्रमणकारी अंग्रेजी और भारतीय सेनाओ ने जो सफलता प्राप्त की उसका महत्व कम नहीं होता। अंग्रेज जी जान से लडे, चाहे अपने मृत साथियो का बदला लेने के लिए लडे हों या जीवितो की रक्षा के लिए, और वेतन पाने वाले भारतीय सैनिक भी अपने विदेशी प्रभुओ के लिए जिस लगन और उत्साह से लडे उसका उदाहरण मिलना कठिन है। ग्रिफिथ्स ने स्वीकार किया है कि "हिन्दुस्तानी सैनिक दृढ़ निश्चय और बहादुरी से लडे, सिख, पजाबी और गोरखे अपने अंग्रेज सैनिको के साथ-साथ मोर्चे पर आगे रहे और उस दिन की सफलता प्राप्त करने मे उनका अधिकाधिक सक्रिय योग रहा।" [१०९]

जब तक बादशाह और शहजादे गिरफ्तार नहीं हो जाते, एक प्रकार से यह विजय अधूरी थी। बख्त खा ने बादशाह को परामर्श दिया कि वे सेना के साथ अवध चले जाए और वहा लडाई जारी रखें। लेकिन इलाही बख्श की राय थी कि बादशाह कुछ शर्तो के साथ आत्मसमर्पण कर दें। बेगम का भी यही विनम्र आग्रह था। वह अपने पुत्र और पिता को बचाना चाहती थी, और उसे उम्मीद थी कि कुछ हीरे-जवाहरात और रुपया भी उसके पास रह जाएगा। एक को छोड किसी भी शहजादे मे लेशमात्र को भी वह अदम्य साहस और शक्ति न थी जिसके बल पर बाबर ने अपने पूर्वजो का राज्य गवा कर भी एक नए साम्राज्य की नींव डाली थी, और उस समय शहजादा फीरोज शाह दिल्ली मे नहीं था। मिर्जा मुगल, मिर्जा खिजर सुल्तान और मिर्जा अबू बकर अपने साम्राज्य को पुन प्राप्त करने की आशातीत कल्पना मे लीन थे। जिस अल्पावधि मे उनके पास सत्ता रही वे अपना घर सवारने मे लगे रहे, अब उन्हें केवल अपनी जान बचाने की चिन्ता थी। बादशाह पहले तो कुतुब चले गए, बाद मे मिर्जा इलाही बख्श अनुनय-विनय करके उन्हें हुमायू के मकबरे मे ले आए। अंग्रेजो के गुप्तचर मौलवी रजब अली ने हाडसन को बता दिया कि ये सब लोग कहा छिपे हुए हैं। हाडसन इलाही बख्श की मार्फत प्राणदान की शर्त पर बादशाह के आत्मसमर्पण की बातचीत चलाने की अनुमति प्राप्त करने के लिए विलसन के पास गए। यह राजनीतिक कार्य था, जिसका उत्तरदायित्व सामान्यत शिविर के असैनिक अधिकारी हार्वे ग्रेटहेड के ऊपर था। लेकिन २० तारीख को ग्रेटहेड की हैजे से मृत्यु हो गई और उनकी जगह साडर्स की नियुक्ति हुई। हाडसन ने साडर्स को मौखिक रूप से बताया कि उसने बादशाह के 'आत्मसमर्पण की बातचीत चलाने और उसे प्राणदान का वचन देने के लिए जनरल से अधिकार प्राप्त कर लिया है। इसमे कोई सन्देह नहीं है कि हाडसन ने प्राणदान दिए जाने वालों मे जवा बख्त खा और बादशाह के श्वसुर अहमद कुली खा के नामों को भी सम्मिलित कर अपने अधिकार का अतिक्रमण किया। उनके इस कार्य की जिम्मेवार अंग्रेज अधिकारियो ने कडी आलोचना भी की, क्योंकि उनका विश्वास था कि महल के हत्याकाण्ड की जिम्मेदारी बादशाह पर ही है। सेसिल बीडन ने १३ अक्तूबर को म्योर को लिखा—"यदि दिल्ली के बादशाह को कुछ शर्तों पर मुक्त कर दिया जाता तो बडी दुर्भाग्यपूर्ण घटना होती। उस पर तो मुकदमा चलाकर उसी वक्त दण्ड दिया जाना

१०९ ग्रिफिथ्स, ए नरेटिव आफ दि सीज आफ देहली, पृ० १७३

चाहिए था। जो सलूक उसके बेटो और पोतो के साथ किया गया वही उसी के साथ किया जाना उचित है। मुझे इसमे जरा भी सन्देह नहीं है कि यह आदमी विद्रोह का असली नेता था और इसे सजा मिलनी ही चाहिए। मेरा यह भी विश्वास है कि यदि अब उसे मुक्त कर जाए तो यह समझा जाएगा कि हमने डर कर ऐसा किया है। महल की दीवार पर ही उसे फांसी पर लटका देने का सारे देश पर बहुत अच्छा असर पड़ता।"[११०] बादशाह के मुकदमे मे जो तथ्य सामने आए उन पर यदि गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाए तो निस्संदेह यह प्रमाणित हो जाएगा कि बादशाह परिस्थिति का गुलाम था। शारीरिक और मानसिक दृष्टि से वह इस योग्य न था कि घटनाचक्र को एकदम बदल देता। यह सच है कि पुरखों के जमाने से चली आ रही "नजर" की प्रथा बन्द होने पर उसने क्षोभ प्रकट किया था। यह भी सम्भव है कि कहीं से अंग्रेजो की हार का समाचार मिलने पर बादशाह को कुछ आन्तरिक सन्तोष मिलता हो, लेकिन बादशाह ने विद्रोह को नहीं उकसाया। महल मे बन्दियो की हत्या के लिए बादशाह को किसी भी तरह उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। इसे बादशाह का दुर्भाग्य ही समझना चाहिए कि उसे वह कत्ले-आम निष्क्रिय दर्शक की भाति चुपचाप देखना पडा, उसे रोक सकने की शक्ति उसमे थी ही नहीं। और न इस बात का कोई सबूत मिलता है कि इस कृत्य मे मिर्जा मुग़ल का हाथ था। बादशाह पर यह आरोप लगाया गया कि उन्होने अपनी छत पर खड़े होकर लोगो को फासी पर लटकते हुए देखा, पर इससे यह कहा प्रमाणित होता है कि उनका भी इसमे कुछ हाथ था?

२१ सितम्बर को बादशाह ने हाडसन के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया और उन्हें दिल्ली ले आया गया। अगले दिन हाडसन घोडे पर सवार हो हुमायूं के मकबरे पहुंचा और शहजादो से आत्मसमर्पण करने के लिए कहा। प्राणदान का आश्वासन पाने का उनका प्रयास व्यर्थ रहा। मिर्जा मुगल, मिर्जा खिजर सुल्तान, और अबू बकर को एक बैलगाडी मे बिठाया गया। हाडसन का कहना है कि चारो तरफ कुछ सशस्त्र लोगो की भीड जमा हो गई लेकिन उनसे हथियार रखवाने मे मुझे कोई कठिनाई नहीं हुई। इसके बाद वे दिल्ली की तरफ चले और भीड भी पीछे-पीछे चली। जब ये लोग दिल्ली गेट के पास पहुंचे तो हाडसन ने अपने बन्दियो से कपडे उतारने को कहा और अपने हाथ से उन्हें गोली मार दी। इस नृशंस हत्या के समर्थन मे उसका कहना था कि भीड बढ़ती जा रही थी और उसे डर था कि उत्तेजना मे आकर भीड कहीं शहजादों को छुडा न ले, इसलिए अपनी और अपने आदमियो की रक्षा के लिए उसे यह अरुचिकर कार्य करना पड़ा। हाडसन के इस कृत्य का बहुतों ने समर्थन किया और जब सेसिल बीडन जैसे सम्भ्रान्त असैनिक व्यक्ति को हाडसन के इस कार्य का अनुमोदन करने मे कोई हिचक न हुई तो सर्वसाधारण ने भी, जो बदला लेने के लिए आकुल थे, इसे कोई अनुचित कृत्य न समझा हो तो इसमे आश्चर्य ही क्या है। लेकिन यहां यह भी याद रखना होगा कि हाडसन को हुमायूं के मकबरे से लेकर शहर की दीवार तक खुले रास्ते में कोई खतरा अनुभव न हुआ, लेकिन जैसे ही वह शहर

---

११० कोल्डस्ट्रीम और म्योर, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द २, पृ० ३६१

के गेट के पास पहुंचा तो उसे लगा कि वह खतरे मे है। उससे एक दिन पहले ही जब हाडसन बादशाह और बेगम को कैद करके शहर मे लाया था तब उसे भीड की हिंसा पर उतारू होने की आशंका न हुई थी। जो भी हो, इन शहजादों के भाग्य का फैसला तो उसी क्षण हो गया था, जब उन्होने आत्मसमर्पण किया था। अब तो प्रश्न केवल इतना ही था कि या तो उन्हें फासी दे दी जाए या गोली से उडा दिया जाए। इसके तुरन्त ही बादशाही परिवार के २१ शहजादों को फासी दे दी गई।[१११] और बल्लभगढ के राजा और झज्जर के नवाब का भी यही अन्त हुआ। इन दोनों ने भी बादशाह के प्रति वफादारी दिखाई थी और गदर से उनका सम्बन्ध था। लेकिन वे अंग्रेजों से भी लिखा-पढ़ी करते थे। बल्लभगढ़ के राजा ने ग़दर के प्रारम्भिक दिनो मे अंग्रेजों को शरण दी थी। अगर एक वर्ष बाद मुकदमा चलाया जाता तो शायद बल्लभगढ़ के राजा की जान बच जाती, क्योंकि बाद में जाकर अंग्रेजों ने यह अनुभव किया कि इस प्रकार की प्रतिहिंसा की विनाशकारी नीति पर हमेशा नहीं चला जा सकता। दिल्ली के पतन के बाद अगर महल से उसके द्वारा भेजे गए पत्र प्राप्त न होते तो उसकी दुरगी चाल का भण्डाफोड न होता।

बादशाह अगर अपनी जान बचाने के लिए समझौता करने का प्रयत्न न करते तो अच्छा होता। उनके प्रति एक जघन्य अपराधी के समान बरताव किया गया। यह सच है कि उन्हें सींखचों के अन्दर नहीं रखा गया, लेकिन जहा भी रखा गया, बुरी तरह रखा गया। दिल्ली से होकर जाने वाला प्रत्येक अंग्रेज, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, बादशाह पर घृणापूर्ण दृष्टि डालने के लिए उनके पास एक बार जरूर जाता। ये लोग अशिष्टतापूर्वक उस जगह चले जाते जहां बादशाह को रखा गया था। ग्रिफिथ्स आत्मसमर्पण के दूसरे ही दिन, यानी २२ तारीख को बादशाह से मिलने गए। इस भेंट का विवरण उन्होंने इस प्रकार किया है—"मुग़ल वश के अन्तिम उत्तराधिकारी बहादुरशाह चारपाई पर, जिस पर एक गद्दा बिछा था, पालथी मारे बैठे थे। एक सफेद लम्बी दाढी और अप्रभावशाली व्यक्तित्व, साधारण कद और अवस्था ७० वर्ष के ऊपर। वे श्वेत परिधान पहने हुए थे और सफेद ही तुर्राशाही टोपी। पीछे दो सेवक मयूर-पख का पखा झल रहे थे। यह उस व्यक्ति की प्रभुसत्ता का कितना दयनीय प्रदर्शन था, जो अपने सभी कानूनी अधिकारो से वचित होकर अब अपने शत्रु के हाथों कैद था। उनके मुह से एक शब्द भी नहीं निकला। अपनी परिस्थितियों के प्रति अन्यमनस्क भाव से बादशाह दिन-

---

१११ ई हेयर, मेमो० आफ दी सीज आफ देहली के मैनुस्क्रिप्ट्स, कामनवैल्थ आफिस लाइब्रेरी, होम मिसलेनियस सख्या ७२६, पृ० १३७७-१४५७। हेयर ने एक दिन देखा कि बीस से अधिक आदमी एक पक्ति में बैठे हुए हैं और उसे बताया गया ये शहज़ादे हैं। मेटकाफ ने उन पर मुकदमा चलाया और बायड की अदालत में उन पर मुक़दमा चला। जो गवाहिया पेश की गईं, उनके बारे में बायड को सन्देह हुआ और उसने सुझाव दिया कि उन पर विद्रोहियों के साथ मिलने के अभियोग मे और मुक़दमा चलाया जाए, और चकि वे सब शाही परिवार के हैं इसलिए उनके अपराधी होने में कोई सन्देह हो ही नहीं सकता था, इसलिए उन्हें उसी दिन "मृत्यु दण्ड सुनाया गया और फासी दे दी गई तथा लाशें उठवा दी गईं।"

रात भूमि पर नजर गड़ाए चुपचाप बैठे रहते। तीन फुट के फासले पर एक दूसरी चारपाई पर रक्षक अधिकारी बैठा रहता था। दोनों ओर संगीनें लिए दो यूरोपीय सन्तरी तैनात थे। आदेश यह था कि अगर बादशाह को निकाल कर ले जाने का कोई प्रयत्न किया जाए तो अफसर अपने हाथ से बादशाह को गोली मार दे।"[११२] रेक्स ने १८ दिसम्बर को बादशाह को देखा, अगले ही दिन उसने लिखा—"कल हम सब, जिनमे स्त्रिया भी थीं, श्री साण्डर्स और उसकी पत्नी के साथ बादशाह को देखने गए। वे ६० वर्ष के वयोवृद्ध हैं। वे जिस छोटे-से मकान मे रखे गए थे, उसमे पहले कभी उनका कोई सेवक रहता था। इधर-उधर तकियो के सहारे बादशाह पलंग पर बैठे हुए थे। मैं उनके पास कुर्सी पर बैठ गया। वे अपने ही सपनो मे तल्लीन थे, और अपने कुछ शेर गुनगुना रहे थे। मै कुछ देर बैठा रहा और फिर उनसे बिना कुछ बात किए चला आया।"[११३] बेगम भी अपमान भरे व्यवहार से बची न थीं, बहुत-सी स्त्रिया उत्सुकतावश उन्हे भी आ कर घूरती थीं और कभी-कभी उनके प्रति अशिष्ट शब्द कहती थीं। श्रीमती कूपलैण्ड भी, जिनके पति ग्वालियर मे मारे गए थे, अभागे बादशाह को देखने आईं, लेकिन उन्हे उनमे तेजस्विता का कोई भी चिन्ह नहीं दिखाई पड़ा। अपने विवरण मे उन्होने लिखा है—"सीढियो पर सीढिया चढ़ कर हम एक चबूतरे पर पहुचे जहा एक कमरे के आगे कुछ पहरेदार गश्त लगा रहे थे। उसके बाद हम एक मैले-कुचैले मकान में घुसे जो 'बादशाहो के भी बादशाह'—मुग़लो के वंशज के रहने का स्थान था . . परदा हटा कर जब हमने नीचे की ओर सफेद दीवारो वाले एक गन्दे-से कमरे मे प्रवेश किया तो देखते हैं कि एक दुबला-पतला मझोले कद का वृद्ध आदमी मैले-कुचैले सफेद सूती कपड़े पहने, जाड़े से बचने के लिए शाल और रजाइयां ओढे लेटा हुआ है। हमारे अन्दर आते ही उसने अपना हुक्का एक ओर रख दिया, और वह बादशाह जो कभी किसी के सामने बैठ जाना भी अपमानजनक समझता था, बड़े दीन भाव से हमे सलाम करने लगा। उसने कहा—आपसे मिल कर बड़ी खुशी हुई।"[११४] रसेल काफी बाद मे बादशाह से मिला, उसका कहना है कि मेरे विचार मे बादशाह का ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रति कृतज्ञ होने का कोई कारण न था, लेकिन रसेल बादशाह का भी समर्थन नहीं करता क्योकि उसकी दृष्टि मे वह एक निर्दय आदमी था जिसने "अपने महल मे निर्मम हत्याएं कराईं।" "रसेल ने बन्दी बादशाह का और उसकी परिस्थितियो का जो विवरण दिया है, वह बहुत ही खराब है। उसने लिखा है, "हम जिस खुले अहाते मे खड़े हुए थे, वहां से एक तग और अंधेरा रास्ता अन्दर की ओर एक और भी अधिक अंधेरे कमरे मे जाता था जहां एक बूढा आदमी मलमल की मैली, साधारण पोशाक मे सिकुड़ा हुआ बैठा था, उसके पतले पैर नंगे थे और सिर पर कैम्ब्रिक की दुपल्ली टोपी पहने हुए था।"[११५] जहां तक लोगो के आ कर मिलने का सम्बन्ध था, बादशाह की सुविधा का

---

११२. ग्रिफिथ्स, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २०१-२०२

११३. उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ८१

११४. कूपलैंड, ए लेडीज़ एस्केप फ्राम ग्वालियर, पृ० २७५

११५. रसेल, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द २, पृ० ५८। एडमन्सटन के नाम २ दिसम्बर

कतई ध्यान नहीं रखा जाता था। बादशाह उस समय बीमार थे, पीतल का एक वर्तन उनके सामने रखा हुआ था और वे बुरी तरह वमन कर रहे थे। शहजादा जवा वख्त भी अस्वस्थ था। जब भी कोई आता तो उसके सम्मान मे शहजादे को अपने पलग से उठ कर खडा होना पडता था और जब तक कमिश्नर उसे बैठने की अनुमति न दे देता, वह बैठ नहीं सकता था। मुकदमे के दौरान जजो और अभियोक्ताओं ने बादशाह के प्रति सामान्य शिष्टता भी नहीं बरती। बादशाह अब भी अपने काव्य-चिन्तन मे खोए रहना चाहते थे। कागज-कलम के अभाव मे वे जली लकडी से अपनी कोठरी की दीवार पर शायरी लिखा करते। एक बार यह सुझाव दिया गया कि बादशाह को अन्दमान द्वीपसमूह मे भेज दिया जाए। कभी यह कहा जाता कि बादशाह को अफ्रीका मे रखना अधिक ठीक रहेगा। सेसिल बीडन ने चीनी समुद्रतट पर हागकाग का सुझाव दिया था। अन्त मे बादशाह को रगून निर्वासित किया गया और कुछ वर्ष बाद वहीं बर्मा मे उनकी जीवनलीला समाप्त हुई। अपने दुर्भाग्य के लिए बादशाह किसे दोष देता! यदि वह सेना के साथ मोर्चे की ओर कूच करता और रणक्षेत्र मे वीरगति को प्राप्त होता तो अपने देशवासियो के आदर का अधिकारी होता और शायद शत्रु की प्रशसा का पात्र भी बनता। लेकिन पहले तो सत्ता के लालच मे उसने सिपाहियो के आगे घुटने टेक दिए और फिर अपनी जान बचाने के लिए रजब अली और इलाही बख्श के सामने घुटने टेके। अपने पूर्वजो की भूमि से दूर विदेशी भूमि पर उसका अन्त हुआ, मानो वह भाग्य के हाथ का खिलौना रहा हो। न उसे अन्तिम सम्मान प्राप्त हुआ और न उसका गुणगान हुआ। पर ऐसा भी नहीं कि उसकी याद मे किसी ने दो आसू भी न बहाए हों।

दिल्ली और दिल्ली के लोगो पर मुसीबत का पहाड टूट पडा। वास्तव मे दिल्ली पर आक्रमण से पहले ही अग्रेजों ने प्राइज़ एजेंट नियुक्त कर दिए थे। जनरल विल्सन ने यह ऐलान कर दिया था कि स्त्रियों और बच्चो को हाथ भी न लगाया जाए लेकिन विजय के उल्लास मे सिपाही करुणा अथवा दया-भाव से प्रेरित नहीं होते। सिखो को तो जानबूझ कर इस भविष्यवाणी की याद दिलाई गई थी कि दिल्ली गुरु के अनुयायियों द्वारा लूटी जाएगी। लूटमार की ओर पुरबियो के विरुद्ध प्रतिहिंसा की भावना से प्रेरित होकर ही वह अग्रेजी सेना मे भरती हुए थे। अग्रेज सैनिको ने अपने बच्चो के कत्ल की, अपनी स्त्रियो के अपमान की और अपने साथियो के जीवित जलाए जाने की कहानिया सुन रखी थीं। वे प्रतिहिंसा के लिए भूखे थे, यहा तक कि ईसाई पादरी भी इस प्रतिशोध की भावना को बुरा नहीं समझ रहे थे। जिस नगर पर कब्जा हो जाता है उसमे सिपाहियों की लूटपाट एक कानूनी अधिकार मान लिया जाता है। किसी ने एक क्षण के लिए भी यह नहीं सोचा कि जब तक बादशाह और उसके सिपाहियों को पूर्णत शत्रु सेना का दर्जा नहीं दे दिया

सन् १८५७ को लिखे गए साण्डर्स के एक पत्र से ऐसा प्रतीत होता है कि ज़वा बख्त ने अपनी मा के जवाहरात का भेद बता कर उसके साथ विश्वासघात किया। ये जवाहरात दो लाख रु० से भी अधिक मूल्य के थे और बेगम ने इन्हें क्षमादान के मूल्य के रूप में देने का वायदा किया था।

जाता, तब तक सर्वसाधारण की सम्पत्ति कानूनी तौर पर विजेताओ की लूटमार की चीज नहीं हो सकती और यदि बादशाह और उसकी सेना को एक बार शत्रु का दर्जा दे दिया जाता तो बादशाह को राजद्रोह का अभियोगी नहीं ठहराया जा सकता था। लेकिन विजेता सत्ता के नशे मे तर्क नहीं सुनता। गनीमत यह हुई कि दिल्ली की कार्थेज जैसी दशा नहीं हुई। एक अंग्रेज अफसर ने तो यह सुझाव रख ही दिया था कि दिल्ली को धूल मे मिला दिया जाए। मस्जिदो को गिरजो मे परिवर्तित कर दिया जाए जो अंग्रेजी सेना के पराक्रम का स्मारक बन कर यहा खडे रहेगे।

२१ सितम्बर को ग्रिफिथ्स ने देखा कि दिल्ली के "बाजार और सड़कें सुनसान पड़ी हैं, ऐसा लगता था मानो कोई भारी दैवी विपत्ति आई है और सारा शहर श्मशान के समान हो गया है। यह अनुभव ही नहीं होता कि हम एक शहर से होकर गुजर रहे हैं जहां अभी कुछ दिन पहले हजारो आदमी रह रहे थे।"[११६] "शहर के जिन भागो से होकर हम गुजरे वहां बेहद लूटपाट हो चुकी थी।"[११७] "सिपाहियो और नगर-निवासियो की लाशें चारो तरफ बिखरी पड़ी थीं जिनसे कई दिन तक हवा विषैली रही और असहनीय दुर्गन्ध फैली रही।"[११८] उजड़े हुए शहर मे हैजा फैल गया और अस्पताल बीमारो से भरे हुए थे, लेकिन लूट-मार व्यवस्थित ढंग से बराबर होती रही। गड़ा हुआ खजाना निकालने के लिए निर्जन घरो के फर्श और दीवारें खोदी जा रही थीं और लूट-मार मे प्राप्त सम्पत्ति जो कानूनी तौर पर सामान्य कोष मे जमा होनी चाहिए थी, उसे अफसर लोग स्वयं हड़प कर जाने मे जरा भी नहीं झिझके। सोमनाथ के मन्दिर की कहानी की याद अब भी ताजी थी। हिन्दू मन्दिरो की मूर्तियो को अशिष्टतापूर्वक हटा दिया गया और गड़े हुए जवाहरातो के लिए मूर्तियो की पीठिकाओ को तोडा गया।[११९] ३१ अक्तूबर को म्योर ने शेरर को एक मेधावी असिस्टेंट सर्जन की रिपोर्ट का निम्नलिखित उद्धरण भेजा: "दिल्ली अब भी उसी शान से खड़ी है। दिल्ली के एक छोर से दूसरे छोर तक कहीं भी गोलाबारी और गोली चलने का कोई चिन्ह दिखाई नहीं देता, लेकिन मकान निर्जन, लुटे हुए और बरबाद दिखाई दे रहे हैं। अभागे नगर-निवासी भूखो मरने के लिए विवश कर दिए गए हैं। इससे यही सोचने के लिए बाधित होना पड़ता है कि उनके साथ बड़ी निर्दयता का बरताव हो रहा है। आप मुझे इस भावना का दोषी ठहराते थे कि मैं प्रत्येक सिपाही को बिना किसी दया-भाव के मृत्यु का पात्र ही समझता हूं, लेकिन मेरे विचार मे यह सरकार बेचारे बनियो और कायस्थो के साथ बड़ी सख्ती बरत रही है। लूट-मार इतनी अधिक हो रही है कि उस पर सहसा विश्वास

---

११६. ग्रिफिथ्स उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १९९

११७ वही, पृ० १९८

११८ वही, पृ० २००-२०१

११९ वही, पृ० २४५। श्रीराम जी मन्दिर के ट्रस्टियो ने गवर्नर-जनरल से शिकायत की कि प्राइज एजेंट मन्दिर मे घुस गए और दस हजार के मूल्य की सम्पत्ति खोद कर ले गए। इस अर्जी पर तारीख है ५-२-१८५९, सैनिक परामर्श, फरवरी १८५९, सख्या २५४-२५५

नहीं होता। मेरा विचार है कि दिल्ली पर घेरा डालने वालो मे जितने भी अफसर हैं, वे अपने पद से तुरन्त ही अवकाश ग्रहण करने की स्थिति मे हैं।"[१२०] यह कोरा अनुमान ही नहीं था, ग्रिफिथ्स ने भी एक अफसर का उदाहरण दिया है जिसके पास दो लाख रुपये से भी अधिक मूल्य का लूट का सामान मिला। "उस समय ऐसे और कितने ही मामलो का पता चला जिनमे अफसरो ने इससे कुछ ही कम मूल्य की सम्पत्ति हजम की थी। ऐसे तो नाम अनगिनत हैं जिनके पास सौ पौंड से ऊपर के मूल्य की लूट की सम्पत्ति थी।"[१२१] ग्रिफिथ्स ने आगे लिखा है—"हमारे इग्लैण्ड पहुचने पर स्पष्ट रूप से प्रमाणित हुआ कि मेरी रेजीमेण्ट के बहुत-से अनियमित सैनिक लूट का काफी कीमती माल प्राप्त करने मे सफल रहे हैं। बहुत-से गैर-कमीशन प्राप्त अफसर रिश्वत देकर सेना से मुक्त हो गए और दिल्ली से लूटा हुआ माल बेचने के समुचित अवसर मिलने के इन्तजार मे तीन साल तक उन्होने उसे अपने पास रखे रखा। जिस नगर मे हम थे, वहां जौहरियो की दुकानों की खिडकियों मे ये गहने और जेवर बिक्री के लिए सजा कर रखे गए, जिन्हें देख कर कोई भी यह कह सकता था कि ये पौर्वात्य कारीगरी के नमूने हैं। पूछने पर मालूम हुआ कि ये सब गहने सैनिकों से खरीदे गए हैं।"[१२२]

प्राइज़ एजेंटों का कहना था कि विजेता होने के नाते सारा नगर ही सेना की सम्पत्ति हो गया। लेकिन साण्डर्स ने इस अजीबो-गरीब सिद्धान्त का कडा विरोध किया और उन्हें सर जान लारेंस का जोरदार समर्थन प्राप्त था। फिर इस सिद्धान्त को आगे कार्यान्वित नहीं किया गया। नवम्बर मास तक लूट-मार चलती रही। प्राइज़ एजेंट लोगों से कुछ रुपया लेकर उनकी सम्पत्ति और पूजी को लूट से बचाने का आश्वासन दे देते थे। इस बीच शहर भर मे सम्पत्ति की यह लूट-मार इतनी अधिक हो चुकी थी कि लोगों के पास जो थोडा-बहुत बचा भी था, उसकी रक्षा के लिए वे रुपया खर्च नहीं करना चाहते थे।[१२३]

सम्पत्ति के महत्व और उसकी रक्षा का कुछ भी मूल्य न रह गया था, साथ ही मानव जीवन के प्रति भी कोई आस्था अथवा सम्मान शेष नहीं रह गया था। प्रसिद्ध उर्दू शायर ग़ालिब उस समय दिल्ली मे ही थे। बहुत दु खी होकर उन्होंने लिखा, "मेरे सामने खून का विशाल समुद्र है, खुदा जाने अभी मुझे और क्या देखना है।" उनके इतने मित्र मर चुके थे कि उनके हृदय में सहसा प्रश्न उठता था कि उनकी मृत्यु पर शोक करने वाला भी कोई बचेगा या नहीं ? एक स्थान पर वे लिखते हैं, "हजारों दोस्त चले गए, किस-किस को मैं याद करूं और किससे शिकवा करूं। मेरी मौत पर आसू बहाने वाला

---

१२० कोल्डस्ट्रीम और म्योर, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द १, पृ० २३६

१२१. ग्रिफिथ्स, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २३४-२३५

१२२ वही, पृ० २३३

१२३ सेना के अफसरों और सैनिकों ने जो सम्पत्ति हजम कर ली थी, उसके अलावा दिल्ली में सम्पत्ति को लूट से बचाने के आश्वासन के रूप में कुल ३५, ४७, ६१७ रुपये ६ आने ८ पाई लिए गए। मिलिट्री प्रोसीडिंग्स, संख्या १२७६। फरवरी १८६१

शायद ही कोई बचा होगा।" यदि इस वर्णन को हम काव्यमय अतिशयोक्ति भी मानें तो अन्य विवरणों से भी यही ज्ञात होता है कि मनुष्य जीवन का कोई मूल्य ही नहीं रह गया था और सर्वसाधारण की भी वही गति हुई जो शस्त्र उठाने वाले विद्रोहियों की हुई थी।[१२४] जहीर देहलवी ने 'दास्ताने ग़द्र' मे लिखा है—"अपराधियों के साथ कभी-कभी निर्दोष व्यक्ति भी मारे जाते हैं, यही गदर के बाद हुआ। जो भी रास्ते मे मिलता अंग्रेज सिपाही उसे ही गोली मार देते। जो लोग शहर मे बचे थे, उनमे से कुछ ऐसे थे जिनकी टक्कर के आदमी न कभी पैदा हुए और न होंगे। कूचा चेलां के कुछ लोगो के साथ, जिनकी संख्या चौदह सौ बताई जाती है, एक बड़े अच्छे लेखक मिया मुहम्मद अमीन पंजाकुश को, और मौलवी इमाम बख्श सभाई और उनके दो पुत्रो को गिरफ्तार कर लिया गया, उन्हें राजघाट गेट पर ले जाया गया, जहां उन्हे गोली मार दी गई और उनकी लाशें जमना मे फेंक दी गईं। स्त्रियां अपने बच्चो को लेकर घरो से बाहर निकल आईं और उन्होंने कुओं में कूद कर जान दे दी। कूचा चेलां के सारे कुएं लाशों से पट गए थे। इससे आगे मुझ से लिखा नहीं जाता।" गालिब ने अपनी 'दस्तंबू' नामक पुस्तक मे लिखा है कि "खुदा ही जानता है कितने लोगो को फांसी पर लटका दिया गया। विजयी सेना ने नगर मे मुख्य मार्ग से प्रवेश किया, जो भी रास्ते मे मिला, उन्होने उसे मार डाला। गोरो ने शहर मे घुसते ही असहाय और निर्दोष लोगों को मारना शुरू कर दिया। दो-तीन मुहल्लों मे गोरे सिपाहियो ने लोगो को कत्ल भी किया और लूट मार भी की।"[१२५] ग्रिफिथ्स ने लोगों को अंधाधुंध गोली मारने के बारे मे उदाहरण दिए हैं। इससे जहीर देहलवी और ग़ालिब का विवरण और भी स्पष्ट हो जाता है। उनकी रेजीमेण्ट के एक अफसर ने शहर से भागे हुए कुछ लोगो को गिरफ्तार कर लिया और गवर्नर के पास भेजा, जो उनके जीवन और मृत्यु का निर्णायक था। गवर्नर पर दयालु होने का सन्देह तो पहले से ही था, उसने उन्हें छोड़ दिया। दूसरी बार तीन आदमियों को पकड़ा गया, लेकिन इस बार उन्हे उच्च अधिकारियो के पास भेजना व्यर्थ समझा गया। जो अफसर ऐसे लोगो को ऊपर भेजा करता था, इस बार उसने ही "सिपाहियो का एक दस्ता बुलाया और इन तीनो को अजमेरी गेट के बाहर एक खाई मे खड़ा करके गोली मार दी और गढा खोद कर वहीं उनके शव गाड दिए गए।"[१२६] उस समय दिल्ली मे तैनात अफसर जिस भावना से काम

---

१२४. श्रीमती कूपलैंड ने लिखा है, "प्रोवोस्ट मार्शल, जो लोगों को फांसी देता था, दिल्ली पर घेरा डालने के बाद से ४०० से लेकर ५०० तक अभागे लोगों को फांसी दे चुका है और अब वह अपने पद से इस्तीफा देने की बात सोच रहा है।" कूपलैंड, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २६८

१२५. कृष्णलाल, "दि सैक आफ देहली, १८५७-५८, ऐज विटनेस्ड बाई गालिब" बंगाल पास्ट एण्ड प्रेजेंट मे, जिल्द ७४, भाग २, क्रम सख्या १३९, पृष्ठ १०६-७ साण्डर्स ने भी यह माना है कि शहर पर अधिकार हो जाने के बाद दस दिन तक सिपाही बिल्कुल काबू से बाहर और अनुशासनहीन हो गए थे।" इसके फलस्वरूप बहुत-से निर्दोष व्यक्ति मरे होंगे। कोल्डस्ट्रीम और म्योर, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द २, पृ २८८

१२६. ग्रिफिथ्स, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २१३

कर रहे थे, उसका निम्न घटना से बढ़कर कोई और अच्छा उदाहरण नहीं हो सकता। जनरल विल्सन का हुक्म था कि कोई विद्रोही बच कर न जाने पाए। इसलिए यदि अंग्रेज़ अधिकारी दोषी और निर्दोषी मे भेद न कर पाए, तो निर्दोषी को भी मार दिया जाना चाहिए ताकि कोई दोषी बच कर न निकल सके।

कहीं किसी के साथ रिआयत न हो जाए इस डर से सब सैनिक अफसर धर्म तथा राजनीति का विचार किए बिना सभी भारतीयों के प्रति एक-सा व्यवहार कर रहे थे। प्रोफेसर रामचन्द्र एक ईसाई था। ११ मई को अपनी जान बचाने के लिए उसे अपना घर छोड़ना पड़ा था। बड़े-बड़े अफसरो से उसकी जान पहचान थी। ग़दर के दिनों मे विद्रोही सिपाहियों ने फरनीचर, तस्वीरो आदि के साथ-साथ जो पाण्डुलिपिया नष्ट कर दी थीं, उनकी खोज और सुरक्षा के लिए म्योर ने (जो बाद मे सर विलियम म्योर के नाम से प्रसिद्ध हुए) प्रोफेसर रामचन्द्र को विशेष रूप से नियुक्त किया था। दिल्ली का पतन होने के बाद उसे प्राइज़ एजेंट के कार्यालय में रखा गया था। उसके यह बताने के बावजूद कि वह ईसाई है और सरकारी कर्मचारी है, उसे परेशान और अपमानित किया गया। ऐसा किसी साधारण अशिक्षित सिपाही ने किया हो सो भी नहीं, एक अफसर ने ऐसा किया।[१२७] सरकार का वही एक ऐसा मित्र नहीं था जिसके साथ किसी भेदभाव के दुर्व्यवहार किया गया हो, बल्कि ऐसे परिवारो की सम्पत्ति भी लूटी गई और उनके घरों को लूट लिया गया जिनकी वफादारी पर कोई सन्देह नहीं था।[१२८] सशस्त्र विद्रोहियों की तरह उन्हें भी शहर मे उनके घर-बार से बाहर निकाल दिया गया और निर्दोष होते हुए भी उन्हें अपराधियों जैसी यातनाए और कष्ट भोगने पड़े।

सौभाग्य की बात थी कि नागरिक अधिकारी सैनिक सहयोगियों से सहमत न थे और साण्डर्स इस अन्यायपूर्ण नीति से भली-भाति परिचित था जिसके अनुसार शत्रु और मित्र मे कोई भेद नहीं माना जाता था। वह नगर-वासियों के हितो का पक्का समर्थक था और बहुत-से उच्च असैनिक अधिकारी भी उसके समर्थक थे जिनमे सर जान लारेंस प्रमुख थे। १८ नवम्बर को म्योर ने बीडन को लिखा, "स्पष्ट है कि सैनिक अफसरों की नीति के कारण ऐसे निर्दोष व्यक्ति भी मुसीबत में हैं, जिन्हें दिल्ली मे विद्रोहियों के हाथो भी मुसीबतें

---

१२७. इसके लिए परिशिष्ट में दिल्ली के सैनिक गवर्नर कर्नल एच० पी० बर्न के नाम रामचन्द्र का एक पत्र देखिए। फारेन डिपार्टमेंट, सीक्रेट कन्सल्टेशन्स, २६ जनवरी, १८५८, संख्या ५२४ (परिशिष्ट)

१२८. दिल्ली कमिश्नर के दफ्तर के नायब मुहाफिज पं० केदारनाथ ने ५ अक्तूबर, १८५७ को शिकायत की कि "जब गदर हुआ तो विद्रोहियों ने मुझसे रुपया मागा, लेकिन मैंने नहीं दिया, पर जब अंग्रेजी सेनाओं ने शहर पर अधिकार किया तो मेरी पचास हजार से सत्तर हजार रुपये तक के मूल्य की सम्पत्ति लूट ली गई और मेरा एक बच्चा जंगल में ठंड से मर गया।" फारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशन्स संख्या ३३२५, ३१ दिसम्बर १८५८। दिल्ली पर कब्जा होने के तीन दिन बाद सर सैयद अहमद के एक चाचा और रिश्ते के एक भाई को सिखों ने कत्ल कर दिया।

उठानी पड़ीं। लेकिन अब तक जो हुआ सो हुआ, मेरा विचार है कि अब हमे दिन पर दिन न्याय-संगत और उदार नीति अपनानी चाहिए। प्रमाण-पत्र आदि के लिए जो अर्जिया आई हैं, उनसे पता चलता है कि जो सरकार के वफादार रहे और जिन्होने आगरा के सकट के दिनो मे भी हमारा साथ दिया, वे भी मुसीवत मे हैं और उनके परिवार अब भी दिल्ली से वाहर खण्डहरो और गावो में खुले मैदानो मे जीवन की अन्य सुविधाओ के विना दिन काट रहे हैं। नगर मे वापस आने के लिए अपने आपको निर्दोष सिद्ध करने का जो नियम है, वह इसके लिए वड़ी कठिनाई पैदा कर रहा है।"[129] सैनिक अधिकारी आदमियो की कमी की वजह से शहर की सुरक्षा का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेने मे असमर्थता प्रकट कर रहे थे। दरवाजे पर पहरे का प्रवन्ध कर सकने के कारण दो को छोड़ कर शहर के वाकी सभी दरवाजो को वन्द कर दिया गया था। कश्मीरी दरवाजा आने वालो के लिए और लाहौरी दरवाजा जाने वालो के लिए खुला था, लेकिन कहा यह जा रहा था कि वनियो और कायस्थो को वापस आने देने मे कोई हर्ज नहीं है क्योंकि उनसे किसी तरह की हानि की कोई आशंका नहीं थी। सैनिक अधिकारी जोर दे रहे थे कि पिछले शासन के सभी समर्थको पर जुर्माना किया जाना चाहिए। सामान्य रूप से यह धारणा थी कि हिन्दू अग्रेजो की तरफ ज्यादा झुके हुए थे और मुसलमान अंग्रेजों के विरुद्ध थे। इसलिए हिन्दुओ पर जुर्माना न किया जाए। हिन्दुओ मे व्यापारी वर्ग के कुछ लोगो को तो शहर मे लौट आने की इजाजत भी दे दी गई थी, लेकिन अब भी जो लोग शहर से वाहर थे उन्हे जाड़े मे खुले मे रहने की वजह से वहुत कष्ट भोगने पड रहे थे। अन्त मे यह अनुभव किया गया कि सामान्य रूप से कोई जातिविशेष अग्रेजो के विरुद्ध हो, ऐसी वात नहीं थी। अपवाद दोनो मे ही हो सकते थे। अगर सभी मुसलमानो को दण्ड दिया जाता तो कुछ वफादार लोगो को भी नुकसान उठाना पडता और यदि सभी हिन्दुओ को हर प्रकार के दण्ड से मुक्त कर दिया जाता तो वहुत-से हिन्दू विद्रोही भी वच निकलते। इसलिए यह तय किया गया कि जो भी नागरिक लौटना चाहे, वे जुर्माना अवश्य दें लेकिन यह जुर्माना जाति के आधार पर अलग-अलग निश्चित होना चाहिए। मुसलमानो को अपनी असल सम्पत्ति का पच्चीस प्रतिशत देना पडता था और हिन्दुओ को इससे पन्द्रह प्रतिशत कम।[130] दिल्ली लौटने वालो के पास दीवारों और खाली मकानो के अलावा रह ही क्या गया था? इसके वाद दिल्ली को पंजाव के साथ मिला दिया गया। गदर से पीडित अभागे लोगो को अपने पुरखों के घर ले आने और उजड़ी हुई दिल्ली को फिर से वसाने का श्रेय सर जान लारेंस और नागरिक अधिकारियो को है।

---

१२९ कोल्डस्ट्रीम और म्योर, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द १, पृ० २७१

१३०. आर० टैम्पल, पजाव के चीफ कमिश्नर जी० एफ० एडमन्स्टन के सचिव, भारत सरकार के विदेश-सचिव, २१ अप्रैल, १८५८, फारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशन्स सख्या २३-३२, १८ मार्च १८५९.

परिशिष्ट

फारेन सीक्रेट कन्सल्टेशन्स (विदेशी गुप्त परामर्श), स० ५२४, २९ जनवरी, १८५८

कर्नल एच० पी० बर्न,
सैनिक गवर्नर, दिल्ली

मान्यवर,

आपके सूचनार्थ सविनय निवेदन है कि मैं चांदनी चौक बाजार मे रहता हू और सरकारी तथा निजी काम से मुझे प्राय' कई वार शहर की सडको से होकर गुजरना पडता है और किले मे जाना होता है। इस सिलसिले मे मेरे सामने जो कठिनाइया आती रही हैं और मुझे जिन खतरों का सामना करना पडा है, उनसे बचने के लिए आपसे प्रार्थना करने के सिवाय मेरे पास कोई और चारा नहीं है, क्योंकि मैं और इस देश के निवासी आपकी ही छत्रछाया मे रहते हैं।

एक महीने से भी अधिक समय हुआ, मुझे कुछ कागजातों का फारसी से अग्रेजी मे अनुवाद करने के लिए गिरजाघर के पास श्री मर्फी के घर जाने का आदेश मिला। जब मैं शस्त्रागार से गिरजाघर की ओर जाने वाली सडक से गुजर रहा था तो मैंने देखा कि गवर्नमेण्ट कालेज के पीछे हामिद अली खा की मस्जिद मे खड़े हुए कुछ अग्रेज अफसर आने-जाने वाले भारतीयो पर गुलेल से ढेले मार रहे थे। मैंने उन्हें बहुतेरा समझाया कि मैं ईसाई हू, और सरकारी नौकर हू, पर उन्होने एक न सुनी बल्कि इस पर वे और भी ज्यादा भडक उठे और मुझे गाली देने लगे तथा वे और भी ज्यादा जोर से ढेले मारने लगे। उसके बाद मैंने उस सडक से जाना छोड दिया। लेकिन १३ या कुछ और अधिक दिन बाद मुझे उसी मस्जिद के पास एक गली मे कुछ किताबों की तलाश में जाना था जिसके लिए मुझे प्राइज एजेंट डा० जेम्स ने नियुक्त किया था। उस दिन की तरह मुझ पर फिर हमला किया गया हालाकि मेरे साथ प्राइज एजेंट के दो चपरासी थे, और मैंने चिल्ला कर इन अग्रेज अफसरो को बताया कि मेरे पास प्राइज एजेंट का प्रमाण-पत्र है। इसके बाद मुझे इस बात से और भी अधिक खेद हुआ कि केवल सुनसान सडको पर ही नहीं, अपने घर मे भी मैं सुरक्षित नहीं हू। कोई बारह दिन हुए, रात को नौ बजे मैं अपने दो मित्रों के साथ बातचीत कर रहा था। बातचीत भी हमारी इस प्रश्न पर हो रही थी कि देश मे विद्रोह से पहले जैसी शान्ति कैसे स्थापित हो सकती है। इस बातचीत का सूत्र हमें अग्रेजी अखबारों मे छपे इंग्लैण्ड के

लार्ड एलनवरो के विचारो से प्राप्त हुआ था। हम इस तरह बातचीत कर ही रहे थे कि अचानक मेरे मकान के दरवाजो और दीवारो पर कई वार पत्थर और ककड आ कर लगे। एक पत्थर तो वड़े जोर से मेरे विस्तर पर आ कर पड़ा और जब यह निश्चय हो गया कि ठीक सामने के मकान मे रहने वाले अंग्रेज अफसर और उसके साथियो ने यह सब किया है तो हमने मकान के सारे दरवाजे वन्द कर दिए और बातचीत समाप्त कर दी। सोचा, हमारे जोर से बातचीत करने से शायद उनके आराम में खलल पडा हो। दिन में फिर इन अंग्रेज अफसर महोदय और उनके मित्रो ने ऐसा ही किया। एक दिन रात को जब मैं और मेरे मित्र सो रहे थे और सब दरवाजे वन्द थे तो लगभग ११ वजे दरवाजो पर कंकड पड़ने की आवाज आई। मेरी आंख खुल गई, कुछ क्षण तक यह शोर रहा, फिर वन्द हो गया। पिछले इतवार की शाम को पाच वजे भी मकान पर, मुझ पर और मेरे मित्रों पर इसी तरह हमला हुआ। दरवाजे वन्द करने का बस इतना ही फायदा हुआ कि चोट नहीं लगी। मंगलवार की शाम को भी ऐसा ही हुआ।

पिछले सोमवार की शाम की बात है, कुछ अंधेरा या झुटपुटा-सा था, मै मेजर एच० लुई के पास से होकर लौट रहा था जो अभी हाल ही मे आए थे और एडवर्ड कैम्पवेल के मकान मे ठहरे हुए थे। जब मैं दीवाने आम के चौक मे से गुजर रहा था तो एक अंग्रेज घुडसवार अफसर ने मेरे सर पर वडे जोर से डडा मारा। इस अफसर के साथ एक और घुडसवार था। डडा मारने के वाद वह मेरी तरफ मुड़ा और मुझसे सलाम करने के लिए कहा। एक सलाम की बात तो दूर रही मैंने कई सलाम किए और मैंने जोर से यह भी कहा कि मै ईसाई हू और प्राइज एर्जेसी मे नौकर हूं। इसके वाद वह अंग्रेज अफसर मुझे गाली देता हुआ और 'काला आदमी' कहता हुआ दीवाने खास की तरफ मुड़ गया।

चोट लगने पर मै भौंचक्का-सा रह गया। जिस जगह मेरे सर पर डंडा पडा था वहां एक क्षण रुक कर मैंने यह देखना चाहा कि यह अफसर कौन था? मुझे खडे देख कर वह अफसर घोड़े को दौड़ाता हुआ फिर वापस आया और घोड़े से उतर कर उसने मेरी वाह और पीठ पर छडी से मारा और मुझे विवश होकर वहा से चला जाना पडा। जहा तक अंग्रेज अधिकारियो को सलाम करने का सम्वन्ध है, मै चाहे किसी को जानूं या न जानूं, हमेशा सलाम करता हूं। हां, यदि मुझे आभास हो जाए कि मेरे सलाम की ओर उनका ध्यान न जाएगा तो और बात है, और प्राय. होता यही है कि सलाम का जवाब नहीं मिलता।

आठ मई (वास्तव मे जून ?) और छावनी मे अंग्रेजो के शिविर गड़ने से पहले और १२ मई को उसमे मेरी नियुक्ति होने से पहले मैं गावो मे रहता था, जहां निर्दय और अपमानपूर्ण व्यवहार का और यहां तक कि जान चली जाने का खतरा अधिक था। पर उस समय मैंने यह सोचकर सब्र कर लिया था कि वहुत-से वड़े और वुद्धिमान अंग्रेज सैनिक और असैनिक अफसर तथा धर्म-प्रचारक अपनी पत्नियो सहित दिल्ली मे विद्रोहियो और वदमाशो के हाथ कत्ल हो गए—मेरी तो विसात ही क्या है। मै यह भी सोचता था कि अगर विद्रोहियो ने मुझे मार भी दिया तो वे यही सोच कर मारेंगे कि इसने अपने पूर्वजों का धर्म छोड़

कर ईसाई धर्म अपना लिया। ऐसी स्थिति मे मैं उन मसीहो, शहीदो और देवदूतों की तरह मरूंगा, जिन्होने धर्म पर अपने प्राणो की आहुति दे दी थी। सब तरह के खतरों और कडी परीक्षा की घडियो मे मुझे यही सन्तोष था, पर जब एक भारतीय ईसाई को ईसाई अधिकारियों से ही खतरा हो और वह भी सिर्फ इसलिए कि वह इग्लैण्ड मे पैदा नहीं हुआ और उसकी चमडी गोरी नहीं है तो फिर क्या आत्मसन्तोष हो सकता है। मिथ्या धर्म के मानने वाले दिल्ली के विद्रोहियों मे भी ऐसी बात नहीं थी। वे किसी हिन्दू या मुसलमान के साथ भाई जैसा बरताव करते थे, उन्हें तो बस ईसाइयों और उनके मित्रों से नफरत थी। मेरी यह अपील केवल भारतीय ईसाइयो की रक्षा के लिए ही नहीं है, क्योंकि दिल्ली मे ईसाई तो बहुत थोडे-से हैं, वरन् हिन्दुओ और कुछ मुसलमानों के लिए भी है जो शहर मे रहते है और जिन्हें अग्रेज सिपाहियो विशेषकर अग्रेज अफसरो से खतरा बना रहता है

दिल्ली
२७ नवम्बर १८५७,

आप का ... आदि।
हस्ताक्षर रामचन्द्र
प्राइज एजेंसी मे नियुक्त

पुनश्च—

कल शाम मेरा एक परिचित हिन्दू दरियागज के धुनिए से रुई भरवा कर दो नए लिहाफ लेकर आ रहा था। एक घुडसवार अग्रेज अफसर दो साईसों के साथ उसे रास्ते मे मिला। इस अग्रेज अफसर ने उससे एक लिहाफ जबर्दस्ती छीन कर अपने साईसों को दे दिया और घोडे को सरपट दौडाता हुआ आगे चला गया। मेरा यह परिचित इस अफसर के पीछे चिल्लाता हुआ भागा। इस पर एक साईस ने उसे आगाह किया कि अगर वह साहब के पीछे इस तरह शोर मचाता हुआ भागेगा तो वह लौट कर उसे मार लगाएगा। इस पर उसने चुपचाप घर आने मे ही खैर समझी। ये दोनो लिहाफ मेरे थे और मेरे इस मित्र ने उन्हें भरवा कर लाने का काम अपने ऊपर लिया था। मुझे इस अफसर का धन्यवाद ही करना चाहिए कि वह एक ही लिहाफ लेकर सन्तुष्ट हो गया, दोनों ही नहीं ले गया।

अध्याय ४

कानपुर

दिल्ली का अपना शाही घराना था। कानपुर महाराष्ट्र के एक राज परिवार से नेतृत्व की आशा लगाए हुए था। नवम्बर १८१७, मे पेशवा बाजीराव द्वितीय ने भारत मे अंग्रेज़ी राज्य को चुनौती दी। मई तक उसकी स्थिति इतनी खराब हो गई कि कुछ शर्तो पर उसे सुलह करनी पडी। उसे उसके साम्राज्य से दूर ले जाकर बसाने की आवश्यकता पडी। उसे बनारस पसन्द था लेकिन वहा पहले से ही बहुत-से निर्वासित राजा थे और एक शक्तिशाली हिन्दू साम्राज्य के राजा को हिन्दुओ के तीर्थ-स्थान पर रखना उचित नही समझा गया, क्योकि वहा उसे अपनी पुरानी प्रजा के बहुत-से लोगो से निर्बाध रूप से सम्पर्क बनाए रखने का अवसर मिलता। अंग्रेज़ सरकार ने मुघेर और गोरखपुर का सुझाव दिया, लेकिन मुघेर बहुत गर्म था जहा रहने मे पेशवा को आपत्ति थी और गोरखपुर मे कोई प्रसिद्ध मदिर न था। उसे जमना के किनारे की कोई जगह पसन्द थी, जैसे मथुरा, और यदि अंग्रेजो को आपत्ति न हो तो उसके आस-पास के किसी और शहर मे भी पेशवा रहने को तैयार था। पेशवा अपने खानदानी शत्रुओ के बीच दिल्ली मे भी रहने को तैयार था, लेकिन सरकार ने उसके लिए कानपुर से कुछ मील दूर बिठूर नामक स्थान ठीक समझा और अंत मे वह वहा बस गया। उसे एक जागीर दे दी गई जहा के निवासियो को १८३२ के नियमन १ द्वारा देश की सामान्य दीवानी और फौजदारी अदालतो के अधिकार-क्षेत्र से मुक्त कर दिया गया। आठ लाख रुपया वार्षिक पेन्शन "उसके और उसके परिवार के जीवन-निर्वाह के लिए" बाध दी गई। पेशवा ने भी धीरे-धीरे अपने आपको निर्वासन के इस नीरस जीवन का आदी बना लिया। उसके आश्रितो की संख्या अब भी बहुत अधिक थी और वे सब उसे अब भी राजा जैसा ही सम्मान देते थे। पेशवा को सबसे अधिक बुरा यह लगा कि सरकार ने पन्त प्रधान की उसकी पुरानी पदवी को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया और सरकारी पत्र-व्यवहार मे उसे 'महाराजा' लिखकर सम्बोधित किया जाने लगा। बाजीराव पेशवा ने बचाकर जो धन एकत्र कर रखा था वह इतना था कि वह उदारता से सरकार को कर्ज दे सकता था, लेकिन यह उसे बहुत बुरा लगा कि सरकार ने उसके घसियारों पर टैक्स लगा दिया जो उसकी हैसियत के राजा के लिए अदा करना अपमानजनक था। छोटे-मोटे करो पर एक अपदस्थ शासक का इस तरह आपत्ति करना अंग्रेजो की समझ मे न आया, लेकिन भारतीय हृदय पर भौतिक कठिनाइयो की अपेक्षा भावना को ठेस पहुचाने वाले कार्य से अधिक चोट पहुचती थी। बाजीराव अंग्रेजो के लिए बराबर चिन्ता का कारण बना रहा। कभी तो उसके बारे मे यह अफवाह फैलती कि वह नेपाल के राजा

के साथ मिलकर कोई षडयन्त्र कर रहा है और कभी यह कहा जाता कि वर्मा और तिव्वत के साथ मिलकर कोई जाल रचा जा रहा है। बाजीराव पेशवा एक ऐसे परिवार मे जन्मा था जिसके लोग अधिक दिन नहीं जिए और जब उसने समर्पण किया था, उस समय उसका स्वास्थ्य ठीक नहीं था और भारत सरकार की धारणा यह थी कि उस पर अधिक दिन तक रुपया नहीं खर्च करना पडेगा। लेकिन विठूर मे उसने जो मस्ती का जीवन बिताया, उससे उसकी आयु के वर्ष ७० से भी अधिक बढते गए और वह जनवरी १८५१ तक जीवित रहा।

अपनी किसी सन्तान के उत्तराधिकारी न बन सकने के कारण उसने तीन पुत्र गोद लिए—धोंडू पन्त उर्फ नाना, सदाशिव पन्त उर्फ दादा, और गगाधर राव उर्फ वाला। बाजीराव की मृत्यु के समय नानासाहब और बाला साहब जीवित थे, दादा साहब पहले ही स्वर्ग सिधार गया था। उसने अपने पीछे पाण्डुरग राव नामक पुत्र छोडा जो राव साहब के नाम से अधिक प्रसिद्ध हुआ। बाजीराव, योग बाई और कुसुम बाई नामक दो नाबालिग लडकिया भी छोड गया था। उसका एक पडनाती, जो उसके भाई चिमन जी अप्पा की पुत्री द्वारका बाई का पुत्र था, स्वर्गीय बाजीराव के मान्यताप्राप्त आश्रितो मे से एक था। बाजीराव ने १८३९ मे एक वसीयतनामा किया था, जिसमे वह अपनी पदवी और जागीर अपने ज्येष्ठ दत्तक पुत्र नाना साहब के नाम कर गया था।[1]

नानासाहब के बचपन और उनकी शिक्षा-दीक्षा के बारे मे हमे कुछ पता नहीं चलता। जितने भी लोग उन्हे जानते थे, उनमे से किसी ने भी उनमे कोई असाधारण प्रतिभा अथवा विशेष गुण होने की चर्चा नहीं की है। जान लैग को कुछ दिनो तक उनके अतिथि होने का अवसर मिला था। उसने नानासाहब को बहुत ही साधारण प्रतिभा वाला व्यक्ति बताया है। उसने लिखा है, "मुझे लगा कि यह आदमी बहुत योग्य नहीं है, पर मूर्ख भी नहीं है। वह स्वार्थी है, पर इसमे आश्चर्य की क्या बात है, प्रत्येक हिन्दुस्तानी ऐसा ही है। मुझे लगा कि वह धर्म के मामले मे भी बहुत कट्टर नहीं है।"[2] हेनरी मैटकाफ ने लिखा है कि मैंने उन्हें गिरजे मे जाते देखा। उसका कहना है, "जब हम कानपुर से लखनऊ रवाना हुए थे तो मैने नानासाहब को अपनी रेजीमेण्ट के साथ इतवार के दिन गिरजे जाते देखा। यद्यपि इस बात पर विश्वास करना कठिन है, लेकिन यह वास्तविकता है। मैंने उन्हें भूरे रग के दो बढ़िया घोडों की फिटन मे जाते देखा था।"[3] यदि लैग या उसे खबर देने वाले नानासाहब के खानसामे का विश्वास किया जाए तो यह मानना पडेगा कि इस ब्राह्मण राजा को अपने यूरोपीय अतिथियो के भोजन मे किसी भी प्रकार का मास परोसे जाने मे आपत्ति नहीं थी। "महाराजा प्राय यूरोपीय अतिथियों का आदर-सत्कार किया करते थे। यद्यपि वह स्वय कट्टर हिन्दू थे लेकिन उन्हें इस बारे मे कोई पूर्वाग्रह नहीं था, अगर मुझे दूसरे मास की अपेक्षा गाय का मास पसन्द था तो मैं उसे मगा सकता था।" मौब्रे थामसन

---

१ गुप्त, दि लास्ट पेशवा एण्ड दि इगलिश कमिश्नर्स, पृ० १०५ १०७।

२ लैंग, वाडरिंग्स इन इण्डिया एण्ड अदर स्केचेज़ आफ लाइफ इन हिन्दुस्तान, पृ० ११६

३. टकर, दि क्रानिकल आफ प्राइवेट हेनरी मैटकाफ, पृ० १६

ने नानासाहव के वारे मे लिखा है कि वह "मझले कद का, वहुत मोटा और गेहुए रंग का एवं उभरे हुए नक्श का आदमी था और अन्य सव मरहठो की तरह वह अपनी दाढी-मूछ और घुटा हुआ सिर रखता था। वह अंग्रेजी का एक शब्द भी नही बोल सकता था।"[४] शेरर ने "घोडू पन्त के वहुत-से परिचितो, विशेषकर उनके डाक्टर जे० एन० त्रेसीद्दर से यह सुना था कि घोडू पन्त वहुत नीरस आदमी था। तीस या चालीस के बीच की आयु का, मझोले कद का, चौडे-चपटे नक्श का और निरंतर मोटा होता जाने वाला यह आदमी अगर तिकोनी मराठा पगड़ी न पहनता होता तो वह वाजार के एक मामूली दुकानदार जैसा लगता। वह पगड़ी भी अच्छी तरह नहीं वाधता था। वह अंग्रेजी नही वोलता था। सोचने की मुद्रा मे भी वह ऐसा नहीं लगता था कि किसी काव्य-चिन्तन मे निमग्न हो।"[५] टाड नामक एक अंग्रेज उन्हें अखवार और पत्रिकाएं पढ कर सुनाया करता था। सामान्य दिनो मे एक अपदस्थ राज परिवार के नाममात्र के राजा से लोग अधिक आशा भी नहीं रखते थे, इसलिए यह संभव है कि नानासाहव का जीवन शाति के साथ एकान्त मे ही व्यतीत हो गया हो।

यह नहीं कहा जा सकता कि वाजीराव ने अपने परिवार के लिए काफी रुपया वचा लिया होगा। सरकारी अनुमान के अनुसार उन्होने जो सम्पत्ति छोडी, वह नकद और जायदाद दोनो मिलाकर, तीस लाख रुपये से अधिक की नहीं थी।[६] नाना को इसी रकम से अपने पिता का सारा ठाठ-वाट कायम रखना था और अपने अनेक-आश्रितो का निर्वाह करना था। मोरलैण्ड का, जो नाना को अच्छी तरह जानता था, विश्वास था कि उसकी अपनी आय मे नानासाहव का काम नहीं चल सकता था, "हालाकि वह सीधा-सादा आदमी था और उसकी खर्चीली आदतें भी नहीं थीं।"[७] "लेकिन सरकार वाजीराव के जीवन काल मे ही यह वात स्पष्ट कर चुकी थी कि उसके उत्तराधिकारी उसकी पेन्शन मे से कुछ भी पाने के हकदार नही होगे। इसी नीति के अनुसार सन् १८३२ मे चिमन जी अप्पा की मृत्यु के वाद सरकार ने उनकी पेन्शन, उनकी विधवा और उनकी पुत्री को देने से इन्कार कर दिया था।"[८] नानासाहव को यदि अंग्रेजो की उदारता और न्याय मे अटूट विश्वास होता तो वात और थी, वैसे ऐसी स्थिति मे वाजीराव की मृत्यु के वाद उसकी पेन्शन का वन्द हो जाना उसके लिए कोई आश्चर्य की वात न थी। वहुत-से अंग्रेजो का यही कहना था कि कानूनी दायित्व के वारे मे स्थिति चाहे जो भी रही हो, न्याय की भी यही माग थी कि पेन्शन का कुछ भाग वाजीराव के परिवार को मिलते रहना चाहिए था। नाना-

---

४. थामसन, दि स्टोरी आफ कानपुर, पृ० ४६

५. माड और शेरर, मेमोरीज आफ दि म्यूटिनी, जिल्द १, पृ० २१५

६. गुप्त, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ६३

७. गुप्त, वही, पृ० ६६

८. सरदेसाई का यह कथन सही नहीं है कि चिमनजी १८३० मे मरे। मराठी रियासत, उत्तर विभाग, जिल्द ३, पृ० ५६५। गवर्नर जनरल के एजेंट ने अपने २ जून, १८३२ के पत्र में सही तारीख वताई है। फारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशन्स, स० ४८, १८ जून, १८३२

साहब और उसके समर्थको का कहना था कि यह पेन्शन बाजीराव को "उनके अपने और उनके परिवार के निर्वाह के लिए दी गई थी" और अब पेन्शन पाने का उनके परिवार का कानूनी अधिकार था, और बाजीराव ने अपने जीवनकाल मे क्या कुछ बचाया, इस बात का पेन्शन से कोई सम्बन्ध नहीं था।

दुर्भाग्यवश परिवार मे ही फूट पड गई। दोनो नाबालिग लडकियों की ओर से उनके बाबा बलवन्तराव अठावले ने पेन्शन के लिए दावा पेश किया। उन्होंने इस दावे मे यह दलील दी कि असली पुत्र न होने की स्थिति मे हिन्दू कानून के अनुसार पुत्रियों को पुत्र जैसा ही अधिकार प्राप्त है, इसलिए इन पुत्रियो का हक मार कर दत्तक पुत्र को पेन्शन नहीं दी जा सकती।[९] सरकार इस विचार से सहमत नहीं हो सकी और प्रार्थी को बताया गया कि धोंडू पन्त ही पेशवा परिवार का कानूनी और वास्तविक मुखिया था। पेशवा की विधवाओं ने इस कुचक्र मे क्या योग दिया, यह तो पता नहीं लेकिन ऐसा सहज ही विश्वास किया जा सकता है कि उनकी अपनी योजना थी और इस योजना मे सभवत चिमन जी अप्पा के पौत्र युवक चिमन जी थट्टे का भी हाथ था। स्वर्गीय पेशवा के आश्रितों और सेवको मे भी कुचक्री लोगो की कमी न थी जो इस पारिवारिक कलह से लाभ उठाना चाहते थे, और उन्हें पास के औद्योगिक शहर मे उनका साथ देने वाले काफी लोभी व्यक्ति भी मिल गए।

सन् १८३२ के जिस नियमन के अधीन बाजीराव और उनकी जागीर बिठूर मे रहने वाले लोगो को सामान्य अदालतों के अधिकार-क्षेत्र से मुक्त किया गया था वह भी पेशवा के मरते ही समाप्त कर दिया गया। फरवरी १८५२ मे एक अधिनियम पास करके इस नियमन को रद्द कर दिया गया। इससे नानासाहब और उनके भाई का दर्जा सामान्य व्यक्तियो जैसा तो कर ही दिया गया, साथ ही उनका अब अदालत मे भी हाजिर होना सभव कर दिया गया। इस अपमानजनक स्थिति को भी उन्होने सभवत धीरे-धीरे सहन कर लिया होता, लेकिन उन्हें यह देख कर अत्यन्त खेद हुआ कि बाजीराव की मृत्यु के बाद उनके परिवार के पास कहीं भी एक इच भूमि भी नहीं रह गई थी।[१०] जब कोई पेशवा मरता था तो उसके ब्राह्मणों को श्राद्ध मे उसके वशज पाच महादान करते थे—हाथी, घोडे, सोना, जवाहरात, और भूमि। बाजीराव का श्राद्ध भी उसके पूर्वजो की भाति उसी ठाट मे किया गया लेकिन महादान के लिए उसके उत्तराधिकारी के पास भूमि नहीं रह गई थी। सरदार रघुनाथ राव विचूरकर उस समय बिठूर मे ही था। जब उसने यह देखा कि ब्राह्मणों को भूमि नहीं दी जा सकी है तो उसे बहुत दु ख हुआ। उसने नानासाहब को विनम्रतापूर्वक सुझाव दिया कि जब सब महादान किए गए हैं तो भूमि का महादान ही क्यों छोडा जाए। उसने कहा कि उसकी जागीर और इनाम मे मिले उसके ५२ गाव वास्तव मे पेशवा के ही हैं और नानासाहब उनमे से जितने

---

९ सेन और मिश्र, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २६-३३ (इन्ट्रोडक्शन) और डोक्यूमेण्ट स० २३

१० बिठूर की भूमि मे केवल नाना के जीवनपर्यन्त ही उनका हित रखा गया था।

गांव चाहे, ब्राह्मणो को दे दें। अपने परिवार के प्रति इस असाधारण भक्ति का प्रदर्शन देख कर नाना द्रवित हो उठे और उनकी आखों से आसू वह निकले।[११] अग्रेज अफसरो में कोई भी इतना दूरदर्शी नहीं था जो इस प्रकार की सहायता का प्रस्ताव करता और अभागे युवराज को सदा के लिए सरकार का कृतज्ञ वना लेता।

यह वात प्राय. भुला दी जाती है कि कभी कभी मामूली-सी रियायतें भी भावुक प्रकृति के लोगो को सान्त्वना देने मे वड़ी सहायक होती हैं। नाना को अपने स्वर्गीय पिता की मुहर का प्रयोग करने की अनुमति दी जा सकती थी। सर्वसाधारण की दृष्टि मे वह पेशवा के जायज उत्तराधिकारी थे और अंग्रेज भी उन्हें महाराजा कह कर सम्वोधित करने की शिष्टता वरतते थे। अगर उनके पत्रो पर पेशवा की मुहर रहती तो इससे उनका राजनीतिक दर्जा कुछ अधिक न वढ जाता। लेकिन विठूर के कमिश्नर मोरलैण्ड ने विरोध किया और नाना को नई मुहर वनवानी पडी, जिसमे उन्होने अपने आपको पेशवा वहादुर लिखा। नई मुहर और भी अधिक उत्तेजित करने वाली थी और इसके प्रयोग की मनाही कर दी गई, अव निराश होकर नानासाहव को श्रीमान् नाना धोडू पन्त वहादुर की ही पदवी पर सतोष करना पडा।[१२] पेन्शन वन्द हो जाने से नाना निराश तो पहले ही हो गए थे, अव अपना पद गिर जाने से उनमे कटुता का भाग भी उत्पन्न हो गया।

उन दिनो रियासतो के राजा-महाराजा भारत सरकार के विरुद्ध ब्रिटिश सरकार से और सपरिषद् गवर्नर-जनरल के विरुद्ध कोर्ट आफ डायरेक्टर्स से अपील करने के आदी थे। अन्य पदच्युत राजाओ की तरह नाना ने भी यही सोचा कि अगर उनका मामला इग्लैण्ड के शासको के सामने अच्छी तरह रखा जाए तो शायद उनके साथ कुछ न्याय हो सके। उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर और सपरिषद् गवर्नर-जनरल के नाम वार-वार स्मरण पत्र भेजने का जव कोई परिणाम न निकला तो उन्होंने कोर्ट आफ डायरेक्टर्स को अर्जी भेजी। जव इस कोर्ट ने भी भारत सरकार के निर्णय मे संशोधन करने से इन्कार कर दिया तो उन्होंने अपना एक प्रतिनिधि इग्लैण्ड भेजा। वार-वार की दुत्कार ने उनका दिल अभी खट्टा नहीं किया था, चाहे उनका प्रयत्न व्यर्थ भले ही हो, पर फिर भी वे आशा के सहारे जीवित रहना ही पसन्द करते थे। उनका प्रतिनिधि अजीमुल्ला खां वडा अद्भुत आदमी था। उसके लिए यह कोई अपमान की वात न थी कि वह एक छोटे खानदान का आदमी था। एक समय वह खिदमतगारी करके अपना जीवन-निर्वाह करता था। उसने खुद पढ-लिख कर अपनी दशा सुधारी। उसने अंग्रेजी और फ्रेंच भाषा पढनी, लिखनी और वोलनी सीखी और एक स्कूल मे अध्यापक हो गया। जिस आदमी ने वहुत-सी कठिनाइयो मे अपना जीवन शुरू किया हो उसके लिए यह कोई मामूली सफलता न थी।[१३] अजीमुल्ला खा की सूरत-शक्ल भी अच्छी थी और

---

११ इतिहास सग्रह, ऐतिहासिक स्फुट लेख, भाग ३, पृ० २६

१२. फारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशन्स, ३० दिसम्वर, १८५८। मौव्रे थामसन और ट्रेविलियन का 'सीरीक ढोड्ड पुन्थ' शायद श्री धोडू पन्त का ही अपभ्रंश है।

१३. वास्तव मे अजीमुल्ला के प्रारम्भिक जीवन के वारे में कुछ अधिक मालूम नहीं

उसका व्यक्तित्व आकर्षक था, इस पर उसने बातचीत और बरताव के अच्छे तरीके भी सीख लिए थे, इसलिए इग्लैण्ड पहुचते ही उसे वहा के सभ्य समाज मे पहुच होने मे कोई विशेष असुविधा न हुई। यह कोई कम श्रेय की बात नहीं है कि ब्रिटिश सभ्य समाज की प्रौढ़ स्त्रियो का उसे स्नेह प्राप्त हुआ और उसका रग कुछ सावला होते हुए भी नवयुवतियो ने उसे प्रेम और प्रशसा का पात्र बनाया।[१४] लेकिन अज़ीमुल्ला जल्दी ही यह समझ गया कि उसके कथन का घुटे हुए ब्रिटिश राजनीतिज्ञो पर कोई प्रभाव नहीं पड रहा है और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डायरेक्टरो की अपेक्षा महारानी के सलाहकारो पर भी उसके मालिक की बातो का अधिक अच्छा असर नहीं हो रहा। अज़ीमुल्ला खा ने स्वदेश लौटने का फैसला किया पर सामान्य लोगो की तरह वह सीधे भारत के लिए रवाना नहीं हुआ। उसने माल्टा में अग्रेज और फ्रासीसी सयुक्त सेनाओं पर रूसी सिपाहियो की विजय की

है। मौब्रे थामसन का कहना है, "अजीमुल्ला एक एग्लो-इण्डियन परिवार में खिदमतगार था। अवसर से लाभ उठाकर उसने अग्रेजी और फ्रेंच भाषा का अच्छा-खासा ज्ञान प्राप्त कर लिया। वह इन दोनों भाषाओं को अच्छी तरह लिख सकता था और इनमें अच्छी तरह बातचीत कर सकता था। पहले वह विद्यार्थी बना और फिर कानपुर गवर्नमेण्ट स्कूल में अध्यापक हो गया और इसके बाद वह नाना का वकील बना।" थामसन, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ५४। शेफर्ड ने इस बारे में कुछ और ही कहा है, "अजीमुल्ला खा दान के टुकड़ों पर पला था। १८३७-३८ के अकाल में उसे अपनी मा के साथ ले आया गया था। उस समय वे भूखे मर रहे थे। उसकी मा एक कट्टर मुसलमान होने की वजह से अपने लड़के को, जो उस वक्त बच्चा ही था, ईसाई बनाए जाने के विरुद्ध थी। उसकी शिक्षा-दीक्षा कानपुर फ्री स्कूल में श्री पैटन नामक अध्यापक की देख-रेख में हुई और सहायता के तौर पर उसे तीन रुपया मासिक मिलता था। उसकी मा आया का काम करके अपना जीवन निर्वाह करती थी। दस साल की पढाई-लिखाई के बाद अज़ीमुल्ला उसी स्कूल में अध्यापक हो गया। दो साल बाद वह ब्रिगेडियर स्काट का मुशी हो गया। जब ब्रिगेडियर स्काट जाने लगे तो उन्होंने अजीमुल्ला खा को अपने उत्तराधिकारी का मुशी बना दिया। ब्रिगेडियर अशबर्नहम के साथ अजीमुल्ला ने ठीक बरताव न कर उसे नाराज कर दिया और फिर वह रिश्वत तथा भ्रष्टाचार के आरोप में निकाला गया, फिर वह नाना के पास आ गया।" शेफर्ड परसनल नेरेटिव आफ दि आउटब्रेक एण्ड मैसेकर एट कानपुर, पृ० १४,

१४ इग्लैण्ड में अज़ीमुल्ला की प्रेम कहानियों से भारत के अग्रेज अफसरों में बड़ा क्षोभ फैल गया। लार्ड राबर्ट्स ने ३१ दिसम्बर, १८५७ को अपनी बहन के नाम एक पत्र में लिखा, "उस दिन बिठूर में नाना साहब के महल की तलाशी लेते समय हमें उस दुष्ट अजीमुल्ला खा के नाम इग्लैण्ड की महिलाओं के पत्रों का एक गट्ठर मिला। एक पत्र ऐसी स्त्री का था जिसके नीचे "तुम्हारी स्नेहमयी माता" लिखा हुआ था। एक पत्र ब्राइटन से मिला यह एक लड़की का था जिसमें प्रेम की बातें लिखी हुई थीं। इस पत्र का कुछ भाग फ्रेंच में लिखा था। ऐसी बकवास मैंने कहीं भी नहीं पढ़ी। मालूम होता है यह दुष्ट फ्रेंच भी

खबर सुनी और तुरन्त ही उसने कुस्तुनतुनिया के लिए टिकट खरीद लिया। कुस्तुनतुनिया मे अजीमुल्ला खा की भेंट प्रसिद्ध पत्रकार विलियम हावर्ड रसेल से हुई। रसेल ने इस जिज्ञासु मुसलमान का एक शब्द-चित्र इस प्रकार खींचा है. "कुछ दिन के लिए मैं कुस्तुनतुनिया गया था। वहा मै मिसीरी के होटल मे ठहरा हुआ था—इस होटल मे मैं प्राय. दुबले-पतले, काले रंग के एक खूबसूरत नवयुवक को देखता था। यह युवक पूर्वी वेश-भूषा मे रहता था जो मेरे लिए नई थी। उगलियो में अगूठिया आदि पहने हुए यह युवक बडी सजधज के साथ निकलता था। वह फ्रेंच और अग्रेजी बोलता था। जहा तक मैं समझता हूँ, यह भारत की किसी रियासत का राजा था जो लदन मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी के विरुद्ध एक असफल दावा पेश करने के बाद लौट रहा था।" अजीमुल्ला ने क्रीमिया होकर आने की कोशिश की क्योंकि वह "महान रुस्तमो—वीर रूसियो को देखना चाहता था जिन्होने अग्रेजी और फ्रासीसी, दोनो सेनाओ को एक साथ हराया था।" काफी दूर के फासले से उसने रूसी तोपखाने को काम करते देखा भी था। धार्मिक विधि-निषेधो को महत्व न देते हुए रसेल से उसने एक बार कहा, "मै इस तरह की मूर्खतापूर्ण बातो मे विश्वास नहीं करता। मेरा कोई मजहब नहीं है।" बाद मे रसेल ने कहा था, "क्या यह जिज्ञासा उत्पन्न करने वाली बात नहीं है कि क्रीमिया मे जो कुछ हो रहा है, अजीमुल्ला खां उसे स्वयं जा कर देखना चाहता था। यूरोपीयों मे तो प्राय इस प्रकार की जिज्ञासा होती है, लेकिन एक असैनिक जाति के एशियावासी में इस तरह की जिज्ञासा होना वास्तव मे आश्चर्य का विषय है। अंग्रेज़ी सेना को उसने बड़े ही हतोत्साह की स्थिति मे देखा और जैसा कि मैंने सुना है फ्रासीसी सेना की अपेक्षा अग्रेजी सेना के साहस और शक्ति के बारे मे उसने कुछ विपरीत धारणा ही बनाई थी।"[१५]

इधर नानासाहब एक समृद्ध राजा की भाति सामान्य जीवन व्यतीत कर रहे थे। वे स्वय अपनी इच्छा से कानपुर के अग्रेज अफसरो का आतिथ्य-सत्कार करते और खूब उदारता से उन्हे खिलाते-पिलाते। कभी-कभी वे शहर से होकर निकलते लेकिन उनके यूरोपीय मित्र उसी तरह उनके आतिथ्य-सत्कार का बदला न चुका पाते थे क्योकि, नानासाहब अग्रेजो के साथ खाते-पीते न थे। लेकिन मौब्रे थामसन का कहना है कि अंग्रेजो के साथ उनके न खाने-पीने के पीछे धार्मिक भावना इतनी अधिक नहीं थी जितनी कि चोट खाए हुए अभिमान की भावना। "नानासाहब कानपुर छावनी के अफसरो का प्रायः बड़े राजसी ठाठ-बाट से स्वागत सत्कार किया करते थे, यद्यपि उसके बदले मे वे अंग्रेजो का आतिथ्य-सत्कार स्वीकार नहीं करते थे क्योकि उनके सम्मान मे सलामी देने की प्रथा का

समझता होगा। अग्रेज महिलाए वासना के नशे मे कितनी अधी हो जाती हैं ! कोई कुमारी .. अजीमुल्ला से शादी करने वाली थी और मुझे इसमे जरा भी सन्देह नहीं कि अब भी वह ऐसा करना पसन्द करेगी, हालाकि कानपुर के हत्याकाड में मुखिया व्यक्ति यही अजीमुल्ला खा ही था।" राबर्ट्स, लेटर्स रिटन ड्यूरिग दि इडियन म्यूटिनी, पृ० १२०

१५ रसेल, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द १, पृ० १६५-१६७। उत्तर भारत के एक मुसलमान को असैनिक जाति का एशियाई कहना सही नहीं है।

पालन नहीं होता था।"[१६] चाहे जो भी वास्तविक कारण रहे हो, नानासाहब स्थानीय अधिकारियो का विश्वास प्राप्त करने मे सफल रहे और जब सकट आया तो सब स्थानीय अधिकारी सहयोग एव सहायता के लिए निस्सकोच उन्हीं के पास गए।

बाजीराव तो बनारस, प्रयाग और गया की यात्रा करके अपने नियत्रित एव निर्वासित जीवन की नीरसता को दूर कर लेते थे। यद्यपि उनकी गतिविधियों पर निगरानी रखी जाती थी, किन्तु वातावरण मे परिवर्तन आने से कुछ न कुछ मन अवश्य बहल जाता है। नाना के पास दिल बहलाने के लिए उनके अपने अहाते मे "तेज से तेज घोडे, अच्छे से अच्छे कुत्ते, अनोखे अद्भुत प्रकार के हिरण और मृग तथा भारत के सभी भागो के जानवर थे।"[१७] लेकिन यह सब होते हुए भी उन्हें कुछ सक्रिय मनोरजन की आवश्यकता अनुभव होती थी। सन् १८५६ के अत मे वे सैर के लिए लखनऊ गए। फवेने उन्हें वहा मिले और रसेल ने लिखा है कि नानासाहब यात्रा के बहाने ग्राड ट्रक रोड पर सभी सैनिक केन्द्र देखने गए, यहा तक कि वे शिमला जाने का भी विचार कर रहे थे।[१८] नानासाहब के दल मे अजीमुल्ला खा भी था। एक हिन्दू यात्री के साथ एक मुसलमान का होना बडी अजीब बात थी। रसेल ने एग्लो-इण्डियन अधिकारियों के विवेक और बुद्धिमत्ता की आलोचना की है, जिनकी अनुमति के बिना नाना अपने महल से एक मील दूर भी नहीं जा सकते थे और भारत मे आने वाला नया आदमी भी यह जानता था कि कालपी और लखनऊ हिन्दुओं के तीर्थस्थान नहीं हैं। सरकारी कागजातों से नानासाहब की यात्रा के कार्यक्रम पर कोई प्रकाश नहीं पडता, लेकिन जनवरी १८५७ मे जब मार्टिन्यू अजीमुल्ला से अम्बाले मिले तो उनके साथ नानासाहब नहीं थे। हो सकता है नानासाहब की यात्रा लखनऊ तक ही रही हो। यह तो स्पष्ट है कि सरकार की दृष्टि मे जो लोग अवाछनीय थे, नानासाहब सम्भवत. उनसे न मिल सके हो। यह कहा जाता है कि उनकी गतिविधियो से सर हेनरी लारेंस को सन्देह हो गया और नानासाहब अचानक ही लखनऊ से चल पडे।[१९] लखनऊ मे नानासाहब जितने दिन रहे, सैनिक अधिकारियो से खूब मिलते-

---

१६ थामसन, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ४८। हार्वे ग्रेटहेड और उनकी पत्नी एक बार नाना के मेहमान हुए। उन्होंने श्रीमती ग्रेटहेड को लिखा "मैं समझता हू कि हम सिर्फ एक बार बिठूर पिकनिक के दौरान इस दुष्ट के मकान पर ठहरे थे।" ग्रेटहेड, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १३८

१७ शेरर का कहना है कि हेनरी विलोक बिठूर से नाना के दो पालतू पशु लाया था—एक लगूर और एक गिलहरी, जो छोटे-मोटे खरगोश जितनी बड़ी थी (शायद मालाबार की तरफ की होगी)। "माड और शेरर, उद्धृत ग्रन्थ जिल्द १, पृ० २२३। लेफ्टिनेन्ट ग्रूम के एक आदमी ने बिठूर मे अग्रेजी कुत्तों (बुलडाग) का एक जोड़ा देखा था। "यदि इन कुत्तो को बनाए रखा जाए तो कलकत्ते में इनके पाच सौ रुपये मिल सकते हैं।" ग्रूम, विद हैवलाक फ्राम इलाहाबाद टु लखनऊ, पृ० ४१-४२

१८ रसेल, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द १, पृ० १६८

१९ गब्बिन्स, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ३२

जुलते रहे। हेनरी मेटकाफ ने लिखा है कि नाना लखनऊ मे रेजीमेण्टो की घुड़दौड़ में शरीक होते थे। "घुड़दौड और खेलकूद तीन दिन तक जारी रहे और इन तीनो दिन शैतान नानासाहव घुड़दौड मे रहा और हमारे अफसरो के साथ काफी इत्यादि पीता रहा और इस सारे समय मे गदर की योजना भी वनाता रहा।"[२०] यदि वास्तव मे ही वे यह सब करते रहे और लखनऊ और कानपुर के अंग्रेज अफसर उनके इरादो को न भांप सके तो निस्संदेह वे "आखो मे धूल झोकने" की कला मे वहुत कुशल रहे होगे।

इस बीच चिमनजी अप्पा की ओर से नानासाहव पर एक मुकदमा भी दायर हुआ जो खारिज हो गया।[२१]

कानपुर एक महत्वपूर्ण सैनिक छावनी थी। यह शहर और जिला, जिसका यह सदर मुकाम था, वे पहले अवध के राजा का था। इसके राजस्व से छावनी मे एक सहायक सेना रखी जाती थी और यह जिला सन् १८०१ मे अंग्रेजो को मिल गया था।[२२] कानपुर गंगा के किनारे वसा हुआ है, जिसमें छोटी-छोटी नावें तो वारहो महीने चलती हैं और वरसात में भारी जहाज भी चल सकते हैं। इस नगर का व्यावसायिक महत्व था। यह चमड़े के व्यापार की वड़ी भारी मंडी था। यहां से इलाहावाद सौ मील और लखनऊ केवल चालीस मील होने के कारण यह शहर ऐसी जगह पडता है कि जिसकी एक ओर ग्राड ट्रंक रोड और दूसरी ओर अवध जाने वाली वड़ी सड़क है। सैनिक महत्त्व की जगह होने के कारण कानपुर मे पर्याप्त सेना रखी गई थी। मई १८५७ मे कानपुर मे पहली, ५३वीं और ५६वीं, इन तीन हिन्दुस्तानी रेजीमेण्टो, दूसरी घुड़सवार सेना, और कुछ हिन्दुस्तानी तोपचियो के अतिरिक्त, ६१ यूरोपीय तोपची तथा और छ: तोपें रख दी गई थीं। उनकी कुल संख्या ३ हजार भी न थी। कमाडिंग अफसर थे जनरल ह्यू व्हीलर, के०सी०वी०। उन्होने पचास वर्ष से भी अधिक समय तक प्रशंसनीय ढंग से सैनिक सेवा की थी। एक बहुत छोटे अफसर के रूप में उन्होने लार्ड लेक के अधीन कार्य किया था और सन् १८०४ मे दिल्ली पर अधिकार होने के समय वे वहा मौजूद थे। वाद मे उन्होने अफगानिस्तान और पंजाव मे वहुत नाम कमाया। और यद्यपि उनकी आयु ढल रही थी फिर भी एक सैनिक के रूप में वे इतने विख्यात हो गए थे कि दिल्ली मे पहाड़ी पर स्थित थोड़ी-सी अंग्रेजी सेना को यह आशा थी कि अगर सहायता के लिए और कोई नहीं आया तो जनरल व्हीलर तो अवश्य ही पहुंच जाएंगे। सर हेनरी लारेंस की सम्मति मे ऐसे समय व्हीलर की ही जरूरत थी जो "उस संकट काल में शक्ति के स्तम्भ थे।"

मेरठ और दिल्ली के विद्रोह का समाचार १४ मई को कानपुर पहुंच गया। जनरल व्हीलर को अगर इससे कुछ चिन्ता भी हुई हो तो उन्होंने उसे प्रकट नहीं होने दिया। १८ मई को गवर्नर-जनरल के नाम उनका सन्देश था—कानपुर मे सव ठीक है। उत्तर-पश्चिमी प्रान्त की अपेक्षा कानपुर मे यूरोपीय और ईसाइयों की आवादी वहुत

---

२०. टकर, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २१

२१. नानक चन्द, पृ० १

२२ एचिसन, ट्रीटीज, इन्गेजमेंट्स एण्ड सनद्स, जिल्द २, पृ० १२२-१२३

अधिक थी। शाही सेना की ३२ वीं रेजीमेण्ट के अनेक अफसर उस समय लखनऊ मे तैनात थे और उनके परिवार कानपुर मे ही रहते थे। और यदि सिपाही विद्रोही हो जाते तो उनके सामने व्हीलर इन परिवारों को कहीं सुरक्षित स्थान पर पहुचाने का प्रवन्ध भी नहीं कर सकते थे। अभी किसी तरह के असन्तोष क. कोई लक्षण प्रकट नहीं हुआ था। सिपाहियों के साथ पचास वर्ष से भी अधिक समय तक काम करते रहने के कारण व्हीलर यह अच्छी तरह जानते थे कि अगर इस समय उन्होंने जरा भी विवेक खोया तो जल्दी ही आग भडक सकती है। इसके विपरीत यदि उन्होंने दृढता और आत्म-विश्वास से काम ले कर यह सिद्ध किया कि कहीं कोई भी असाधारण वात नहीं है तो एक भी गोली चलाए बिना सकट टल सकता था। १६ तारीख को व्हीलर को भारत सरकार का एक तार मिला "एक यूरोपीय सेना को वहा रखने का प्रवन्ध फौरन किया जाए और यह प्रकट कर दिया जाए कि तुम ऐसा कर रहे हो।"[२३] यूरोपीय सेना यदि समय पर पहुच जाए तो व्हीलर को कोई भय नहीं था, पर इस खवर को फैलाने का मतलव यह होता कि सिपाहियो को चेताया जा रहा है कि उनकी कर्तव्य परायणता भी अव सन्देह से परे नहीं रही। २१ मई को २ री घुडसवार सेना मे हलचल मच गई। यह अफवाह फैल गई कि "उनसे उनके अस्त्र और घोडे लेकर यूरोपीयो को दे दिए जाएगे।"[२४] वस्तुत यह अफवाह निराधार थी, लेकिन घुडसवार सैनिकों ने अपने पैदल सहयोगियो से यह पूछना शुरू कर दिया कि अगर उनसे उनके घोडे और अस्त्र छीने गए तो क्या वे उनकी मदद करेंगे ?

२२ मई को अवध अनियमित घुडसवार सेना के २४० सवार और ५५ यूरोपीय लखनऊ से आ गए। यद्यपि कानपुर मे सर्वत्र शाति थी तथापि सिपाही इससे कुछ अशात हो गए हो तो इसमे उनका क्या दोष था ? यूरोपीय और यूरेशियनों को स्पष्ट रूप से कुछ खतरे की आशका हो रही थी। "ऐसा लगता था कि छावनी का हर व्यक्ति किसी न किसी भयंकर काण्ड के होने की आशका कर रहा था, पर यह कोई नहीं कह सकता था कि क्या होने वाला है। हिन्दुस्तानी सेनाए उस समय भी सदा की भाति शात थीं, लेकिन सभी के दिमाग पर एक प्रकार की अनिश्चितता और भय की भावना छाई हुई थी।" "कुछ यूरोपीय व्यापारियों और अन्य लोगों ने तो यह सोच कर नावें भाडे पर ले ली थीं कि जैसे ही कोई खतरा दिखाई देगा वे इलाहाबाद के लिए रवाना हो जाएगे। कुछ लोगों ने मकान और सम्पत्ति नौकरों के भरोसे छोड डाक से चले जाने का इन्तजाम कर लिया था। हर आदमी ने अपनी सामर्थ्यानुसार चौकीदारों की सख्या भी बढा ली थी।"[२५] जब एक बार आतक पैदा हो जाता है तो वह फैलने लगता है। ऊपर से शाति रखने पर भी अन्दर ही अन्दर सिपाही अशात हो उठा और २१ तारीख को किसी सिपाही ने वस्तुत· अपने

---

२३. फारेस्ट, ए हिस्ट्री आफ दि इण्डियन म्यूटिनी, जिल्द १, पृ० ४००

२४ वही, जिल्द १, पृष्ठ ४०१-४०२

२५ शेफर्ड, ए पर्सनल नरेटिव आफ दि आउटब्रेक एण्ड मैसेकर एट कानपुर' पृ० २

सहयोगियो को सावधान किया—"सावधान रहो, साहव लोग कुछ शरारत करने वाले हैं, और पहली कम्पनी की छठी वटालियन के तोपखाने की तोपें तैयार कर ली गई हैं और तोपची, घुडसवार सेना की लाइन पर गोलावारी करने को तैयार हैं।।"[२६] अपराधी को गिरफ्तार कर लिया गया, उस पर मुकदमा चलाया गया, उसे अपराधी करार दिया गया और मौत की सजा भी सुना दी गई, लेकिन सिपाहियों के उत्तेजित हो उठने के डर से उसे फांसी नहीं दी गई। इस मौके पर लखनऊ की सेना से उन्हें कोई विशेष आश्वासन नहीं मिला और सिपाहियो को डराने-धमकाने के लिए इन सैनिको की संख्या भी काफी नहीं थी।

दुर्भाग्यवश इसी समय वाजार मे खराव आटा आया जो सस्ते दामो पर वेचा जा रहा था। यह पुराना और गला-सड़ा आटा था, जिसके पकाने पर उसमे से वदवू आती थी। संदेह यह हुआ कि इस आटे में सूअर और गाय की हड्डियों का चूरा मिला हुआ है। सिपाहियो का इससे उत्तेजित हो उठना स्वाभाविक ही था। जांच-पड़ताल से यह सन्देह निरावार निकला, लेकिन आटे मे मिलावट के वारे मे सिपाही सन्तुष्ट न हुए और सहज ही विश्वास करने वाले लोग इस सन्देह से अव भी परेशान थे, क्योंकि उन्हें यह विश्वास नहीं हुआ कि आटे मे मिलावट के लिए केवल व्यापारी लोग ही दोषी हैं।[२७]

२१ तारीख को कुछ न कुछ गडवड़ होने की आशंका की जा रही थी और व्हीलर वुरी से वुरी स्थिति का सामना करने के लिए तैयार था। लेकिन हुआ कुछ नहीं और यह शुभ समाचार गवर्नर-जनरल को भेजा गया। लखनऊ से कुमुक पहुंचने की सूचना कलकत्ते भी भेज दी गई थी। एक उत्साहवर्द्धक समाचार यह था कि विठूर के महाराजा ने अस्त्र-शस्त्रों से लैस लगभग तीन सौ जवान और दो तोपें अंग्रेजो की सहायता के लिए भेजीं। जनरल ने लिखा, "एक वार कलकत्ते से यूरोपीय यहां पहुंच जाएं तो मैं सव तरह का खतरा दूर हो जाने की आशा कर सकता हूं। इस समय तो सव ठीक है पर कहा नहीं जा सकता कि कव क्या हो जाए।" कलकत्ते से जव यूरोपीय पहुंचे तो काफी देर हो चुकी थी और अनुमान के विपरीत मराठो ने उत्तर के हिन्दुओ और मुसलमानो से मेल कर लिया था।

यहां एक उचित प्रश्न उठता है: क्या नाना ने अपनी सेवाएं स्वयं अर्पित की थीं, या कानपुर के असैनिक अधिकारियो ने उनकी सहायता मागी थी? जव मेरठ के विद्रोह का समाचार हिलर्सडन के पास पहुंचा तो नाना ने निश्चय ही अंग्रेज महिलाओ के आतिथ्य और सुरक्षा के लिए अपनी सेवाएं अर्पित कीं और उन्होने यह सुझाव भी दिया कि हिलर्सडन की पत्नी तथा अन्य महिलाओ को विठूर भेज दिया जाए। लेकिन क्या उन्होने सशस्त्र सहायता देने का प्रस्ताव भी अपनी इच्छा से ही रखा था? शेफर्ड ने इस वात की पुष्टि की है और कहा है कि उन्होने अपनी इच्छा से ही सैनिक सहायता दी थी। शेफर्ड ने आगे कहा है कि शहर के कई अफसरो से

---

२६. वही, पृ० ५

२७ वही, पृ० २

नाना की मैत्री और घनिष्ठता थी। "मालूम पडता है उन्होने मैजिस्ट्रेट और कलक्टर श्री हिलर्सडन के मन मे अपने प्रति ऐसा विश्वास जमा दिया था कि विद्रोह शुरू होने से पहले उन्होने अपना परिवार तथा कुछ और परिवार नाना की सुरक्षा मे छोडने का निश्चय कर लिया, लेकिन महिलाए इसके लिए तैयार नहीं हुई और उन्होने सुरक्षित स्थान मे शरण ली। नाना मे हिलर्सडन के इतने अधिक विश्वास के कारण ही उन्हें नवाबगज के खजाने के सरक्षण का दायित्व भी सौंप दिया गया था और यह अनुमति दे दी गई थी कि वे अपने नियत्रण मे ५०० घुडसवारो और पैदलो की एक टुकडी रख सकते हैं। जब विद्रोही दूर चले गए तो उसी टुकडी की सहायता से वे शस्त्रागार को अपने अधिकार मे ले सके।"[२८] यह भी बताया गया है कि "बिठूर निवासी नानासाहब ने अपनी सेवाए अर्पित कीं और अपने को सरकार का बहुत वफादार सेवक बताते हुए उन्होने सिपाहियों के साथ खजाने की रक्षा करने का प्रस्ताव रखा। उनका वह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया, इसी से सिद्ध होता है कि अग्रेजों का उनमें बहुत विश्वास था। नानासाहब खजाने के पास के ही एक बगले मे चले गए और अपने अधीन ५०० सशस्त्र सैनिकों और दो छोटी तोपों की सहायता से उन्होंने उस स्थान की सुरक्षा-व्यवस्था की।"[२९] हिलर्सडन ही ऐसा व्यक्ति था जिसके बयान से निष्कर्ष पर पहुचना सम्भव होता, लेकिन सुरक्षित स्थान मे मारे गए लोगो मे वह भी एक था। वहा बचे हुए चार व्यक्तियों मे एक मौब्रे थामसन भी थे। उन्होंने स्पष्ट रूप से यह कहा कि मैजिस्ट्रेट ने ही नाना को खजाने की रक्षा का भार लेने के लिए कहा था। "खजाने मे एक लाख पौंड से भी अधिक राशि थी और रेजिडेंट मैजिस्ट्रेट श्री हिलर्सडन को उसकी रक्षा की बडी चिन्ता थी। इसलिए उन्होंने सर ह्यू व्हीलर से सलाह लेने के बाद बिठूर से नानासाहब को सहायता के लिए बुलाया। अपने अगरक्षकों के साथ नानासाहब तत्काल वहा पहुंचे और उन्होने खजाने की रक्षा के लिए दो सौ घुडसवार, चार सौ पैदल और दो तोपें भेजने का वचन दिया। सुरक्षित स्थान से खजाना पाच मील दूर था और खजाने को वहां लाना उचित नहीं समझा गया। इसलिए उसे ५३वीं देशी पैदल सेना की एक कम्पनी के साथ-साथ बिठूर की एक टुकडी की देख-रेख मे रखा गया, और खुद नानासाहब छावनी की सिविल लाइन मे रहते थे। इस व्यक्ति के साथ हमारे सम्बन्ध हमेशा इतने मैत्रीपूर्ण रहे कि उसकी वफादारी के बारे मे हमारे किसी भी नेता के मन मे कभी कोई शका पैदा नहीं हुई, हम अपनी विकट स्थिति के कारण बहुत उद्विग्न थे और उसकी फौज आने से हमे काफी राहत मिली थी। बल्कि, यहां तक कहा गया था कि महिलाओ को बिठूर मे उसके निवास-स्थान पर भेज दिया जाए जहा वे सुरक्षित रहेंगी।"[३०] यद्यपि हिलर्सडन और व्हीलर यह अच्छी तरह जानते थे कि अपने पिता की पेन्शन रुक जाने से मराठा राजा खुश नहीं है,

---

२८ शेफर्ड, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १५

२९ वही, पृ० ५-६

३०. थामसन, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ३२-३३। श्री हिलर्सडन के समान ही उनकी पत्नी का भी नाना में पूरा विश्वास था और मैजिस्ट्रेट को तो यह भी आशा थी कि वह

लेकिन फिर भी उस समय नाना मे उनका पूरा विश्वास था और वे कई वार उनके यहा आतिथ्य-सत्कार का आनन्द ले चुके थे। यह उल्लेखनीय है कि यह सब मानते हैं कि नाना अपने साथ कितनी तोपें लाए थे, लेकिन उनके सशस्त्र सैनिको के सम्वन्ध मे लोग दो सौ से छ: सौ तक का अनुमान लगाते हैं। यह कहना कठिन है कि इन दो मे से किसे अधिक विश्वसनीय माना जाए, क्योंकि हमे उनके सूचना-सूत्रो का पता नहीं है। शेफर्ड, कमसरियट कार्यालय मे एक यूरेशियन क्लर्क था। मौब्रे थामसन, सेना मे कमीशनप्राप्त अफसर था और रेजिडेन्ट मैजिस्ट्रेट तथा कानपुर डिवीजन के कमाडिंग अफसर तक उसकी ज्यादा पहुंच थी।

सर ह्यू व्हीलर ने शहर और सिपाहियो की नई-नई गतिविधियों की सूचना देने के लिए कुछ गुप्तचर रख छोड़े थे। दुर्भाग्यवश वे जो खवरें लाते थे, उन्हें वे जनरल के अलावा अपने और मित्रो को भी वता देते थे। इसलिए उनकी वजह से भी काफी अस्तव्यस्तता हुई। कभी-कभी उनकी सूचनाएं गलत होती थीं। गुप्त रूप से उन्होंने यह वताया था कि २४ तारीख को विद्रोह होगा, लेकिन कुछ हुआ नहीं।[31] घवराहट और डर सिर्फ सिपाहियों से ही नहीं था, यूरोपीय और यूरेशियन लोग लुटेरे गूजरो के वड़े-वड़े गिरोहो के आने की अफवाहों से भी कभी-कभी आतंकित हो जाते थे।[32] लगातार इस तरह तनाव, अनिश्चितता और अनिर्णय की स्थिति रहने से अफसरो मे घवराहट फैलने लगी, और कुछ तो यह अनुभव करने लगे कि इस तरह की अनिश्चित स्थिति से तो अच्छा यही है कि कोई भी कार्रवाई की जाए। एक अफसर ने पत्र में अपने घर लिखा, "मैं सिर्फ यह चाहता हूं कि मुझे अपनी रेजीमेन्ट के साथ या अपनी कम्पनी के साथ वाहर जाकर उनसे लडने की आज्ञा मिल जाए, ताकि हम अपने आदमियों की परीक्षा कर सकें और जान सकें कि वास्तव मे वे हमारे साथ रहना चाहते हैं या नहीं, और इस प्रकार अनिश्चितता की

मराठा राजा के सैनिकों की सहायता से विद्रोह को दवा सकेंगे। श्रीमती हिलर्सडन ने एक पत्र मे अपने एक मित्र को लिखा था कि "अगर देशी सेना ने यहा विद्रोह किया तो हम लोग या तो छावनी मे चले जाएगे या विठूर नामक जगह पर जाएगे, जहा पेशवा का उत्तराधिकारी रहता है। वह सी . . . (मैजिस्ट्रेट) का घनिष्ठ मित्र है और वहुत सम्पत्तिशाली तथा प्रभावशाली है, और उसने सी . . . को यह आश्वासन दिया है कि हम सव वहा पूरी तरह सुरक्षित रहेंगे।" यह पत्र १६ मई को लिखा गया था। १८ मई को उसने एक और पत्र मे लिखा, "अगर यहा विद्रोह हुआ, तो प्रिय सी . . . ने मुझे और वच्चों को विठूर भेजने का पूरा इंतजाम कर लिया है। वे खुद वहा जाएगे और जिस राजा के यहा हम लोग जा रहे हैं उसकी सहायता से वे पन्द्रह सौ सैनिको की एक फौज तैयार करके कानपुर आएगे और विद्रोहियो को आश्चर्य चकित कर देंगे। यह उनकी अपनी योजना है और वहुत गोपनीय है, क्योंकि इसका उद्देश्य यह है कि विद्रोहियों पर अचानक हमला वोल दिया जाए।" जी० डी०, दि हिस्ट्री आफ दि इन्डियन रिवोल्ट, पृ० १२६

३१. फारेस्ट, ए हिस्ट्री आफ दि इडियन म्यूटिनी, जिल्द १, पृ० ४१०

३२. शेफर्ड, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ५

यह स्थिति समाप्त हो।"[३३] ३१ मई को कर्नल ईवार्ट ने एक पत्र मे लिखा, "मैं निराशा नहीं व्यक्त करना चाहता, लेकिन इस वास्तविकता को छिपाने का भी कोई लाभ नहीं है कि हम बहुत खतरे मे हैं, और जैसा मैं कह चुका हू, अगर सैनिको ने विद्रोह किया तो मेरा जीवन निश्चय ही बलिदान होगा। परन्तु मैं समझता हू कि वे हमारे सुरक्षित स्थान पर आक्रमण करने की हिम्मत नहीं करेंगे, जिसकी रक्षा यूरोपीय सैनिक कर रहे हैं।"[३४] श्रीमती ईवार्ट ने अपनी स्त्रियोचित अत प्रेरणा से स्थिति को अच्छी तरह भाप लिया था। उन्होंने लिखा, "एक आकस्मिक चिनगारी ही पैदलो की रेजीमेटो और घुडसवारों की रेजीमेट मे विद्रोह की ज्वाला भडका सकती है, और अपनी छ तोपों के साथ अगर हम अपने स्थान पर जमे भी रहें, तब भी हमारे अफसर अवश्य मारे जाएगे, और मैं अपने से यह नहीं छिपाना चाहती कि सारी सेना मे सबसे ज्यादा खतरा मेरे पति को है।"[३५]

यह चिनगारी शराब के नशे मे चूर एक अफसर की एक हरकत के कारण भडक उठी। नशे मे उस मूर्ख ने दूसरी घुडसवार रेजीमेट की एक छोटी-सी टुकडी पर गोली चला दी। फौजी अदालत मे उस पर मुकदमा चला, लेकिन यह कह कर उसे छोड दिया गया कि जब उसने यह जुर्म किया था, उस समय वह अपने होश मे नहीं था और इसलिए वह उसका जिम्मेदार नहीं है। यह एक अजीब ही तर्क था, क्योंकि शराब के नशे मे होना कानून की दृष्टि मे कोई न्यायोचित तर्क नहीं है। इस स्पष्ट अन्याय ने सिपाहियो की इस शका को और भी पुष्ट कर दिया कि अफसर कोई भयकर चालबाजी करना चाहते हैं। गुस्से मे भरे हुए कुछ घुडसवार शेफर्ड से मिले और बातचीत मे उनके मन की बात उससे छिपी नहीं रही। एक ने यह शिकायत की कि नए कारतूस का उपयोग कराने मे असफल होने पर अफसरों ने चालाकी से रुडकी से ऐसा आटा मगाया है, जिसमे गाय और सूअर की हड्डियो का चूरा मिला हुआ है। दूसरे ने पूछा, अगर धोखे की कोई बात नहीं है तो अफसर सुरक्षित स्थान मे क्यों घुसे हुए हैं? तीसरे ने कहा, मुझे उन पर कोई विश्वास नहीं है। उन्होंने शस्त्रागार और खजाने पर से देशी सैनिकों का पहरा हटाकर यूरोपियनो का पहरा क्यों लगाया? मेरठ के जिन घुडसवारों ने 'नए कारतूस मुह से खोलने से इन्कार कर दिया था', उनके साथ किए गए व्यवहार पर भी बातचीत हुई। "यूरोपीय सेना के कानपुर पहुचते ही हम सब के साथ भी वैसा ही व्यवहार होगा। इसलिए हम तब तक रुकेंगे नहीं, हमारी बहुत दुर्दशा की गई है। अभी उस रात एक अफसर ने गश्त लगाती हुई हमारी एक छोटी-सी टुकडी पर गोली चला दी थी और अदालत ने उसे यह कह कर छोड दिया कि वह अफसर पागल था। अगर हम देशी लोगो ने किसी यूरोपीय पर गोली चलाई होती तो हमे फासी पर लटका दिया जाता।"[३६] सिपाहियो को इस बात पर काफी नाराजगी थी और वे यह समझते थे कि शासकों की जाति के न्यायाधीशों ने अभियुक्त

३३ फारेस्ट, ए हिस्ट्री आफ दि इडियन म्यूटिनी, जिल्द १, पृ० ४११

३४ थामसन, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ३३

३५ वही, पृ० ३६

३६ शेफर्ड, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ६-११

को इसलिए छोड दिया क्योकि वह उन्हीं के वर्ग और जाति का था। लेकिन ३ तारी
रात शातिपूर्वक बीत गई।

वह सुरक्षित स्थान जिसने अप्रभावित सिपाहियो के मन मे अविश्वास पैदा करके रोष बढ़ाया था, कोई सुदृढ स्थान नहीं था। इकमजिली ईंट की सिर्फ दो बैरकें थीं और उनमे से भी एक बैरक की छत फूस से छाई हुई थी। उसके चारो तरफ खाई खुदी हुई थी, जो ज्यादा गहरी नहीं थी और सुरक्षा के लिए जो दीवार बनी थी, वह न मजबूत थी न ऊंची। अजीमुल्ला ने उसका मजाक उडाते हुए उसका नाम 'नाउम्मीदी का किला' रखा था। वह एक अस्थायी आश्रय के रूप मे बनाया गया था, क्योकि सर ह्यू व्हीलर को उसके गुप्तचरों ने बताया था कि अगर देशी सैनिक विद्रोह करेंगे तो वे एकदम दिल्ली जाएंगे और अंग्रेजो या कानपुर मे रहने वाले ईसाइयो को तग करने का उनका कोई इरादा नहीं है। हमला होने पर उस स्थान पर कोई बचाव नहीं हो सकता था और असैनिक लोगो ने तो शस्त्रागार को अधिक सुरक्षित स्थान समझा था। लेकिन सर ह्यू व्हीलर सिपाहियो के रहने के स्थान से ज्यादा दूर नहीं जाना चाहते थे, इसलिए उन्होंने अपने अधीन अफसरो को वहीं सोने का आदेश दिया था। वे अपना यह विश्वास दिखा कर सिपाहियो की शंका दूर करना चाहते थे और संकट उपस्थित होने पर यूरोपीयो को सुरक्षित निकाल ले जाने की व्यवस्था रखना चाहते थे। हर बार खतरे की खबर सुनकर अंग्रेज औरतें और बच्चे उन बैरको मे चले जाते और जब यह खतरा झूठा सिद्ध होता तो वे फिर वापस अपने घर लौट जाते। इन सब बातों से सिपाहियो ने अपने निष्कर्ष खुद निकाले और अपने अफसरो के तर्कों पर उन्हें तनिक भी विश्वास न हुआ। अगर स्पष्ट नीति अपनाई जाती तो कानपुर बचाया जा सकता था। अगर व्हीलर ने सैनिक और असैनिक सभी यूरोपीयो को लेकर शस्त्रागार पर कब्जा रखा होता और इस तरह विद्रोहियो को उसे तहस-नहस करने से रोका होता, तो पर्याप्त खाने-पीने का सामान उपलब्ध होने पर, वह सहायता पहुंचने तक मोर्चा साधे रख सकता था। अगर वह भारतीय सैनिको मे अपना पक्का विश्वास रखता और उनके मन मे आक्रमण का कोई खतरा पैदा न होने देता तो हो सकता है कि ऐसे सैनिक उसकी ओर रहते जो बहुत उग्र नहीं थे। लेकिन, एक तरफ प्रत्यक्ष अविश्वास और दूसरी तरफ शात वातावरण के दिखावे के अधूरे प्रयत्न की मिली-जुली नीति असफल सिद्ध हुई। खुलकर डराने-धमकाने का समय जा चुका था।

३० मई को सर ह्यू ने ३२वीं रेजीमेट को लखनऊ वापस भेजने का निश्चय किया क्योकि वहा लोग बहुत बेचैनी अनुभव कर रहे थे और इधर कानपुर मे शाति थी। फिर भी उनके पास अपनी सेना के अलावा ८४वीं पैदल सेना के कुछ सैनिक और अफसर थे, जो थोडे-थोड़े करके कलकत्ते से आए थे। लखनऊ मे ३० मई को खुलकर ग़दर शुरू हुआ। ३ जून को दो अफसर और पचास सैनिक लखनऊ भेजे गए। इन आदमियो को भेज कर व्हीलर ने लार्ड कैनिंग को लिखा, "इससे मैं कमजोर हो गया हूं, लेकिन मुझे विश्वास है कि जब तक और यूरोपीय नहीं आएंगे, तब तक मैं अपना मोर्चा संभाले रहूंगा।" उसी शाम को उसे खबर मिली कि विद्रोह होने वाला है और असैनिक यूरोपीयो को सुरक्षित

स्थान में जाने का हुक्म दे दिया गया। अगले दिन ४ जून को उस स्थान मे खाने-पीने का एक महीने का सामान डाल लिया गया और खजाने से एक लाख रुपया मंगा लिया गया। यह ग़दर शुरू होने की सूचना थी। सैनिकों ने अपनी उत्तेजना मे शेफर्ड को वता दिया था कि वे यूरोपीय फौज आने तक इन्तजार नहीं करेंगे, और वास्तव मे उन्होंने इन्तजार नहीं किया। ४ तारीख की रात को ग़दर शुरू हो गया और अनिश्चितता का समय समाप्त हुआ।

जैसी आशा थी, २री घुडसवार सेना ने शुरुआत की। पहली पैदल सेना भी तत्काल उनके साथ मिल गई। ५३वीं और ५६वीं सेनाओ के सैनिक ५ तारीख की सुबह तक अपने खेमों मे रहे, लेकिन फिर ५६वीं सेना उनसे जा मिली। मौब्रे थामसन ने लिखा है, "५३वीं सेना तब तक विद्रोहियों मे नहीं मिली, जब तक कि गलती से जनरल ने उन पर गोली नहीं चलाई। इसका कारण मेरी समझ मे नहीं आ रहा है। वे लोग शातिपूर्वक अपने खेमों मे खाना बनाने के काम मे लगे थे, उनमे ग़दर के कोई लक्षण प्रकट नहीं हुए। उन्होंने विद्रोहियों से मिलने के सब आग्रह टाल दिए थे और बिलकुल अटल दिखाई पड रहे थे। जब सर ह्यू व्हीलर के आदेश से एशी की तोपो से उन पर गोले बरसने लगे और वास्तव मे हमारे नौ पौंड के गोलो ने उन्हें हमारा विरोधी बना दिया। इस कार्रवाई की पूर्व सूचना सिर्फ यही थी कि उस रेजीमेट के देशी अफसरो को हमारे सुरक्षित स्थान मे बुलाया गया था। एक सौ पचास प्राइवेटों के साथ-साथ, जिनमे से अधिकाश ग्रेनेडियर कम्पनी के थे, उन सब ने हमारा साथ दिया। ५३वीं रेजीमेट की जो टुकड़ी खजाने की रक्षा के लिए तैनात थी, वह चार घटे तक विद्रोहियों का मुकाबला करती रही। हमे दूर से उनकी बदूकों की आवाज सुनाई पड रही थी, लेकिन हमे उनकी मदद के लिए जाने की इजाजत नहीं थी।"[३७] इस रेजीमेट के बाकी वफादार सैनिक आखीर तक अपने अफसरो का साथ देने को तैयार थे। सुरक्षित स्थान के पूर्व मे करीब ६०० गज की दूरी पर उन्हें एक चौकी पर तैनात किया गया। वे लोग वह मोर्चा नौ दिन तक साधे रहे, क्योकि उसके बाद उस इमारत मे आग लग गई थी। खाने-पीने के सामान की कमी होने के कारण उन्हें सुरक्षित स्थान मे नहीं आने दिया गया और हर एक को कुछ रुपए और वफादारी का एक प्रमाण-पत्र देकर टाल दिया गया। सर जार्ज फारेस्ट ने शेफर्ड के इस कथन पर व्हीलर की कार्रवाई को उचित ठहराने की कोशिश की कि ५३वीं और ५६वीं रेजीमेटों के देशी अफसरों ने जनरल को पहले ही यह सूचना दे दी थी कि उनके आदमी जाने के लिए कटिबद्ध हैं, और तब उन पर एक-दो गोलिया चलाई गई थीं।[३८] यह कोई

३७ थामसन, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ३९-४०। वेतन बाटने वाले हवलदार रामबक्श ने बताया कि जब ५वीं और लाइट कम्पनियों की एक टुकड़ी झडे और खजाना लेकर भाग गई, तो बाकी रेजीमेंट यूरोपीयों के साथ मिलने की इच्छा से परेड के मैदान में आई। वहा उन पर तीन गोलिया चलाई गई और वे भाग गए। गवाहिया, पृ० ३१-३२

३८ फारेस्ट, ए हिस्ट्री आफ दि इडियन म्यूटिनी, जिल्द १, पृ० ४१७-१८। शेफर्ड, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १६

नाना साहब

तात्या टोपे

अनुभव नहीं करता कि कानपुर के गदर और उसके बाद की घटनाओ के बारे मे हमारी जानकारी कितनी कम है। गदर तथा जून और जुलाई के निर्मम हत्याकाड के बारे मे कोई मतभेद नहीं है, लेकिन इन खेदजनक घटनाओ का ब्योरा ऐसे परस्पर विरोधी प्रमाण पर आधारित है जो सावधानी से जाच करने पर सही नहीं बैठता। मौब्रे थामसन को, जो एक जिम्मेदार सैनिक अफसर था, उस यूरेशियन क्लर्क की अपेक्षा तथ्य जानने के कहीं ज्यादा अवसर प्राप्त थे, जिसकी उस सुबह की घटना की जानकारी निश्चय ही किसी और से सुनी-सुनाई बात पर आधारित होगी।

विद्रोही पैदल और घुडसवार सैनिक खजाने की तरफ गए और वहा उन्होने खजाना खोल कर लूट लिया। जेलखाने पर भी हमला किया गया और बन्दियो को छोड़ दिया गया। तब वे दिल्ली की तरफ रवाना हुए और कल्याणपुर मे रुके। व्हीलर की भविष्यवाणी सच होने ही वाली थी कि अचानक सिपाही कानपुर वापस आ गये और नाना ने जनरल को लिखा कि वह उसके सुरक्षित स्थान पर हमला करने वाला है। इस बीच क्या हुआ? तात्या टोपे ने कहा है कि नाना पर दबाव डाल कर सिपाहियो का पक्ष लेने और उनका सेनापतित्व करने को बाध्य किया गया। शुरू मे उसने दिल्ली जाने या कानपुर मे अंग्रेज सैनिको से युद्ध करने से इन्कार कर दिया था, लेकिन बाद मे उसने सैनिको की बात मान ली।[३९] सर जार्ज फारेस्ट को इस बात पर आपत्ति है और उनका कहना है कि नाना के पास दो तोपें और अपने सशस्त्र सैनिक थे, इसलिए उससे जबर्दस्ती की जाने की बात निश्चय ही गलत है।[४०] ब्रिटिश सरकार ने बाजीराव को उत्सव के मौको पर सलामिया दागने के लिए दो तोपें भेंट की थीं। लडाई के काम के लिए वे तोपें बिलकुल बेकार थीं, उनसे अपनी रक्षा भी नही की जा सकती थी। इस बात मे भी बहुत शक है कि नाना के अपने करीब तीन सौ सैनिक, तीन पैदल रेजीमेंटो और एक घुड़सवार रेजीमेंट का मुकाबला कर पाते। इसलिए, तात्या टोपे के कथन मे कुछ सचाई हो सकती है। जिस तरह ग्वालियर और इदौर की सेनाएं विद्रोहियो से मिल गई थीं, उसी तरह हो सकता है कि अन्त मे नाना के आदमी भी सिपाहियो से मिल गए हो।

एक और कथन यह है कि "कुछ देशी अफसरो का एक प्रतिनिधिमण्डल नाना से मिलने गया," और उससे कहा कि अगर वह उनका साथ देगा तो साम्राज्य का अधिकारी होगा और अगर शत्रु का पक्ष लेगा तो उसे जान से हाथ धोना पड़ेगा।[४१] नाना या तो लालच मे आ गया या धमकी से घबरा गया, शायद उस पर दोनो प्रभाव पड़े, और वह उनके चक्कर मे आ गया। यह बात तात्या के कथन से काफी मेल खाती है और नाना के चरित्र के सम्बन्ध मे हम थोड़ा-बहुत जो कुछ जानते हैं, उसके मुताबिक ही है। लेकिन हम यह नहीं कह सकते कि यह कथन प्रामाणिक है। हम निश्चित रूप से यह नहीं जानते कि वह विद्रोही रेजीमेंटो के साथ कल्याणपुर गया था और उन्हे मना कर फिर वापस ले

---

३९. मेलसन, हिस्ट्री आफ दि इडियन म्यूटिनी, जिल्द ३, पृ० ५१५

४०. फारेस्ट, ए हिस्ट्री आफ दि इडियन म्यूटिनी, जिल्द २, पृ० ४२०

४१. शेफर्ड, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २०

आया या उसके प्रतिनिधियो ने उनके पीछे जाकर और उन्हें बहुत धन का लालच देकर, कानपुर लौटने और वहा के मुट्ठी भर अग्रेजो को समाप्त करने को राजी किया। नाना के शत्रु नानक चन्द का कहना है कि मराठा राजा बहुत पहले से सिपाही नेताओ से मिला हुआ था और विद्रोह शुरू होने से पहले वह कई बार गुप्त सभाओ मे उनसे बातचीत कर चुका था। लेकिन शेरर का मत है कि "स्पष्ट ही, नाना पहले से देशी सिपाहियो से नहीं मिला हुआ था नहीं तो उसे उन्हे वापस लाने के लिए उनके पीछे जाने और बडे-बडे वायदे करने की आवश्यकता न पडती।"[४२] थार्नहिल ने उसी तर्क को दूसरे रूप मे रखते हुए कहा, "अगर नाना और सैनिको के बीच पहले से कोई बात तय होती तो दिल्ली की सडक पर जाने की कोई जरूरत ही न होती।"[४३] कानपुर के गदर और उसके बाद की घटनाओं की कर्नल विलियम्स ने जाच की, लेकिन उसको इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिला कि नाना और सिपाही-नेताओ के बीच पहले से ही कोई साठ-गाठ थी। "वह तारीख बताना मुश्किल है, जब पहली बार उसने सैनिको से मेलजोल रखना शुरू किया, क्योंकि ऐसे किसी व्यक्ति का बयान मिलना असम्भव है, जो खुद अग्रेजो की मुखालफत के इस काम मे शामिल हो।" घटनाक्रम से यह पता चलता है कि सिपाही ऊचे दर्जे के एक नेता की आवश्यकता अनुभव कर रहे थे। इसलिए उन्होने नाना को लालच और डर दिखा कर अपनी ओर कर लिया और नाना शुरू मे कुछ झिझकते हुए उनका नेता बन गया। १८५९ मे लिखे गए एक पत्र मे नाना ने कहा है कि जब उसे विद्रोहियों ने अपने साथ मिलने को बाध्य किया था, उस समय वह और उसका परिवार उनकी मुट्ठी में था। यह भी कहा जाता है कि नाना सिपाहियों को अपने नेतृत्व मे दिल्ली ले जाने को तैयार था, लेकिन अजीमुल्ला ने बडी चतुराई से यह कहा कि दिल्ली मे नाना का कार्य केवल गौण रहेगा, लेकिन कानपुर मे सर्वेसर्वा वही होगा। इसलिए विद्रोही कानपुर लौट आये और उन्होने शहर मे अमीरो को लूटना शुरू कर दिया। फिर भी, इस बात का तात्पर्य समझना कठिन है कि नाना ने अग्रेजो के सुरक्षित स्थान पर हमला करने की अपनी इच्छा की सूचना व्हीलर के पास लिख कर क्यो भेजी। क्या इसका कारण नए महत्वपूर्ण पद की वजह से उसके मन मे पैदा हुआ गर्व था, या युद्ध-विषयक नैतिकता की भावना थी, जिसको ध्यान मे रखकर हिन्दू वीरता की पुरानी प्रथा के अनुसार उसने शत्रु को चेतावनी दिए बिना अचानक हमला करना अनुचित समझा? अग्रेजों के सुरक्षित स्थान पर दिन-प्रति दिन लगातार गोलाबारी की गई, लेकिन यद्यपि विद्रोहियों की सख्या निश्चित रूप से अधिक थी, फिर भी उन्होने उस पर टूट पडने की कभी कोशिश नहीं की। आम तौर पर लोगो का विश्वास था कि उस इलाके मे भारी सख्या मे सुरगें बिछी हुई थीं।

"वाउम्मीदी के किले" मे जिन शरणार्थियों ने शरण ली थी, उनमे आधी तो स्त्रिया और आधे बच्चे थे। वहा हर समय पुरुष से यह आशा की जाती थी कि वह लडाई मे हिस्सा लेगा, चाहे उसका कोई भी व्यवसाय रहा हो। घेरे मे पडे हुए उन लोगों को

---

४२ शेरर, रिपोर्ट आन कानपुर, तिथि १३ जनवरी, १८५६, पृ० ५

४३ एनल्स आफ दि इडियन रिबेलियन, पृ० ५६८-६६

रात-दिन सजग रहना पडता था। सर ह्यू व्हीलर वहुत वूढा था और लड़ाई का पूरा वोझ सहना उसके वस की वात नहीं थी। इसलिए प्रतिरक्षा की मुख्य जिम्मेदारी कप्तान मूर पर आ गई। कप्तान मूर भी काफी होशियार आदमी था। हथियारो और गोला-वारूद की कोई कमी नहीं थी और एक-एक आदमी को तीन से सात तक, आठ-आठ भी वन्दूकें[४४] दी गई थीं। लेकिन रसद काफी नहीं थी और न उसका वितरण ही समुचित रूप से हुआ था। मौव्रे थामसन ने कहा है, "पहले कुछ दिनो तक विना विचारे रसद वाटने से कभी-कभी तो वड़े अजीव दृश्य उपस्थित हो जाते थे। कही कोई प्राइवेट (असैनिक अग्रेज) शैम्पेन की वोतल, हैरिंग मछली का डिव्वा और मुरव्वा लिए हुए मुख्य रक्षा-पंक्ति से एक तरफ जाता हुआ दिखाई पडता, तो कहीं दूसरी ओर कोई व्यक्ति सामने मछली, रम और मिठाइया उडाता हुआ दीखता। उस समय चावल और आटा सिर्फ औरतो और वच्चो के लिए ही था। लेकिन खाने-पीने के ये मजे जल्दी ही खत्म हो गए, और सवको रोजाना के राशन के लिए दिन मे एक दफा का थोड़ा-सा खाना मिलने लगा, जिसमे मुट्ठी भर मटर और मुट्ठी भर आटा होता था, जो कुल मिलाकर भी आधे पिंट से ज्यादा नहीं होता था।"[४५] इस रसद को वढाने की हर सम्भव कोशिश की गई। जब कभी दुश्मन घुड़सवार पास आ जाते, तो उनके एक-आध घोडे को भी मार दिया जाता। एक वार एक ब्राह्मणी सांड चरता हुआ उनके इलाके मे आ गया और उसकी पवित्रता का ध्यान न रखते हुए उसका वध कर दिया गया।" उसे मारना आसान था, उसके शरीर को उठाकर अन्दर ले जाना मुश्किल था। लेकिन भूख ने लोगो की हिम्मत वढा दी थी। थोड़ी ही देर मे उसके मास का शोरवा तैयार था, लेकिन फिर भी वाहरी चौकियो पर तैनात व्यक्ति इस स्वादिष्ट शोरवे से वचित रह गए।[४६] एक वार दो गश्ती टुकड़ियो ने एक घोड़े से दो वार की खुराक का काम चलाया, यद्यपि कुछ औरतो को यह वात पसन्द न आई। कैप्टन हालिडे घोड़े के मास का शोरवा ले जाता हुआ गोली का शिकार वना। एक वार एक वाजारू गन्दे कुत्ते को भी हर तरह का लालच देकर पास वुलाया गया और कुछ ही मिनटो के वाद उसका "अधभुना मास" लेफ्टिनेंट मौव्रे थामसन को खाने को दिया गया, लेकिन उसने इन्कार कर दिया।[४७]

वैरको की पतली दीवारें जून की भयंकर गर्मी से कोई रक्षा नहीं कर पाती थीं और वहुत-से आदमी तो लू से मर गये। "तोप की नली इतनी गरम हो जाती थी कि उसे छूना भी असम्भव हो जाता और एक-दो वार तो धूप की गर्मी से या नली गरम हो जाने से दोपहर मे गोले अपने आप छूट गये। मरे हुए जानवरों की लाशो के वचे हुए हिस्से गर्मी मे सडने लगे और उनकी दुर्गन्ध ने हवा को विषाक्त वना दिया, लेकिन भाग्यवश प्रकृति द्वारा भेजे गए रक्षक, गिद्ध और अन्य पक्षी, वहां घिरे हुए लोगो की सहायता के लिए आ गए।

---

४४. थामसन, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ६४

४५. वही, पृ० ७८

४६. वही, पृ० ८०-८१

४७. थामसन, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ८३-८४

पानी की कमी से लोगो को भयकर कष्ट था। वहा केवल एक ही कुआ था, जिसकी कोई आड नहीं थी। जब भी कोई उससे पानी भरने की कोशिश करता तो निशानेबाज सिपाहियो की गोलिया बरसने लगतीं। रात के अन्धेरे मे भी चर्खी की चरचराहट से विद्रोहियों को यह पता चल जाता कि कोई वहा पानी भरने की हिम्मत कर रहा है। एक बाल्टी पानी की कीमत आठ से दस शिलिंग तक थी। एक असैनिक अंग्रेज जान मैकिलप "कुए का कप्तान" बन गया और उसने निरीह प्राणियो के लिए पानी भरने का जिम्मा लिया। अपने इस सेवा कार्य मे कई बार बाल-बाल बचने के बाद एक दिन वह जख्मी हो ही गया, और कुछ ही समय बाद मर गया। मौब्रे थामसन ने कहा है, "स्त्रिया और बच्चे प्यास से अति व्याकुल थे और आदमी उन निरीह बच्चो की पानी की पुकार को सुन-सुन कर बेचैन हो गए थे, उन्हें, उनमे से अधिकाश को, भला क्या मालूम था कि पानी कितनी भारी कीमत चुका कर मिलता है। मैंने अपने साथी अफसरो के बच्चों को इस उम्मीद मे पानी भरने के पुराने थैलो के टुकडे चूमते हुए और कैनवास के टुकडे तथा चमडे की पट्टिया मुह मे डालते हुए देखा है कि शायद उन्हें अपने सूखे होठ तर करने के लिए कहीं नमी की एक बूद ही मिल जाय।"[४८]

घेरा डालने के लगभग एक सप्ताह बाद उन घिरे हुए लोगो पर एक भयकर विपत्ति आई। फूस के छप्पर वाली उस बैरक को शायद किसी गोले से आग लग गई, जिसमे बीमारों और जख्मियो को रखा गया था और पूरी कोशिशो के बावजूद भी दो तोपची लपटो की भेंट हो गए। उस बैरक मे ही सारी चिकित्सा-सामग्री भी भस्म हो गई और जख्मियो की मरहम-पट्टी का भी कोई उपाय न रहा। "प्यास से सूखे गले वाले उन निरीह पीडितो को देख कर ही छाती फटी जाती थी, जिनकी प्यास को थोडा बहुत ही शान्त किया जा सकता था और उनकी चिकित्सा का कोई भी साधन नहीं रहा था।"[४९] ऊपर छत न रहने पर कुछ औरतों को खाई मे शरण लेनी पडी और वहा खाली जमीन ही उनका बिस्तर थी।

मौत हर तरफ से लगातार छापा मार रही थी। मेजर लिंडसे एक गोली की छितरन से अन्धा हो गया और कुछ दिन बाद मर गया। एक-दो दिन बाद उसकी पत्नी भी चल बसी। हेबर्डन जब एक स्त्री को थोडा पानी दे रहा था तो जख्मी हो गया और एक सप्ताह तक भयकर यन्त्रणा झेलने के बाद मर गया। लेफ्टिनेंट इकफोर्ड बरामदे मे बैठे-बैठे मारा गया। श्रीमती व्हाइट दोनो हाथो मे अपने दोनो जुडवा बच्चे लिए हुए अपने पति के साथ एक दीवार की आड से गुजर रही थीं। एक गोली ने उनके पति को वहीं समाप्त कर दिया और श्रीमती व्हाइट के दोनो बाजू टूट गए। मैजिस्ट्रेट हिलर्सडन बरामदे मे अपनी पत्नी की तरफ जाते हुए मारा गया। जनरल का पुत्र लेफ्टिनेंट व्हीलर, खाइयों मे जख्मी हो गया था। वह अपने कमरे मे अपने माता-पिता और बहनों के सामने ही सोफे पर बैठा था कि एक गोली लगी और उसका अन्त हो गया।[५०]

---

४८ थामसन, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ८७

४९ थामसन, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ६४

५० थामसन, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ६६-११०

भारतीय नौकरो ने भी अपने यूरोपीय मालिको की तरह ही कष्ट झेले। उस स्थान पर उनकी सख्या काफी थी। थामसन का कहना है कि लेफ्टिनेंट व्रिजिज के तीन नौकर तो एक ही गोले के शिकार वने। लेफ्टिनेंट गोड के एक नौकर को एक वैरक से दूसरी मे कुछ खाना ले जाते हुए सिर मे गोली लगी। उनमे वहुत-से लड़ाई मे मारे गए।[51]

मृतको को ठीक तरह से दफनाया नहीं जा सकता था। लाशें रात के अंधेरे मे एक कुएं में फेंक दी गईं। एक ही कफन था, जो पहले दिन की सुवह मरने वाले पहले व्यक्ति श्री मर्फी की लाश को दफनाने के काम आ गया था। वह लाश वहीं दफना दी गई थी। वाद मे किसी भी लाश को ठीक से दफनाना सम्भव नहीं था।

जव मनुष्य मृत्यु वरसा रहा था, उस समय भी प्रकृति अपने रचनात्मक कार्य मे व्यस्त थी। "इन भयंकर दिनो मे वच्चे पैदा भी हुए और मरे भी, और तीन या चार माताओ को उस संकटकाल मे प्रसव-कष्ट झेलना पड़ा, जव कि उस कष्ट को भुलाने के लिए कोई भी आशा या खुशी वाकी नहीं थी।"[52] मा-वाप हमेशा अपने वच्चो के लिए चिन्तित रहते थे। भला वच्चे क्या समझते कि वाहर कितना खतरा है। उतनी-सी जगह में ऊव जाने के कारण, मा की आख वचा कर वे वाहर निकल जाते और फिर भला गोलिया उम्र या स्त्री-पुरुष के भेद का थोडे ही ध्यान रखती हैं!

वह भयंकर युद्ध था, जिसमे परम्परागत या मानवीय नियमो को तिलाजलि दे दी गई थी और कोई भी पक्ष वन्दी को जीवित नहीं छोडता था। घिरे हुए अंग्रेजो का पहला वन्दी किसी तरह वच कर भाग गया। मौव्रे थामसन ने कहा है, "यह उचित नहीं था कि हमारी दुर्दशा के समाचार विद्रोहियो के पास पहुंचें, इसलिए, उसके वाद इस वुराई को रोकने के उद्देश्य से, हमारे हाथ जो भी वन्दी पड़ा उसे सदर मुकाम से पूछे विना ही समाप्त कर दिया गया।"[53]

साधनो की कमी और घटती हुई संख्या के कारण इस स्थान के रक्षक अनिश्चित समय तक उसकी रक्षा की आशा नहीं कर सकते थे। कलकत्ते से पत्र-व्यवहार करने का कोई तरीका नहीं रह गया था और यद्यपि पूरव से यूरोपीय फौजो के आने की उम्मीद थी, ये लोग सिर्फ लखनऊ से ही तत्काल सहायता माग सकते थे। इसलिए, पहले हफ्ते के घेरे के वाद जनरल व्हीलर ने लखनऊ से सहायता मागी। "६ तारीख से नाना साहव ने देशी सैनिको की मदद से हमें घेर रखा है। देशी सैनिक ४ तारीख की सुवह हमसे अलग हो गए थे। दुश्मन के पास २४ पौंड के गोले वाली दो तोपें तथा कई और तोपें हैं। हमारे पास ६ पौंड के गोले वाली सिर्फ दो तोपें हैं। सव ईसाई लोग एक अस्थायी खाई में हमारे साथ हैं। हमने वडे प्रशंसनीय ढंग से अपनी रक्षा की है, लेकिन हमारी हानि भी वहुत हुई है। हमे मदद की जरूरत है।" उसने आगे कहा कि "अगर हमारे पास २०० आदमी भी होते तो हम इन दुष्टो को मजा चखा सकते थे और आपकी भी

---

५१ वही, पृ० १११

५२. थामसन, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १०४

५३. वही, पृ० ७५

मदद कर सकते थे।" लेकिन लखनऊ खुद मुसीबत मे था, वह क्या मदद दे सकता था। यद्यपि वहा अभी घेरा नही पडा था, लेकिन शत्रु-सेनाए दूर नहीं थीं। सर हेनरी लारेंस और उनके सलाहकार विवश थे और उन्होने कानपुर-स्थित अपने देशवासियो को ईश्वराधीन छोड दिया। लारेंस ने उत्तर दिया, "हम अपने सुरक्षित स्थान मे काफी मजबूत हैं, लेकिन नदी के रास्ते भेजने से हमारी बडी टुकडी का बलिदान ही होगा; आप को मदद नहीं पहुच सकेगी। कृपा करके मुझे स्वार्थी मत समझना। अगर मुझे सफलता की आशा दिखाई दे, तो मैं भारी जोखिम भी उठाने को तैयार हू।"[५४] इस प्रकार दो ही तरीके थे—गवर्नर-जनरल ने जिन यूरोपीय सैनिको को भेजने का वचन दिया था, उनका शान्तिपूर्वक इन्तजार करना, या जब मदद की कोई उम्मीद न रहे तो दुश्मन से समझौता कर लेना।

लेकिन जनरल व्हीलर निराश नहीं हुआ। वहा यूरेशियन भी थे, जो स्थानीय भाषा जानते थे, और उनका रग इतना काला था कि वे देशी लोगो मे पहचाने नहीं जा सकते थे। उनमे से एक, ब्लेनमैन, एक-दो बार नाना के शिविर मे जाकर बिना किसी दुर्घटना के वापस भी आ गया था। उसे इलाहाबाद जाने को कहा गया। लेकिन वह पकडा गया और उसका सामान लूट लिया गया। शायद उस पर किसी को शक नहीं हुआ, क्योंकि उसका और कुछ नुकसान नहीं हुआ।[५५] निचले इलाके के लोगो से सम्पर्क स्थापित करने मे सफलता न मिली। अन्त मे कमिसरियट के शेफर्ड ने शहर मे जा कर यथासम्भव जानकारी एकत्रित करने का प्रस्ताव रखा। लेकिन उसका काम सिर्फ खबरें लाना ही नहीं था। उसे उन प्रभावशाली लोगो के जरिये विद्रोहियों मे यथासम्भव फूट पैदा करनी थी, जो अंग्रेजो के पक्षपाती माने जाते थे। शेफर्ड ने बताया है कि जनरल ने उससे "शत्रु की इच्छाओं और कार्यो" की ठीक खबर लाने और यह पता लगाने को कहा कि इलाहाबाद या लखनऊ से किसी सहायता की सम्भावना है या नहीं। "तब उसने कुछ मुस्कराते हुए मुझे नन्ने नवाब (उर्फ मोहम्मद अली खा) के पास जाने को कहा। जनरल ने कहा, 'वह हमारा वफादार है और मै उस पर भरोसा कर सकता हू। उससे कहना कि वह विद्रोहियो मे फूट डालने की कोशिश करे, और अगर वे हमे तग करना बन्द कर देंगे या यहा से चले जाएगे, तो मैं उसके लिए बहुत कुछ करू गा।' उसने मुझ से यह भी कहा कि अगर मुझे नवाब न मिले तो मैं शहर के अन्य प्रभावशाली महाजनो और दूसरे लोगो के पास जाऊ और अगर वे हमे मदद देने मे सफल हो तो मैं उन्हें इनामो का वचन दे दू। मुझे इतना अधिकार दिया गया था कि मैं उस व्यक्ति को एक लाख रुपये तक इनाम या जीवन-भर पेन्शन का वचन दे सकता था, जो वाछित कार्य करने मे सफल हो।"[५६] यह आश्चर्य की बात नहीं है कि ऐसे सकट मे व्हीलर

---

५४ गब्बिन्स, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ५०७, परिशिष्ट २। फारेस्ट, ए हिस्ट्री आफ दि इडियन म्यूटिनी, जिल्द १, पृ० ४४०

५५ थामसन, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १३०

५६ शेफर्ड, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ५९-६०

ने नन्ने नवाव पर भरोसा जमाया, जिसके हाथ मे तोपखाने की कमान थी और जो अंग्रेजो के आश्रय-स्थान पर रात-दिन गोले वरसा रहा था। सिपाहियो ने कानपुर लौट कर उसके मकान पर हमला कर दिया था और नवाव को नीचा दिखाया था। वाद मे उसने उनसे समझौता कर लिया और उसे तोपखाने की कमान सौंप दी गई, जिसके लिए वह जरा भी योग्य नही था। इस तरह के अनिच्छुक लोग ढिलमिल ही थे और वे पहला मौका मिलते ही विद्रोहियो को धोखा दे सकते थे। लेकिन शेफर्ड, व्लेनर्मन की तरह भाग्यशाली नहीं था। वहा से निकलने के थोडी देर वाद ही उसे पकड कर जेल मे डाल दिया गया। वहा से वह तव तक न छूटा जव तक हैवलाक के सैनिक कानपुर नहीं पहुचे।

इस दौरान मे नाना ने औपचारिक रूप से शासन सभाल लिया था। दूसरी घुडसवार रेजीमेंट के सूबेदार टिकासिह को जनरल, और सूबेदार दलभंजन सिंह और गंगादीन को कर्नल और नाना की अपने सेना के सेनापति ज्वालाप्रसाद को व्रिगेडियर वना दिया गया। न्यायिक प्रशासन का कार्य नाना के भाई वावा भट्ट को सौंपा गया। और चोर तथा अन्य अपराधी उसके सामने पेश किए गए और उन्हे सजा दी गई। लेकिन वे सजाएं व्रिटिश भारत के कानून के मुताविक नही थी। हिन्दू अपराध कानून, जिनको मराठा न्यायिक अधिकारी शासन छीने जाने से पहले से जानते थे, फिर से लागू कर दिए गए। इसलिए, अपराधियो को अग-भग की सजाएं दी गईं। इसका सिद्धांत यह था कि शरीर के जिन अंगो से अपराध किया गया हो, उन्हें कलम कर दिया जाए। यह नहीं कहा जा सकता कि इन भयानक सजाओ का इच्छित प्रभाव होता था या नही। लेकिन, नाना सिर्फ हिन्दू राज्य का ही प्रधान नही था। ग़दर शुरू होने के साथ-साथ इस्लाम का हरा झण्डा भी लहराने लगा था, लेकिन दोनो धर्मो के लोगो मे कोई झगड़ा नहीं था। वे सव चाहते थे कि पहले की सव वातें फिर से चलाई जाए, प्राचीन सस्थाए फिर से खोली जाएं और पहले के अच्छे दिन फिर वापस आ जाए। हो सकता है अजीमुल्ला धर्म को इतना महत्व न देता हो, लेकिन ऐसे कट्टर मुसलमान भी थे जो नाना के दरवार मे जाते थे और नए शासन के पक्ष मे थे।

२४ जून को व्हीलर ने अपना अन्तिम सन्देश लखनऊ भेजा। वह पीड़ित हृदय से निकली हुई निराशा की अन्तिम पुकार थी। उसने लिखा, "केवल व्रिटिश आत्मा जीवित है, लेकिन वह ज्यादा नहीं जी सकती।" "निश्चय ही हमे पिंजरे मे चूहो की तरह नहीं मरना है।" सैनिको को पहले ही आधा राशन मिल रहा था और इस हिसाव से भी रसद चार दिन से ज्यादा न चलती। गोला-वारूद भेजने के लिए भी कहा गया था, लेकिन समाप्तप्राय सामान की जगह और आने की कोई उम्मीद नहीं थी। अगर वारिश आ जाती, जो किसी भी दिन आ सकती थी, तो अंग्रेजो की हालत और भी खराव हो जाती। स्पष्ट है, अन्त निकट ही था।

अन्त मे शत्रु ने कुछ छूट दी, और राहत का सन्देश लाने वाली पूर्वी भारत की एक औरत थी, जिसके वारे मे लोगो के भिन्न-भिन्न मत हैं। मौव्रे थामसन ने लिखा है कि "घेरा पड़ने के इक्कीसवें दिन (स्पष्ट ही उसने ५ जून से दिनो की गिनती की थी) मेरी टुकड़ी ने गोला-वारी कुछ देर के लिए रोकी ही थी कि ऊपर से पहरा देने वाले

एक पहरेदार ने चिल्लाकर कहा, 'एक औरत आ रही है।' उसे गुप्तचर समझा जा रहा था और पहरे के एक आदमी की गोली उसका काम तमाम कर देती, लेकिन मैंने उसका हाथ रोक कर उस औरत की जान बचाई। उसकी गोदी मे एक बच्चा था, लेकिन उसके तन पर ठीक से कपडे भी नहीं थे, नगे पैर थी—न जूते थे और न जुरावें। मैंने पहचान लिया कि वह श्रीमती ग्रीनवे है। वह कानपुर के एक ऐसे धनी परिवार की थी जो छावनियों मे व्यापार करता था। मैंने रास्ते की रोक पर से उसे बेहोशी की सी हालत मे अन्दर ले लिया।"[५७] श्रीमती ग्रीनवे के पास अग्रेजी मे हस्ताक्षर रहित एक पत्र था जो "महा महिमामयी महारानी विक्टोरिया के प्रजाजनो" को सम्बोधित था। थामसन वह पत्र कप्तान मूर के पास ले गया। पत्र सक्षिप्त था और उसमे कहा गया था—"जिन लोगों का लार्ड डलहौज़ी के कारनामो से कोई ताल्लुक नहीं है और जो हथियार डालने को तैयार हैं, वे लोग सुरक्षित रूप से इलाहाबाद जा सकते हैं।" व्हीलर को अब भी कलकत्ते से सहायता पहुचने की आशा थी और वह नाना से समझौता करने को तैयार नहीं था। लेकिन मूर ने कहा कि औरतों और बच्चो की ओर पहले ध्यान देना जरूरी है। उन्होने भयकर कष्ट सहे थे, और चूंकि रसद भी लगभग समाप्तप्राय थी, इसलिए इज्जत के साथ आत्मसमर्पण के अलावा और कोई चारा नहीं था। अगले दिन अज़ीमुल्ला और ज्वालाप्रसाद बातचीत के लिए आए और यह तय पाया कि वह स्थान खाली कर दिया जाए। हर आदमी को अपने साथ अपने हथियार और साठ गोलिया ले जाने की इजाजत दी गई। यह भी कि घायलो औरतो और बच्चो को सवारी दी जाए और घाट पर खाने-पीने के सामान के साथ नावें तैयार रहें। अज़ीमुल्ला ये प्रस्ताव नाना के पास ले गया, लेकिन उसने इस बात पर जोर दिया कि रवानगी उसी रात को हो जानी चाहिए। लेकिन रक्षक सेना ने सुबह से पहले जाने मे असमर्थता प्रकट की। अन्त मे एक सदेशवाहक नाना की मौखिक स्वीकृति लाया। तब टाड उस कागज को ले कर नाना के घर गया और आत्मसमर्पण की उस सन्धि पर नाना के हस्ताक्षर करा कर आध घण्टे मे लौट आया। नाना की सचाई के प्रमाण के रूप मे ज्वालाप्रसाद दो व्यक्तियो को बन्धक रखने के लिए ब्रिटिश शिविर मे लाया। सूर्य

---

५७. थामसन, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १४८-४६। फारेस्ट ने कालिका प्रसाद के आधार पर यह कहा है कि व्हीलर के पास वह पत्र ले जाने वाली श्रीमती जेकब थी। फारेस्ट, ए हिस्ट्री आफ दि इण्डियन म्यूटिनी, जिल्द १, पृ० ४५१। स्पष्ट ही शेफर्ड उस महिला को नहीं जानता था। पहले वह कहता है कि प्रचलित खबरों के मुताबिक (ए पर्सनल नरेटिव, पृ० ७०) श्रीमती ग्रीनवे को एक पत्र लेकर भेजा गया था, लेकिन बाद में वह कहता है कि "श्रीमती हेनरी जेकब" उस शर्तनामे को जनरल व्हीलर के पास लाई थी (ए पर्सनल नरेटिव, पृ० ७१)। लेफ्टिनेंट थामसन ने उस महिला को उस स्थान में आने में मदद दी थी और उसका निश्चित मत है कि शान्ति का प्रस्ताव लाने वाली श्रीमती ग्रीनवे ही थी। कालिका प्रसाद और उसके समर्थकों के कथन की अपेक्षा मुझे यह कथन मानने में कोई सकोच नहीं है।

डूबने से पहले ही अंग्रेजो की तोपें नाना के पक्ष को सौंप दी गई और कप्तान टर्नर तथा लेफ्टिनेंट डेलाफास और गोड को नदी की तरफ यह देखने के लिए ले जाया गया कि वहां नावें तैयार हैं या नहीं। उन्होने वहा करीब चालीस देशी नावें "लंगर डाले और जाने के लिए तैयार देखीं, जिनमे से कुछ पर छतें थीं और शेष पर छतें लगाई जा रही थीं।"[५८] रात को नींद के जोर मे किसी सिपाही के हाथ से बन्दूक गिर गई और उसने हल्ला मचा दिया, लेकिन ज्वालाप्रसाद ने खुद जाकर शांति स्थापित कर दी।

२७ तारीख की सुवह सोलह हाथी और सत्तर से अस्सी के बीच पालकिया निष्क्रान्तो को नावो तक ले जाने के लिए आईं। लेकिन, सब लोग उन पर न जा सके और खुद कप्तान मूर को, जो इस कार्य का निरीक्षण कर रहा था, दूसरे फेरे मे जाना पड़ा। "औरतो और बच्चो को हाथियो और बैलगाडियो पर बिठाया गया; जब आगे का दल चला गया, तो सब छोटे-बड़े सशक्त व्यक्ति पैदल गए।" पहले दल के रवाना हो जाने के बाद सिपाही उस स्थान पर आए। मौब्रे थामसन ने लिखा है "उन्होने अपने उन भूतपूर्व अफसरो की बाबत पूछताछ की, जिनकी उन्हे याद आती रहती थी और उन्हें उनकी मृत्यु का समाचार पाकर बहुत दुःख हुआ।" "मैंने ५३वीं रेजीमेंट के एक सिपाही से पूछा 'क्या हम बिना छेड़छाड़ के इलाहाबाद पहुंच जाएंगे?' उसने अपना विश्वास प्रकट किया कि हम से कोई छेडछाड नहीं होगी, मैं समझता हूं कि प्रस्तावित मार-काट की योजना की जानकारी केवल आयोजको तक ही सीमित थी। निरीह बूढा सर ह्यू व्हीलर, उसकी पत्नी और पुत्री नावो तक पैदल गए। सबसे पीछे मेजर विबार्ट था, जो उस सुरक्षा-स्थल से निकलने वाला अन्तिम अफसर था। कुछ विद्रोही सिपाहियो ने, जो पहले उसकी रेजीमेंट में थे, उसका सामान पहुंचाने का आग्रह किया। उन्होने सन्दूक एक बैलगाडी पर लाद दिए और अत्यन्त आदर सहित मेजर की पत्नी और परिवार को नावो तक पहुंचाया।"[५९] नौ बजे तक सब लोग नावो मे बैठ गए थे। रास्ते मे अगर कुछ हुआ भी होगा तो मौब्रे थामसन और डेलाफास को उसका पता नहीं था। नदी मे पानी कम था, नावो तक जाने का कोई रास्ता नहीं था तथा पुरुषो, औरतों और बच्चों को पानी मे से होकर जाना पड़ा।

उसके बाद जो कुछ हुआ, उसका वर्णन मौब्रे थामसन ने विस्तार से किया है। असली बात किसी को भी ज्ञात होने की सम्भावना नहीं थी, क्योकि कोई भी व्यक्ति सब घटनाएं नहीं देख सकता था। उस दिन सुबह नदी के किनारे हजारो दर्शक जमा थे, जो अपने भूतपूर्व शासको को जाते हुए देखने आए थे। लेकिन, बाद मे हत्याकाण्ड मे जो चार व्यक्ति बचे, उनमे मौब्रे थामसन और डेलाफास ही ऐसे दो सबसे विश्वस्त साक्षी थे,

---

५८. थामसन, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १५६। कानपुर से सम्बन्धित हर बात की तरह इस बात में भी लोगों की अलग-अलग राय है कि घिरे हुए लोगो के लिए तैयार की गई नावों की संख्या कितनी थी। शेफर्ड का कहना है कि सीमा-शुल्क घाट पर पडी चौबीस नावें पकड़ ली गई और उन्हे यात्रा के लिए तैयार कर लिया गया। शेफर्ड, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ७२। डेलाफास ने यह नहीं बताया कि नावें कितनी थीं।

५९. थामसन, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १६३-६५

जो अपने दु खद अनुभव बताने को जीवित बच गए थे। वे दोनो प्रशिक्षित प्रेक्षक थे। डेलाफास का विवरण बहुत सक्षिप्त है और मौब्रे थामसन का ज्यादा विस्तृत। दोनो को ही नाना और उनके सलाहकारो पर पूरा विश्वास नहीं था।

थामसन ने लिखा है, "ज्यो ही मेजर विवार्ट अपनी नाव मे बैठा, आज्ञा मिली 'चलो', लेकिन किनारे से एक इशारा मिलते ही देशी नाविक, जो कुल मिलाकर आठ थे, और हर नाव पर एक-एक के हिसाब से नियुक्त थे, कूद पडे और किनारे की तरफ भागे। हमने एकदम उन पर गोलिया चलाई।[६०] लेकिन उन मे से अधिकाश निकल भागे, और अब वे कानपुर के आसपास अपना वही पुराना व्यवसाय करते हैं। इन लोगों ने भागने से पहले अधिकाश नावों की फूस की छतो पर जलता हुआ कोयला रख दिया था। नाविको के जाते ही उन सैनिको ने भी किनारे से हम पर गोलिया बरसानी शुरू कर दीं, जो मेजर विवार्ट को घाट तक लाए थे। नावों के जलने से जो अस्तव्यस्तता फैली उसके बावजूद हम यथासम्भव उन घुडसवारों की गोलियो का जवाब देते रहे, जो कुल मिलाकर करीब पन्द्रह या सोलह थे। लेकिन, हम पर गोलिया चलाने के बाद ही वे एकदम चले गए।"[६१] तब भयकर हत्याकाण्ड मचा। यात्री पानी मे कूद कर नावों को ढकेलने की कोशिश कर रहे थे, लेकिन बहुत-सी नावें नहीं हिलीं। इधर-उधर छिपे हुए स्थानो से गोली चलनी शुरू हो गई और नावो की फूस की छतें जलती रहीं। नावो के पीछे छिपी हुई औरतें और बच्चे गोलियों की वर्षा से बचने के लिए "ठोडी तक पानी मे खडे हुए थे।" विवार्ट की नाव गहरे पानी मे बह चली। उसकी फूस की छत भी जली नहीं थी। मौब्रे थामसन तैर कर उसकी नाव पर गया और उसे ऊपर चढा लिया गया। एक और नाव घाट से बहाव मे बह चली, लेकिन एक गोली ने उसे डुबो दिया। उसके बचे हुए यात्रियों को विवार्ट की नाव पर चढा लिया गया। हाथों और लकडी के टुकडे की मदद से यात्रियो ने नाव को खतरे से बाहर निकाल ले जाने की भरसक कोशिश की, लेकिन चारों तरफ से गोलिया चलती रहीं। लगभग दोपहर को वे लोग बड़ी तोपों की मार से बाहर निकल गये, लेकिन फिर भी सारा दिन पीछा करने वाले उन पर गोलियो की बौछार करते रहे। रात को उन पर जलते हुए तीर फेंके गए और उनकी नाव को आग लगाने के लिए एक नाव भी भेजी गई।

सुबह उन्हें थोडा-सा आराम मिला, लेकिन नदी मे नहाते हुए कुछ गाव वालों से उन्हें पता लगा कि बाबू रामबख्श नामक एक शक्तिशाली जमींदार नजफगढ मे उन्हें रोकने के लिए इन्तजार कर रहा है। करीब दो बजे वे लोग उस जगह पहुचे, और बदकिस्मती से उनकी नाव रेत मे धस गई और किनारे के बन्दूकचियो को स्थिर निशाने पर गोली चलाने का मौका मिल गया। बाद में वे लोग एक तोप भी लाए, लेकिन खुशकिस्मती से बारिश हो जाने के कारण वह बेकार हो गई। शाम को सशस्त्र सैनिकों से भरी हुई एक नाव कानपुर से आई, लेकिन उनकी नाव भी रेतीले किनारे पर फस गई। भगोडो ने उनके हमले का पहिले से अनुमान लगाकर पूरी तरह से उनके छक्के छुडा दिए। उनकी

---

६० रेखाकित अश मेरा है।

६१. वही, पृ० १६६-६७

नाव फिर फस गई, यद्यपि जल्दी ही एक तेज गाथी ने उसे वहा से छुडा दिया। लेकिन उनकी कठिनाइयो का अभी अन्त नहीं हुआ था। सुबह उन्हे पता लगा कि उनकी नाव ऐसी धार मे पड गई है, जिसमे नाव चलाना मुश्किल है। और उधर, पीछा करने वाले भी दूर नहीं थे। नदी के पानी के अलावा उन्हे लगातार दो दिन और दो रात से एक ग्रास खाना भी नही मिला था और निरन्तर परिश्रम के कारण वे बहुत थक गए थे, लेकिन वे अपने जीवन के लिए लड रहे थे और आत्मरक्षा की भावना ही उन्हे जीवित रखे हुए थी। विवार्ट ने थामसन और डेलाफास ने कहा कि वे बारह अन्य व्यक्तियो के साथ उतर कर आक्रमणकारियो पर हमला बोल दें। सिपाहियो और अनाडियो की वह मिली-जुली भीड उनका मुकाबला न कर सकी, लेकिन जब वे भीड मे से रास्ता काट कर बाहर आए तो उन्होने देखा कि नाव वहां नहीं है। पीछा करने वालो से बचने मे असमर्थ उस दल ने बाद मे एक मन्दिर की शरण ली। मन्दिर मे खाने को कुछ नहीं था, लेकिन एक गढे मे कुछ गन्दा पानी था, जिससे उन्होने अपनी प्यास बुझाई। उन्हे यह आश्रय भी छोड़ना पड़ा और वे नदी की तरफ चल दिए। उस समय तक उनकी संख्या घटकर सात रह गई थी। दो व्यक्ति तैरते हुए गोली के शिकार बने और तीसरा जब रेतीले किनारे पर पहुंचा तो उसे सिर पर चोट लगी। अन्त मे पीछा करने वालो ने पीछा करना छोड दिया। तीन घण्टे तैरने के बाद बचे हुए लोगो ने आराम करने का निश्चय किया। वे किनारे पर गले तक पानी मे बैठे थे, कि अचानक उन्हे किनारे से किसी ने आत्मीयता भरी आवाज मे पुकारा। शुरू मे उन्हे अपनी खुशकिस्मती पर विश्वास नहीं होता था, लेकिन फिर उन्हे यह भरोसा हो गया कि आखिरकार अब वे सुरक्षित हैं। मौत के डर से उनमे जो शक्ति बनी हुई थी वह एकदम थकावट मे बदल गई और वे अपने को बहुत शक्तिहीन अनुभव करने लगे। उन्हे उस उथले पानी से बाहर निकाला गया। थामसन के शरीर पर केवल एक कमीज थी, डेलाफास की कमर पर एक कपडा बंधा था, सल्लीवन और मर्फी के शरीर पर कुछ भी नहीं था। उनका स्वागत-कर्ता मुरार मऊ का दिग्विजयसिंह था। जो अवध का एक जमींदार था। २९ जून की शाम को वे उसके यहा पहुंचे।

डेलाफास का संक्षिप्त वर्णन कुछ हद तक मौब्रे थामसन के वर्णन से भिन्न है। "हम नदी मे उतरे और नावों पर पहुच गए, जरा भी छेडछाड नहीं हुई, लेकिन ज्योंही नावो पर पहुच कर हमने अपनी बन्दूकें रखीं और आसानी से नाव चलाने के लिए कोट उतारे, त्योंही घुडसवारो ने वहा छिपी हुई दो तोपें चलाने का हुक्म दिया; उन्हे बाहर लाया गया और तत्काल ही उनसे गोले बरसने लगे। उधर, सिपाही सब तरफ से आकर गोलियों की बौछार करते रहे। लोग नावो से कूद पडे, और नावो के लंगर खोलने की कोशिश करने की अपेक्षा जो भी पहली खुली हुई नाव उन्होंने देखी, उसी तरफ भागे। नदी के दूसरे किनारे पर सिर्फ तीन नावें सुरक्षित पहुंचीं, लेकिन बहुत-से घुडसवारो और पैदलो की देखरेख मे दो तोपें वहा भी मौजूद थीं। बहाव की तरफ एक मील तक जाते हुए हमारे छोटे-से दल के आधे व्यक्ति हताहत हो चुके थे, और हमारी दो नावें उलट गई थीं।"[६२]

---

६२. एनल्स आफ दि इण्डियन रिबेलियन, पृ० ६४८

थामसन और डेलाफास सम्भवत अलग-अलग नावो पर थे। उनके वर्णनो से यह स्पष्ट हो जाता है कि अगर रास्ते मे कोई घटना घटी होगी, तो उसका उन्हें पता नहीं था। मौब्रे थामसन ने जोर देकर कहा है कि उनके नावो पर चढने के समय तक सिपाही बहुत शिष्टता से पेश आ रहे थे। उसने कहा है कि जब तक मेजर विवार्ट, जो शिविर छोडने वाला अन्तिम व्यक्ति था, अपनी नाव पर नहीं चढ़ा, तब तक कुछ नहीं हुआ। यह समझा जा सकता है कि दल के पीछे कर्नल ईवार्ट के मारे जाने और पालकी से उतरते हुए जनरल व्हीलर का सिर काट लिए जाने की कहानी पुष्ट प्रमाणों पर आधारित नहीं है। अगर ईवार्ट पहले मारा गया होता तो घाट पर उसकी खोज होती। दूसरे, व्हीलर पालकी पर चढ़ा ही न था, वह तो अपनी पत्नी और पुत्री के साथ नदी तक पैदल आया था।[६३] यह स्पष्ट नहीं है कि पहली गोली मौब्रे थामसन की नाव के आदमियो ने चलाई या किनारों पर खडे घुडसवारो ने? क्योंकि उसका यह निश्चित कथन है कि जब नाविक उन्हें छोड कर भागे तो उन पर एकदम गोली चलाई गई, और उसी समय मेजर ईवार्ट के साथ आए घुडसवारों ने गोलिया चलाना शुरू कर दिया। यह भी स्पष्ट है कि कुछ नाविक भागते हुए मारे गए थे, क्योंकि मौब्रे थामसन ने आगे कहा है कि उनमे से अधिकाश बच गए थे। अग्रेजों को बहका कर नदी पर ला कर उन्हें मारने के षड्यन्त्र की कहानी की जाच इन्हीं तथ्यों के आधार पर करनी होगी।

यद्यपि यह कहानी बहुत सशयात्मक प्रमाण पर आधारित है, फिर भी यू ही इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। यह मानना पडेगा कि नदी के किनारे पर तोपें रखी गई थीं और सैनिक तैनात किए गए थे। नावों के चौधरी गुरदयाल और लोचन ने कहा कि इशारा होने पर एक नाव पर गोली चलाई गई, और फिर वह आग पास-पास बधी हुई नावों पर भी फैल गई। हो सकता है कि चौहान जमींदारों के वहा आने की पूर्व-निश्चित योजना न हो, क्योंकि अग्रेजों के आत्मसमर्पण की खबर काफी तेजी से फैल गई थी और आस-पास के गावो के लोग उन्हें जाते हुए देखने के लिए उस दिन सुबह ही वहां जमा हो गए थे। यह कहना आसान नहीं है कि इस षड्यन्त्र मे नाना का हाथ था। विद्रोही सेना के प्रधान के नाते उसे इन कृत्यों की जिम्मेदारी से मुक्त नहीं किया जा सकता, और एक तरह से हत्याकाण्ड का दोषी उसी को ठहराना होगा। लेकिन जान लैंग उसे अनिश्चितता का लाभ देने को तैयार है। उसने लिखा है, "किसी प्रमाण के अभाव मे, खासतौर से इस विषय पर सब पत्र पढ लेने के बाद जुलाई १८५७ में कानपुर मे हुई नीचतापूर्ण धोखेबाजी और भयकर हत्याकाण्ड का जिम्मेदार उस व्यक्ति को ठहराऊ, तो मुझे खेद होगा। नानासाहब अग्रेज पुरुषों और महिलाओ को बहुत अच्छी तरह समझते थे और जो अग्रेज मारे गए थे उनमे से अधिकाश को व्यक्तिगत रूप से (यदि घनिष्ठ रूप से नहीं) जानते थे। इसलिए यह समझना उचित ही होगा कि जब उन्होंने नावें तैयार करने का आदेश दिया तो हृदय से उनकी यही इच्छा थी कि ईसाई लोग कलकत्ते चले जाए,

६३. व्हीलर के नौकर का विश्वास था कि उसका स्वामी खैरियत से एक नाव पर चढ गया था।

श्रौर इसके वाद जो कुछ हुआ वह उन लोगो का काम था जो नानासाहव श्रौर व्रिटिश सरकार के वीच इतना श्रन्तर डाल देना चाहते थे कि भविष्य में शान्ति श्रौर समझौता हो ही न सके। नानासाहव इस वात को वहुत श्रच्छी तरह जानते थे कि श्रात्मसमर्पण करने वाले श्रग्रेजो की जान वचाने का श्रसर यह होगा कि श्रगर श्रंग्रेज फिर से भारत के विजेता के रूप मे श्राएंगे तो उसकी श्रपनी जान वच सकेगी। यही कारण था कि उसने सर ह्यू व्हीलर को वह वचन दिया।"[६४] यह श्रस्वीकार नहीं किया जा सकता कि उस दिन सुवह सिपाहियो की गोलियो से वचने वाली श्रौरतो श्रौर वच्चो की रक्षा नाना ने की थी श्रौर उसी के श्रादेश से हत्याकाण्ड रोका गया था। साल वाद इस सम्वन्ध मे लिखते हुए कर्नल माड ने भी यही श्रनुभव किया कि इस भयंकर श्रपराध मे नाना का हाथ नहीं था। "श्राज उन्हें (कर्नल विलियम्स द्वारा एकत्रित प्रमाण) सावधानीपूर्वक श्रौर निष्पक्ष रूप से पढने से इस वात में शक होता है कि जैसा श्राम तौर पर विश्वास किया जाता है, हमारी श्रौरतो श्रौर वच्चो की हत्या कराने में नानासाहव की साठ-गाठ थीं। मेरा यह मत है कि उसे यह काम श्रपने उन खून के प्यासे श्रनुयायियो के दवाव से करना पडा जिनकी कार्रवाइयो को रोकने की उसकी हिम्मत नहीं थी। श्राजकल भी हमारे श्रपने देश मे हम वैसे ही भयंकर कार्यो का उदाहरण दे सकते हैं। यह निश्चित है कि नाना ने एक से श्रधिक श्रवसरो पर उन निरीह प्राणियो से मैत्रीपूर्ण व्यवहार किया श्रौर वास्तव मे दया भी दिखाई। घाट के हत्याकाण्ड की योजना किसी सूझ-वूझ वाले व्यक्ति ने घोर पाशविक भावना से वनाई थी, श्रौर निश्चय ही नाना मे वह सूझ-वूझ नहीं थी।"[६५]

श्रव यह पता लगाने की कोशिश करना वेकार है कि उस षड्यन्त्र की योजना किसने वनाई थी। लेकिन हमे यह नहीं भूलना चाहिए कि १८५७ मे किसी भी पक्ष को मानवीयता का ध्यान न था। यह स्वीकार किया गया है कि कानपुर मे जव ग़दर शुरू हुआ तो एक भी सिपाही ने श्रपने श्रफसर को नहीं मारा, लेकिन दूसरी श्रोर मौव्रे थामसन ने यह स्वीकार किया है कि घेरे के पहले कुछ दिनो के वाद से श्रग्रेजो के हाथ मे जो भी वन्दी श्राया, उसे मौत के घाट उतार दिया गया। कर्नल ईवार्ट श्रौर उसकी पत्नी को कर्नल के श्रपेक्षित श्रन्त का पहले से ही श्रनुमान था। क्यो? उस दिन सुवह पहली गोली किसने चलाई थी? दूसरी घुड़सवार रेजीमेंट के वन्दूकचियो ने गोली चलानी कव शुरू की?—थामसन की नाव से नाविको पर गोली चलने से पहले या वाद मे? सव से वड़ी वात यह है कि क्या सिपाही, नील श्रौर उसके सायियो द्वारा किए गए पाशविक श्रत्याचारों से श्रपरिचित थे? मौलवी लियाकत श्रली कानपुर श्रा चुका था श्रौर उसने इलाहावाद मे नील के कारनामो की सूचना श्रवश्य दे दी होगी। होम्स ने कहा है, "वूढो को, जिन्होने हमारा कोई नुकसान नहीं किया था, श्रौर निरीह श्रवलाश्रो को, जिनकी छाती से उनके दूध पीते वच्चे चिपटे हुए थे, हमारी प्रतिहिंसा झेलनी पडी।"[६६] नील द्वारा

---

६४ लैंग, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ४१२-१३

६५ माड श्रौर शेरर, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द १, पृ० १०८-६

६६. होम्स, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २२०

मारे गए लोगो के रिश्तेदारो और मित्रो को इस बात से कोई सान्त्वना नहीं मिलती थी कि नील गावों को आग लगाने और निहत्थो को गोली से उडाने मे कोई खुशी अनुभव नहीं करता था। सती चौराघाट का हत्याकाण्ड नील के कारनामो के बाद हुआ था, पहले नहीं। अगर कानूनी रूप से नाना को उसके अनुयायियो के अपराधो के लिए जिम्मेदार ठहराया जाना है तो नैतिक रूप से अपराध का जिम्मेदार नील को करार देना होगा। अगर उसने अपनी सख्त कार्रवाइयो से गाव वालो को डरा कर भगा न दिया होता तो कोई कारण नहीं है कि वह व्हीलर के आत्मसमर्पण से पहले कानपुर न पहुच जाता।

२७ जून के धोखे के लिए तात्या टोपे के साथ ज्वालाप्रसाद, अज़ीमुल्ला और बालाराव को भी अपराधी ठहराया गया है। लेकिन ऐसे लोग कम ही थे जिन्हें पुराने बदले चुकाने थे। कोतवाल हुलास सिंह उस दिन सुबह घाट पर नहीं गया क्योंकि प्रस्तावित हत्याकाण्ड के बारे मे उसने दो दिन पहले सुन लिया था। हुलास सिंह ने बताया कि काजी वसीउद्दीन उस हत्याकाण्ड की योजना बना रहा था। "यूरोपीयों के लिए नावें तैयार करने से दो दिन पहले की शाम को काजी और घुडसवार रेजीमेट के दो सरदार, जिनके नाम मैं नहीं जानता, उनको मारने का विचार कर रहे थे। उस समय मैं मकान मे आया और मैंने सुना कि यूरोपीयों को उनके सुरक्षित स्थान से बाहर निकाल कर मारना कानूनी और जायज काम है, यह मैंने सुना, लेकिन मुझे याद नहीं कि वहा कौन—कौन मौजूद था।"[६७] हमे यह नहीं भूलना चाहिए कि इन गवाहों मे से कुछ अपनी गर्दन बचाना चाहते थे और कुछ इनाम पाने की तिकडम मे थे। अगर सामान्य समय होता तो अदालत इसमे से अधिकाश गवाही रद्द कर देती, लेकिन ग़दर के दिनों मे अत्यन्त सनसनीखेज वर्णनो को भी अकाट्य तथ्यों के रूप मे स्वीकार किया गया। फोरजेट का कहना है कि बम्बई के यूरोपीयों का न केवल यह विश्वास था, बल्कि उन्होने लार्ड एल्फिन्स्टन से शिकायत भी की कि जगन्नाथ शकर सेठ जैसा प्रतिष्ठित व्यक्ति और भाऊ दाजी की ख्याति वाला विद्वान भी नाना से सम्पर्क बनाए हुए है और उसके षड्यन्त्र मे शामिल है। उसे इस बात का विश्वास था कि अगर जमखण्डी का राजा बम्बई के प्रख्यात बैरिस्टर, श्री बार्टन को अपनी पैरवी के लिए न रखता तो निश्चय ही उसे फासी की सजा हो जाती।[६८]

बहुत कम समय की सूचना पर ही नावें एकत्रित और ठीक-ठाक की गई थीं। वे नावें नाविको की नहीं बल्कि महेश्वरी और अग्रवाल बनियों की थीं। उनके मालिकों को पूरा मुआवजा दिया गया था। २६ तारीख की शाम को जब निरीक्षण समिति उन्हें देखने गई तो उस समय भी बहुत-सी नावों मे बास के चबूतरे और फूस की छतें नहीं थीं। लेकिन इन कमियो को पूरा करने के लिए हजारों मजदूर रात भर लगे रहे। अगर शुरू से ही नाना ने धोखा देने का विचार किया होता तो नावों पर इतना रुपया और

---

६७ डिपोजीशन्स (गवाहिया), पृ० ५६

६८ फोरजेट, आवर रियल डेंजर इन इण्डिया, पृ० ५८, निर्दोष चाल-चलन के सदिग्ध भारतीयों के विषय में पृ० १०० देखें।

मेहनत क्यो खर्च की जाती, क्योंकि एक वार सुरक्षित स्थान से निकलने पर अंग्रेज लोग जमीन पर दुश्मन की भीड में उतने ही असहाय होते जितने वे नदी पर थे। उनके पास अपने हथियार थे और यह आशा नहीं की जा सकती थी कि वे जम कर लड़े विना अपनी औरतो और वच्चो को कत्ल होने देंगे।

जव व्हीलर और उसके साथी विद्रोहियो और भूख का मुकावला कर रहे थे, तो उधर नील इलाहावाद में गदर को दवाने में व्यस्त था। मेरठ और दिल्ली की खवरें कैनिंग के पास पहुंचते ही नील और उसके वन्दूकचियो को मद्रास से कलकत्ते वुला लिया गया। वह वड़ा सख्त और क्रूर व्यक्ति था और अधूरी या देर से की जाने वाली कार्रवाई मे विश्वास नहीं रखता था। वह पुराने ढंग का कट्टर ईसाई था और उसका उपयुक्त स्थान क्रामवेल के पास ही होता। अपने आत्मविश्वास के कारण वह वहुत अच्छा नेता था, लेकिन किसी के अधीन काम नहीं कर सकता था। नील कलकत्ते पहुंचा। हावड़ा मे उसने रेल कर्मचारियों के साथ, जो उसके सैनिको के लिए गाडी रोकने के लिए तैयार नहीं थे, जो व्यवहार किया वह उसके स्वभाव का परिचायक है। उसने अपनी वात न मानने वाले स्टेशन-मास्टर, इंजीनियर और इजन मे कोयला झोकने वाले पर पहरा विठा दिया, और उसके सैनिक सुरक्षित रूप से गाड़ी पर चढ गए। जव गाडी दस मिनट देर से चली तो नील रेल-अधिकारियो से यह कहना न भूला कि उनका व्यवहार देशद्रोहियो और विद्रोहियो की तरह का था और यह उनकी खुशकिस्मती थी कि उनका उससे सावका नही पड़ा। नील का अंतिम उद्देश्य यह था कि कानपुर और लखनऊ को सहायक सेना भेजी जाए, लेकिन सवसे पहले उसका ध्यान वनारस की ओर था।

वनारस भारत सरकार के लिए काफी चिन्ता का कारण वना हुआ था। इसलिए नहीं कि वह हिन्दुओ का पवित्र तीर्थ था, वल्कि इसलिए कि धीरे-धीरे वह सभी धर्मावलम्वियो के राजवन्दियो का निवास-स्थान वन गया था। कई वर्षो से दिल्ली के शाही खानदान के कुछ वंशज उस शहर मे रहने लगे थे और यह डर था कि वे लोग कहीं सरकार की राजनीतिक कठिनाइयो का अनुचित लाभ न उठाएं। इसके अतिरिक्त इस स्थान के सामरिक महत्व की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती थी, क्योंकि यह पटना और इलाहावाद को जोडता था। लेकिन, वनारस मजवूत नहीं तो सुरक्षित हाथो मे अवश्य था। जिले के मैजिस्ट्रेट के नाते न्यायाधीश गव्विन्स ने काफी साहस, चतुराई और दृढ़ निश्चय का परिचय दिया था। कलक्टर लिंड आसानी से घवराने वाला व्यक्ति नहीं था। कमिश्नर टकर धार्मिक विचारो वाला व्यक्ति था। नील का यह विश्वास था कि ईश्वर खुद अपनी सहायता करने वालो की ही सहायता करता है। टकर का अपने धर्म मे पक्का विश्वास था और वह भाग्य पर अधिक भरोसा रखता था। वह उठते हुए तूफान को समझता तो था, किन्तु उसकी तरफ ज्यादा ध्यान दिए विना ही अपना कर्तव्य करता जा रहा था। वह घोडे की चावुक के अलावा और कोई हथियार लिए विना ही शहर मे चला जाता था। उसने गवर्नर-जनरल को लिखा, “मेरी चाल यह है कि लोगो के चित्त ठीक वने रहें।” जव तक नील “मार-काट और नाश करने” के लिए नहीं आ पहुंचा तव तक

वह अपनी चाल बडी सफलतापूर्वक चलता रहा। वहा के सैनिक कर्मचारी उतने स्थिर नहीं थे। ब्रिगेडियर पोनसनबी ने पद्रह साल पहले अफगानिस्तान मे नाम पैदा किया था। हिम्मत मे उसका कोई मुकाबला नही कर सकता था। लेकिन जब ग़दर की खबर बनारस पहुची तो आलफर्ट्स और वाटसन ने उसे समझाया कि इस समय अक्लमन्दी का काम यही होगा कि बनारस को छोडकर चुनार के मजबूत किले मे चले जाए। लेकिन असैनिक अधिकारियो ने एक आवाज से इस निराशाजनक सलाह का विरोध किया। वे न केवल अपने स्थान पर डटे रहे, बल्कि निचली तरफ से जो यूरोपीय सैनिक वहा आए, उनको उन्होंने कानपुर भेज दिया। यद्यपि सैनिक सलाह इस तरह के आत्म-त्याग के विरुद्ध थी, फिर भी टकर सर हेनरी लारेंस के कहने की उपेक्षा नहीं कर सकता था।

नील ३ जून को बनारस पहुंचा। कानपुर मे उस समय तक शान्ति थी। लेकिन लखनऊ मे ग़दर शुरू हो चुका था। ४ तारीख को आजमगढ के उपद्रवो की खबर मिली। सिपाहियों ने खजाने पर कब्जा कर लिया था, अनियमित सैनिकों ने अपने अफसरो को पहरे मे सुरक्षित स्थान पर पहुचा दिया था, लेकिन वे अपने दूसरे साथी सैनिकों से लडने को तैयार नहीं थे। सैनिक अधिकारी घबडा गए और उनके मन मे यह डर पैदा हो गया कि आजमगढ़ की घटना से कहीं बनारस मे भी उपद्रव न पैदा हो जाए। गब्बिन्स के गुप्तचरों ने उनके इस डर की पुष्टि की। यह स्पष्ट नहीं है कि पानसनबी कब और कहां नील से मिला, लेकिन निस्सन्देह उसने अगले दिन सुबह ३७वीं देशी पैदल सेना के हथियार छीन लेने का निश्चय नील को बता दिया था, पर नील ने तत्काल कार्रवाई करने पर जोर दिया। कारण को परिणाम मान लेने के सिवाय और किसी तर्क से यह सिद्ध नहीं हो पाया है कि ३७वीं देशी पैदल सेना वास्तव मे अप्रभावित रही। उसके कमाण्डर मेजर बैरट के पास उनकी वफादारी पर शक करने का कोई कारण नहीं था। सिख रेजीमेंट और अनियमित सेना के घुडसवार विश्वसनीय समझे जाते थे। उनकी और यूरोपीयो की सहायता से सन्दिग्ध सिपाहियों के हथियार छीनने थे। शाम को पाच बजे परेड का आदेश दिया गया। ३७वीं देशी पैदल सेना को हुकम दिया गया कि बन्दूकें हथियारखाने मे जमा कर दी जाए। कोई विरोध नहीं हुआ, एक के बाद एक छ कम्पनियों ने अपने हथियार जमा कर दिए। तब कारतूस और ग्रेपशाट लिए हुए यूरोपीय सैनिक वहा आ पहुचे। पजाब रेजीमेंट ने समझा कि यूरोपीयो के आने का मतलब सिपाहियों की मौत है, और एकदम यह बात फैल गई कि यूरोपीय उन्हें मारने आए हैं। पानसनबी ने उन्हें सान्त्वना देने की कोशिश की। सिपाहियो ने शिकायत की कि उन्होंने कोई जुर्म नहीं किया है। पानसनबी के पास कोई जबाब न था और उसने उन्हें आदेशानुसार काम करने को कहा, क्योंकि "उनके बहुत-से भाइयो ने अपनी कसमें तोड कर अपने उन अफसरो को मार दिया था जिन्होने उनका कुछ नहीं बिगाडा था।" सिपाहियों ने इस बात को अनुचित समझा और उनमे से कुछ ने इधर-उधर हथियार खोज कर अपनी रक्षा करने की कोशिश की तो इसका दोष उन पर नहीं लगाया जा सकता। यूरोपीयो ने तत्काल गोली चला दी। इधर सिख और अनियमित

सैनिक अंग्रेजो के वास्तविक उद्देश्य को न समझते हुए परेड के लिए उपस्थित हुए थे और जानबूझ कर गोली चलाने से उनके मन मे शक हो गया और उन्होने भी गोली चलानी शुरू कर दी। नील ने उस समय कमान सभाली जब वफादार सैनिको को इस तरह गदर के लिए बाध्य किया जा रहा था। उस समय का वर्णन ठीक से नहीं मिलता और यह पता लगाना मुश्किल है कि सनस्ट्रोक से पीड़ित होने के कारण पानसनवी ने नील को स्वेच्छा से कमान सौंप दी थी या नील ने स्वयं अपने उबलते हुए उत्साह मे यह अनुभव किया कि सिर्फ वही स्थिति पर काबू पा सकता है, और इस प्रकार उसने अपने उस वरिष्ठ अधिकारी से जिम्मेदारी अपने हाथ मे ले ली। थोड़े-से सशस्त्र सैनिको ने निहत्थे लोगो की भीड़ को तितर-बितर कर दिया तो यह कोई बड़ा कारनामा नहीं था। लेकिन टकर का यह निश्चित मत था कि सैनिको से हथियार छीनने का काम बड़े गलत ढंग से हुआ था। गवर्नर-जनरल भी उसके इस कथन से सहमत था।[६९]

नील सिर्फ उस गदर को दबा कर सन्तुष्ट नहीं हुआ जो खुद उसकी नीति की वजह से हुआ था। विद्रोहियो और जिले के अप्रभावित लोगो को यह सबक सिखाना था कि अंग्रेज सैनिक अभी निकम्मे नहीं हुए हैं। के ने लिखा है, "हमारे सैनिक अफसर हर तरह के अपराधियो का ऐसे शिकार कर रहे थे और उन्हे ऐसी क्रूरता से फासी दे रहे थे जैसे वे नीच कुत्ते या गीदड या घटिया किस्म के जानवर हों।" उस घटना के एक महीने बाद एक पादरी ने लिखा कि आखो के सामने "फांसी के खम्भो की कतार थी, जिन पर उत्साही कर्नल एक के बाद एक विद्रोही को लटकाता जा रहा था।"[७०] "एक बार कुछ कम उम्र के लडको को भी अपराधी ठहरा कर मौत की सजा दे दी गई, जो शायद खेल-खेल मे ही विद्रोहियो के झण्डे उठा लाए थे और हुल्लड़ मचा रहे थे।" "फासी लगाने वाले स्वयसेवको के दल जिलो मे चले गए और उस समय फासी देने वाले नौसिखियो की कमी नहीं थी। एक सज्जन शेखी बघारते हुए यह बता रहे थे कि उन्होने बड़े कलात्मक ढग से कितने ही लोगो का खात्मा कर दिया, उन्होने आम के पेडो मे लटका कर और हाथियो के नीचे गिरा कर लोगो को मारा, और जैसे मनोरजन के लिए जगली न्याय के इन शिकारो को "आठ के अक के रूप मे बांध कर मारा गया।"[७१] देशी लोगो ने अकारण ही यह नहीं सोचा था कि यूरोपीय सैनिक "आदमी की शक्ल मे राक्षस" हैं।

बनारस के गदर की व्यापक प्रतिक्रिया हुई। इलाहाबाद और फतेहपुर, फैजाबाद और जौनपुर के सिपाहियो को यह पता लग गया कि सशकित अफसरो ने अपने निश्शंक सैनिको से किस तरह का व्यवहार किया और उन्होने यह अनुभव किया कि अंग्रेज़ो के विश्वास के सामने सबसे वफादार सिपाही भी सुरक्षित नहीं हैं। कानपुर मे अग्रेजो की तबाही और लखनऊ मे उनके कष्टो का मुख्य कारण नील था। बनारस की खबर अगले दिन

६९. के, ए हिस्ट्री आफ दि सिपाय वार, जिल्द २, पृ० २१६-२६
७०. मार्टिन, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द २, पृ० २८६-८७
७१. के, ए हिस्ट्री आफ दि सिपाय वार, जिल्द २, पृ० २३६-३७

इलाहाबाद पहुच गई। यूरोपीय औरतो और असैनिको को एक दम किले मे जाने का आदेश दिया गया, लेकिन बहुतो ने चेतावनी पर ध्यान न दिया। रात को विद्रोह हो जाने का डर था, लेकिन कुछ नहीं हुआ और कुछ लोग सुबह अपने बगलो मे लौट आए। कानपुर से यह हुक्म आया कि हर उपलब्ध यूरोपीय को किले मे तैनात कर दिया जाए, लेकिन वहा ज्यादा थे ही नहीं। साठ पेन्शनयाफ्ता तोपची चुनार से आए थे, कुछ सार्जेंट थे, और अब इनके साथ लगभग अस्सी असैनिक स्वयसेवक मिल गए थे। कैप्टन ब्रेसियर की कमान मे रक्षक सेना मे चार सौ सिख और छठी देशी पैदल रेजीमेंट के अस्सी आदमी थे। रेजीमेंट के बाकी सैनिक दो मील दूर अपने ठिकानो पर तैनात थे। उन्होने दिल्ली के खिलाफ लडने के लिए अपनी सेवाए अर्पित की थीं, और छ तारीख की शाम को एक परेड में उनके इस अनपेक्षित प्रस्ताव और वफादारी के लिए सपरिषद् गवर्नर-जनरल की ओर से उन्हें धन्यवाद दिया गया। लेकिन उसके कुछ ही घण्टे बाद उन्होने विद्रोह कर दिया। यह कहा गया है कि छठी देशी पैदल रेजीमेंट शुरू से ही विद्रोह की इच्छा मन मे सजोए हुए थी, और वह सिखों को भी अपने साथ लेने के लिए ही इतना इन्तजार करती रही। लेकिन बनारस के बहुत-से आदमी उनके ठिकाने पर पहुच चुके थे और सिपाहियो को यह पता लग गया था कि पहले ३७वीं देशी पैदल रेजीमेंट के सैनिको के हथियार छीने गए और फिर उन्हें मार दिया गया। अग्रेज अफसरो ने पूरी बगाल सेना को समाप्त करने की एक योजना बना ली थी। फिचेट नामक एक ढोलची ने बाद मे बताया कि उसने सिपाहियो से सुना था कि यूरोपीय उनके हथियार छीनने के लिए आ रहे हैं। उसने उससे पहले और किसी षड्यन्त्र की बाबत नहीं सुना था। दूसरे स्थानो की तरह वहां भी सिपाहियो के विद्रोह करते ही शहर के लोग भी उनके साथ मिल गए और बन्दी मुक्त कर दिए गए। यूरोपीयो को खदेडा गया और मार दिया गया। बगले लूट कर जला दिए गए और सब जगह अशाति का साम्राज्य छा गया। सिर्फ ईसाई ही नहीं, हिन्दू तीर्थ यात्री भी इन हुल्लडबाजो से नहीं बचे।

किले के अन्दर सिख बडे उद्विग्न थे, लेकिन ब्रेसियर ने उन्हें शान्त रखा। उसने एक माली के रूप मे काम शुरू किया था और अपने व्यक्तिगत गुणो के कारण ही उसने सेना मे कमीशन पाया था। उसने न केवल अपने आदमियो को अपने नियत्रण मे रखा, बल्कि उनकी मदद से किले मे तैनात छठी देशी पैदल रेजीमेंट के सैनिको के हथियार काबू करने मे भी सफलता पाई। छठी रेजीमेंट ने डर से ही विद्रोह कर दिया था और लूट का माल बटोरने के बाद उसके सैनिक बाद की लडाई मे हिस्सा लिए बिना अपने-अपने घरों को चले गए।

इस सकट काल मे प्रशासन का कार्य अपने हाथ मे लेने के लिए एक अज्ञात व्यक्ति सामने आया। मौलवी लियाकत अली चेल परगने के साधारण परिवार का व्यक्ति था। एक जगह कहा गया है कि जन्म से वह जुलाहा था और कर्म से अध्यापक। यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता था कि लोग उसकी इज्जत करते थे, क्योकि उन्होने उसे अपना नेता माना था। चूकि उसने अपने जन्म या सम्पत्ति के कारण उन्नति नहीं की थी, इसलिए यह समझना उचित होगा कि वह अपने व्यक्तिगत चरित्र और दयालुता के कारण

ही आगे बढा था। उसने एकदम धर्म और उस प्राचीन परम्परा का नारा बुलन्द किया, जिसका प्रतीक बादशाह था, क्योंकि उसने दिल्ली के बादशाह के नाम पर और उसके प्रतिनिधि के रूप मे शासन चलाया। उसने शान्ति कायम करने और अपनी समझ के मुताबिक कानून का शासन स्थापित करने की कोशिश की। इसमे कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि वह उसमें असफल रहा, क्योंकि सैन्य सचालन-कार्य को वह तनिक भी नहीं समझता था। उन दिनो विद्रोहियो को काबू मे लाने का एक वही तरीका था। दूसरे, उसका व्यक्तित्व भी इतना महान नहीं था कि जनता एकदम उसकी आज्ञापालन के लिए तैयार हो जाती। उसे इस बात का श्रेय है कि उसने धर्म बदल लेने पर बहुत-से भारतीय ईसाइयो को मरने से बचाया। उन दिनो जब जरा-से शक पर ही आदमी को मौत के घाट उतार दिया जाता था, यह कोई मामूली बात न थी।[७२] लेकिन इलाहाबाद आने मे नील को देर नहीं लगी। ६ जून को बनारस से चल कर ११ को वह इलाहाबाद पहुंच गया। सड़क सुनसान पडी थी और घोड़े उपलब्ध नहीं थे। लेकिन इससे उसके काम मे कोई रुकावट नहीं पड़ी। उसने किसानो से अपनी गाडी खिचवाई, लेकिन मौसिम की भयंकर गर्मी से वह बच न सका। जब वह किले मे पहुचा तो "बनारस से तेजी से चले आने के कारण थका हुआ था" और "एक बार मे कुछ मिनटो के लिए ही खड़ा हो सकता था।"[७३] लेकिन स्थिति ऐसी थी कि विलम्ब करना उचित न था। किला बचा लिया गया था किन्तु शहर विद्रोहियो के हाथ मे था। यूरोपीय और सिख दोनो खूब डट कर शराब पीते थे, और अगर तत्काल अनुशासन न कायम किया जाता तो किले की सुरक्षा भी खतरे मे पड जाती। दारागज और कीटगज मे गोली चलाई गई, और जल्दी ही शहर विद्रोहियो से खाली हो गया। १७ तारीख तक मौलवी को अपना सदर मुकाम छोड कर जाना पडा।

नील एकदम कानपुर नहीं गया। उसने पहले अपराधियो को दण्ड देना और ढिलमुल लोगो को आतंकित करना उचित समझा, और नदी तथा जमीन के रास्ते सजा देने के लिए दल भेजे गये। गाव जलाने और 'काले आदमियो' को फासी देने के मामले मे असैनिक लोग सैनिको से भी ज्यादा उत्साही थे। बाद मे सरकार को ज्ञान हुआ कि "सब तरह के अपराधियो के साथ-साथ उन लोगो को भी बिना सोचे-समझे फासी पर लटका दिया गया, जिनके अपराध के बारे मे बहुत शक था। इनके अलावा खुले आम गाव जलाए और लूटे गए, जिससे उम्र और स्त्री-पुरुष के भेद के बिना अपराधियो के साथ-साथ निरीह अनजान लोगो को भी सजा मिली और कहीं-कहीं वे मारे भी गए। इससे उन बड़े-बड़े सम्प्रदायो मे बडी उत्तेजना फैली, जो अन्यथा सरकार के दुश्मन नहीं थे।"[७४] नील यह भूल गया कि भारत की सारी जनसंख्या का सफाया नहीं किया जा सकता था और स्थानीय लोगो के सहयोग के बिना वह सामान ढोने के लिए पशु और गाड़ियां एकत्र नहीं कर सकता

---

७२. थामसन की रिपोर्ट, पृष्ठ ६। विलाक की रिपोर्ट पृ० १३

७३. फारेस्ट, ए हिस्ट्री आफ दि इंडियन म्यूटिनी, जिल्द १, पृ० ३६७

७४. पार्लियामेंटरी पेपर्स, १८५७-५८, जिल्द ४४, भाग १, पृ० ११-१२ लेटर टु कोर्ट, २४ दिसम्बर, १८५७

था। उसकी सख्तियों से किसान गाव छोड कर भाग गए थे और उनके साथ ही वे गरीब मजदूर भी गायब हो गए, जो सेना की दैनिक आवश्यकताए पूरी करते थे।[७५] अगर वह २० तारीख को भी इलाहाबाद से चला जाता तो कानपुर को बचाया जा सकता था, क्योंकि व्हीलर सहायक सेना के आने की खबर जानने के लिए गुप्तचर भेजता रहता था। २३ तारीख को यद्यपि चार सौ यूरोपीय और तीन सौ सिख-चलने को तैयार थे, लेकिन गाडियां तथा सामान मिलना मुश्किल था। पाच दिन बाद भी हालत मे कोई सुधार नहीं हुआ, लेकिन यह आशा थी कि मेजर रेनाड ३० तारीख को उस दस्ते के साथ रवाना हो जाएगा। ३० जून को हैवलाक इलाहाबाद आया और उसने कमान सभाल ली। उसके थोडी देर बाद ही उसे लखनऊ से व्हीलर के आत्मसमर्पण की खबर मिली।

हेनरी हैवलाक को सेना मे बयालीस साल हो चुके थे। उसकी तरक्की धीरे-धीरे होने मे गलती उसकी नहीं थी। उसने अफगानिस्तान, पजाब और ईरान मे काम किया था और इधर कानपुर और लखनऊ मे उसे मदद के लिए बुलाया गया था। वह सैन्य विज्ञान को अच्छी तरह समझता था और यह मशहूर था कि उसने नेपोलियन के हमलो का अच्छी तरह अध्ययन किया था। लखनऊ में वह अपने खाली समय मे मैकाले की 'हिस्ट्री आफ इग्लैण्ड' पढता था। वह पक्का ईसाई था और श्रीराम के मिशनरियों से उसका घनिष्ठ सम्बध था। वह बहुत सादा रहता था और यह अनुमान था कि कलकत्ता-समाज मे अपने रग-ढग से वह अधिक प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त करेगा। श्रीमती कैनिंग ने लिखा है, "जनरल हैवलाक पुराने ढग का आदमी है, लेकिन फिर भी हमे विश्वास है कि वह वहा अच्छी तरह खप जाएगा। निस्सदेह वह झगडालू और उबा देने वाला आदमी है, लेकिन वह इतना चुस्त दिखाई पडता है जैसे फौलाद का बना हो।" फौलाद का आदमी ही नील को नियत्रण मे रख सकता था। हैवलाक ने रेनाड को रुक जाने का आदेश दिया और कहा, "सेना के पीछे, आगे और अगल-बगल का अच्छी तरह ध्यान रखो। तब मैं तुम्हें एक और मजबूत सहायक दस्ता दूगा, जो कल ४ तारीख को रवाना होगा। गाव तब तक न जलाओ जब तक कि वास्तव मे उनमे विद्रोही न हो, और जहा तक सम्भव हो अपने यूरोपीय सैनिको को यह काम करने से रोको।" नील को विश्वास नहीं होता था कि कानपुर मे अग्रेज हार चुके हैं। "मेरा विचार है कि जहा तक सम्भव हो हमे रुकना नहीं चाहिए और आगे बढ़ते जाना चाहिए"—यह उसने सैनिक प्रथा के खिलाफ, स्थानापन्न प्रधान सेनापति सर पेट्रिक ग्राट को लिखा और इस प्रकार हैवलाक के आदेश की जगह ऊपर से आदेश मागने की कोशिश की। रेनाड की खुशकिस्मती से हैवलाक ने वही किया जो कहा था और १२ जुलाई को नाना की सेना से मुठभेड होने से पहले ही वह उससे आ मिला। हैवलाक पिछली आधी रात के कुछ देर बाद अपने शिविर से चलकर सुबह

---

७५ के ने लिखा है, "हर जगह आतकित देशी लोग मारकाट करने वाले अग्रेज़ों से अलग रहते थे। यह तो ऐसा था जैसे जिन कुओं से हमें पानी लेना था उन्हें हमने सुखा डाला और जिन फसलों से भोजन लेना था उन्हें नष्ट कर डाला।" के, ए हिस्ट्री आफ दि सिपाय वार, जिल्द २, पृ० २७४

ही रेनाड के पास पहुच गया। दोनो पक्ष हैरान हो गए। रेनाड को फतेहपुर मे सिर्फ मुट्ठी भर सिपाहियों की उम्मीद थी और नाना के आदमियो को भी हैवलाक के आने की कोई खबर नहीं थी। अगर हैवलाक समय पर सहायता न पहुंचाता, तो रेनाड की छोटी-सी टुकड़ी बिलकुल खत्म हो जाती।

न्यायाधीश टकर के अलावा बाकी सब अंग्रेज अफसर ९ तारीख को फतेहपुर से रवाना हो गए थे। ६ तारीख तक वहां शान्ति थी। तब "देशी लोगो ने बाजार मे बनारस के ग़दर की खबर सुनी . यह कहा गया कि जब पुरबिये और सिख परेड के मैदान मे चुपचाप खड़े थे तो यूरोपियो ने उन पर गोली चला दी।"[७६] तीन दिन बाद स्थिति विकट हो गई। इस तरह ३२ दिन के बाद वह शहर फिर कब्जे मे ले लिया गया। तब १५ जुलाई को आोग की लड़ाई हुई और उसी दिन पाण्डु नदी पार की गई। नदी बढी हुई थी, लेकिन पुल ठीक था और यह डर था कि उसे किसी भी समय उडाया जा सकता है। यही कारण था कि हैवलाक ने उसे कब्जे मे लेने की जल्दी की और अपने थके हुए सैनिको को आराम न लेने दिया। यह बताना मुश्किल है कि पुल क्यो नहीं नष्ट किया गया था, लेकिन उसके रास्ते मे काफी लडाई हुई। नदी पार कर ली गई लेकिन कानपुर की लड़ाई का अभी अन्त नहीं हुआ था। हैवलाक उन बन्दियो, औरतो और बच्चो को बचाने को उत्सुक था जिनके बारे मे यह खबर थी कि वे नाना के पास कैद हैं। नाना अपने प्रधान कार्यालय को बिना लड़े छोड़ने को तैयार नहीं था, लेकिन उसकी आखिरी मुठभेड भी पहली मुठभेडो की तरह ही असफल रही और इलाहाबाद से चलने के दस दिन बाद, यानी १७ जुलाई को, हैवलाक अपनी विजेता सेना के आगे-आगे कानपुर मे दाखिल हुआ। लेकिन अभागी अग्रेज औरतो को बचाने की उसकी इच्छा पूरी न हो सकी।

घाट के हत्याकाण्ड के बाद जो लोग बचे, उन्हे बन्दी बना लिया गया था। आदमियो को गोली मार दी गई थी, लेकिन औरतो और बच्चो को सवाडा हाउस मे रख दिया गया। वहा से उन्हे बीबीघर नामक इमारत मे भेज दिया गया। जब विद्रोही नेताओ को यह विश्वास हो गया कि कानपुर पर और अधिक देर तक कब्जा नही रख सकते तो उन अभागे बन्दियो को मार कर एक कुएं मे डाल दिया गया। जब हैवलाक के सैनिक कानपुर मे दाखिल हुए तो उन औरतो और बच्चो की लाशें वही थीं और बीबीघर का फर्श उस समय भी खून से गीला था। इस पाशविक हत्याकाड के भयंकर विवरण का वर्णन साहित्यिक प्रतिभा वाले व्यक्तियो ने बडी खूबी से किया है, लेकिन वे विवरण बहुत कच्चे प्रमाण पर आधारित हैं। इस घटना के पचास वर्ष बाद लिखते हुए सर जार्ज फारेस्ट ने ठीक ही कहा है, "यह सच है कि उत्तर-पश्चिमी प्रान्त के पुलिस कमिश्नर, कर्नल विलियम्स की आज्ञानुसार देशी लोगो और मिली-जुली जाति वाले ६३ गवाहो के बयान लिए गए, लेकिन ये बयान उन लोगों के हैं जिनके गले मे फन्दा पड़ा हुआ था या पड़ने को ही था। उनके बयान मे बहुत कमियां हैं, और बहुत सोच-समझ कर उन पर विचार करना चाहिए। मैंने अफसरो की रिपोर्ट, गैर-सरकारी लोगों की अर्जियां, गवाहो के बयान और गैर-सरकारी

७६. मैकनाटन की रिपोर्ट, पृ० ५

जाच के कागज बडी सावधानी से पढे हैं। उनसे ज्ञात होता है कि यद्यपि बहुत-से काले धब्बे मौजूद हैं, लेकिन सारी तस्वीर इतनी काली नहीं है जितनी बनाई गई है।"[७७] पृष्ठ के नीचे टिप्पणी मे दी गई इस चेतावनी की ओर बहुत कम लोगो का ध्यान गया है, और फारेस्ट ने जिस प्रमाण की निन्दा की है उसी के आधार पर फिर से रची गई कानपुर की कहानी बहुत प्रचलित हो गई है। सर जार्ज ट्रेविलियन ने जिस खूबी से और विश्वास दिलाने के ढग से इन घटनाओ का वर्णन किया है, वह पाठक को इतना प्रभावित करता है कि पाठक उसके प्रमाणो को अधिक विस्तार से जाचने की आवश्यकता ही नहीं समझता। स्वय ट्रेविलियन ने कभी भी अपने गवाहो की विश्वसनीयता की जाच करने की आवश्यकता नहीं समझी, और राइस होम्स ने भी इस मामले मे उतनी सावधानी नहीं बरती। वे दोनो नानक चन्द की पत्रिका को विश्वसनीय आलेख मानते हैं, यद्यपि सर जान के ने उसकी एक बडी त्रुटि की ओर ध्यान आकृष्ट किया है।

बीबीघर के हत्याकाण्ड के लिए भी नाना को ही दोषी ठहराया जाता है। लेकिन जिस तरह का प्रमाण कर्नल विलियम्स के सामने पेश किया गया था, उस पर तो सबसे कुख्यात अपराधी को भी कोई अदालत दोषी नहीं ठहराएगी। फिर भी विश्वसनीय प्रमाण के अभाव का अर्थ यह नहीं है कि अपराध नहीं हुआ था। कानूनी और नैतिक दृष्टि से बन्दियों के जीवन की जिम्मेदारी नाना पर थी, और हत्याकाण्ड भी उसी के नाम पर किया गया था। जब तक पूरी तरह यह सिद्ध न हो जाए कि उसे इसका पता नहीं था, तब तक उसे इस षड्यन्त्र के अभियोग से मुक्त नहीं किया जा सकता और इस लज्जाजनक कार्य का कलक उसके नाम पर रहेगा ही। नाना ने खुद कहा है कि उसने कभी कोई हत्या नहीं की। महामहिम सम्राज्ञी, ससद्, कोर्ट आफ डायरेक्टर्स, गवर्नर-जनरल, लेफ्टिनेंट-गवर्नर और सभी सैनिक तथा असैनिक अफसरो के नाम जो इश्तहारनामा उसने अप्रैल १८५९ मे मेजर रिचर्डसन को दिया था, उसमे उसने इस बात पर जोर दिया था कि औरतो और बच्चो की हत्या मे उसका कोई हाथ नहीं था। "कानपुर मे सैनिकों ने मेरा आदेश नहीं माना और अग्रेज औरतो तथा रैयत को मारना शुरू कर दिया। जो कुछ भी बचाना मेरे लिए सम्भव था, वह मैंने बचाया और जब वे अपने सुरक्षा-स्थल को छोडने के बाद नावों पर आए जिनमे मैंने उन्हें इलाहाबाद भेजा था तो आपके सिपाहियो ने उन पर हमला कर दिया। मैंने खुशामद-मिन्नत करके अपने सिपाहियों को रोका और दो सौ अग्रेज औरतों और बच्चो की जान बचाई। मैंने सुना है कि जब मेरे सैनिक कानपुर से भागे तो आपके सिपाहियो और बदमाशो ने उन औरतों और बच्चो को मार डाला और मेरा भाई भी जख्मी हुआ। उसके बाद मैंने आपके द्वारा प्रकाशित इश्तहारनामे की बाबत सुना और लडने के लिए तैयार हो गया और अब तक आपके साथ लडता रहा हू, तथा जब तक जीऊगा तब तक लडूगा।"[७८] तात्या टोपे का बयान भी उसी महीने ठीक दस दिन पहले लिया

७७ फारेस्ट, ए हिस्ट्री आफ दि इडियन म्यूटिनी, जिल्द १, पृ० ४७८-७६

७८. मूल उर्दू मे था। एक ब्राह्मण ने इसे मेजर रिचर्डसन को दिया था। 'फारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशन्स, सख्या ६५, २७ मई, १८५९

गया था। तात्या टोपे का कहना है कि वास्तव मे विद्रोहियो ने नाना को घेर कर वन्दी वना लिया था, लेकिन नाना ने कहा है कि उसके जो सैनिक विद्रोही हो गए थे, उनकी धमकियो और दवाव के सामने वह झुक गया था। तात्या ने सती चौरा घाट के हत्याकाण्ड के लिए सिपाहियो को जिम्मेदार ठहराया, लेकिन उसने वाद की हत्याओ का कोई जिक्र नहीं किया।

प्रश्न उठता है कि वीवीघर का हत्याकाण्ड कव हुआ था. नाना के विठूर जाने से पहले या वाद मे ? अव इतना समय निकल जाने के वाद इस वात को तय करना तव तक असम्भव है जव तक कोई नया प्रमाण प्रकाश मे न आ जाए। फिर भी, ध्यान रखने की वात है कि वाजीराव की लडकी कुसुमवाई का यह विश्वास था कि उसका भाई इस मामले मे निर्दोष था। जव अपने बुढापे मे वह पूना गई तो वी० के० राजवाडे और पंडोवा पटवर्धन ने उससे भेंट की। उसने उन्हे वताया कि नाना ने विद्रोही सैनिको को रोकने की भरसक कोशिश की थी और हत्याकाण्ड मे उसका कोई हाथ नहीं था। गदर के समय कुसुमवाई की उम्र लगभग दस वर्ष थी और प्रश्न यह उठता है कि वह वच्ची अपने भाई के तूफानी दरवार की राजनीति को किस हद तक समझ सकती थी।[७९] हत्याकाण्ड मे नाना के योग के सम्बन्ध मे कोई निश्चित फैसला देना आसान नहीं है। शेरर का यह कहना लगभग सच है कि "उस पूरे काल मे उसके व्यक्तिगत प्रभाव का कोई चिह्न नहीं मिलता। अजीमुल्ला के कुछ कारनामे हमे ज्ञात हैं, समय-समय पर ज्वालाप्रसाद, वावा भट्ट, तात्या टोपे और अन्य लोग जो कुछ करते रहे उसका पता लगाना भी मुश्किल नहीं है, लेकिन नाना पृष्ठभूमि मे ही वना रहता है।"[८०] जव वह यह कहता है कि उसके अपने सैनिको और काश्तकारो ने उसे विद्रोहियो से मिलने के लिये वाध्य किया था, उसका परिवार विद्रोहियो की दया पर आश्रित था और उन स्थानीय लोगो के वीच वह एक अजनवी था, जिनसे उसकी कोई घनिष्ठता नहीं थी, तो हम उसके इस कथन को विलकुल ही अविश्वसनीय कहकर नहीं टाल सकते। जव वह इस वात पर जोर देता है कि सती चौरा घाट के आयोजित हत्याकाण्ड मे उसका हाथ नहीं था और औरतो तथा वच्चो की हत्या उसकी अनुपस्थिति मे हुई तो हमे विश्वसनीय प्रमाण मागने को वाध्य होना पडता है।

वीवीघर जाने वाले पहले कुछ व्यक्तियो मे शेरर भी एक था। उसने कहा कि "सारी वात इतनी भयकर थी कि वास्तविक खेदजनक परिस्थितियो को किसी भी तरह वढाना ठीक न होगा। और मेरा यह निश्चित मत है कि विवरण वहुत वढा-चढ़ा कर वताए गए थे।" "सारे रास्ते पर खून की मोटी परत चढी थी। निश्चय ही इतना कहना पर्याप्त है, यह कथन कि 'टखनो तक गहरा गाढा खून जमा था' "अति दुखदायक होने के साथ ही विलकुल गलत भी है।" "कम से कम उस मकान मे मार-काट के कोई चिह्न नहीं थे, और न दीवारो पर कहीं कुछ लिखा था।"[८१] हैवलाक की अनुमति से शेरर ने कुआ भरवा दिया था।

---

७९. भारत इतिहास सशोधक मण्डल, वार्षिक इतिवृत्त, शक १८३५, पृ० ४२५

८०. माड एड शेरर, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द १, पृ० २२०

८१ वही, जिल्द १, पृ० २०७-८

व्यापारी लाला ईशरीप्रसाद के यहा नौकरी करता था। जब नानक चन्द ने बिठूर मे नाना के खजाने का भेद बताने के लिए इनाम मागा तो उसकी अर्जी कानपुर के कलक्टर जी० ई० लान्स के पास भेज दी गई। १५ मई, १८६२ को लान्स ने यह लिखा "नानक चन्द एक मामूली सूचना देने वाला था और उसका जिससे भी वास्ता पडा, सब को उसने नाराज कर दिया। मुझे यह नहीं मालूम कि शेरर ने उसकी इनाम की माग को किस खास कारण रद्द कर दिया (अगर वास्तव मे उसने खजाने का भेद बताया था), लेकिन मैं इतना जानता हू कि इधर उस अफसर ने उसे अपने अहाते मे घुसने की भी इजाजत नहीं दी। कहा जाता है कि उसकी तथाकथित डायरी से उसे बहुत आमदनी हुई, क्योंकि वह इस बात पर निर्भर थी कि किसी व्यक्ति का नाम विद्रोहियों मे या वफादारों मे लिखने से उसे कितना रुपया मिलता है। अगर उसने वही सेवा की होती जिसका वह बहाना करता है तो मैं समझता हू कि मुझसे पहले के अधिकारी ने उसे जरूर इनाम दिया होता। मुझे ज्ञात हुआ है कि यह बात मशहूर थी कि नाना ने अपने खजाने का कुछ हिस्सा कुए मे डालने का आदेश दिया था और जनरल हैवलाक के गगा पार करने पर उसके अनुयायी बिठूर लौट कर सारी रात उस कुए को खाली करने मे लगे रहे।[2] शेरर भी लान्स के इस कथन से सहमत था और उसका कहना था कि खजाना छिपाने की जगह का सबको पता था और ऐसा नहीं था कि सिर्फ नानक चन्द को ही वह बात मालूम हो। शायद ये कागजात सर जार्ज ट्रेविलियन और डाक्टर टी० राइस होम्स के सामने मौजूद नहीं थे, लेकिन इस बात के काफी प्रमाण मौजूद हैं कि वह तथाकथित डायरी दिन प्रतिदिन की घटनाओं का सकलन नहीं हो सकती थी और निश्चय ही वह कभी बाद मे सकलित की गई थी। यद्यपि नानक चन्द का कहना है कि उसने अपनी पत्रिका की एक प्रति ७ दिसम्बर, १८५७ को श्री शेरर और मेजर बरोंज (ब्रूस) को दी थी, लेकिन फिर भी यह उल्लेखनीय है कि शेरर ने जब ग़दर और बाद मे कानपुर की घटनाओं का वर्णन लिखा तो उसने इस पत्रिका को कोई महत्व नहीं दिया। शेरर ने अपने 'वर्णन' में इसकी कोई चर्चा नहीं की और उसके निष्कर्ष भी कहीं-कहीं नानक चन्द के कथन के बिलकुल विपरीत हैं, जैसे ग़दर से पहले सिपाहियों के साथ मिल कर नाना का षड्यन्त्र। यद्यपि नानक चन्द यह कहता है कि वह अगस्त के अतिम सप्ताह में शेरर से मिलने गया था, फिर भी यह स्पष्ट नहीं है कि उसने १८५७ के आखिरी महीने तक अपनी वह मूल्यवान डायरी कलक्टर और पुलिस सुपरिन्टेंडेंट को क्यों नहीं दिखाई।

ट्रेविलियन समझता था कि नानक चन्द एक वकील है, क्योंकि वह चिमनजी के मामले मे दिलचस्पी ले रहा था, लेकिन यह हैरानी की बात है कि नानक चन्द अपने मुवक्किल के पूर्वजों के सम्बन्ध मे भी पूरी तरह नहीं जानता था। वह उसका परिचय

इनाम, पुरस्कार सम्बन्धी परामर्श, जनवरी १८६४, सख्या ७८-८२। कार्रवाई बी० स० ४४ ६८

२ ध्यान रहे कि नानक चन्द ने यह शिकायत की थी कि लान्स से उसके सम्बन्ध अच्छे नहीं थे

बाजीराव के भाई चिमनजी अप्पा के पुत्र के रूप मे देता है, यद्यपि महाराष्ट्र मे कभी-कभी पोते का नाम दादा के नाम पर रख दिया जाता है, लेकिन पिता और पुत्र का नाम कभी एक नहीं होता। सरकारी-विवरण के अनुसार बाजीराव का भाई चिमनजी ३० मई, १८३२ को मर गया था और उसके पीछे उसकी विधवा कावेरीबाई, जिसकी आयु लगभग ११ वर्ष की थी, और एक अविवाहिता पुत्री द्वारिकाबाई रह गई थी। बाद में द्वारिकाबाई के एक लडका हुआ, जिसका नाम चिमनजी अप्पा था। सरकारी विवरण मे बताया गया है कि जब बाजीराव द्वितीय की मृत्यु हुई तो उस समय यह युवक उसका आश्रित था। वयस्क होने पर उसे पचास हजार रुपये मिलने थे। हिन्दू कानून या और किसी कानून से वह बाजीराव की सम्पत्ति का कोई दावा नहीं कर सकता था, इसलिए नाना को उस जज की "हथेली गरम करने की" कोई आवश्यकता नहीं थी जिसने उसका मामला रद्द कर दिया।

यह आरोप भी बिलकुल निराधार है कि "महाराजा ने अपने पूर्वज की विधवाओं को उनकी इच्छा के विरुद्ध नजरबन्द रखा, और उसकी छोटी पुत्री का विवाह वह पारिवारिक नियमों और परम्पराओं के विरुद्ध करना चाहता था, उच्च ब्राह्मणों के विचार से यह एक अत्यन्त भयंकर कार्य था। उसने बडी बहन की शादी एक ऐसे व्यक्ति से की जिससे मिलने का कभी अवसर उसे नहीं दिया गया, और जब कुछ समय बाद उसकी मृत्यु हो गई तो पास-पड़ोस मे यह कानाफूसी होती रही कि हर दृष्टि से यह काम अत्यन्त अनुचित था।" बाजीराव द्वितीय के कई विवाह हुए थे। उसकी मृत्यु के बाद केवल उसकी दो पत्निया, साईबाई और मैनाबाई जीवित थीं। योगबाई और कुसुमबाई नाम की उसकी दो पुत्रियां भी थीं, जिनकी माता अपने पति के रहते मर गई थी। उनके नाना बलवन्तराव आठवले ने (जिसको एक स्थान पर नानक चन्द ने पेशवा का साला बताया था) उनका अभिभावक होने का दावा किया। भारत सरकार ने उसका वह दावा स्वीकार नहीं किया। योगबाई की शादी प्रसिद्ध पटवर्धन परिवार के एक व्यक्ति से कर दी गई और वह साल या डेढ साल मे ही मर गई। सिर्फ नानक चन्द उसकी शादी अनुचित मानता था और शादी के एकदम बाद उसका अपने पिता के यहा से न जाना कोई असाधारण बात नहीं थी। कुसुमबाई जिसका नाम बयाबाई भी था, की शादी ग्वालियर के एक सरदार, बाबा साहेब आप्टे से हुई। वह शादी किसी भी तरह बेमेल नही थी। उसकी शादी यद्यपि नानक चन्द के डायरी लिखने से पहले हो गई थी फिर भी नानक चन्द को उसका पता न था। वह और उसकी दोनो सौतेली माताएं उसके भाई के साथ नेपाल चली गई थीं, और जब पूरी तरह शान्ति हो गई तो वह अपने पति के पास आ गई।

बाजीराव का पोता (भाई का पोता) दूसरा चिमनजी थट्टे परिवार का था। उसके पुत्र द्वारा यह कहा जाता है कि बाजीराव द्वितीय चौथे पुत्र को गोद लेना चाहता था और उसने इसके लिए चिमनजी को चुना था। उस समय की प्रथा के अनुसार गोद लेने वाले पिता के परिवार के लिए जो सीमाएं निर्धारित थीं उनको देखते हुए इस कथन पर विश्वास करना कठिन है। नाना, दादा और बाला के मामले मे इस प्रथा को पूरी तरह निभाया गया था। चिमनजी के पुत्र लक्ष्मण थट्टे का कहना है कि लगभग १८८०

मे साईबाई ने नेपाल मे उसे गोद लिया था।[3] इससे यह सवाल हमेशा के लिए हल हो जाता है, क्योकि एक ही पिता द्वारा या उसकी ओर से पिता और पुत्र दोनो को गोद नहीं लिया जा सकता था। जब चिमनजी की तरफ से मुकदमा चलाया गया था तब वह नाबालिग ही था। हो सकता है नानक चन्द की उस मुकदमे मे दिलचस्पी हो। भारत मे कुछ ऐसे लोग हैं जो दूसरे लोगों की कठिनाइयो का लाभ उठाते हैं और उसी पर उनकी रोजी चलती है। २८ जनवरी, १८५८ के पत्र मे लाला ईशरीप्रसाद ने सेसिल बीडन को लिखा, "करीब दो साल पहले यानी हाल के ग़दर के बारे मे शका होने से भी काफी पहले अपने कुछ मित्रों के कहने पर मैं चिमन अप्पा को एक मुकदमे के लिए आर्थिक सहायता देने को राजी हो गया था। यह मुकदमा उसने सरकार के अधीन रखी हुई एक बडी रकम को प्राप्त करने के लिए चलाया था और अब उसका यह कहना था कि वह गलती से किसी महादेव पत को दे दी गई थी।"[4] यह नहीं बताया गया है कि नानक चद ने ईशरीप्रसाद से चिमनजी की सिफारिश की थी (यद्यपि उसने अस्वीकार किया), और हो सकता है उसने उस नाबालिग मुकदमेबाज से इस विचार से मैत्री कर ली हो कि जल्दी ही वह रुपये वाला हो जाएगा।

नानक चन्द ने अपनी पत्रिका लिखने मे अपने उद्देश्य को नहीं छिपाया। वह अपनी वफादारी सिद्ध करके इनाम पाना चाहता था। दुर्भाग्यवश १८६५ तक उसे कोई इनाम नहीं मिला, और जो मिला भी वह उस रकम से बहुत कम था जो, उसके कथनानुसार, उसने सरकार के फायदे के लिए खर्च की थी।[5] यह ध्यान रखने की बात है कि उसकी अपनी पत्रिका तथा बाद मे सरकारी इनाम के मांग मे दी गई अर्जियों के बीच बहुत अन्तर है। अपनी पत्रिका के शुरू मे उसने लिखा है कि उसने प्रधान सेनापति के लिए जानकारी एकत्र करने के लिए दस महीने उसके शिविर मे गुजारे, लेकिन प्रधान सेनापति ने नानक चन्द का कोई जिक्र नहीं किया। बाद की अर्जियों मे उसने स्वीकार किया है है कि उसने मेजर ब्रूस के साथ काम किया, और उसी अफसर की सिफारिश पर सरकार ने उसे पाच हजार रुपये के इनाम की मजूरी दी, लेकिन यह इनाम सैनिक जानकारी देने के लिए नहीं बल्कि नाना के खजाने की सूचना देने के कारण दिया गया।

यह भी ध्यान रखने की बात है कि नानक चन्द आदतन डायरी लेखक नहीं था, लेकिन जब मेरठ और दिल्ली की खबरें कानपुर पहुची तो उसने एकदम समझ लिया कि वहा भी विद्रोह होगा और उसने यह भी अनुभव किया कि इन दिनो की दिन प्रतिदिन की घटनाओं का वर्णन सरकार के लिए उपयोगी होगा। वह अपनी जान बचाने के लिए

---

३ मैं महामहोपाध्याय डी० वी० पोतदार का आभारी हू, क्योंकि उन्होंने इस व्यक्ति के वक्तव्य की पाडुलिपि की एक प्रति मुझे दी।

४ गृह विभाग, पब्लिक कन्सल्टेन्शन्स, सख्या ६०, ५ मार्च, १८५८

५ ३१ जुलाई, १८६३ की अर्जी में उसने यह दावा किया है कि उसने सरकार के लिए जानकारी एकत्र करने पर ७,०२७ रु० ३ आने खर्च किए।

छिप गया, लेकिन उसने कहा है कि रोजाना शहर मे, बिठूर मे, नाना के शिविर मे और अंग्रेजो के सुरक्षित स्थान मे जो कुछ होता था वह उसे मालूम पड़ता रहा और वह रोज उनका वर्णन लिखता रहा। उसने यह नहीं बताया कि अग्रेजो के सुरक्षित स्थान की खबरें उसे किस जरिये से मिलती थीं। ८ जून को वह मौत के डर से लाला ईशरीप्रसाद के मकान पर चला गया, जो उस समय खाली था। वहा वह एक दिन रहा और लाला के एजेंट ने उसे खाना खिलाया, लेकिन साथ ही हमे यह भी बताया गया है कि अपनी डायरी लिखने के बाद रात को वह उस घर से सिरसिया घाट चला गया जहा हीरा गंगापुत्र नाम के एक व्यक्ति ने रात बिताने के लिए उसे एक कमरा दिया।[६] इसके बाद शायद रात को अपनी डायरी लिखने के लिए वह वापस आया, लेकिन वहां रात बिताना सुरक्षित न समझ कर वह नदी के किनारे चला गया। निश्चय ही वह अपनी डायरी को अपनी जान से भी ज्यादा समझता था। १३ तारीख को वह जाजामऊ मे अपनी डायरी मे एक पैरा लिख चुका था कि नाना के आदमी उसे पकड़ने के लिए आ गए। वह जान लेकर भागा लेकिन रास्ते में कुछ किसानों ने उसे मारा-पीटा और उसका सामान छीन लिया। एक दयालु जमींदार ने उसे रात को रहने की जगह दी और उसके बाद वह नदी पार करने के लिए चल पडा। दूसरे किनारे पर पहुच कर वह चार घण्टे तक बेहोश पड़ा रहा। सुबह के दस बजे वह होश में आया। वह स्थान उसके छिपने की जगह बद्रका से तीन मील दूर था। क्या उसकी डायरी खो गई थी? नहीं, लुट जाने तथा अन्य घटनाओ के बाद भी उसकी डायरी उसी के पास रही और नियमानुसार उस दिन की घटनाओं का वर्णन भी उसने उसमे लिखा। लेकिन फिर भी उसमे लगातार घटनाओं का वर्णन नहीं है। उसमे १५ मई से २२ जुलाई तक और बाद में २५ नवम्बर से ७ दिसम्बर तक की घटनाओं का वर्णन दिया है। १७ अगस्त को उसने वफादार और गैर-वफादार तहसीलदारो की सूची बनाई। स्पष्ट ही वह अपने को सार्वजनिक नैतिकता का निरीक्षक मानता था, लेकिन उसने यह स्वीकार किया कि वह पत्रिका मूल रूप मे नहीं दी गई। उसने कहा है, "यह पत्रिका ग़दर से पहले से शुरू होकर ग़दर के अन्त तक की है, और अधिकारियों के सामने अपनी वफादारी सिद्ध करने तथा नाम पैदा करने के लिए इसे, अंग्रेजो के कानपुर पर पुनः अधिकार होने पर, जाच पडताल करके ठीक कर लिया गया।"

यह स्पष्ट है कि शेरर की नजर में वह "नाम पैदा करने मे" असफल रहा जिसने उसे अपने घर आने की इजाजत नहीं दी। लान्स भी उससे अप्रभावित रहा और उसने उसे एक मामूली सूचना देने वाले और अपना मतलब गाठने वाले व्यक्ति के रूप मे ही समझा। यद्यपि उसने "बड़ी सूक्ष्म जाच-पड़ताल" के बाद अपनी पत्रिका को "ठीक" कर लिया था लेकिन फिर भी उसका कोई भी बनावटी प्रमाण त्रुटियो से रहित नहीं है। एक ऐसी ही बड़ी त्रुटि पर सर जान का ध्यान भी गया। नानक चन्द का कहना है कि वह १७ जुलाई को कानपुर की कोतवाली मे जनरल हैवलाक और नील से मिला। लेकिन नील २० तारीख तक कानपुर नहीं पहुचा था। हैरानी की एक बात यह है कि १७ फरवरी,

---

६. नानक चन्द, पृ० १०

१८६६ की अर्जी मे उसने अपने ही कथन का खण्डन किया, "१७ जुलाई, १८५७ को जनरल हैवलाक कानपुर आया और जनरल नील शायद एक या दो दिन वाद आया और वे १६ अगस्त की शाम तक वहा रहे।" नानक चन्द ने एक गलती सुधारने मे दूसरी गलती की, क्योंकि उन दिनों हैवलाक कानपुर मे था ही नहीं। उसकी पत्रिका मे, यही नहीं ऐसी वहुत-सी अशुद्धिया हैं। पत्रिका के अनुसार जनरल (अग्रेजो का) १८ जुलाई को विठूर गया और उसने नाना नारायण राव को डाट-फटकार लगाई क्योंकि वह कुछ तोपें अपने घर ले गया था। ३१ जुलाई, १८६३ की अर्जी के चौदहवें पैरे मे नानक चन्द ने ठीक ही कहा है कि जनरल १६ जुलाई को विठूर पहुँचा।[७]

यह भी ध्यान देने की बात है कि इस दिन प्रति दिन के वर्णन मे कभी-कभी पिछली तारीख की घटनाए भी आ गई हैं। इस तरह की गलत तारीख फतेहगढ के शरणार्थियों के दूसरे दल के बारे मे है। इस दल मे कर्नल गोल्डी, कर्नल स्मिथ और मेजर रावर्टसन थे। वे लोग ४ जुलाई को फतेहगढ़ से रवाना हुए। पहला दल महीने भर पहले आ गया था और उसके पकडे जाने की खबर नानक चन्द ने ११ जून को लिखी। उस समय वह जाजामऊ में था। "मेरे नौकर झैनसिंह ने आकर मुझे खबर दी कि फर्रुखावाद से आए हुए यूरोपियन इकट्ठे बाध कर मार दिए गए।" चूकि ये निष्क्रांत व्यक्ति फतेहगढ से ४ जून को चले थे, इसलिए नानक चन्द के इस कथन मे कोई अनौचित्य नहीं मालूम पडता कि वे १० तारीख को पकड कर मार दिए गए। १५ जून को नानक चन्द ने फिर लिखा, "कानपुर की कल की घटनाओं की खबरें मेरे पास आज सुबह दस बजे पहुचीं। पहली यह कि फर्रुखाबाद के करीब चालीस पुरुषों और स्त्रियों को, जो पीछे छूट गए थे, जस्सासिंह वदमाश ने रोका　　　　और बिठूर भेज दिया, बदमाश रावसाहव ने उन्हें विठूर मे रोक लिया और बडे बदमाश नाना को खबर दी, और नाना ने वन्दियों को अपने सामने बुलाया। न मालूम उनकी क्या गत होगी।"[८] फतेहगढ़ के निष्क्रांतों का पहला दल १० जून को खत्म कर दिया गया था और दूसरा ४ जुलाई से पहले किले से रवाना नहीं हुआ। इसलिए हम यह समझ नहीं पाते कि १४ जून को यूरोपीय कैसे गिरफ्तार हुए। फिर भी छ और व्यक्तिओं ने नानक चन्द के कथन का समर्थन किया है, जिनमे अप्पाजी लक्ष्मण, अप्पा शास्त्री और नाना अभयकर बिठूर निवासी थे। नानक चन्द के गुप्तचर फतेहसिंह का यह दृढ़ मत था कि जुलाई मे कोई यूरोपीय नहीं आया। कर्नल विलियम्स ने इस त्रुटि की कोई सफाई न देकर उस घटना की सही तारीख दी है, लेकिन विना किसी टिप्पणी के उन गवाहों की चर्चा भी कर दी है जिन्होने इस घटना की पिछली तारीखें वताई थीं। नानक चन्द ने फतेहगढ़ के बन्दियो के दो दलों की बात सुनी थी। लेकिन दूसरे और अन्तिम दल की तारीख पता न होने के कारण उसने ग़लत तारीख भर दी। और उसके एजेंटों और गुप्तचरों का यह फर्ज ही था कि वे उसके कथन का समर्थन करते। इसी तरह, कोतवाल के पद पर हुलास सिंह की नियुक्ति की तारीख के वारे मे भी शक

---

७. उसका मतलब शायद मेजर स्टीफेन्सन से है।

८. नानक चन्द, पृ० १२ और १४

है। नानक चन्द के मुताबिक वह ६ जून को नियुक्त हुआ लेकिन खुद हुलास सिंह का कहना है कि विद्रोहियो के कल्याणपुर से लौटने के सात या आठ दिन बाद उसकी नियुक्ति हुई। हुलास सिंह से पहले और भी कई लोग उस पद पर काम कर चुके थे और बताया जाता है कि उनमे से एक तो सिर्फ दो या तीन दिन तक कोतवाल रहा। इसलिए हुलास सिंह की नियुक्ति १० जून से पहले होनी संभव नहीं थी।

नानक चन्द का कहना है कि अंग्रेजो के सुरक्षित स्थान मे ११ जून को आग लगी, जब कि वह जाजामऊ मे था। दूसरी ओर उस सुरक्षित स्थान में रहने वाले शेफर्ड ने कहा है कि बैरक मे १३ जून की शाम को लगभग ५ बजे आग लगी।[९] डेलाफास ने कहा कि यह घटना १२ जून या उसके आसपास घटी। मौब्रे थामसन का कहना है कि यह भयंकर विपत्ति लगभग एक सप्ताह बाद आई। हिसाब लगाने से वह तारीख १३ जून निकलती है। लेकिन राइस होम्स ने यह कह कर नानक चन्द की तारीख को स्वीकार किया है कि "वह बहुत सजग डायरी-लेखक था।" वह इतना सजग था कि १७ जुलाई के वर्णन मे उसने लिखा है कि एक महीने से वह बाहर नहीं निकला, यद्यपि उसके अपने ही कथन के अनुसार वह इस दौरान जाजामऊ और बब्रका जाकर कानपुर वापस लौट आया था।

मालूम पड़ता है कि नाना के आदमियो ने उससे असाधारण रूप से नरमी का व्यवहार किया। उसके सिर पर एक हजार रुपये के इनाम की घोषणा की गई थी। नाना के आदमियों ने उसे बब्रका से खोज निकाला लेकिन फिर छोड़ दिया, दया से नहीं बल्कि धन का लिहाज करके। एक रुपया भी नकद नहीं दिया गया, लेकिन इन धोखेबाज गुंडो ने सवा सौ रुपये का हाथ का लिखा हुआ एक पुर्जा स्वीकार कर लिया, जो इस महाजन को पकड़वाने पर मिलने वाली रकम के दस प्रतिशत के बराबर था।

कभी-कभी नानक चन्द को सूचना देने वाले परस्पर-विरोधी सूचनाएं देते रहे। विलियम्स के सामने उसने यह कहा कि जो बहुत-से व्यक्ति उसे सूचनाए देते थे उनमें थामस ग्रीनवे का एक कर्मचारी मुन्शी कालिकाप्रसाद भी था। कालिकाप्रसाद ने कहा, "मेरे पकड़े जाने और ब्रिगेडियर ज्वालाप्रसाद द्वारा छोड़ दिये जाने के बाद भी वह मुझे रोज बुलाता रहा और मुझसे मेरे मालिक के धन के बारे मे पूछता रहा।" इससे यह पता लगता है कि २५ जून को कालिकाप्रसाद किस तरह शाह अली के तम्बू मे पहुंचा था जब उसने प्रस्तावित हत्याकाण्ड के बारे मे अजीमुल्ला, ज्वालाप्रसाद तथा अन्य लोगो की बातचीत सुनी। लेकिन अगर ग्रीनवे के खजाने का पहले ही पता लग चुका था तब शाह अली के निवास-स्थान पर कालिकाप्रसाद के जाने का कोई जवाब नहीं मिलता। नानक चन्द ने निश्चित रूप से कहा है कि ६ जून को ही ग्रीनवे का अहाता खोद कर खजाना निकाल लिया गया था। नानक चन्द ने कहा कि एडवर्ड ग्रीनवे, उसकी माता तथा बहनों को ६ जून को नजफगढ से बन्दी बना कर लाया गया, लेकिन कालिकाप्रसाद ने कहा कि नाना के सैनिक ८ तारीख को नजफगढ गए और ग्रीनवे परिवार के बन्दियों को ले आए। इन्हीं सब कारणों से सर जान के ने नानक चन्द को अविश्वसनीय गवाह करार दिया था।

---

९. शेफर्ड, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ४४

सर जार्ज ने कम से कम एक जगह यह बताया कि वह सुरक्षित स्थान के गवाहों की अपेक्षा नानक चन्द को क्यो प्राथमिकता देता है। वह मौब्रे थामसन के इस कथन को स्वीकार नहीं करता कि नाना ने जो दूत भेजा था वह श्रीमती ग्रीनवे थी क्योंकि श्री ग्रीनवे के गुप्त नौकर ने इस बात की पुष्टि की कि नाना ने श्रीमती जैकब को चुना था और अधिकाश बयानो मे उसके इस कथन का समर्थन किया है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि बहुत-से गवाह नानक चन्द से मिले हुए थे और वे उसी के कथन की पुष्टि करते थे। लेकिन उस दूत की पहचान की एक बात ही ऐसी नहीं थी जिस पर मौब्रे थामसन का मत नानक चन्द और कालिकाप्रसाद से भिन्न था। नानक चन्द ने यह लिखा और कालिकाप्रसाद ने यह बयान दिया कि उसने २४ जून की सुबह लगभग ९ या १० बजे श्रीमती जैकब को अग्रेजो के सुरक्षित स्थान पर जाते देखा, और उसके बाद लगभग बारह बजे वापिस लौटकर नाना के तम्बू की तरफ जाते देखा। यह गवाह हमेशा ठीक जगह पर और ठीक मौके पर ऐसी बातें देखने और सुनने के लिए मौजूद रहता था, जिससे यह सिद्ध हो सके कि २७ जून के हत्याकाण्ड मे नाना का हाथ था। लेकिन डेलाफास ने यह निश्चित रूप से कहा है कि नाना का दूत २५ जून को उस सुरक्षित स्थान मे आया और मौब्रे थामसन ने "उसे रास्ते की रोक पर से ऊपर उठाया" और यह "पहचान लिया कि वह श्रीमती ग्रीनवे है।" थामसन ने आगे कहा है कि "जब तक बातचीत होती रही तब तक श्रीमती ग्रीनवे मेरी टुकडी मे ही रही और रात को नाना के शिविर मे लौट गई।"[१०] अगले ही दिन नानक चन्द को इस प्रस्तावित धोखेबाजी की खबर मिली और उसने लिखा है कि कालिकाप्रसाद ने एडवर्ड ग्रीनवे को इसकी चेतावनी दे दी थी। समझ मे नहीं आता कि उसने अपने विश्वसनीय कर्मचारी की बात पर ध्यान क्यो नहीं दिया। लेकिन नानक चन्द के मामले में ट्रेविलियन या होम्स ने इस तरह की त्रुटिपूर्ण बातों पर ध्यान नहीं दिया।

सर जार्ज ट्रैविलियन ने एक 'प्रत्यक्षदर्शी' के विवरण का विस्तृत रूप से उल्लेख किया है, जिसका दावा था कि उसने सवाडा हाउस की करुण घटनाओं और बीबीनगर की भयकरताओं को अपनी आखो से देखा था। जान फिचेट ईसाई था और इलाहाबाद की छठी देशी सेना मे ढोलची था। जब वहा विद्रोह शुरू हुआ तो अपनी जाति के दूसरे लोगों की तरह उसने भी इस्लाम स्वीकार कर अपनी जान बचाई। जब व्हीलर ने आत्मसमर्पण किया और जब हैवलाक ने फिर से वहा ब्रिटिश सत्ता कायम की, उस समय फिचेट और उसके साथ धर्म-परिवर्तन करने वाले उसके साथी यहीं थे। उसने कहा है कि स्त्रिया जब नदी से आईं, उस समय उसे सवाडा हाउस मे रखा गया था। उसने कहा कि दूसरी बार कत्ले-आम को न सिर्फ उसने देखा था, बल्कि वे सारी घटनाए उसे याद थीं। उसके कथनानुसार जिस दिन वह कानपुर पहुचा, उसे सवाडा हाउस ले जाकर दक्षिण-पूर्व

---

१० थामसन, उद्धृत ग्रथ, पृ० १५१-५२। दि स्टोरी आफ कानपुर में पृ० १५१ पर छपी २३ जून की तारीख सम्भवत. गलती से छप गई है, क्योंकि पृ० १४८ पर थामसन ने कहा है कि घेरा पडने के २१वें दिन वह महिला उसकी टुकड़ी में आई।

दिशा के एक कमरे मे कैद किया गया तथा क्लार्क और डिक्रूज भी उसके साथ ही रखे गये थे। इस जगह से बाहर की घटनाओ को अच्छी तरह देखा जा सकता था और यहीं मे उसने खून और कीचड मे सनी उदास महिलाओ और फटे चीथडे पहने बच्चो को नदी की ओर से आते देखा था। क्लार्क और डिक्रूज ने अप्रत्यक्ष रूप से इससे इन्कार किया कि वे सवाडा हाउस या किसी अन्य स्थान पर फिचेट के साथ रखे गये थे। क्लार्क ने कहा कि जान फिचेट का कथन बिल्कुल झूठा है। हम दोनो मे से किसी को भी कभी सवाडा हाउस मे नहीं रखा गया। उसने बल देकर कहा कि उन दोनो को सवाडा हाउस से लगभग एक मील की दूरी पर रखा गया था। डिक्रूज ने भी उतना ही जोर देकर फिचेट के कथन का खंडन किया। वह तो क्लार्क के कथन से भी एक कदम आगे बढ गया। उसने कर्नल विलियम्स को बताया कि जान फिचेट को सवाडा हाउस मे नहीं, बल्कि हम दोनो के साथ शिविर मे ही रखा गया था। उसने कहा "जान फिचेट का यह वक्तव्य झूठा है। किसी को भी कैद नहीं किया गया। हम लोग सिपाहियो के साथ खुली जमीन पर एक शिविर मे रखे गये थे। जान फिचेट भी हम लोगो के साथ था।" "हम लोग . . . सवाडा हाउस से लगभग एक मील दूर मैदान मे रखे गये थे।" २७ जून के बाद वह वहा कभी नहीं गया।[११] यह स्वाभाविक भी था कि धर्म-परिवर्तन कर लेने के बाद इन बेचारो को घूमने-फिरने की आजादी दी जाय। अगर जान फिचेट सवाडा हाउस मे न रखा जाकर एक मील दूर शिविर मे रखा गया था तो उसके लिए सती चौरा के कत्ले-आम से बचे लोगो को कैदखाने आते देखना सम्भव नहीं था। यह भी विचित्र लगता है कि जब दूसरे कैदियो का तबादला किया गया तो सिर्फ उसे ही बीबीघर मे क्यो कैद रखा गया। इस मामले मे भी सर जान ट्रेविलियन तथा होम्स ने सर जान के की चेतावनी पर ध्यान नहीं दिया। के ने कहा कि "इस मुख्य गवाह का विवरण (जान फिचेट, छठी देशी पैदल सेना का ढोलची) अन्य सभी विवरणो से अधिक विस्तृत है और सबसे प्रामाणिक भी लगता है। उसने कहा कि वह हमारे लोगो के साथ बदी बनाकर रखा गया था। लेकिन बाद मे यही सफेद झूठ बोलने के लिए उसे दोषी भी ठहराया गया और उसके बयान को तभी विश्वसनीय माना जा सकता है जब कि दूसरे लोगो ने भी उसका समर्थन किया हो।"[१२] लेकिन दूसरे ढोलचियों को भी अपनी जान बचानी थी। उन्होने स्वय स्वीकार किया कि उन्होने इस्लाम स्वीकार किया था और सिपाहियो से मिल गए थे।

अपनी बाद की अर्जियो मे नानक चन्द ने अपनी डायरी के विवरण का खण्डन किया। ६२ अन्य गवाहो ने भी जो कर्नल विलियम्स के सामने पेश हुए, महत्वपूर्ण मामलो के सम्बन्ध मे विरोधी बातें कहीं। सर जार्ज ट्रेवेलियन या डा० टी० राइस होम्स के विवरण पर केवल उतना ही विश्वास किया जा सकता है जितना उन साधनो पर जिनके आधार पर उन्होने अपनी राय कायम की। कर्नल विलियम्स के सामने गवाही देने वालो तथा नानक चन्द के विवरण स्पष्टत. अविश्वसनीय हैं।

---

११. डिपोजीशन्स, पृ० ४, १४-१७

१२ के, ए हिस्ट्री आफ दि सिपाय वार, जिल्द २, पृ० ३०२

अध्याय ५

अवध

अवध का सूबा तो मुग़ल साम्राज्य के जमाने से ही चला आ रहा था। किन्तु वहाँ नवाबों का राज्य स्थापित हुए अभी ३८ वर्ष ही बीते थे। इस छोटी अवधि मे पाच नवाब अवध की गद्दी पर बैठ चुके थे। इस राजवश के पुरखे फारस से आए थे और ये शिया मतावलम्वी थे। इस राज्य का सस्थापक मुग़ल दरवार का सामन्त था। मुग़ल साम्राज्य के पतन के दिनों मे उसके वश के लोगों का वज़ीर के पद पर वशगत अधिकार हो गया और अवध का सूबा इन लोगो की जागीर बन गया। बहुत समय तक ये लोग व्यवहारत स्वतत्र होते हुए भी हर तरह से मुग़ल साम्राज्य की अधीनता मानते आए। नवाब शुजाउद्दौला ने शाह आलम के साथ मिल कर बिहार सूबे पर हमला किया। यह सूबा नाममात्र के लिए ही उसके पिता के आधीन था। लेकिन नवाब तथा वज़ीर की सयुक्त सेना को सर हेक्टर मुनरो ने बक्सर की लडाई (१७६४) मे बुरी तरह हराया। क्लाइव ने अपनी कूट-नीति से नवाब तथा वज़ीर से इलाहाबाद की सधि करके इस सैनिक विजय को दृढ़ता प्रदान की। इस सधि के अनुसार बादशाह ने बगाल, बिहार और उडीसा के सयुक्त सूबे का दीवान ईस्ट इण्डिया कम्पनी को बनाया और वज़ीर ने यह कबूल किया कि उसे अग्रेज़ों को छोड कर अन्य किसी विदेशी शक्ति से राजनीतिक सधि करने का अधिकार नहीं रहेगा।

इसके बाद के अवध के सभी नवाब इस सधि की शर्तो का सचाई के साथ पालन करते रहे। लेकिन अग्रेज़ों का पक्ष अधिक शक्तिशाली था। ये धीरे-धीरे अपना नियत्रण कडा करते गए और इनकी मागें दिन-दिन बढ़ती गईं। अन्त मे अवध राज्य का क्षेत्र करीब-करीब आधा रह गया और अवध के शासक की हैसियत एक स्वतन्त्र शासक की न रह कर एक सामन्त की सी हो गई। शुजाउद्दौला ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ मैत्री की सधि की थी। उसके पुत्र तथा उत्तराधिकारी, आसफउद्दौला की मृत्यु के बाद आसफउद्दौला के भाई सादत अली और उसके विख्यात पुत्र मिर्ज़ा अली के बीच उत्तराधिकार का झगडा हुआ। सादत अली उन दिनों बनारस मे अग्रेज़ों के सरक्षण मे रहा करता था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने सादत अली के पक्ष मे अपना निर्णय दिया। इसके बदले उसे अपनी रक्षक अग्रेज़ी सेना को दी जाने वाली वार्षिक रकम में पर्याप्त वृद्धि करने की शर्त मजूर करनी पडी। चार वर्षो के भीतर ही इस सधि मे सशोधन हुआ जिसके अनुसार सादत अली को सेना के लिए दी जाने वाली वार्षिक रकम के बदले ब्रिटिश सरकार को दोआब का इलाका देना पडा। इससे राजस्व के रूप मे प्रतिवर्ष

१,३५,२५,४७४ रुपए की आमदनी होती थी। १८०१ की सधि की छठी धारा के अंतर्गत सादत अली इस वात के लिए राजी हुआ कि सुरक्षित इलाको मे निजी अधिकारियो की देख-रेख मे ऐसी प्रशासन-व्यवस्था कायम की जाए जिससे उसकी प्रजा की समृद्धि वढे और जिससे उनके जान-माल की रक्षा हो सके।" इसके अतिरिक्त उसने "उक्त कम्पनी वहादुर के अधिकारियो से सलाह लेना और उनकी सलाह के अनुसार काम करना"[1] भी स्वीकार किया। इस प्रकार ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अवध के लोगो की सुख-सुविधा के लिए नैतिक दायित्व ले लिया और नवाव ने आन्तरिक प्रशासन के मामलो मे कम्पनी के अधिकारियो की सलाह पर अमल करना स्वीकार कर लिया। निस्सन्देह उसने आशा की थी कि उसके जिन जागीरदारो ने उसके साम्राज्य के भीतर ही स्वय अपना साम्राज्य वना लिया था और जिन्होंने राज्य के कानूनो पर अमल करना छोड दिया था, उनसे अग्रेजी फौज उसके पक्ष मे लड़ेगी। ये जागीरदार सुरक्षित किलो मे रहते थे और उनके पास व्यक्तिगत फौजें भी थी। लेकिन सादत अली और उसके जागीरदारो की लडाई मे अग्रेज तव तक नहीं पडना चाहते थे, जव तक उन्हे यह सन्तोष न हो जाए कि वादशाह का पक्ष औचित्य की कसौटी पर ठीक उतरता है। सादत अली ने हमेशा यह अनुभव किया कि अंग्रेजो का सरक्षण प्राप्त करने के लिए उसे वहुत वडी कीमत चुकानी पडी और जव भी उसने सैनिक सहायता मागी, उसे अपमानित होना पडा। सादत अली की १८१४ मे मृत्यु हो गई। उसके वाद उसका पुत्र गाजीउद्दीन हैदर नवाव वना। नए नवाव ने नैपाल-युद्ध के कठिन दिनो मे अंग्रेजो को धन से पर्याप्त सहायता दी। इससे उसके वारे मे उनकी राय अच्छी वन गई। इससे प्रसन्न होकर कम्पनी की सरकार ने न केवल उसे कतिपय महत्वपूर्ण इलाको मे शासन का अधिकार दिया वलिक उसे वादशाह का ओहदा देकर उसका रुतवा भी वढाया।[2] वादशाह का यह नया ओहदा नासिरउद्दीन हैदर, मुहम्मद अली शाह और अमजद अली शाह को नवाव वनने पर मिला। इस क्रम मे अन्तिम वाजिद अली शाह था, जो १८४७ मे वादशाह वना। वाजिद अली शाह को छोड़ कर अवध के सभी वादशाहो ने सरकार द्वारा जारी की गई ऋण-योजनाओ मे इस उद्देश्य से मुक्तहस्त धन दिया ताकि वे कम्पनी के अधिकारियो के कृपापात्र वने रहें और मृत्यु के वाद उनके कृपापात्र आश्रितो को नियत समय से पेन्शन मिलती रहे।

१८०१ की सधि मे साफ-साफ व्यवस्था होने के वावजूद, प्रशासन का स्तर दिन-दिन गिरता गया। वादशाह विदेशी सेना के सरक्षण मे सुरक्षित रहते ही थे। उन्होने प्रशासन की पूरी देख-रेख अपने कृपापात्रो के जिम्मे छोड दी। उनके वे कृपापात्र स्वभावत हाथ आए अवसर का पूरा लाभ उठाने को उत्सुक थे। शक्तिशाली जागीरदारो और ताल्लुकेदारो पर तो भ्रष्ट अधिकारियो का कोई वश नहीं चला, लेकिन छोटे जमींदारो को उनके कारण वहुत कठिनाइया झेलनी पडीं। दशा दिन-दिन विगड़ती ही

१ एन्चिसन, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द २, पृ० १२४-२५
२ वही, जिल्द २, पृ० ६९-७०

गई और वह भी समय आया जब अवध नाम से ही भ्रष्टाचार और कुशासन का बोध होने लगा। अन्त मे कम्पनी सरकार को अपनी जिम्मेवारियों का ध्यान आया। जब निजी तौर पर शिकायतो से काम नहीं चला तो कम्पनी सरकार ने मुहम्मद अली शाह पर दबाव डाल कर एक नई सधि (१८३७) करने का प्रयत्न किया। नई सधि की ७वीं धारा मे इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए साफ-साफ व्यवस्था थी—"उपर्युक्त सधि की छठी धारा के सशोधन स्वरूप यह व्यवस्था की जाती है कि अवध के बादशाह ब्रिटिश रेजिडेंट की सलाह से अपने शासन-क्षेत्र मे पुलिस, न्याय तथा माल-विभागो के वर्तमान दोषो को दूर करने के लिए अच्छे से अच्छा उपाय करने का शीघ्र और सच्चा प्रयत्न करेंगे और यदि महामहिम ने ब्रिटिश सरकार अथवा उसके स्थानीय प्रतिनिधि के सुझावो और सलाहों पर अमल करने मे लापरवाही बरती और यदि (ईश्वर न करे ऐसा हो) इस सधि के बाद अवध के शासन-क्षेत्र मे कभी पूरी तरह से और आयोजित रूप से ऐसे अत्याचार, अराजकता और कुशासन का प्रसार हो जाए जिससे जन-जीवन की शाति को गम्भीर खतरा उपस्थित हो जाए, तो ऐसी स्थिति मे ब्रिटिश सरकार अपना यह अधिकार सुरक्षित रखती है कि जिस भाग मे उपर्युक्त प्रकार का कुशासन फैला हो, उसके किसी भी इलाके के प्रबन्ध के लिए अपने अधिकारी नियुक्त करे और उन्हें कम या अधिक अधिकार दे। यह अधिकार तब तक रहेगा जब तक ब्रिटिश सरकार इसकी जरूरत महसूस करे। ऐसी स्थिति मे सभी खर्चो को काट कर बाकी आमदनी बादशाह के खजाने मे जमा की जाएगी और इस प्रकार अधिकृत भागो की आमदनी और खर्च का असली और ठीक-ठीक हिसाब महामहिम को दिया जाएगा।" अगली धारा (धारा ८) के अन्तर्गत गवर्नर-जनरल ने यह दायित्व लिया कि अगर धारा ७ की व्यवस्थाओ पर अमल करने की जरूरत पडे तो "वह यथासम्भव यह प्रयत्न करेगा कि उन अधिकृत क्षेत्रों की देशी सस्थाओ तथा प्रशासन-व्यवस्था को यथापूर्व (वैसे सुधारो के साथ जो उन्हें स्वीकार्य हों) रखा जाए, जिससे उचित अवसर आने पर वे क्षेत्र जब अवध के बादशाह को लौटाये जाएँ तो उसमे सुविधा हो।"[3] कोई भी स्वाभिमानी बादशाह ऐसी सधि पर हस्ताक्षर कर यह स्वीकार नहीं कर सकता था कि उसके शासन-क्षेत्र मे पूर्ण तथा आयोजित रूप से अत्याचार, अराजकता और कुशासन फैला हुआ है, और मुहम्मद शाह ने भी यह अवश्य समझ लिया होगा कि इस सधि का मतलब उसे अपदस्थ किया जाना है। लेकिन वह जानता था कि वह ब्रिटिश सरकार की दया पर ही टिका हुआ है। इसलिए असमजस मे रहने के बावजूद, अतत उसने इस सधि पर अपनी स्वीकृति दे दी। लेकिन ब्रिटेन की सरकार ने इस सधि को मजूर नहीं किया। इसलिए यह रद्द कर दी गई। यह होने पर भी ऐसा नहीं कि मुहम्मद शाह के बुरे दिन फिर गए। वे फिरे नहीं, सिर्फ भविष्य के लिए टल गए।

सहायता की सधि की व्यवस्था मे ही कुछ ऐसी अतर्हित बुराइया थीं, जिनका इस प्रकार की सधि मे होना स्वाभाविक है। इस व्यवस्था मे भारतीय राजाओं को अपने राज्य के भीतर तथा बाहर के दुश्मनो से अपनी रक्षा के लिए अग्रेजों का भरोसा रहा करता

---

३ एचिसन, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द २, पृ० १७६-७७

था। परिणामस्वरूप उनमे परिश्रम करने तथा साहसपूर्वक कोई काम करने का उत्साह नहीं रह गया। उनमे आलस्य आ गया और उनका जीवन विलासमय हो गया। उनकी प्रशंसा ही करनी पडे तो अधिक से अधिक यही कहा जा सकता था कि अपने पवित्र उद्देश्यो के वावजूद वे सामर्थ्यहीन वन गये थे। वैसे, वे स्वार्थी और विलासी हो गये थे और ऐसे-ऐसे कुकर्म किया करते थे जिनका लोगो के नैतिक जीवन पर बुरा प्रभाव पडता था। ब्रिटिश रेजिडेंट ही एक ऐसा व्यक्ति था जिसे वे नाराज नही करते थे और रेजिडेंट भी उनकी गतिविधियो मे तव तक हस्तक्षेप नहीं करता था जव तक उसके लिए ऐसा करना आवश्यक न हो जाए। अवध के जितने भी वादशाह हुए वे अपनी जिम्मेवारियो को अपने अयोग्य उत्तराधिकारियो को सौंपते गये। वे कम्पनी के अधिकारियो के विरोध पर भी ध्यान नहीं देते थे। यहा तक कि लार्ड आक्लैंड जैसे नरम स्वाभाव के गवर्नर-जनरल ने भी वादशाह को उसके कृपापात्रो से छुटकारा दिलाने की जरूरत महसूस की।

वाजिद अली शाह ने भी यही किया जो उसके पहले के नवाबो ने किया था। कविता और संगीत मे उसकी थोडी-बहुत रुचि थी। उसने कविता मे अपने खानदान का इतिहास लिखना भी शुरू किया था।[४] अच्छा होता यदि वह सिर्फ शायरों और साहित्यकारो से ही सम्बन्ध रखता। लेकिन उसके पिता ने उसके नीचे घराने के संगीतज्ञो से मिलने पर भी कोई रोक-टोक नहीं रखी। फल यह हुआ कि वह साहित्यिको की अपेक्षा गवैयो तथा नर्तकियो को अधिक महत्व देने लगा। उसका वजीर भी उससे सप्ताह या पखवाडे मे सिर्फ एक वार कुछ क्षणो के लिए ही मिल सकता था और वह भी किले मे नही, वल्कि उसके कृपापात्र एक ढोलची के घर पर। उसके इन कुख्यात कृपापात्रो की ऐसी तूती वोलती थी कि वे जिसे जिस पद पर भी चाहते विठा सकते थे। स्लीमैन ने १८४९ मे लिखा था कि "वस्तुत: अवध मे कोई सरकार नही रह गई है। गवैयो और जनखों को छोड नवाव और किसी से नही मिलता। प्रशासन की कोई परवाह नही करता और यह जानने की कोशिश भी नहीं करता कि उसकी सल्तनत में क्या कुछ हो रहा है।"[५] उसने यह लिखा कि जव तक राज्य मे नवाव के नीचे घराने के कृपापात्रो का वोलवाला रहेगा, तव तक वजीरो के वदल देने से कोई लाभ नही होगा। उसने यह सुझाव दिया कि प्रशासन का भार एक वोर्ड को सौंप दिया जाए। नवाव को मजवूर किया जाए कि वह अपने अधिकार विधिवत् वोर्ड को दे दे, और नहीं तो वह अपने उत्तराधिकारी को गद्दी पर विठा दे। अगर नवाव का उत्तराधिकारी गद्दी पर विठाया जाए, तो वोर्ड संरक्षक की हैसियत से प्रशासन की देखभाल करे। लेकिन इतना कड़ा कदम उठाने के प्रश्न पर भारत सरकार स्वभावत असमंजस में पड गई। उसने नवाव को चेतावनी देने और समझाने-बुझाने की अपनी पुरानी नीति ही जारी रखी। नवाव ने भी इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। उसका रवैया पहले जैसा ही रहा। उसे यह पता नहीं था कि १८३७ की संधि रद्द हो

४ स्लीमैन, ए जर्नी थ्रू दि किंगडम आफ अवध, जिल्द १, पृ० ७३
५ वही, जिल्द १, पृ० ६१

चुकी है। उसको शायद यह सतोष था कि बुरी से बुरी नौबत आने पर भी अधिक से अधिक यही होगा कि उसके हाथ से शासक का अधिकार छीन लिया जाएगा, वह अधिकार जिसका अपने हाथ मे रहने पर भी वह कभी उपयोग नहीं करता था। उसने शायद यह समझ रखा था कि शासन का अधिकार छीन लिये जाने पर भी राज्य की आमदनी उसे मिलती रहेगी।

१८५४ मे स्लीमैन की जगह ऊटरम रेजिडेंट बना। उसके आने पर अवध की स्थिति "अगर ज्यादा बुरी नहीं थी तो कम से कम वैसी ही थी जैसी स्लीमैन ने समय-समय मे थी।"[६] नवाब के "दिन और रातें हरम मे बीतती हैं। ऐसा लगता है कि वह विलासिता, फजूलखर्ची तथा नीच कर्मों के लिए ही जीता है।" १८०१ की सधि मे राज्य पर अधिकार कर लेने की व्यवस्था नहीं थी। उसमे सिर्फ देशी अधिकारियों के माध्यम से प्रशासन मे सुधार करने की व्यवस्था थी। १८३७ की जो सधि रद्द हो चुकी थी, उसमे सरकार बदलने की व्यवस्था तो थी, लेकिन राज्य पर अधिकार कर लेने की व्यवस्था नहीं थी। डलहौजी राज्य पर कब्जा कर लेने और सल्तनत को समाप्त कर देने के पक्ष मे नहीं था। वह चाहता था कि यदि सभव हो तो एक ऐसी नई सधि की जाए जिससे नवाब ऐच्छिक रूप से अवध का प्रशासन हमेशा के लिए कम्पनी के जिम्मे सौंप दे और बदले मे नवाब, उसके उत्तराधिकारियो तथा शाही खानदान के सदस्यो को सहायता स्वरूप निश्चित रकम दी जाए। गवर्नर-जनरल की परिषद् के सदस्यो का मत था कि सभी सधियो की व्यवस्थाओ के बावजूद अवध की ५० लाख प्रजा के हित की दृष्टि से कम्पनी को अवध राज्य के आन्तरिक मामलो मे हस्तक्षेप करने का कानूनी और नैतिक अधिकार है। उनका कहना था कि एक व्यक्ति की सुविधाओ के लिए ५० लाख व्यक्तियों की सुख-सुविधा की उपेक्षा नहीं की जा सकती। परिषद् के एक सदस्य ने यह दलील पेश की कि पहले दिल्ली के सर्वशक्तिसम्पन्न बादशाह के जो भी अधिकार थे वे ईस्ट इण्डिया कम्पनी को उत्तराधिकार के रूप मे मिले हैं। इसलिए कम्पनी को समस्त अधीनस्थ राज्यों पर पूरा अधिकार प्राप्त है। लेकिन ब्रिटेन के अधिकारी इस प्रश्न पर तत्काल कोई निर्णय नहीं कर सके और उनकी स्वीकृति जनवरी १८५६ से पहले नहीं मिल सकी। इस बीच डलहौजी निष्क्रिय नहीं रहा। उसने अपनी योजना बना ली थी और उसके लिए सारी तैयारिया भी वह कर चुका था। उसकी योजना थी कि नवाब यदि नई सधि पर हस्ताक्षर करने से इन्कार करे तो राज्य पर कब्जा कर लिया जाए। यह कठिन काम ऊटरम को करना था। उम्मीद यही थी कि नवाब अपनी इच्छा से सधि पर दस्तखत कर एक प्रकार से पूर्णत गद्दी से उतार दिया जाना नहीं चाहेगा। यदि वह लडाई लडता तब तो रेजिडेंट के लिए उसकी सेना को हराकर जबर्दस्ती उसके राज्य पर कब्जा कर लेना आसान था। लेकिन नवाब ने अपने को रेजिडेंट की दया के भरोसे छोड दिया। उसने पूरी अधीनता स्वीकार कर ली।

---

६ के, ए हिस्ट्री आफ सिपाय वार, जिल्द १, पृ० १४१, ली-वार्नर, उद्धृत ग्रथ, जिल्द २, पृ० ३१९

इसके परिणामस्वरूप उसने रेजिडेंट को अपनी पगडी देकर उससे यह प्रार्थना की कि वह गवर्नर-जनरल से उसके पक्ष मे सिफारिश करे, उसने रेजिडेंट को याद दिलाया कि उसके पूर्वज कम्पनी सरकार के प्रति हमेशा वफादार रहे है। यह कहकर उसने सधि पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया। अगर नवाब और उसके सलाहकारो ने यह समझा था कि भारत सरकार अब भी उनके साथ वही ढीली-ढाली नीति वरतेगी, जैसी वह अब तक अवध के नवाबो के प्रति वरत रही थी, तो उनका निराश होना भी स्वाभाविक ही था। वाजिद अली शाह ने अतिम चेतावनी नामजूर कर दी। उसका नतीजा यह हुआ कि अवध ब्रिटिश भारत का एक सूबा बन गया।

नये सूबे की सरकार का चीफ कमिश्नर सर जेम्स ऊटरम को बनाया गया। साथ-साथ आवश्यक फौज के साथ सूबे के डिवीजनों का प्रशासन सभालने के लिए तीन असैनिक अधिकारी भेजे गये। ब्रिटिश सरकार को आशा थी कि अवध के लोग बहुत लम्बे समय से अत्याचार सहते आये थे और वे अग्रेजो को अपना मित्र समझेंगे। लेकिन यह नही सोचा गया कि अग्रेजो को अपना मित्र मानने से पहले वे उनकी सदाशयता और उदारता के ठोस सबूत की भी अपेक्षा करेंगे। इस पर किसी ने ध्यान नही दिया कि जिस उत्पीडन और भ्रष्ट शासन की चर्चा ब्रिटिश रेजिडेंटो ने की थी, उसके बावजूद अवध के बहुत ही कम किसान आस-पास के उन जिलो मे बसने गये जिन पर अंग्रेजी हुकूमत थी। वस्तुत: किसी देश की प्रशासन-प्रणाली मे सुधार करने के लिए वर्षो तक धैर्यपूर्वक परिश्रम करना पडता है। पलक मारते ही स्वर्ण-युग का उदय नहीं होता।

कोई भी देश क्यो न हो, विदेशी शासन से उसकी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था को गहरा धक्का लगता है। अवध पर ब्रिटिश हुकूमत कायम हो जाने के बाद वहा के अमीर-उमरा अब सरकार मे ऊचे पदो को पाने की आशा नही कर सकते थे। ये पद अंग्रेजो के लिए सुरक्षित हो गये। नवाब की सेना के ६० हजार सैनिको की तत्काल छटनी कर दी गई। उनमे से बहुत कम सैनिको को ही सशस्त्र पुलिस मे जगह मिल सकी। इस राजनीतिक परिवर्तन से अवध के बहुत सारे वर्गो मे चिन्ता और अशाति की लहर दौड गई। पहले राज्य से बहुत-से कारीगरो और शिल्पियो की परवरिश होती थी। नये शासको की रुचि और संस्कृति भिन्न थी। इसलिए इन कारीगरो और शिल्पियो की जीविका का अब कोई सहारा नहीं रह गया। यदि सर जेम्स ऊटरम चीफ कमिश्नर बना रहता या उसकी जगह सर हेनरी लारेंस जैसा कोई कुशल राजनीतिज्ञ होता, तो जिन लोगो को नई व्यवस्था से हानि पहुची थी, उनके हित के लिए समय पर कोई उपाय करता। लेकिन चीफ कमिश्नर बनने के कुछ ही समय बाद ऊटरम छुट्टी पर चला गया और उसकी जगह पर कोवरले जैकमन की नियुक्ति हुई। नये चीफ कमिश्नर को असैनिक सेवा का लम्बा अनुभव था और वह कम्पनी के मातहत किसी पुराने सूबे के लिए उपयुक्त व्यक्ति सिद्ध हो सकता था। लेकिन उसमे अवध जैसे नये सूबे के लिए अपेक्षित सहानुभूति और सूझ-बूझ का अभाव था। जिस छत्तर मजिल मे पहले सिर्फ शाही परिवार के सदस्य रहा करते थे उसमे वह स्वयं रहने लगा। बाद मे उसकी इस विवेकहीनता के लिए निन्दा की गई और उसे छत्तर मंजिल से हटना पडा। लेकिन तब तक जनता का

क्रोध उभड चुका था। कदम रसूल के भवन का मुसलमानो के लिए विशेष धार्मिक महत्व था। इसमे एक ऐसा पत्थर रखा था जिस पर पैगम्बर के पाव के निशान थे। नई सरकार ने इस भवन को हथियार रखने का भाडार बना दिया। नवाब से वृत्ति पाने वालो मे बहुत-से लोग शाही परिवार के थे। उन्हें तथा अन्य व्यक्तियो को एक वर्ष से भी अधिक समय तक वृत्ति नहीं मिली। जब सर हेनरी लारेंस लखनऊ आया, तब कहीं उसने इन लोगो का कष्ट दूर करने का प्रबन्ध किया। अमूल्य समय बीतता गया, लेकिन अवध के लोगों के हृदय मे स्वाभाविक रूप से जो भय घर चुका था, उसे दूर करने के लिए कुछ नहीं किया गया। उल्टे, राजस्व-विभाग के अधिकारियो के सुधारो से चारो ओर असन्तोष फैल गया।

लोगो ने निश्चित तौर पर यह धारणा बना ली थी कि नई व्यवस्था मे किसानो के हितो की रक्षा करने के लिए राजस्व के सम्बन्ध मे नई व्यवस्था की जाएगी। नवाबो के जमाने मे किसानो के साथ अच्छा वर्त्ताव नहीं किया जाता था। किसान जमींदारो और राजस्व अधिकारियो की मर्जी पर छोड दिए गए थे और उन्हे कई प्रकार के अनुचित कर और लगान देने पडते थे। यद्यपि नई व्यवस्था मे कितने ही कर उठा दिए गए लेकिन उनकी जगह उनसे भी अधिक अनुचित कर लगा दिए गए। इससे साधारण जनता को कोई भी लाभ नहीं हुआ। रीज़ के कथनानुसार, "हम लोग अपनी आमदनी बढाने के लिए इतने आतुर थे कि लोगो को सुखी बनाने की थोडी भी परवाह नहीं की गई। टिकटो, अर्जियों, भोजन, मकान, खाद्य पदार्थों और नौकाओ पर कर लगा दिए गए। अफीम, अनाज और अन्य सामान तथा नमक और स्पिरिट सप्लाई करने के लिए ठेकेदार नियुक्त कर दिए गए। वस्तुत अवध मे वाहर से आने वाले सभी प्रकार के सामान के लिए ठेके दे दिए गए।" "विशेषत अफीम पर लगाए गए कर से पूरे अवध मे बहुत असन्तोष फैला। लखनऊ शहर मे यह असन्तोष और अधिक था। लखनऊ मे चीन की तरह लोग बहुत अफीम खाते थे। और एकाएक इस पर कर लग जाने से गरीब लोगों पर बहुत बुरा असर पडा। बहुत-से लोग जो मूल्य मे वृद्धि हो जाने से अफीम नहीं खरीद सकते थे उन्होंने निराश होकर सचमुच अपना गला काट लिया।"[७] जनरल मैक्लौड इनस ने लार्ड डलहौजी के घोषणा-पत्र मे दिए गए आश्वासनो को पूरा न कर सकने और इस सम्बन्ध मे विश्वासघात करने के लिए अवध की सरकार की प्रत्यक्ष रूप से आलोचना की।[८]

नई सरकार पुलिस और न्याय-विभाग मे भी अविलम्ब सुधार नहीं कर सकी।

---

७ रीज, ए पर्सनल नरेटिव आफ दी सीज आफ लखनऊ, पृ० ३४-३५

८ इनस, लखनऊ एड अवध इन दि म्यूटिनी, पृ० ८। घोषणा-पत्र का अन्तिम भाग इस प्रकार है. "अवध के जो आमिल अथवा सरकारी अधिकारी, जागीरदार, जमींदार या वहा के जो अन्य निवासी ब्रिटिश सत्ता को अविलम्ब और शान्तिपूर्वक मान लेंगे, उन्हे सरक्षण दिया जाएगा, उनके प्रति उदारता बरती जाएगी और उन्हें प्रसन्न रखा जाएगा।

जिलो का उचित और निश्चित आधार पर राजस्व नियत किया जाएगा। अवध के

नई सरकार ने पुराने अधिकारियो को शीघ्र नही हटाया और उनके पुराने तौर-तरीके भी, नहीं बदले। पुराने शासन के जमाने की तरह घूसखोरी और भ्रष्टाचार चलता रहा, लेकिन इनके लिए अब नई सरकार को दोष दिया जाने लगा। राजस्व सम्बन्धी नए बन्दोबस्त से भी लोगो को सन्तोष नहीं हुआ। बन्दोबस्त अधिकारियो ने यह मानकर काम करना शुरू किया कि जमीन का असल मालिक किसान है और सारे ताल्लुकेदार और जमींदार जालसाजी से उनके अधिकारो का हनन करते हैं। वे यह नहीं समझ सके कि बहुत-से ताल्लुकेदार सामन्तशाही व्यवस्था मे न केवल किसानो के मालिक बल्कि उनकी जातियो के सरगना भी थे। किसानो और मालिको के बीच ऐसी जातिगत एकता थी और किसानो मे ताल्लुकेदारो के प्रति अधीनता का भाव इतना प्रबल था कि उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। बहुत-से ताल्लुकेदार और जागीरदार अपनी जागीरें तलवार के बल पर तो चलाते ही थे, उनको अपनी जाति का समर्थन भी प्राप्त था। उनके पास अपनी जागीरो के लिए कागजी सबूत नहीं थे। इसलिए उनको बहुत-से ऐसे गांवो से हाथ धोना पडा जिन पर बहुत समय से उनके खानदान का कब्जा था। वे लोग डकैतियां भी करते थे। इसलिए उनके मिट्टी के किले तोड़ दिए गए और उनके व्यक्तिगत सशस्त्र सिपाही भी हटा दिए गए। इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि कोई भी सरकार सामन्ती मान्यताओ के आधार पर काम नहीं कर सकती। कानूनी अमन-चैन की दृष्टि से ताल्लुकेदारों, जागीरदारो और उनके सशस्त्र सेवकों को निर्दयतापूर्वक कुचल देना भी आवश्यक था। ऐसा करने पर वे नई सरकार से असन्तुष्ट लोगो के दल मे शामिल हो गए। कुछ ताल्लुकेदारो और जगीरदारो की शिकायतें उचित भी थी, क्योंकि उनका खयाल था कि उनकी खानदानी जायदाद अन्यायपूर्ण ढग से उनसे छीन ली गई है। किसानो ने नई सरकार को पसन्द नहीं किया और अपने मालिको के प्रति सहानुभूति प्रकट की। गब्बिन्स ने स्वीकार किया है कि "कुछ ताल्लुकेदारो के साथ अनुचित बरताव हुआ लेकिन वैसे ताल्लुकेदार सिर्फ फैजाबाद डिवीजन मे थे।"[९] पहले ही कहा जा चुका है कि सीतापुर का कमिश्नर, क्रिश्चियन इस पक्ष मे नहीं था कि जागीरदारो और ताल्लुकेदारो को हटा कर किसानो को जमीन का मालिक बनाया जाए। उसकी राय की कद्र नहीं की गई थी लेकिन अब भी उसका महत्व था। उसने विश्वासपूर्वक अपना मत प्रकट किया था कि "साधारणत. लोग देशी राज की अपेक्षा बुरी से बुरी ब्रिटिश सरकार को पसन्द करते हैं।" विद्रोह ने सिद्ध कर दिया कि देशी राज उतना अप्रिय नहीं था।

अवध पर फरवरी १८५६ मे कब्जा किया गया था, लेकिन सर हेनरी लारेंस, जिसने असन्तुष्ट लोगो की उचित शिकायतों पर अविलम्ब ध्यान दिया, १८५७ मे चीफ कमिश्नर

क्षेत्रों में धीरे-धीरे सुधार करना जारी रखा जाएगा।

निष्पक्ष रूप से न्याय किया जाएगा।

जान और माल की रक्षा की जाएगी, और प्रत्येक व्यक्ति बिना किसी दबाव के अपने उचित अधिकारों का उपभोग कर सकेगा।" पृ० ३१६

९. गब्बिन्स, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ७५

बना। सर हेनरी के बारे मे लार्ड डलहौजी की राय अच्छी नहीं थी। लेकिन यह सबको मालूम था कि ताल्लुकेदारो और जागीरदारो के प्रति, जिनका अंग्रेजो की विजय से सब कुछ खोया जा चुका था, उसके हृदय मे सहानुभूति थी। आते ही सर हेनरी उनके दु ख दूर करने मे लग गया। वृत्ति पाने वालो को उनकी बाकी वृत्तिया दी गई, ताल्लुकेदारो को उनके पद के अनुरूप सम्मान मिलने लगा। अब पेन्शन और ग्रेचुइटी की अदायगी रोकी नहीं जाती थी। लेकिन सर हेनरी के आते-आते समय हाथ से निकल चुका था। चर्बी का उपयोग करने के प्रश्न पर सिपाहियो मे उत्तेजना फैल चुकी थी और थोडी-सी गलती से भी आग भडक उठने की सम्भावना थी। लेकिन कुछ ऐसे भी लापरवाह थे जो समय के साथ चलना नहीं चाहते थे। अप्रैल के आरम्भ मे कालपी पैदल सेना की ४८वीं रेजीमेट के एक शल्य-चिकित्सक डा० वेल्स ने ऐसा अविवेकपूर्ण काम कर दिया जो भारतीय रीति-रिवाज की दृष्टि से बहुत अनुचित था। वह एक दवाखाने मे गया हुआ था जहा उसकी तबीयत खराब हो गई। उसने "अस्पताल से एक वातनाशक दवा की बोतल लेकर मुह से लगा ली। अब कोई भी हिन्दू इस जूठी दवा का इस्तेमाल नहीं कर सकता था।"[१०] परिणाम यह हुआ कि अस्पताल के रोगियो ने वहा से कोई भी दवा लेना नामजूर कर दिया। इनके लिए डा० वेल्स पर डाट पडी और वह दवा की बोतल देशी अधिकारियो के सामने फोड दी गई। लेकिन सिपाही इस घटना को भूल जाने के लिए तैयार नहीं थे। ऐसा करके उनके जातिगत नियमों मे हस्तक्षेप करने की कोशिश की गई थी और उनका यह सन्देह सुगमता से हटाया नहीं जा सकता था। डाक्टर का बगला जला दिया गया और वह बडी मुश्किल से अपनी जान बचा सका। १८ अप्रैल को जब चीफ कमिश्नर अपनी कार मे कहीं जा रहा था किसी ने उस पर कीचड फेंक दिया। हो सकता है कीचड फेंकने वाला सिपाही न रहा हो। लेकिन प्रशासन के प्रधान अधिकारी का इस प्रकार अपमान करना इस बात का सबूत था कि लोगो मे गहरा असन्तोष फैल चुका था।[११] "इसके बाद यह निश्चय हुआ कि देशी सेना की ४८वीं रेजीमेट लखनऊ से हटा दी जाय। लेकिन चीफ कमिश्नर का पूर्ण विश्वास था कि "यह असन्तोष" कारतूसो के कारण या किसी दूसरी खास वजह से नहीं बल्कि "हाल मे सरकार द्वारा किए गए ऐसे कई कामों के कारण है जिनसे असन्तोष फैलाने वालों ने कुशलतापूर्वक लाभ उठाया है।" चीफ कमिश्नर ने यह भी कहा कि रेजीमेट के एक पुराने अधिकारी का यह मत था कि "अगर सिपाहियो की शिकायतें शीघ्र दूर न की गई तो वे स्वय उन्हें दूर कर लेंगे।"[१२] २ मई को ७वीं अवध रेजीमेट के सिपाहियो ने "अपने अधिकारियों और बाद मे ब्रिगेडियर के आदेश के बावजूद दात से कारतूस काटने से इन्कार कर दिया।" किसी ने यह नहीं बताया कि जब दात से कारतूस काटने की पद्धति अधिकाधिक तौर पर छोड दी गई थी, तब सिपाहियो को ऐसा करने के लिए क्यों कहा गया। शायद किसी अत्यन्त उत्साही

१० गब्बिन्स, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ३-४

११ फारेस्ट, ए हिस्ट्री आफ दि इण्डियन म्यूटिनी, जिल्द १, पृ० १७५

१२ वही, जिल्द १, पृ० १७७

अधिकारी ने जान-बूझ कर गलती की और अनुशासन के नाम पर ब्रिगेडियर ने भी उसका समर्थन किया। अनुशासन भग करने वाले अवध के इन सिपाहियो के विरुद्ध कार्रवाई की गई और इसमे देशी रेजीमेटो ने यूरोपियन फौज का साथ दिया तथा कथित विद्रोहियो ने प्रतिरोध नहीं किया। वे "पूर्णत शान्त रहे"। बहुत-से सिपाहियो ने जब सामने तनी बन्दूकें देखीं, तो वे भाग खड़े हुए। उनका पीछा किया गया और कुछ सिपाही पकड़ कर वापस लखनऊ लाए गए। हथियार छीन कर उन्हे अपनी-अपनी बैरको मे भेज दिया गया। बाद मे यह रेजीमेट भंग कर दी गई और कुछ समय के लिए संकट टल गया।

सर हेनरी के लिए सावधान रहना आवश्यक था। उसे सन्देह था कि भविष्य मे कोई सकट उपस्थित हो सकता है। इसलिए वह ऐसा उपाय करने लगा जिससे कोई खतरा होने पर शहर तथा फौजी छावनी के गोरो की रक्षा की जा सके। लेकिन वह भय और सन्देह का प्रदर्शन करके आसन्न सकट को और नजदीक लाना भी नहीं चाहता था। उसने सोचा कि सम्भव हो तो सेना के विश्वासपात्र लोगो को अपने पक्ष मे सगठित किया जाए, लेकिन ऐसा कोई काम न किया जाए जिससे गर्म दिमाग वालो की उत्तेजना और बढे। ७वीं अवध सेना के अनियमित सैनिकों ने ४८वी देशी पैदल सेना को एक पत्र भेजा था। ४८वीं रेजीमेट पर सन्देह किया जाने लगा था। लेकिन जिस सिपाही और दो देशी अधिकारियो के हाथ वह पत्र पड गया था, उन्होने बडी ईमानदारी से उसे अपने वरिष्ठ अधिकारियो को दे दिया। १३वीं देशी पैदल सेना के एक सिपाही ने ऐसे तीन व्यक्तियो को कैप्टन जर्मन के हवाले किया जो उसके पास शहर से विद्रोह करने का प्रस्ताव लेकर आए थे। लारेंस ने इन सभी वफादार लोगो को एक आम दरबार मे पुरस्कृत करने का निश्चय किया। यह दरबार १२ मई को लगा। इसमे लखनऊ के प्रमुख सैनिक तथा असैनिक अधिकारी, फौजी छावनी के कमीशनप्राप्त सभी देशी अधिकारी और दो गैर-कमीशनप्राप्त अधिकारी उपस्थित थे। इसमे प्रत्येक रेजीमेट से छ-छ सिपाही तैनात किए गए। जिन सिपाहियों और अधिकारियो ने अपनी सच्ची वफादारी दिखाई थी, उन्हें सम्मान मे पोशाकें और थैलियां देने से पूर्व सर हेनरी ने उपस्थित समुदाय के सामने भाषण दिया। उसने बताया कि ब्रिटिश सरकार भारतीय सैनिकों पर किस प्रकार अपनी कृपा-दृष्टि रखती आई है और किस प्रकार प्रजा से बिना भेद-भाव के अच्छा बरताव करती रही है। इसके विपरीत उसने औरंगजेब और रणजीत सिंह का उल्लेख किया जो क्रमश. हिन्दुओं और मुसलमानो से कड़ी तरह से पेश आए थे।[13] सर हेनरी ने कहा कि सौ वर्षो के इतिहास से सैनिको को यह समझ लेना चाहिए

---

१३ केव-ब्राउन, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द १, पृ० ३?-३७। इस पुस्तक मे सर हेनरी लारेंस का पूरा भाषण 'सेन्ट्रल स्टार' के १३ मई के अंक से उद्धृत किया गया है। जिन सैनिकों को पुरस्कार मिला, उनके नाम है सूबेदार सेवक तिवारी, हवलदार हीरालाल दुबे, सिपाही रामनाथ दुबे और सिपाही हुसैन बख्श।

सर हेनरी ने कहा, "पहले आलमगीर और बाद में हैदर अली ने हजारों हिन्दुओं को

कि आज जो उन्हें यह कह कर वरगलाना चाहते हैं कि सरकार सैनिको की जाति नष्ट करना चाहती है, उनकी बात कितनी झूठी है।"[१४] उसने बगाल सेना की शानदार परम्परा का उल्लेख किया और सैनिको से उस परम्परा पर दाग न लगाने की अपील की। इस प्रकार उसने सैनिकों की वफादारी और प्रतिष्ठा तथा कृतज्ञता और सौहार्द्र की भावनाओ को उभारा, जिनके वल पर अब तक हिन्दू और मुसलमान सिपाहियो और उनके ईसाई मालिकों के बीच अच्छा सम्बन्ध कायम रहा था। साथ ही, उसने इग्लैंड की शक्तिशालिता और उसके साधनों का भी उल्लेख किया।

ऐसा नहीं कि सर हेनरी के भाषण का सिपाहियों पर प्रभाव नहीं पडा। प्रभाव पडा, लेकिन सब पर समान रूप से नहीं। कुछ सैनिको ने इसकी सराहना की और कुछ ने कहा कि भाषण मे भय का आभास मिलता है। यह विचित्र बात है कि सर हेनरी को अपनी दलीलों की निस्सारता का ज्ञान नहीं हुआ। सिपाहियो मे व्याप्त निराशा की भावना का पता उससे अधिक और किसी को नहीं था। कुछ ही दिन पहले स्वय उसी ने गवर्नर-जनरल को लिखा था, "सिपाही समझते हैं कि उनके बिना हमारा काम नहीं चल सकता। फिर भी पचास, साठ या सत्तर वर्ष की उम्र के बाद किसी सिपाही को जो अधिक से अधिक सालाना पेन्शन मिलती है, वह लगभग सौ पौंड से अधिक नहीं होती। उनके वाद उनके बेटों को भी अच्छी नौकरी मिलने का कोई रास्ता नहीं रहता। सचमुच किसी विदेशी सिपाही को लम्बी सेवा और विशेष प्रकार की वफादारी के लिए यह पर्याप्त प्रोत्साहन नहीं है।" उसका मत था कि हमारा यह आशा करना गलत है कि "इतनी बडी फौज के उत्साही और महत्वाकाक्षी सैनिक पुरस्कार की हमारी इस अन्तिम सीमा को पर्याप्त समझेंगे। हमारा यह सोचना भी गलत है कि वे हमारे सर्वाधिकार, वेतन तथा अन्य सभी सुविधाओं के अनुचित दावे (हमारे अयोग्य होने पर भी) पसन्द करेंगे।"[१५] निस्सन्देह जब सर हेनरी ने भारत के हिन्दू और मुसलमान शासकों की धार्मिक असहनशीलता की चर्चा की, तब भी दरबार मे भाग लेने वाले कुछ सैनिको के मन में उपरोक्त बातें उठी थीं। कुछ भारतीय शासको ने अपना धर्म मानने वालो को छोड कर दूसरों की धार्मिक स्वतन्त्रता को अवश्य सहन नहीं किया, लेकिन साथ ही उन्होने उनकी योग्यता का सम्मान भी किया। मुसलमान शासको की सेना मे हिन्दुओ की उच्च पदों पर

मुसलमान बनाया, उनके मन्दिरों को तोड़ा और अपवित्र किया और उनके घरों की मूर्तियों का निर्दयतापूर्वक नाश किया। अब हमारे समय की बात लीजिए। यहा उपस्थित बहुत-से व्यक्ति यह अच्छी तरह जानते हैं कि रणजीत सिंह ने मुसलमानों को नमाज के लिए मुल्लाओं को कभी बुलाने नहीं दिया, लाहौर की मस्जिदों की मीनारों पर से मुअज्जिन को कभी अज़ा नहीं देने दी। ये मीनारे आज भी अपने महान सस्थापकों की याद दिलाती हैं। पिछले से पिछले वर्ष तक कोई हिन्दू लखनऊ मे मन्दिर बनाने की हिम्मत नहीं कर सकता था। ये सारी बातें अब बदल गई हैं।" पृ० ३३

१४ गब्बिन्स, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १४

१५ फारेस्ट, ए हिस्ट्री आफ दि इण्डियन म्यूटिनी, जिल्द १, पृ० १७८

तरक्की हुई। लाहौर के सिख शासको ने विदेशियो को भी ऊंचा पद दिया। लाहौर के दरबार मे फकीर बन्धुओ पर जितना विश्वास किया गया और उनकी जितनी धाक थी, ईसाई सरकार के अधीन काम करने वाला कोई भारतीय उसकी कल्पना भी नही कर सकता था। अवध के अपदस्थ शासको ने भी हिन्दुओ को ऊचे पद दिए थे। इसलिए लारेंस के उपदेशो से किसी का भी सन्देह दूर नहीं हुआ। १२ मई को पुरस्कार पाने वाले कुछ राजभक्त बाद मे विद्रोहियो मे शामिल हो गए। लेकिन, ऐसा भी नहीं था कि लारेंस ने राजभक्तो को अपने पक्ष मे संगठित करने का जो प्रयत्न किया, उसमे वह बिलकुल सफल नहीं हुआ हो। लखनऊ को विद्रोहियों से बचाने मे भारतीय सैनिको ने यूरोपियन सैनिको की तरह ही महत्वपूर्ण योगदान किया। लारेंस अब भी भारतीय सैनिको पर विश्वास करता रहा। घटनाओ ने यह सिद्ध भी कर दिया कि उसका विश्वास निराधार नहीं था।

मेरठ मे जो कुछ हुआ उसकी खबर १४ मई को और दिल्ली की खबर उसके दूसरे दिन लखनऊ पहुची। सर हेनरी ने गर्वनर-जनरल से अवध के लिए पूर्ण अधिकार मांग लिए। उसे ब्रिगेडियर का ओहदा दे दिया गया, जिससे वह असैनिक प्रशासन के साथ-साथ सेना का भी प्रधान बन गया। उस समय सेना जहां-तहां छितराई हुई थी। पैदल सेना की तीन रेजीमेंटें लखनऊ से कुछ मील की दूरी पर मुरिआंव छावनी मे और घुडसवार सेना मुदकीपुर में थी। लेकिन सर हेनरी समझता था कि थोड़ी-सी यूरोपियन फौज और कुछ राजभक्त सिपाहियो की सहायता से वह इन सभी स्थानो की रक्षा नहीं कर सकता। वह अभी तक लखनऊ छावनी मे ही रहा करता था। उसने शहर के दो केन्द्रो पर रक्षा की तैयारी करने का निश्चय किया—एक तो विशाल और सुरक्षित महल मच्छी भवन मे और दूसरे रेजिडेंसी मे। इन दोनो जगहो में रक्षा की व्यवस्था मजबूत की गई और साज-सामान का प्रबन्ध किया गया। स्त्रियो और बच्चो को फौजी छावनी से दूर हटा देने का आदेश दिया गया। सर हेनरी ने रेजिडेंसी को अन्तिम मोर्चा बनाया था। बाद मे लार्ड क्लाइड तथा सर हेनरी हैवलाक ने इस निश्चय की आलोचना की। हैवलाक का मत था कि सर हेनरी को लखनऊ को भाग्य के भरोसे छोड कर सेना के साथ कानपुर चला जाना चाहिए था। लेकिन बहुत बडी सख्या में स्त्रियो और बच्चो को साथ लेकर लखनऊ छोड़ना मुश्किल होता। लार्ड क्लाइड की सेना बहुत मजबूत थी। लेकिन उसको भी स्त्रियो और बच्चो के साथ रात के अंधेरे मे लखनऊ से भागने की व्यवस्था करनी पड़ी। राजनीतिक दृष्टि से अवध की राजधानी को छोडकर भाग जाना बडी भारी गलती होती। इससे यूरोपियन सेना से लोगों का विश्वास उठ जाता और विद्रोहियो का सम्मान बहुत बढ जाता। ऐसी स्थिति मे भी सर हेनरी ने भारतीयो से सहायता पाने की आशा नहीं छोडी थी और फौज मे नई भर्ती करने की सोच रहा था। वह कभी नहीं चाहता था कि विद्रोहियों को यह पता लगे कि उसके आत्म-विश्वास मे कोई कमी हो रही है।

रेजिडेंसी की एक चौकी जनरल मैक्लौड इनस के अधीन थी। उसका विचार था कि जिस स्थान पर यह चौकी थी, वह चौकी लगाने के उद्देश्य को पूरा करने के लिए बहुत उपयुक्त था। "उसमे एक ही कमी थी। वह यह कि रेजिडेंसी के चारो ओर जो खाई थी उसके मिट्टी वाले भाग मे सुधार की गुंजायश थी। नहीं तो चौकी के लिए रेजिडेंसी

और सभी दृष्टियो से उपयुक्त थी। उसमे काफी जगह थी, और हवा और पानी का अच्छा प्रबन्ध था। रहने के लिए मकान भी काफी थे। रेजिडेंसी के सामने नदी थी और पास ही बहुत बडा मैदान था। इसके सामने कहीं भी ऐसी जगह नहीं थी जहा से गोले चलाये जा सकें। आसपास के मकानो के ऊपरी भाग को तोडा जा सकता था, जिससे वहा से रेजिडेंसी पर कोई हमला न किया जा सके। इसकी बनावट कुछ इस तरह की थी कि यहा से बहुत सफलतापूर्वक अपनी रक्षा की जा सकती थी और गोले चलाए जा सकते थे। यह चौकी उन बीस चौकियो मे से एक थी जिनमे पहले से सम्पर्क रखा जा रहा था। सबसे बडी बात यह थी कि बाहरी सहायता की आवश्यकता होने पर वहा गोमती के उत्तर के अपेक्षाकृत खुले इलाके से आसानी से फौज पहुच सकती थी।"[१६] जनरल इनस ने लिखा है कि रेजिडेंसी के अलावा किसी दूसरी जगह चौकी लगाने का कभी कोई सुझाव नहीं रखा गया था।

सर हेनरी सिर्फ आत्म-रक्षा की ही तैयारी नहीं कर रहा था। वह जानता था कि भय से भय और विश्वास से विश्वास पैदा होता है। वह आपत्कालीन परिस्थिति के लिए तैयारी न करने की गलती तो नहीं कर सकता था। लेकिन वह यह भी नहीं चाहता था कि ढुल-मुल चित्त वालों को यह मालूम हो कि सर हेनरी थोडा-सा भी परेशान है। अपनी शक्ति का परिचय देने पर आसन्न सकट यदि समाप्त नहीं हो सकता था तो टल अवश्य सकता था। कानपुर से सैन्य सहायता की माग आ चुकी थी। वहा कैप्टन फ्लैचर हेज़ को अवध की थोडी फौज के साथ भेजा गया। वह कानपुर तक तो सकुशल पहुच गया। लेकिन उसने यह सोचा कि और आगे बढने पर सडक को दुश्मन के हाथ पडने से रोका जा सकता है। मैनपुरी के पास उसके सिपाहियों ने बगावत कर दी और वह मारा गया। उसका एक साथी कानपुर लौटा। उसे भी विद्रोहियों ने बन्दी बना लिया। मुसलमानों की आबादी वाले शहर मलीहाबाद मे कुछ गडबड होने की आशका थी। इसलिए कैप्टन वेस्टन के अधीन एक सैनिक दस्ता वहा भेजा गया। कैप्टन गाल के अधीन एक दस्ता कानपुर की ओर बढ़ा।

इधर मुरिआव में जब-तब विद्रोह होने की अफवाह उडा करती थी, इसलिए वहा की यूरोपियन फौज हमेशा सावधान रहा करती थी। अन्त मे ३० मई की रात के नौ बजे वहा के सिपाहियो ने यूरोपियन फौज पर सशस्त्र हमला कर दिया। इसमे कुछ लोगों की जान तो गई, लेकिन घमासान लडाई नहीं हुई। १३वीं और ७१वीं देशी पैदल सेना के राजभक्त सिपाहियों ने ३२वीं यूरोपियन रेजिमेंट का अविलम्ब साथ दिया। १३वीं देशी पैदल सेना का एक दस्ता छावनी मे सर हेनरी के मकान पर पहरा दिया करता था। शहर को जाने वाली सडक बन्द कर दी गई थी। इसलिए विद्रोही शहर की ओर नहीं बढ़ सकते थे। दूसरे दिन सुबह सिपाहियों पर उनकी बैरक के सामने हमला किया गया। लेकिन उन्होंने प्रतिरोध नहीं किया और वे तितर-बितर हो गए। अब सन्देह दूर हो चुका था। दोस्त और दुश्मन की पहचान हो गई। शहर का बलवा पुलिस की

---

१६ इनस, लखनऊ एण्ड अवध इन दि म्यूटिनी, पृ० ७७

सहायता से आसानी से दबा दिया गया जो स्थानीय कुछ रेजीमेंटो के साथ अब तक शान्त रहती आई थी।

बन्दियो का कोर्टमार्शल किया गया और उनमे से बहुतो को फासी दे दी गई। मच्छी भवन के सामने फासी का तख्ता लगाया गया। भविष्य मे विद्रोह करने वालो मे भय उत्पन्न करने के लिए वहा अठारह पौंड वाली एक तोप भी लगाई गई। यह ऐसा सकट था जिसमे कडी कार्रवाई करने की जरूरत थी। बगावत करने वाले जो सिपाही पकडे गए थे उन्हें कडे से कड़ा दण्ड भुगतना पडा। अन्य विद्रोही दिल्ली की ओर वढ गए।

अव प्रश्न यह था कि विद्रोही रेजीमेंटो के जिन सैनिको ने राजभक्ति दिखाई थी, उनके साथ कैसा सलूक किया जाए। कुछ सिपाहियो ने ३० मई की लडाई मे खुले आम भाग लिया था और हमेशा के लिए विद्रोही बन चुके थे। कुछ ऐसे थे जिन्होंने अपनी तैनाती की जगह पर डटे रह कर कर्तव्य-परायणता का परिचय दिया था। सूचनाओ के बल पर यह अनुमान लगाया जा रहा था कि कुछ दस्ते विद्रोहियो से सहानुभूति रखते हैं। देशी फौज की संख्या यूरोपियन फौज से कहीं अधिक थी। परिणामस्वरूप गोरी आबादी चिन्तित हो उठी थी। इसलिए गब्बिन्स ने यह विचार प्रकट किया कि देशी फौज के इन दस्तो से शक्ति नहीं, वल्कि कमजोरी वढती है। उसने इस वात पर वल दिया है कि सर हेनरी उसके विचार से सहमत होने को तैयार था, लेकिन कुछ लोगो ने सर हेनरी को फिलहाल कोई कार्रवाई न करने की सलाह दी। सर हेनरी कायर नही था। उसने पेन्शन-याफ्ता पुराने सैनिको को वुला रखा था। इन सैनिको ने आग से खेलकर अपनी ईमानदारी का परिचय दिया था। इसीलिए इस सकट के समय सर हेनरी उनको अपने से अलग नही रखना चाहता था। गब्बिन्स की दलील थी कि "यह एक प्रकार से निश्चित है कि जो किर्च और वन्दूकवन्द १,२०० सिपाही नाम मात्र के लिए हमारे पक्ष मे हैं, हमारे विरुद्ध हो जाएगे। उनका नेतृत्व करने वाले जब यह देखेंगे कि हम दूसरी जगह शत्रु के साथ बुरी तरह उलझ गए हैं, तब मौके का फायदा उठाकर वे भी विद्रोह कर देंगे। अगर उनके हथियार छीन लिए जाए तो यह खतरा नहीं रहता। उनमे से जो राजभक्त हैं, वे वाद मे भी रह जाएंगे। वाद मे उचित समझे जाने पर उनके हथियार फिर लौटाये जा सकते हैं।"[१७] यह नहीं कहा जा सकता कि गब्बिन्स की यह आशंका निराधार थी। चिनहाट के सिपाहियो ने विद्रोह कर दिया। लेकिन, तव भी ५०० भारतीय अपने देशी भाइयो के खिलाफ रेजिडेंसी की रक्षा करते रहे। इसमे सन्देह है कि गब्बिन्स के अनुसार हथियार छीन लिये जाने के अपमान के वाद भी उनकी वफादारी वनी रहती। अगर वे विद्रोहियो से न भी मिलते और फौज से अलग हो जाते तो इसका परिणाम बुरा होता। यूरोपियन फौज मे स्वयंसेवको की नियुक्ति करके उसे मजबूत वनाया गया था। इतना होने पर भी वह इतनी कम थी कि उसमे सभी पदो की पूर्ति नहीं की जा सकती थी। अगर गब्बिन्स की चलती तो लखनऊ की भी वही दशा होती जो कानपुर की हुई थी।

---

१७. गब्बिन्स, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १३२

चारो ओर से घिरी हुई रेजिडेंसी मे सर हेनरी की मृत्यु के बाद भारतीय सैनिको को सन्देह की दृष्टि से देखा जाने लगा और उन पर अविश्वास किया जाने लगा। लेकिन कर्नल इगलिस ने, जिसे रक्षा की जिम्मेवारी सौंपी गई थी, सोचा कि अगर लखनऊ को बचाना है तो उन लोगो को अलग नहीं किया जा सकता। सर हेनरी को जब मालूम हुआ कि गब्बिन्स लखनऊ की रक्षा करने वाली देशी सेना को अलग करने की नीति बरत रहा है तो उसने डाक्टरी सलाह के खिलाफ बीमारी की हालत मे ही अपना कार्यभार सभाल लिया।

विद्रोह लखनऊ तक ही सीमित नहीं रहा। शीघ्र ही यह लखनऊ से बाहर अन्य स्थानो मे भी फैल गया। इसका मुकाबला करने के लिए कोई सुनिश्चित योजना नहीं थी और कोई सगठनात्मक प्रयत्न नहीं हुआ। सभी रेजीमेटो ने अपनी मर्जी से काम किया। भारतीय सैनिको के मन मे अग्रेजो के प्रति सन्देह पहले से ही था। कुछ जगहो पर अफसरों की अनुचित नीति से यह सन्देह भय के रूप मे परिणत हो गया। फल यह हुआ कि विद्रोहियों से सहानुभूति रखने वाली रेजीमेटो ने सक्रिय रूप से विद्रोह कर दिया।

प्रशासन के लिए अवध सूबे को ४ डिवीजनो और १२ जिलो मे बाटा गया था। खैराबाद डिवीजन के मुख्यालय सीतापुर मे ३ जून को उपद्रव हुआ। वहा का कमिश्नर जे० जी० क्रिश्चियन पक्के विश्वासों का आदमी था। इसलिए उसके ऊपर के अधिकारियो को उससे अपने आदेशों का पालन करवाना मुश्किल होता था। वित्तीय कमिश्नर, मार्टिन गब्बिन्स से उसका मेल नहीं खाता था और वह युगों से चली आ रही जागीरदारी प्रथा को समाप्त नहीं करना चाहता था। उसके डिवीजन मे अपेक्षाकृत उचित लगान लगाया गया था। लेकिन उसने शीघ्र ही देख लिया कि जिन जमींदारों से जमीन की आय का बन्दोबस्त किया गया था, वे पुराने भूमिहीन ताल्लुकेदारों से साठ-गाठ कर रहे हैं। उस समय सीतापुर मे ४१वीं देशी पैदल सेना तथा अवध अनियमित सेना की दो रेजीमेटें थीं। क्रिश्चियन को ३० मई तक यह विश्वास रहा कि वह अनियमित सेना पर भरोसा कर सकता है और उसे अपने डिवीजन के लिए चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। लखनऊ के विद्रोहियों से लड़ने के लिए वस्तुत ४१वीं देशी पैदल सेना रवाना हो चुकी थी। विद्रोही उस समय दिल्ली जा रहे थे। रेजीमेट ने उन पर सामने से गोली चलाई और ऐसा कोई काम नहीं किया जिससे यह मालूम हो कि वह विद्रोहियो से मिल जाना चाहती है। रक्षा की दृष्टि से क्रिश्चियन ने सीतापुर की स्त्रियो और बच्चों को अपने बगले में बुला लिया था। बचाव के लिए यह जगह अच्छी थी, लेकिन ऐसा कोई आसान रास्ता नहीं था जिससे विपत्ति आने पर भागा जा सके। सीतापुर के सभी गोरो को कमिश्नर के बगले पर देख कर अनियमित सेना का सन्देह हुआ कि अग्रेज देशी फौज पर अविश्वास कर रहे हैं। उसके एक देशी अफसर ने कमिश्नर के कार्यालय के सुपरिन्टेंडेंट से यह भी कहा कि कमिश्नर को अनियमित सेना पर भरोसा करना चाहिए। २ जून को सीतापुर मे यह अफवाह फैली कि कोतवाल ने सेना के लिए अशुद्ध आटा भेजा है। सिपाही इस बात पर तुल गए कि वह आटा नदी मे फेंक दिया जाए। लेकिन आटे को

नदी मे डाल देने के वाद भी सिपाही शान्त नहीं हुए ।[18] दूसरे दिन सिपाहियो ने विद्रोह किया और ४१वीं देशी पैदल सेना के कर्नल वर्च को गोली से मार डाला। अवध अनियमित सेना ने ४१वीं देशी पैदल सेना का साथ दिया । क्रिश्चियन ने अपने परिवार तथा वगले पर ठहरे हुए अन्य लोगो के साथ भागने की कोशिश की। लेकिन, कुछ लोगो को छोड़कर और सभी व्यक्ति गोली से उड़ा दिए गए । यह होते हुए भी सशस्त्र पुलिस ने न केवल अपने कमाण्डर कैप्टन हियरसे की वल्कि उसके अनुरोध करने पर पास के जगल मे छिपी दो महिलाओ की भी रक्षा की ।[19] वाद मे उन्हे सीतापुर से दूर एक सुरक्षित स्थान पर भेज दिया गया ।

फैजावाद की कहानी कुछ और ही थी। फरवरी मे वहा एक रहस्यमय व्यक्ति आया । वाद मे मालूम हुआ कि वह फैजावाद का मौलवी था। उसका शिष्य-समुदाय सारे भारत मे फैला हुआ था । वह कुछ सशस्त्र लोगो के साथ जगह-जगह जाता रहा । उसने फिरगियो के विरुद्ध धर्म के नाम पर जिहाद वोल दिया और कई जगहो पर विद्रोहात्मक भाषण दिए । जव उसके और उसके समर्थको ने हथियार देने से इन्कार किया तो पुलिस ने वलपूर्वक उनसे हथियार छीन लिए । जेल पर खतरा था, इसलिए मौलवी को सेना के पहरे मे रखा गया । विद्रोह के समय वह कैदी था ।[20]

वनारस मे सेना से हथियार छीन लिए जाने के कारण इलाहावाद मे विद्रोह हुआ। फैजावाद के विद्रोह का भी यही कारण था । उस समय यह कहा गया कि पहले वनारस की देशी फौज के हथियार छीन लिए गए और वाद में तोपखाने और गोरी पैदल सेना ने उनकी हत्या कर दी । फैजावाद मे सिपाहियो ने खजाने पर कब्जा कर लिया और यूरोपियन अफसरो से शान्तिपूर्वक वहा से चले जाने को कहा । फैजावाद से जाने के लिए सिपाहियो ने गोरों को किश्तिया तथा रुपये दिए और यह भी कहा कि सम्भव हो तो वे अपना सामान भी ले जा सकते हैं। घुडसवार सेना यह नही चाहती थी कि इन लोगो को शान्तिपूर्वक जाने दिया जाए । लेकिन पैदल सेना इस निश्चय पर डटी रही । इस पर भी आजमगढ की १७वीं देशी पैदल सेना ने वैरमघाट पर दो किश्तियो को रोक लिया और कमिश्नर, कर्नल गोल्डने एव वहुत सारे यात्रियो को मार डाला। कुछ लोगो का मत है कि फैजावाद की २२वी देशी पैदल सेना ने १७वीं देशी सेना को इन गोरो के जाने की खवर दे दी थी। लेकिन, अगर २२वी सेना चाहती तो स्वयं इन गोरों को उसी समय मार डालती जव इनकी किश्तिया अयोध्या मे घण्टो लगी रही थीं ।[21]

---

१८ एनल्स आफ दि इण्डियन रिवेलियन. पृ० ४४४

१९ वही, पृष्ठ ४५० । ४१वीं देशी पैदल सेना के सैनिकों ने कहा कि हियरसे को मार डाला जाए। लेकिन उसके सिपाहियों ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया ।

२०. हचिन्सन, नरेटिव आफ दि म्यूटिनीज इन अवध, पृ० २२ २३ । हुकुम सिंह को उसने जो राहदारी दी थी, उस पर उसके नाम की मुहर थी जिससे पता चलता है कि मौलवी का नाम अहमदुल्ला था ।

२१. फारेस्ट, ए हिस्ट्री आफ दि इण्डियन म्यूटिनी जिल्द १, पृ० २०९-१०

स्थानीय ताल्लुकेदार आदि अब भी अंग्रेजो से मित्रता निभा रहे थे और राजा मानसिंह ने शाहगज के किले मे बहुत-सी स्त्रियों और बच्चो को शरण दी। गोरखपुर के भूतपूर्व नाज़िम मीर मोहम्मद हसन ने कर्नल लेनोक्स और उसके परिवार को शरण दी। मानसिंह पुराना रईस नहीं था। वह जाति का राजपूत नहीं, बल्कि ब्राह्मण था। उसके पिता और चाचा नवाब के यहा राजस्व सग्रहकर्ता के पद पर रहे थे और इस पद से लाभ उठाकर उन्होने बहुत-सी जमीन-जायदाद प्राप्त कर ली थी। अवध पर कब्जा होने के समय मानसिंह के नाम लगान बाकी था। उस पर यह सन्देह था कि वह वाजिद अली शाह के वजीर अली नकी खा से मिला हुआ है। इसलिए उसे एहतियातन कैद कर लिया गया था। लेकिन विद्रोह की सम्भावना होने पर उसे छोड दिया गया। उसने अपने किले मे स्त्रियों और बच्चो को रखना तो स्वीकार किया लेकिन पुरुषों को नहीं। उसे भय था कि पुरुषो को रखने पर विद्रोहियो को पता चल जाएगा। लेकिन उसे स्त्रियों और बच्चों को भी अधिक दिनों तक शाहगज मे रखने की हिम्मत नहीं हुई। इसलिए उसने इन लोगों को नदी से पूर्व की ओर दानापुर भेज दिया। रास्ते मे बिरहर के बाबू माधोप्रसाद और गोपालपुर के राजा ने उन्हे शरण दी। मोहम्मद हसन भी अपने अतिथियो के कारण चिंतित था। उसने गोरखपुर के कलक्टर को खबर दी। वहा से घुडसवारो का एक दल आया और कर्नल लेनोक्स और उसके साथ के लोगों को गोरखपुर ले गया। माधोप्रसाद और मोहम्मद हसन ने बाद मे सिपाहियों का साथ दिया।[२२]

इस अवसर पर फैजाबाद डिवीजन के दूसरे ताल्लुकेदारो ने राजपूतो के परम्परागत वीरतापूर्ण सौजन्य का परिचय दिया। देहरा के रुस्तम शाह ने सुल्तानपुर के शरणार्थियों को शरण दी थी। पहले इन बहादुर राजपूतो को अवध के नवाब से अपने अधिकारो की रक्षा करनी पडी थी। उस समय उनका मोर्चा गोमती के घरहरो मे एक घने जगल मे था। वहा से इन्होने नवाब की फौज के छक्के छुडा दिए थे। अवध पर कब्जा हो जाने के बाद राजस्व अधिकारियों ने उसको बहुत तग किया था जिस कारण उसको अपने बहुत-से पुश्तैनी गावों से अनुचित रूप से हाथ धोना पडा। रुस्तम शाह यह सब भूला नहीं था लेकिन उसकी खानदानी परम्परा का यह तकाजा था कि यदि शत्रु भी शरण मे आ जाए तो उसकी रक्षा की जाए।[२३] धारूपुर के लाल हनुमन्त सिंह को भी अवध के नए शासकों ने तग किया था। लेकिन जब सलोन के डिप्टी-कमिश्नर बैरो ने उससे मदद मागी तो उसने स्वीकार कर लिया। यहा भी विद्रोहियो ने किसी को जान से नहीं मारा। उन्होंने सिर्फ ब्रिटिश अधिकारियो के आदेश मानने से इन्कार कर दिया और उनसे चले जाने को कहा।

---

२२ फैजाबाद के डिप्टी कमिश्नर कैप्टन रीड का कहना है कि कई अन्य हिन्दू और मुसलमान ताल्लुकेदारों तथा हनुमानगढी के महन्तों ने एक या सभी असैनिक अफसरों के परिवारों को शरण दी। एनल्स आफ दि इडियन रिबेलियन, पृ० ४५७-५८। लेनोक्स का कहना है कि फैजाबाद के मौलवी ने भी उसके एव उसके परिवार की रक्षा करने का प्रस्ताव रखा।

२३ गब्बिन्म, उद्धृत ग्रथ, पृ० १५८

हनुमन्त सिंह शहर से बाहर शरणार्थियों से मिला और उन्हें अपने किले मे ले गया। पन्द्रह दिन बाद वह उनको अपने पाच सौ सिपाहियो के साथ इलाहाबाद के सामने गगा के किनारे तक छोड आया। जब बैरो ने उससे कहा कि मुझे आशा है कि विद्रोहियो को दबाने मे आप सरकार की मदद करेंगे तो उसने कहा, "साहब, आपके देश के लोग यहां आए और हमारे बादशाह को निकाल बाहर किया। आप लोगो ने अपने अधिकारियो को जेलो मे जमींदारियो की जाच करने के लिए भेजा। पलक मारते मुझसे यह जमीनें छीन ली गईं, जो जमाने से मेरे परिवार की रही थी। राज्य के लोगो ने आप लोगो के खिलाफ विद्रोह किया और आप उसी व्यक्ति की शरण मे आए जिसका आपने सर्वनाश किया था। मैने आप को बचा लिया। लेकिन अब मै अपने सिपाहियो के साथ सीधे लखनऊ जाऊंगा और अग्रेजो को अपने देश से खदेड कर भगाने की कोशिश करूंगा।"[२४] लेकिन यह सच्चा राजपूत अपने नए प्रभुओ से लडा नहीं।

बहराइच मे गड़बडी का अदेशा होते ही वहा का कमिश्नर चार्ल्स विंगफील्ड भाग गया। बाद में उसकी तरक्की चीफ कमिश्नर के पद पर हुई। मई १८५७ मे वह अपने प्रधान कार्यालय मे न होकर सिकरोडा के फौजी अड्डे पर था। इस अड्डे पर यूरोपियन पल्टन नहीं थी। वहा अनियमित घुडसवार सेना की रेजीमेंट, पैदल सेना की एक रेजीमेट और गोले-बारूद वाली घुड़सवार सेना के कुछ सैनिक थे। स्त्रियो और बच्चो को लखनऊ पहुंचा दिया गया था। उनके लिए अधिकारियो को चिन्ता नहीं थी। अन्य स्थानो की तरह यहा के सिपाहियो पर भी सदेह था कि वे विद्रोह करना चाहते हैं। लेकिन पैदल सेना और घुडसवार सेना के आपसी सम्बन्ध अच्छे नहीं थे। यूरोपियन सार्जेंटो से सिपाहियो की गतिविधि पर निगरानी रखने तथा कोई सदेह होने पर अधिकारियो को उसकी सूचना देने को कहा गया। ८ जून की रात को एक सार्जेंट को पैदल सेना की बैरको मे असाधारण गतिविधि होने का सदेह हुआ। शीघ्र ही घुडसवार सेना के सिपाहियो को पैदल सेना की बैरको के सामने तैनात कर दिया गया। बाद मे सदेह निराधार सिद्ध होने पर घुडसवार सेना को हटा लिया गया। सुबह होने पर सिपाहियो ने कहा कि अधिकारी सोते समय उनको हत्या कर डालना चाहते थे और घुडसवार सेना के मित्र यदि उन्हें न बचाते तो वे बच नहीं सकते थे। पैदल सेना और घुडसवार सेना के सैनिको का पुराना मन-मुटाव दूर हो गया और उन्होंने कैप्टन बायल्यू से शीघ्र परेड आयोजित कर गोले-बारूद बांटने की माग की। बायल्यू ने सीधे वह बात मान ली और दूसरे ब्रिटिश अधिकारियो को सूचना दिए बिना ही विंगफील्ड गोंडा चला गया। सिपाहियो ने फिर माग की कि अधिकारियो को नदी पार करने से रोकने के लिए एक कम्पनी को बैरमघाट भेज दिया जाए। कैप्टन बायल्यू ने यह बात भी मान ली। लेकिन सिपाहियो का सदेह बढते देख कर अधिकारी अपने को असुरक्षित स्थिति मे समझने लगे। इसलिए एक को छोड कर अन्य सभी अधिकारियो को गोंडा के गोरे सैनिको के पास भेज दिया गया। वहा पर सिर्फ घुडसवार सेना का मुख्य अधिकारी

२४ वही पृ० १६०। मलेसन, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द १, पृ० ४०७-८। जब उसके कालाकांकर में किले पर गोलाबारी की गई तो उसने भी उसका जवाब दिया।

लेफ्टिनेंट वोनहम रह गया। सिपाहियो ने उससे कमान लेने को कहा। उसने कहा कि अगर सिपाही लखनऊ चलने को तैयार हो तो वह कमान लेने को तैयार है। सिपाही पहले तो लखनऊ जाने को तैयार हो गए, लेकिन स्थिति धीरे-धीरे विगडती गई और अन्त मे उन्होंने बोनहम से सिरकोडा छोड कर चले जाने की माग की। उससे यह कहा गया कि वह मुख्य सडक से होकर लखनऊ न जाए। वह सकुशल लखनऊ पहुच गया।[२५]

विगफील्ड अधिक दिनो तक गोडा नहीं रहा। उसे और उसके साथियो को वलरामपुर के राजा ने शरण दी। उस दल के एक सदस्य, डा० वारट्रम ने वाद मे अपनी पत्नी को पत्र लिखा, "बाद मे सिपाहियों का बरताव अच्छा हो गया। बहुत-से सिपाही रास्ते मे हमारे साथ रहे। उन्होने हमारी दशा पर आसू बहाए। देशी अधिकारियों ने हम लोगों को सलाम किया। लेकिन, कोई यह नहीं चाहता था कि हम लोग वहां बने रहें। एक हवलदार-मेजर ने सिरकोडा से भेजा हुआ एक पत्र हम लोगो को दिखाया। उसमे रेजीमेट से अधिकारियो और खजाने को रोकने के लिए कहा गया था। इस प्रकार हमारे लिए यह आखिरी मौका था।"[२६] ऐसी स्थिति मे यह सोचना गलत होगा कि अगर विगफील्ड ने सिपाहियो पर विश्वास किया होता तो वहराइच वच जाता। यह सोचना भी ठीक नहीं कि आधी रात वाली वह घटना न घटती तो सिपाही अग्रेजों के वफादार बने रहते। चारों ओर सदेह और अविश्वास का वातावरण बन चुका था। ऐसी स्थिति मे सर हेनरी की इस चेतावनी पर अमल करना मुश्किल था कि "अगर हमने देशी लोगो, विशेषत देशी सिपाहियो से यह समझकर वरताव नहीं किया कि उनमे भी वही भावनाए, वही महत्वाकाक्षाए और योग्यता और अयोग्यता की वही पहचान है, तब तक हम वच नही सकते।"[२७] आधा जून बीतते-बीतते पूरे अवध मे ब्रिटिश सत्ता लुप्त हो चुकी थी। लेकिन लखनऊ अभी तक बचा हुआ था। बाहर के शरणार्थियो ने नई सरकार के इस अन्तिम शरण-स्थल मे आकर ही शरण ली।

विद्रोह शुरू होने के शीघ्र बाद सर हेनरी अपना प्रधान कार्यालय फौजी छावनी से हटा कर रेजिडेंसी मे ले आया। उन दिनो उसका स्वास्थ्य ठीक नही रहता था। उसे आराम की वहुत जरूरत थी। उसकी असाधारण कर्तव्यपरायणता ही उसे अवध खींच लाई थी। वह हर तरह की आपत्ति का सामना करने के लिए तैयार रहना चाहता था। इसलिए उसने ४ जून को गवर्नर-जनरल को एक तार भेज कर कहा, "यदि वर्तमान अव्यवस्था मे मुझ पर कोई विपत्ति आ जाए तो मैं हृदय से सिफारिश करता हू कि मेरे वाद मेजर वैंक्स को चीफ कमिश्नर बनाया जाए और जब तक अच्छे दिन न आ जाए, तव तक के लिए कर्नल इगलिस को सेना का कमाडर बनाया जाए। ये दोनो उपयुक्त व्यक्ति हैं, वलिक इन पदों के लिए इनसे वढ कर उपयुक्त व्यक्ति दूसरा नहीं है। मेरा सचिव मेरे मत से पूर्णतया सहमत है।" उसके डाक्टरो ने उसे आराम करने पर जोर दिया।

---

२५ वोनहम, अवध इन १८५७, पृ० ७४-८६

२६ वारट्रम, विडोज रेमिनिसैन्सेज आफ दि सीज आफ लखनऊ, पृ० ७४

२७ फारेस्ट, ए हिस्ट्री आफ इडियन म्यूटिनी, जिल्द १, पृ० १७८

इसलिए पाच सदस्यो की एक अस्थायी परिषद् बनाई गई। वित्त कमिश्नर, मार्टिन गब्बिन्स, न्याय कमिश्नर ओमन्ने, मेजर बैंक्स, कर्नल इगलिस तथा चीफ इंजीनियर मेजर एडरसन इसके सदस्य बनाए गए। स्वभावतः परिषद् की अध्यक्षता गब्बिन्स को सौंपी गई। अध्यक्ष बनते ही उसने विद्रोही रेजीमेंटो के बचे हुए सैनिको के हथियार छीन लेने का अपना पुराना प्रस्ताव परिषद् के सामने रखा। अन्तत सैनिक हथियार छीने जाने के अपमानजनक व्यवहार से तो बच गए, लेकिन उन्हे थोड़े समय के लिए छुट्टी देकर उनके घर भेज दिया गया।[२८] अपनी नीति के पलट दिये जाने के कारण हेनरी लारेंस तुरन्त अपने पद पर फिर वापस आ गया। उसने परिषद् भंग कर दी, अपना कार्य संभाल लिया और जिन सिपाहियो को उनके घर भेज दिया गया था उन्हे वापस बुला लिया। उनमे से बहुत सारे लौट आए और घेरे के दिनो मे उन्होने बडी वफादारी के साथ अपने प्रभुओ की सेवा की।

३० और ३१ मई की आग बुझाई जा चुकी थी। ३१ मई को पुलिस ने शहर में धार्मिक असन्तोष का दमन किया। लेकिन दस दिन बाद विद्रोह हो गया। इस पर भी सर हेनरी निराश नहीं हुआ और रक्षात्मक तैयारिया करता गया। यह तय हुआ कि अन्तिम परिस्थिति मे फौजी छावनी और मच्छी भवन खाली कर दिए जाएंगे और सारी फौज रेजिडेंसी मे रख दी जाएगी। इसलिए रेजिडेंसी के उत्तर और दक्षिण मे तोपें चलाने के लिए जगह बनाई गई, घने और बड़े वृक्षो को निर्दयतापूर्वक काट डाला गया, खाइया खोदी गई, दीवारें ऊंची की गई, जमीन ढालू बनाई गई, पुरानी दीवारो की मरम्मत की गई और नए बुर्ज बनाए गए। शस्त्रागारो की मरम्मत की गई और सेना के हथियारो और साज-सामान को गुप्त रीति से मच्छी भवन से रेजिडेंसी भेज दिया गया। सर हेनरी ने मित्रो की सलाह और अपने शरीर की परवाह न की और सभी काम की निगरानी और प्रबन्ध स्वयं करने लगा। "नगर की स्थिति का पता लगाने के लिए वह अक्सर वेष बदल कर शहर के उन घने भागो में चला जाता जहा देशी लोग रहते थे। इस तरह वह यह पता लगाता कि उसके आदेशो का किस तरह पालन किया जा रहा है। कई बार तो वह बेलीगारद गेट के सामने, जहा तोपखाना रखा गया था, सैनिको के बीच कोई हलका बिछावन बिछा कर लेट जाता और अपनी योजनाएं बनाया करता।"[२९]

लखनऊ के अंग्रेजो के हक मे यह अच्छा हुआ कि सर हेनरी को जून मे अपनी तैयारी पूरी करने के लिए काफी समय मिला। अवध के असैनिक और सैनिक केन्द्र एक के बाद एक विद्रोहियो के कब्जे मे आते जा रहे थे। जिन जगहो पर सशस्त्र सेना न होने से गडबडी होने की कोई आशका नहीं थी, वहा के असैनिक अधिकारियो को भी समय रहते जगह छोड देने का आदेश दे दिया गया था। लेकिन लखनऊ मे ऐसा नहीं हुआ। सर हेनरी

---

२८. परिषद् सिर्फ दो दिन तक चली। गब्बिन्स, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १६९-६६। गब्बिन्स ने जब राजभक्त सिपाहियों के हथियार छीनने का अपना पुराना प्रस्ताव रखा तो केवल एक अधिकारी ने उसका समर्थन किया।

२९. रीज़, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ३८

जानता था कि लखनऊ पर भी विपत्ति अवश्य आएगी। इसमे जितनी देर होती उतनी ही सफलता से वह विपत्ति का सामना कर सकता था। उसे जनरल व्हीलर के आत्म-समर्पण की खबर मिल चुकी थी और उसका यह सोचना ठीक था कि विद्रोही अब लखनऊ पर धावा बोलेंगे। २८ तारीख को विद्रोही शहर से २० मील दूर नवाबगज मे थे। खबर मिलते ही सर हेनरी ने फौज को छावनी से रेजिडेंसी और मच्छी भवन मे हटा लिया।

प्रश्न यह था कि अब क्या किया जाए ? किसी सुरक्षित स्थान मे रह कर शत्रुओ की प्रतीक्षा की जाए या शहर से बाहर किसी महत्वपूर्ण स्थान से उन पर हमला कर दिया जाए। शत्रुओ को करारी हार देने से दो फायदे थे। एक तो उनका साहस टूट जाता, दूसरे, अपने पक्ष के लोगो का दिल बढ जाता। जो स्थानीय लोग इस असमजस मे थे कि दोनों मे से कौन-सा पक्ष लिया जाए, उनका भी अग्रेजों पर भरोसा बढ़ सकता था। इसलिए सर हेनरी ने बहादुरी से हमला करने का निश्चय किया।[३०] लेकिन चिनहाट मे उसकी फौज का बुरा हाल हुआ। उसने यह नहीं सोचा था कि अवध के तोपची सेना छोड भागेंगे और देशी घुडसवार सेना के सैनिक कायर सिद्ध होंगे। सर हेनरी को शत्रुओ की शक्ति की ठीक सूचना नहीं मिली। फल यह हुआ कि इस लडाई मे बहुत नुकसान उठाना पडा। एक प्रत्यक्षदर्शी ने लिखा है कि "जब हमारी फौज पीछे हट रही थीं, उस समय ३८वीं सेना के सैनिकों की लाशें धमाधम गिर रही थीं, उनके हथियार और साज-सामान बिखर रहे थे। गोली लगे बिना ही सैनिक गिर जाते थे। शत्रुओ से अधिक मारक तो जून की तपती धूप थी। • सिर्फ एक दिन की भयकर लडाई मे अग्रेजो की बहादुरी का बखान करने के लिए ३२वीं सेना के सिर्फ ३ अफसर और ११६ सैनिक रह गए। लेकिन अफसोस कि बहादुरी की यह कहानी हमारी असफलता की भी कहानी है।"[३१]

इस हार से चारो ओर भय फैल गया। "रेजिडेंसी मे अव्यवस्था फैल गई। अपने सामान की चिन्ता न कर, औरतें और बच्चे सभी जगहों से रेजिडेंट के मकान पर भागे आ रहे थे। सबको अपनी जान की चिन्ता थी। पुरुष हथियार लिए हुए खाइयों मे छिप रहे थे।"[३२] लेकिन विद्रोही अपनी जीत का लाभ उठाने से चूक गए। वे खाइयों पर भी कब्जा कर सकते थे। लेकिन गोरी फौज की ईश्वर ने सहायता की। गोरी फौज के लिए शत्रुओ के घेरे का मुकाबला करने के सिवा अब और कोई चारा नहीं रह गया था।

कुछ तोपखानों का काम अभी अधूरा था। मजदूर दिन-रात काम कर रहे थे। चिन-हाट की हार के बाद लोगो का अग्रेजों पर भरोसा नहीं रह गया था। इसलिए मजदूरों ने

---

३० गब्बिन्स ने लिखा है अपनी मृत्यु-शय्या पर हेनरी ने चिनहाट की गहरी हार का उल्लेख करते हुए कहा कि मैंने अपने निश्चय के विरुद्ध मानवीय डर से डरकर काम किया है। गब्बिन्स, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २२३

३१ रीज, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ६०। रीज ने अपने मित्र जान लारेंस के विवरण का उल्लेख किया है। यह चिनहाट की लड़ाई लड़ा था।

३२ रीज़, उद्धृत ग्रथ, पृ० ६१-६२

अपनी मजदूरी वढा दी थी। जून के पहले सप्ताह मे सरकारी प्रोमिसरी नोटो पर चालीस प्रतिशत छूट देनी पडी। अगले महीने के आरम्भ मे इनकी बिक्री पर ३५ प्रतिशत और छूट देनी पड़ी। उस समय यद्यपि साधारणत कुशल मजदूरो की मजदूरी दो आने प्रति दिन थी, मार्टिन गब्बिन्स को मजदूरो को प्रति रात्रि दो रुपये की दर से मजदूरी देनी पड़ी। लेकिन अप्रत्याशित रूप से मजदूरी की दर वढ जाने से मजदूरो को कोई लाभ नहीं हो सका। घरेलू नौकर, मेहतर, घसियारे और भगी आदि अधिक मजदूरी पर काम करने लगे।[33] लेकिन विद्रोहियो के घेरा डाल देने के वाद ये मजदूरी करना छोड़ने लगे। गोरों के रहने के लिए ही काफी जगह नहीं थी, इसलिए उनके नौकरो की वड़ी बुरी हुई। लेकिन सारी कठिनाइयो के वावजूद कुछ नौकर घेरा उठने के वाद तक अपने मालिको के साथ रहे। लगभग इसी समय मद्रास के ईसाई नौकरो की मांग वढी। ये कुछ-कुछ अग्रेजी जानते थे। इसी सुविधा से पहले इंग्लैंड से नवागंतुक अंग्रेज इन्हें नौकर रखते थे। इनकी वहुत शराव पीने की आदत अच्छी नहीं समझी जाती थी। इसीलिए इनकी जगह अग्रेज उत्तर भारत के मुसलमानो और हिन्दुओं को नौकर रखना चाहते थे। लेकिन लड़ाई शुरू होने पर मद्रासी ईसाई नौकर घर दूर होने के कारण अपने मालिको के साथ रह गए और उत्तर भारत के नौकर अपने गावो को भाग गए।[34]

लावारिस जानवरो से तकलीफ और वढी। उनकी देखभाल करने के लिए नौकर नही रह गए थे। चारे की तलाश मे वे चारो ओर घूमा करते थे। कुछ जानवर कुओ मे गिर गए, जिससे पानी विषैला हो गया। कुछ जानवर गोली से उडा दिए गए और उनकी दुर्गन्ध से हवा दूषित हो गई। उनकी सडी लाशो को हटाने के लिए दल वनाए गए और कुछ घोडो को खदेड देना पडा। सर हेनरी ने अहाते के अन्दर काफी चारा जमा कर लिया था; घिरे हुए लोगो ने तोप ढोने वाले वैलो का मास खाया और वच्चो को दूध पिलाने के लिए कुछ लोगो ने कुछ गाए और वकरिया रख छोडी थीं। ये जानवर वहुत थोड़े थे। कम से कम एक वच्चे ने तो दूध के अभाव मे दम तोड़ दिया। घेरा पड़ने के वाद के महीनो मे जव खाद्यान्न पर कड़ा राशनिग कर दिया गया तो कुछ भूखे सैनिको ने श्रीमती इगलिस की एक वकरी मार कर अपनी भूख शात की।

प्रत्येक परिवार के लिए उसके रहने की अलग व्यवस्था करना कठिन था। पुरुष लडाई मे व्यस्त थे और अपनी पत्नियो और वच्चो के पास कभी-कभी ही आ पाते थे। गोला-वारूद से रक्षा करने की दृष्टि से स्त्रियो और वच्चो को तहखानो मे रख दिया गया था। प्रत्येक घर मे जगह से अधिक आदमी थे, यहां तक कि जव हैजा और चेचक फैला तो रोगियो को अलग रखने के लिए जगह नहीं रही। अनेक परिवारो के लोग रेजिडेंसी मे रखे गये और कुछ लोगो को डा० फेरर और मार्टिन गब्बिन्स के निवास स्थान पर शरण दी गई। गब्बिन्स ने "सकटकाल के लिए, घेरा पड़ने के पहले मे ही

३३ गब्बिन्स, उद्धृत ग्रथ. पृष्ठ २१७-१८। सरकारी प्रोमिसरी नोटो का मूल्य गिर जाने के सम्बन्ध मे विवरण पृ० १८५-८६ पर देखें।

३४. वही. पृ० २२७-२८

निजी तौर पर खाद्यान्न जमा कर रखा था। इस भडार मे ५०० मन गेहूं, १०० मन चना, ३० मन दाल, ५ मन महीन चीनी, १ मन तम्बाकू और काफी मात्रा मे घी और चावल था।" इसके अलावा उसने "पत्थर का कोयला और लकडी भी जमा कर रखी थी।" इसलिए गब्बिन्स के निवास-स्थान पर टिकने वाले लोगो के लिए सामान की कमी नहीं थी। फिर भी कडी राशनिंग व्यवस्था करनी पडी। उसके पास काफी बीयर भी थी, जिसे सिर्फ परिचारिकाओं को दिया जाता था और अन्य प्रकार की शराब का खर्च बहुत कम कर दिया गया था। गब्बिन्स ने लिखा है कि "हमारा नियमित भोजन तीन बार से घटा कर दो बार कर दिया गया था।" "घेरा पड जाने के बाद और जब कमिसरियट की व्यवस्था लागू की गई तब यूरोपियनो को भोजन के लिए निश्चित अनुपात मे आटा, या चावल और नमक के साथ बैलो और भेडो का मास दिया जाने लगा। यह सामान मेरे नौकरों को दिया जाता था जो खाना बनाते थे। इसके अलावा भोजन मे सिर्फ वही चीजें मिलती थीं, जिनकी हमारे भांडार मे व्यवस्था थी। हमारे भाडार मे मसाले, दाल, चावल और चीनी की व्यवस्था थी। इसके अलावा हमारे पास कुछ सूखी मछली और गाजरें थीं। जब हम दूसरी सेनाओं के लोगो को रात्रिकालीन भोजन का निमन्त्रण देते थे तो उन्हे यही मछली और गाजर खिलाते थे।" "घेरे के समय मेरे अधीन सेना को दिन के भोजन मे एक-एक प्लेट चपातिया और एक-एक गिलास सार्टन (फ्रासीसी शराब) दी जाती थी। रात के खाने पर पुरुषों को एका-एक गिलास शेरी या दो-दो गिलास शैम्पेन या क्लेरेट शराब दी जाती थी। स्त्रियों को शराब कम मात्रा मे दी जाती थी।"[३५] घेरे के भीतर पाव रोटी बनाने वाले नहीं थे। अत इसका मिलना दुर्लभ हो गया था। गब्बिन्स के पास कुछ मुर्गिया और उसके एक अतिथि के पास दो गाए थीं। इसलिए उसके मकान पर टिके हुए लोगो को चाय पीने के लिए दूध और चीनी भी मिल जाती थी और अक्सर रात के भोजन मे चावल की पुडिंग भी बना करती थी। स्त्रियो को घरेलू काम बहुत करना पडता था, विशेषत उन जगहों मे जहां से नौकर चले गए थे। जिन लोगो ने अपने भोजन का अलग प्रबन्ध किया था, उन्हें पहले प्रति व्यक्ति सिर्फ बारह औंस मास दिया जाता था। इस कारण उनकी हालत और बुरी थी। अगस्त मे उनका दैनिक राशन आधा कर दिया गया। उन्हें अपने लिए ईंधन और आग जलाने का प्रबन्ध स्वय करना पडता था और अपना खाना भी स्वय पकाना पडता था।

घेरे के भीतर सभी तरह के लोग थे। उनमे असैनिक अधिकारी, क्लर्क, व्यापारी और अन्य व्यवस्थाओ के लोग थे। अब सब लोगों को हथियार उठाने पडे। सभी गोरे इग्लंड के नहीं थे। उनमे डूप्रा नाम का एक फ्रासीसी साहसिक था। अपने भाग्य की आजमाइश करने के लिए भारत आने से पहले वह एक सैनिक था और वह कुलीन वश का था। वह पहले "शस डि अफ्रीक" का एक अफसर था और एलजियर्स मे काम कर चुका था। रीज के कथनानुसार अप्रैल १८५७ मे जब नाना और अजीमुल्ला थोडे समय

---

३५ गब्बिन्स, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २२९-३०

के लिए दौरे पर लखनऊ आये थे तो उन्होंने उससे मुलाकात की थी। व्हीलर के आत्म-समर्पण के बाद नाना ने उससे अपनी सेना का सचालन करने का अनुरोध किया था। नाना ने इसके लिए बहुत प्रलोभन दिए, लेकिन डूप्रा ने उसकी एक न सुनी। पहले उसने व्यापार से कुछ रुपया कमाया था, लेकिन घेरे के समय उसका शराब का भाडार सैनिको ने लूट लिया। उस समय वह गब्बिन्स के तोपखाने मे शस्त्र अधिकारी था। वह स्वभाव से मौजी था और उसके धार्मिक विचार सन्तुलित नहीं थे। वह ईश्वर मे विश्वास नहीं करता था। इसीलिए उसकी मृत्यु होने पर रोमन-कैथोलिक पादरी ने उसे धार्मिक रीति से दफनाने से इन्कार कर दिया। वह गोली खाकर मरा और मरने से पहले उसे बडी तकलीफ हुई।[३६]

कम्पनी मे एक दूसरा फ्रासीसी मोशिए जेफराय और एक इटालियन सिगनर बारसोटोली[३७] भी था। वे लखनऊ मे नहीं रहा करते थे, लेकिन वहा विद्रोह की चपेट मे आ गए थे। बारसोटेली विनोदी था। इस कारण वह सेना मे बहुत प्रिय बन गया था। एक रात को एक अफसर जब निरीक्षण करने गया तो वहा एक नवयुवक स्वयंसेवक की यह समझ मे नहीं आया कि उस अफसर को किस तरह सलामी दी जाए। सिगनर बारसोटेली ने उसे अविलम्ब सलाह दी, "कोई परवाह नहीं, हथियार से थोडी सी आवाज कर दो। रात के समय कौन देखता है कि सलामी ठीक ढंग से दी जा रही है या नहीं!" लेकिन सैनिक की हैसियत से बारसोटेली ने अपनी उपयोगिता सिद्ध की। वह कभी अपनी जगह से नही हटा। उसे ऐसी गोली लगी कि उसका सिर धड़ से अलग हो गया। इस प्रकार वह बहादुर इटालियन स्वयं अपना मजाक बन गया। जेफराय एंडरसन के मोर्चे पर काम करता था और कभी-कभी घेरे मे घिरे सैनिको से हंसी-मजाक किया करता था। शमिठ का बाबा जर्मन था, लेकिन उसका जन्म भारत मे हुआ था। वह क्रोधी स्वभाव का था और उसकी जबान बडी तेज थी। अक्सर वह अनुशासन भंग करता, जिसके लिए उसे कोडे लगाए जाते थे।

घेरे में कुछ उच्चस्थ भारतीय लोग भी थे, जिन्हें सुरक्षा की दृष्टि से नजरबंद कर लिया गया था। इनमे प्रमुख था वाजिद अली शाह का बडा भाई मुस्तफा अली खा, जिसे उसके पिता ने अयोग्य समझ कर गद्दी नहीं दी थी। ब्रिटिश सरकार ने भी अयोग्य होने के कारण ही उसे नजरबंद किया था, क्योंकि यह आशका थी कि वह बड़ी आसानी से छली व्यक्तियों के हाथ का खिलौना बन जाएगा। दिल्ली के शाही खानदान के दो शहजादे, मिर्जा मोहम्मद हुमायू और मिर्जा मुहम्मद शिकोह लखनऊ मे नजरबंद थे। इन पर भी सदेह था कि विद्रोही दिल्ली और अवध पर कब्जा करने मे इनका लाभ उठाएंगे। इनके अलावा अवध की गद्दी का समर्थ दावेदार नवाब रुकनुद्दौला भी कैद था। यह अवध के भूतपूर्व शासक सादत अली का पुत्र था। मुसलमान नजरबंदो के अलावा शक्तिशाली ताल्लुकेदार तुलसीपुर का नवयुवक राजा भी कैद किया गया था।

---

३६ रीज, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २१७-१६

३७ वही, पृ० ११८

ये राजनीतिक बंदी मच्छी भवन मे रखे गए थे। इनमे से अन्तिम दो लखनऊ से वापस लौटने के पहले ही मर गए।[३८]

घेरा पड़ने के बाद शहर से सम्बन्ध बिलकुल कट गया था। इसलिए गुप्तचर विभाग का पुनर्गठन करने की आवश्यकता और बढ गई। मेजर गाल वेश बदल कर इलाहाबाद गया। लेकिन वह पहचान लिया गया और मार डाला गया। गुप्तचर विभाग गब्बिन्स के अधीन था और उसके पास काफी सख्या मे विश्वसनीय दूत थे। लेकिन सिपाहियो के घेरे से होकर निकलना बहुत कठिन था। एक बार एक सिपाही अपनी बन्दूक मे एक पत्र छिपाकर पूरी वर्दी पहन कर निकला। उसने बहाना किया कि वह बागी बन गया है। बाद मे यह पता नहीं चला कि उसके साथ कैसी बीती। इसी प्रकार एक बूढी स्त्री को शहर के दोस्तों से सम्पर्क स्थापित करने के लिए भेजा गया। उसका भी कुछ पता नहीं चला। पहली अवध अनियमित सेना के सिपाही बोधनसिंह ने एक पत्र तो पहुचा दिया। लेकिन उसका उत्तर न ला सका। इस समय लखनऊ के सबसे बडे गुप्तचर अगद तिवारी और मिसर कनौजी लाल थे। अगद पेंशनप्राप्त सिपाही और कनौजी लाल एक छोटी कचहरी मे किसी छोटे-से पद पर था। दोनों ने असाधारण साहस और कुशलता से घेरे मे पडी सेना और उनकी रक्षा मे आने वाली सेना के बीच सम्पर्क स्थापित किया।

रेजिडेंसी के उत्तर मे गोमती नदी थी। इस जगह घेरा डालने वालों को सेना एकत्र करने और यहा से धावा बोलने के लिए काफी जगह थी। सुविधाजनक दूरी से, इसी ओर से दीवारो पर भी गोलबारी की जा सकती थी। दक्षिण मे कानपुर का मोर्चा फैला हुआ था। पश्चिम मे शहर था। बेले रक्षक-दल रेजिडेंसी के पूर्वी भाग की रक्षा कर रहा था। इन तीनों मोर्चों पर "बीच के मकान और खण्डहर निचले सुरक्षा-स्थलों की गोलाबारी से रक्षा करते थे। इनके होने से अधिक सख्या मे दुश्मनों की फौज आगे नहीं बढ़ सकती थी।" उत्तरी मोर्चे के बीच मे रीडन तोपखाना लगा हुआ था, इसके पश्चिमी भाग की रक्षा इसका दल कर रहा था और पूर्वी छोर पर अस्पताल था। इसके आगे बेले रक्षक-दल दक्षिण-पूर्व दिशा मे और आगे कानपुर तोपखाना और एंडरसन का दल था। पश्चिमी रक्षा-पक्ति, जो शहर के सामने थी, उसके दक्षिणी छोर पर मार्टिन गब्बिन्स का मकान था, जिसके बारे मे हर प्रकार की सुरक्षात्मक कार्रवाई की गई थी। चीनहाट की लडाई में अधिक लोगों के मारे जाने के कारण उत्तरी रक्षा-पक्ति मजबूत नहीं बनाई जा सकी, लेकिन दक्षिणी रक्षा-पक्ति अपक्षाकृत अधिक सुरक्षित थी। इसके दोनों छोर पर एंडरसन और गब्बिन्स के सैनिक थे। कानपुर तोपखाना इनके बीच मे पडता था। यहां डूप्रा का मकान और मार्टिनियर भवन था।

---

३८ रीज़, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ४२। यह कहा जाता है कि अपने अधिकार की अवहेलना किए जाने के बाद मुस्तफा अली खा ने कभी कोई पगड़ी या टोपी नहीं पहनी। उसने कहा "मेरे सिर पर केवल एक ताज रक्खा जा सकता है।" हचिन्सन, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ४६-४७ भी देखिए। उसने गलती से सूची में शराफुद्दौला को सम्मिलित किया है।

इस मकान का नाम मार्टिनियर इसलिए पड़ा, क्योंकि यहा मार्टिनियर के मालिक और लड़के रखे गए थे। यहीं पर ब्रिगेड मेस और सिख स्क्वायर भी था। घेरा डालने वाले विद्रोही इस रक्षा-पंक्ति के इतने नजदीक थे कि वस्तुतः विद्रोहियो से जा मिलने वाले सिख सिपाही रक्षा-पक्ति के भीतर के सैनिकों से अक्सर बातचीत कर लिया करते थे। लेकिन दक्षिणी मोर्चे के सामने हर जगह इतने खण्डहर थे कि विद्रोही सेना आगे नहीं बढ सकती थी। ये खण्डहर गोलियो से मकानो के निचले भागो की भी रक्षा करते थे। पूर्व की ओर अस्पताल और एडरसन के सैनिको के बीच डा० फेरर का मकान और डाकघर था। इसके पीछे जरमन चौकी और बेले रक्षक-दल तथा आगे साडर्स और सागो की चौकियां थीं। इस पक्ति के उत्तरी-पूर्वी भाग की बड़ी मजबूती से रक्षा की जा रही थी। पश्चिम मे शहर की ओर गब्बिन्स और इसकी चौकियो के बीच कसाईखाना, भेड-घर, रेजिडेंसी के नौकरो के लिए क्वार्टर, गिरजाघर, कब्रिस्तान और इवान्स का तोपखाना था। इस प्रकार रेजिडेंसी चारो ओर से सुरक्षित थी। चार चौकियो पर केवल राजभक्त सिपाही थे। ७१वीं और ४८वीं देशी पैदल सेनाएं अस्पताल की रक्षा के लिए तैनात थीं। बेली रक्षक-दल १३वीं देशी पैदल सेना के अधीन था। यहा सिख घुड़सवार भी थे। इसी से इस जगह का नाम सिख स्क्वायर पडा। जरमन चौकी पर सिख पैदल सेना थी। इसी प्रकार तीन स्थानो की रक्षा यूरोपियन सेना कर रही थी और अन्दर तथा बाहर की मिली-जुली शेष जगहो पर यूरोपियन और देशी सेनाएं बराबर-बराबर रखी गई थीं।[३९] घेरे के भीतर लगभग ३,००० आदमी थे। इनमे से १,७२० तो लड़ने वाले थे और १,२८० अन्य लोग थे। इनमे से भारतीय कुल संख्या के लगभग आधे थे। इनमे से ७२० लडने वाले लोग थे और ६८० अन्य लोग। रेजिडेंसी के अहाते की रक्षा के लिए पूरी तैयारी की गई थी, लेकिन ऊंचे मकानों से इस पर गोली चलाई जा सकती थी। तीर चलाने वालो और गोली चलाने वालो के लिए यह काफी अच्छी जगह थी।

घेरा डालने वाली विद्रोही सेना की शक्ति का ठीक-ठीक पता नहीं था। इनस का विचार है कि इसमे दो "नियमित देशी पैदल रेजीमेट, आठ स्थानीय अवध रेजीमेंट, १५वीं अनियमित सेना तथा अन्य घुड़सवार सेना की टुकड़िया, दो पूरे तोपखाने और अवध के ताल्लुकेदारो में से तीन की निजी फौजें थीं।"[४०] सर हेनरी मे अवध के ताल्लुकेदारों की मदद लेने की कोशिश की थी। उनमे सबसे अधिक शक्तिशाली शाहगंज का राजा मानसिंह था, जिसने सहायता देने का वचन दिया। लेकिन रामनगर के हिन्दू राजा गुरु बख्श और महमूदाबाद के मुसलमान सरदार राजा नवाब अली ने टाल-मटोल का जवाब दिया। उन्होंने कहा कि उनके पास साधनो की कमी है। जुलाई मे उनकी सेनाएं लखनऊ के पास विद्रोही सेना मे मिल गईं। उनमें विशेषतः धनुष चलाने वाले पासी सैनिक थे। उनका निशाना बड़ा अचूक था। लेकिन खुली लडाई मे वे बन्दूक और राइफल चलाने वाले सैनिकों का मुकाबला नहीं कर सकते थे। वे सुरंग लगाने मे

---

३९. इनस, लखनऊ एण्ड अवध इन दि म्यूटिनी, पृ० १०३-१०

४०. वही, पृ० ६७

वडे होशियार थे और विशेषत इसी काम के लिए इनका उपयोग भी किया गया। अगर वे किसी योग्य व्यक्ति के अधीन होते तो घेरे के भीतर के लोगों के लिए बहुत खतरनाक सिद्ध हो सकते थे। लेकिन विद्रोहियों ने आरम्भ मे दीवालों के गिराने या रक्षा-व्यवस्था को नष्ट करने की कोशिश नहीं की। उन्होने रेजिडेंसी के भीतर के क्वार्टरो को अपनी गोली का निशाना वनाया। यह कहा जाता है कि १५वीं घुडसवार सेना का अफसर वरकत अहमद सिपाहियों की सेना का तथा महमूदावाद के राजा का लेफ्टिनेंट खान अली खा ताल्लुकेदारो की सेना का सचालन कर रहा था।

सर हेनरी लारेंस ने निश्चय किया कि अब मच्छी भवन को छोड दिया जाए और वहा की फौज रेजिडेंसी मे बुला ली जाए। यहा की सेना कर्नल पामर के अधीन थी। आदमी भेजने पर यहा सदेश पहुच जाने का भरोसा नहीं था, इसलिए सिगनल से सदेश देने का निश्चय किया गया। रेजिडेंसी की छत पर की मशीन ठीक काम नहीं कर रही थी। लेकिन भीषण गोली-वर्षा के बीच कैप्टेन फुलटन तथा दो अन्य अफसर तीन घटे मेहनत करने के वाद सदेश भेजने मे सफल हुए। सदेश था, "अच्छी तरह से बदूकें भर लो, किले को उडा दो और आधी रात को चले आओ।" इस काम मे वहुत गोला बारूद और सैन्य साज-सामान खर्च करना पडा, लेकिन सदेश का अक्षरश पालन किया गया। इसमे किसी की मृत्यु नहीं हुई। रात के एक बजे तक मच्छी भवन के सारे सैनिक यहा जा चुके थे। इसके कुछ ही घटे बाद सर हेनरी घातक रूप से घायल हो गया।

सुवह होते-होते सर हेनरी सभी रक्षा-स्थलों का निरीक्षण कर चुका था। सब कुछ देख-भाल कर लौटने पर वह राशन-वितरण की व्यवस्था के सम्बन्ध मे एक आदेश लिखाने अपने कमरे मे गया। एक दिन पहले उसके कमरे मे एक छोटा गोला फटा था, लेकिन इससे कुछ नुकसान नहीं हुआ था। उसके कर्मचारियो ने उससे यह कमरा वदल कर किसी और सुरक्षित स्थान पर जाने को कहा। उसने दूसरे दिन कमरा वदल देने के लिए कहा भी था। लेकिन वह सोच भी नहीं सकता था कि कोई इतना अच्छा निशानेबाज भी हो सकता है जो दूसरी बार भी ठीक उसी स्थान पर निशाना बैठा सके। लेकिन असंभाव्य वात होकर ही रही। उसी कमरे मे दूसरा गोला भी फटा। कैप्टेन विलसन अवाक होकर जमीन पर गिर पडा। सर हेनरी का भतीजा कमरे से सकुशल भाग गया। धुएं और धूल के मारे जव विलसन को कुछ दिखाई न पडा तो पूछा, "सर हेनरी, क्या आप को चोट लगी ?" कुछ देर के वाद सर हेनरी ने धीमी आवाज मे उत्तर दिया, "मैं मार डाला गया।" डाक्टर के आने पर सर हेनरी ने पूछा, मैं कितनी देर और जी सकता हू ?" डा० फ़ेरर ने अनुमान किया, "लगभग चालीस घटे।" लारेंस को डा० फेरर के घर ले जाया गया, जहा उसने ४ तारीख को दम तोड दिया। लेकिन उसके जीवन के अतिम क्षण यों ही नहीं बीते। धार्मिक सस्कार समाप्त हो जाने के वाद उसने मेजर वैंक्स को विधिवत अपना उत्तराधिकारी वनाया और विस्तृत रूप से रक्षा-सम्बन्धी आदेश दिए। "मेजर बैंक्स की डायरी से इनका पता चलता है—गोलावारी को रोकना और उस पर नियन्त्रण रखना, गोरो को लड़ाई मे न जाने देना और उनकी रक्षा करना, रात के समय काम की व्यवस्था करना, खाइया खोद कर रक्षा का प्रवन्ध करना, दुश्मनों

के गोलो का मुकाबला करना, न लड़ने वाले देशी लोगो को काम मे लगाना और उनके लिए उदारतापूर्वक धन देना, सभी हथियारो और सामान आदि की एक सूची बनाना, दैनिक व्यय पर कड़ी निगरानी रखना, सैनिक दृष्टि से अनावश्यक घोडो को निकाल भगाना और दूसरी जगहो के ब्रिटिश अधिकारियो से सभी प्रकार के सम्भव सम्पर्क रखना।"[४१] इस प्रकार सर हेनरी अन्त समय तक कर्तव्य का पालन करता रहा। उसकी मृत्यु से सेना मे उदासी छा गई। उसकी इच्छानुसार उसकी लाश चुपचाप दफना दी गई। अगले कुछ दिनो तक उसकी मृत्यु की बात गुप्त रही।

३ जुलाई को न्याय कमिश्नर, एम० सी० अमन्न के सिर मे एक गोली लगी और दो दिन बाद उसकी मृत्यु हो गई। वह २३ वर्ष तक असैनिक सेवा मे रहा था। उसकी मृत्यु से चीफ कमिश्नर का एक विश्वासपात्र व्यक्ति जाता रहा। नया चीफ कमिश्नर, मेजर बैंक्स भी अधिक दिनो तक नहीं बच सका। २१ जुलाई को गब्बिन्स की चौकी पर वह सैनिको को लड़ाई करते देख रहा था। इसी समय उसके सिर मे गोली लगी और वह मर गया। तीन सप्ताह के भीतर चीफ कमिश्नर का पद दो बार खाली हुआ। वरिष्ठता की दृष्टि से मार्टिन गब्बिन्स को चीफ कमिश्नर बनना चाहिए था। लेकिन सर हेनरी ने इस पर अपनी असहमति प्रकट की थी। इसलिए सेना का प्रधान होने की हैसियत से ब्रिगेडियर इंगलिस ने रक्षा की पूरी जिम्मेवारी स्वयं ग्रहण करने का निश्चय किया। इस प्रकार रेजिडेंसी मे असैनिक सत्ता समाप्त हो गई। गब्बिन्स ने स्वय यह स्वीकार किया है कि "असैनिक अधिकारो के प्रयोग की कोई गुंजायश ही नहीं थी। पूरी सेना मे मार्शल लॉ लागू था और जब तक घेरा रहा तब तक घेरे से बाहर के देशी सरदारो से सम्पर्क स्थापित करने का मौका ही नहीं मिला।"[४२]

घेरे के भीतर चारो ओर लोग मरने लगे। सीतापुर की एक शरणार्थी श्रीमती डोरिन को गब्बिन्स के मकान की खिड़की से होकर एक गोली लगी, जिससे वह मर गई। "इसके बाद खिड़कियो को किताबो से भरी आलमारियो से ढक दिया गया। इससे गोलियो से बड़ी रक्षा हुई। बाद मे हमे कई बार यह देखने का अवसर मिला कि युद्धास्त्रों से पुस्तकें किस प्रकार मुकाबला कर सकती हैं। लार्डनर के विश्वकोष की एक प्रति के कोने मे एक गोली लगी और आधी पुस्तक मे प्रवेश करने के बाद रुक गई। इससे पुस्तक के लगभग १०० से १२० पृष्ठ बरबाद हो गए। इस प्रकार मैंने बायरन पर फिंडेन रचित छोटे आकार की एक सचित्र पुस्तक देखी, जिसमे तीन पौण्ड का एक गोला लगा था। यह पुस्तक बिल्कुल नष्ट हो चुकी थी और इसके सभी पन्ने बुरी तरह फट चुके थे। लेकिन पुस्तक ने अपना काम किया। इसके सारे पृष्ठ फर्श पर बिखर गए और फिर वह गोला बेकार हो गया।"[४३] लेकिन प्रत्येक दरवाजे और खिड़की और रास्ते को मोटी पुस्तको से बंद नहीं किया जा सकता था। इसलिए, लोगो का मरना भी नहीं रुका। रीज ने लिखा है,

---

४१. इनस, लखनऊ एण्ड अवध इन म्यूटिनी, पृ० ११५

४२. गब्बिन्स, उद्धृत ग्रन्थ पृ० २५४

४३. वही, पृ० २५५

"आज तक (सात जुलाई) हमारे बहुत से बहुत लोग मरे। प्रतिदिन औसतन १५ से २० लोगो की मृत्यु हुई। ये सारे लोग विशेषत राइफल और गोलों से मरे। बहुत से लोगों की मौत एक विद्रोही अफ्रीकी की गोलियो से हुई, जो जुहानीज के मकान से लगातार गोलिया चलाया करता था। उसका निशाना शायद ही कभी खाली जाता हो।"[४४] डायरी भरने वाले को रोज एक दोस्त की मौत दर्ज करनी पड़ी। ८ तारीख को मेजर फ्रांसिस की मृत्यु हुई, लेकिन लडाई मे बहादुराना ढग से नहीं। ब्रिगेड मेस मे वह चुपचाप बैठा हुआ था कि उसको एक गोला लग गया। ब्राइसन कहा करता था कि अभी ऐसी गोली ही नहीं बनी जो उसे मार सके। उसके सिर से भी होकर एक गोली निकल गई। घेरे में पडे लोगों के भाग्य से शत्रुओं के पास गोला-बारूद कम था। १० जुलाई को रीज़ ने लिखा, "स्पष्टत दुश्मनों का गोला-बारूद समाप्त हो रहा है। उनकी बन्दूकें फिर दनादन चलने लगी हैं, लेकिन अब वे पहले वाली गोलिया नहीं मारते। उनकी गोलिया अब लकडी, लोहे के टुकडों, ताबे के पैसों और बैलों की सींगो की बनी होती हैं।"[४५] कभी-कभी ये विचित्र गोलिया भी लोगो को घायल कर देती थीं।

जुलाई के आरम्भ मे ५, ७ और १० जुलाई को घनघोर वर्षा हुई। इससे बहुत गंदगी बह गई और मृत जानवरो के सडे अवशेषो की दुर्गन्ध जाती रही। ७ तारीख को वर्षा ने वातावरण को तो शुद्ध बनाया ही, इससे एक बहुत बडा लाभ भी हुआ। अस्पताल वाले तोपखाने के सामने बहुत-सा भूसा जमा था। कुछ साहसी सिपाहियों ने उसमे आग लगा दी थी। यदि प्रकृति साथ नहीं देती तो सैनिकों को शायद यह भीषण आग बुझाने मे सफलता नहीं मिलती।

अब पुरुषों की बात छोड कर हम उनकी पत्नियों की कठिनाइयों पर भी ध्यान दें। श्रीमती केस ने, जिसका पति ३० जून को मारा गया, अपने सोने के कमरे का विवरण इस प्रकार दिया है—"इस बहुत ही छोटे कमरे मे मैं, श्रीमती इंगलिस, उनके तीन बच्चों और केरी के साथ रहती हूं। यह कमरा स्क्वायर के भीतर ब्रिगेड मेस के पास है। . . इस कमरे में दो सोफे हैं, जिनमे से एक पर मैं सोती हूं। श्रीमती इंगलिस, उनके बच्चे और कैरी सभी जमीन पर गद्दे बिछाकर सोते हैं। . . मेरा ख्याल है कि एक दृष्टि से पूरी रेजिडेंसी में हम लोग सबसे अधिक सुखी हैं, क्योंकि श्रीमती इंगलिस और हमारे नौकर हमारे साथ हैं। . . दिन रात लगातार गोलिया चलती रहती हैं। हमे गोलियों की आवाज सुनने की आदत नहीं, इसलिए, घेरा शुरू होने के बाद के दिन इनकी आवाज बडी भयानक लगी। जिसके पास भी बदूक थी, वह मोर्चे पर था और हम लोगों को पता नहीं चलता था कि आखिर वहां हो क्या रहा है। प्रत्येक क्षण हमे यही आशका थी कि शीघ्र ही दुश्मन इस जगह पर भी अवश्य टूट पडेंगे। हम मानते थे कि दुश्मन यदि भीतर आ गए तो हमारा बुरा हाल होगा। श्रीमती इगलिस बीमार थीं। वह चेचक से अभी-

---

४४ रीज, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १३०

४५ वही, पृ० १३४-३५

अभी ठीक हुई थीं। हम तीनो ने अपनी रक्षा के लिए परमात्मा से प्रार्थना की।"[४६]

श्रीमती जरमन तहखाने के एक कमरे मे रहती थीं। यहा चूहे बहुत थे। २४ जुलाई को उन्होने अपनी डायरी मे लिखा, "पिछली रात जब मैं चाय बना रही थी, मैंने छोटे सुअर के बच्चे के बराबर एक चूहा देखा। इतना बड़ा चूहा मैंने कभी नहीं देखा था। रात को तहखाने मे इतनी दुर्गन्ध थी कि हमे कपूर और कागज जलाना पड़ा।"[४७] २६ तारीख की रात को सोते समय श्रीमती जरमन की गर्दन पर एक चूहा दौड गया।

प्रार्थना से अधिक दिनो तक शाति नहीं मिल सकी और घेरे के भीतर के लोगों का विश्वास घटने लगा। गोलाबारी के धमाके तथा शस्त्रो की झंकार हमेशा आसन्न मृत्यु की याद दिलाती रहती थी। अब प्रतिदिन औसतन दस से अधिक गोरे नहीं मरते थे, लेकिन यह संख्या भी कुछ कम न थी। आधी जुलाई बीतते-बीतते बहुत-से मेसो में खाने-पीने के अच्छे सामान समाप्त हो चुके थे। "बहुत से गरीब अनियमित स्वयंसेवक अब चुरुट के छोटे-से टुकड़े को भी विलास की सामग्री समझने लगे हैं।" रीज ने १६ जुलाई को लिखा कि "हमें अच्छा भोजन नहीं मिलता। भोजन में सिर्फ गोमांस और चपातिया मिलती हैं और साथ मे कुछ अन्य चीजें मिल जाती हैं।"[४८] ईंधन के लिए लकड़ी भी कम पड गई थी। श्रीमती इंगलिस के खानसामे ने ईंधन कम पड़ जाने की शिकायत की। श्रीमती केस ने लिखा है कि "अगर हालत और खराब हुई तो हमें ईंधन के लिए अपनी मेज और कुर्सिया तोड़नी पड़ेंगी।" लेकिन खानसामे को बिना किसी खतरे के कुछ ईंधन मिल जाता था। फिर भी हर कोई उस जैसा सौभाग्यशाली नहीं था। "श्री नीड [जो अपनी पत्नी और दो बच्चो के साथ सुरोडा से यहां आए थे और जो फाटक के नीचे हमारे पास ही रहा करते थे] को ईंधन चुनते समय फेफड़े मे गोली लगी और उनकी मृत्यु हो गई।"[४९] "एक बार कर्नल इंगलिस जब सोए हुए थे तब गुप्तचरों ने खबर दी कि चार सौ दुश्मन खाइयो मे घुस आए हैं।" स्वभावत: इस खबर से घेरे के भीतर के पुरुष और स्त्रिया परेशान हो गईं। वे लोग यह सोचने लगे कि अगर यह खबर ठीक है तो अन्तिम समय क्या किया जाए? २८ जुलाई को जब कि घेरे के भीतर के लोगों को अधिक प्रसन्न होना चाहिए था तब श्रीमती केस ने उल्लेख किया है कि उस दिन चारों ओर निराशा छा गई। "शाम को जब श्रीमती इंगलिस श्रीमती कूपर से मिलने गईं, तब उनके पास श्रीमती मार्टिन बैठी हुई थीं। तीनो ने इस पर विचार किया कि दुश्मन अगर घेरे के भीतर घुस आए तो क्या करना उचित होगा। क्या उनके अत्याचारो से बचने के लिए आत्महत्या कर लेना श्रेयस्कर न होगा? कुछ स्त्रियां अपने

४६. केस, डे बाई डे एट लखनऊ, पृ० ७८-८०

४७. ए डायरी केप्ट बाई मिसेज़ आर० सी० जरमन ऐट लखनऊ, पृ० ६६ तथा ६६

४८. रीज़, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १४२

४६. केस, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ११०

पास हमेशा अफीम का सत्व और प्रसिक एसिड रखा करती हैं।"[५०] लेकिन घेरे के भीतर की सभी स्त्रियो ने इसी प्रकार हिम्मत नहीं छोड दी थी। श्रीमती केस आत्महत्या करना उचित नहीं समझती थीं। वह दुश्मनों के हाथ मरने के लिए तैयार थीं। उनका कहना था कि हमे अपना कर्तव्य करना चाहिए और शेष सब कुछ ईश्वर के भरोसे छोड देना चाहिए, क्योकि वह जानता है कि हम लोगो के लिए क्या करना उचित है। श्रीमती इगलिस भी अपनी सखी के इस मत से सहमत थीं।[५१] पुरुषो मे भी स्त्रियो से अधिक आत्मविश्वास नहीं रह गया था। कर्नल इगलिस ने एक बार कहा कि अन्तिम समय आने पर स्त्रियो को गोली से उडा दिया जाए।[५२]

रीज़ को लखनऊ के तत्काल पतन की आशका नहीं थी, परन्तु उसे जल्दी सहायता मिलने की कोई आशा नहीं दिखाई पडती थी। दिन-प्रति-दिन वह अपने मित्रो और पडोसियो को बन्दूक की गोलियो या हैजे से मरते देखता था और हताश होकर पूछता था, "हमे सहायता कब मिलेगी ? यह कहा जा रहा है कि सैन्य-दल आ रहे हैं, परन्तु कब और कहा से ? कानपुर शत्रुओं के हाथ मे है। भारत के दूसरे भागो मे भी निस्सन्देह उपद्रव हुए हैं। मुझे तो भय है कि इन सब खबरो मे, जो वे हमे विश्वास पूर्वक दे रहे हैं, कुछ भी सच नहीं है। वे हमसे कह रहे हैं कि हमे जल्दी सहायता मिलेगी, परन्तु यह बात सच नहीं जान पडती। अधिक सैन्य-दलों के भेजे जाने की बात करना, परन्तु कहा से ? सम्भव है कि तार्तारा का चम और तिब्बत का महान लामा ही काश्मीरी बकरो की एक सेना लेकर आए। कानपुर मे तो अभी सैन्य-दल हैं नहीं, और वे यहा उनकी बात करते हैं।"[५३]

दैनिक विवरणिका पूरी तरह से निरुत्साहित कर रही थी। १४ जुलाई को रीज़ ने लिखा, "विल्टशायर नामक एक बेचारा क्लर्क आज हैजे से मर गया। सवाहक बैक्स्टर

---

५० केस, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १२८

५१ इगलिस, दि सीज आफ लखनऊ, ए डायरी, पृ० १००

५२ वही, पृ० ११६। गब्बिन्स ने लिखा है, "जब दूसरा महीना (जुलाई) शुरू हुआ तो कुछ अपने लोगों ने सोचा कि अगर दुश्मन रेजिडेंसी पर कब्जा कर लें तो हम अपने परिवार की स्त्रियों को जान से मार डालें। उन भयानक दिनों में शाम के समय मेरी फौज के एक सैनिक ने मुझे अलग ले जाकर कहा कि उसकी पत्नी इस बात पर राजी हो गई है कि दुश्मन अगर रेजिडेंसी में घुस आए तो वह उसे मार डाले। सैनिक की पत्नी ने कहा कि अगर मेरा पति मुझे पिस्तौल से मार डाले तो मुझे सन्तोष होगा। सैनिक ने यह भी कहा कि अगर मैं मार डाला गया तो वह मेरी पत्नी को भी उसी तरह मार देने को तैयार है। उसने मुझ से यह वचन मागा कि अगर वह मुझ से पहले मार दिया जाए तो मैं उसकी पत्नी को मार डालू। मैंने उससे कहा कि इसकी अभी आवश्यकता नहीं आई, इसलिए, वचन देने की भी जरूरत नहीं है। मैं इस शर्त के लिए तैयार भी नहीं हो सकता था।" गब्बिन्स, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ३८३-८४

५३ रीज, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १३५

भी, जिसे ११ तारीख को गोली लगी थी, मर गया। लैफ्टिनेंट लेस्टर को मार दिया गया। दूसरे कई अभागे लोग भी मृत्यु को प्राप्त हुए है।" १७ तारीख को हम पढते हैं, "ब्राउन को गोली लगी, टाग काटी गई। अब वह मर जायगा, अवश्य मर जायगा, क्योकि चिकित्सा-विज्ञान का, जैसा कि दुर्ग-सेना के शल्य-चिकित्सको ने उसका अभ्यास किया है, यह एक नियम है कि किसी अंग के कट जाने के बाद मृत्यु उतनी ही सुनिश्चित है जितनी दिन के बाद रात।" घायल लोगो मे जलालाबाद का वीर डा० ब्राइडन भी था, परन्तु वह जीवित अवस्था मे अपने घर पहुंचा और अवकाश-ग्रहण के बहुत वर्ष बाद उसने स्वाभाविक मृत्यु प्राप्त की।

रेजिडेंसी के एक लम्बे घेरे के बाद सिपाही नेताओ ने एक सामान्य आक्रमण के द्वारा उसे लेने के केवल चार गम्भीर प्रयत्न किये। पहला प्रयत्न २० जुलाई को किया। रेडन के समीप एक बम फटा परन्तु तोपो को कोई क्षति नहीं पहुंची। और न दीवाल मे कही छेद ही हुआ क्योकि फासले का हिसाब गलत लगाया गया था। परन्तु सिपाहियो ने उस स्थान पर सब दिशाओ से आक्रमण किया और उनकी गोलाबारी सतत और सुचलित थी। ऐसा संशय किया जाता था कि उनके तोपखाने की कमान एक अभ्यस्त यूरोपीय अधिकारी के हाथ मे थी। प्रतिरक्षा भी उतने ही सकल्प के साथ की जा रही थी। आगे बढते हुए सिपाहियो की टोलियां एक के बाद एक गोलियो के द्वारा मार कर गिराई जा रही थीं, परन्तु बार-बार आक्रमण का नेतृत्व करने वाले सैनिक नेताओ की कमी नहीं थी। लडाई सवेरे नौ बजे शुरू हुई और शाम के चार बजे तक चलती रही। कई घण्टो की कड़ी लडाई के बाद घेरा डालने वाले हार गये। स्वाभाविक रूप से उनकी हानि उनके शत्रुओ की अपेक्षा, जिनके पास प्राकारो और अवरोधको की रक्षा थी, बहुत अधिक भारी थी। अंग्रेजो की तरफ हताहतो की सख्या २५ थी, जिनमे १५ यूरोपीय थे।

युद्ध का परिणाम तो उत्साहवर्धक था ही, २२ ता० की रात को उससे भी अधिक अच्छी खबर आई। २६ जून को अगद कानपुर चला गया था। २२ जुलाई को वह वापस लौटा। वह कोई लिखित सवाद तो नहीं लाया, क्योकि जो सरकारी पत्र उसे सौंपा गया था उसे वह मार्ग मे खो आया था। परन्तु वह यह खबर लाया कि हैवलाक को नाना पर विजय प्राप्त हो गई है और जल्दी ही सहायता आने वाली है। खबर इतनी अच्छी थी कि उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता था और ऐसे आदमियो की कमी नहीं थी जो अंगद की सूचना को सत्य नहीं मानते थे। परन्तु वह फिर कानपुर गया और जनरल हैवलाक की सेना के क्वार्टर मास्टर जनरल कर्नल फ्रेजर टाइटलर के पत्र को लेकर वापस आया। उसने लिखा था, "आपका २२ ता० का पत्र हमारे पास आ गया है। हमारी सेना का दो-तिहाई भाग नदी के पार है और हमारी आठ तोपें मौके पर लगी हुई है। शेष सब अभी तत्काल होगा। मै कुछ संवाद आपके पास आज रात को या, कल भेजूंगा। उन सब लोगों को नष्ट कर देने के लिए, जो हमारा विरोध करते हैं, हमारे पास प्रचुर सेना है। नगर मे अपनी स्थिति का एक मानचित्र हमे भेजो और उसमे प्रवेश करने या पहुंचने के सम्बन्ध मे निर्देश भी, जो आपको सूझें। पांच या छ दिन में हम मिलेंगे। यदि शत्रु बाहर निकले तो तुम्हे पीछे से उस पर हमला करना चाहिए और फिर हम उसे कुचल देंगे।" इसके बाद इसी पत्र में

लिखा था, "हमने नाना को परास्त कर दिया है। वह अदृश्य हो गया है। बिठूर मे उसका महल नष्ट कर दिया गया है। कोई नहीं जानता कि उसकी सेना तितर-बितर होकर कहां चली गई है, परन्तु वह गायब हो गई है।"[५४] पत्र उस समय आया जब सहायता असम्भव मानी जा रही थी और मृत्यु और सिपाहियों के सेना छोड कर चले जाने के कारण प्रतिरक्षको की पंक्तिया क्षीण हो गई थीं। बहुत से सिख और १३ वीं देशी पैदल सेना के १६ आदमी पहले ही खाई को छोड कर चले गए थे। कर्नल टाइटलर के पत्र ने बहुत हद तक घेरे मे पडे लोगों की गिरती हुई भावनाओं को ऊपर उठाया। कर्नल इगलिस ने दूसरे ही दिन रात को अगद को एक पत्र देकर वापस भेजा। इस पत्र मे सहायता के लिए जाने वाली सेना को आवश्यक सूचना और सुझाव दिए गए थे। कर्नल इगलिस ने लिखा था, "यदि आपके पास राकेट हों तो जिस समय आप नगर मे प्रवेश करने का इरादा करें उससे पहली रात को करीब आठ बजे तीन या चार हमारे लिए चेतावनी-स्वरूप चला देना। इस सकेत को पाकर हम सडक के दोनों ओर मकानों पर गोलाबारी शुरू कर देंगे। मुझे यह पता नहीं है कि आपकी सेना की शक्ति क्या है और उसकी रचना कैसी है, इसलिये मैं केवल यही सुझाव दे सकता हू। मैं आपको यह निश्चय दिलाता हू कि जैसे ही आप पर्याप्त रूप से समीप आ जायेंगे, हमारी निर्बल और उत्पीडित दुर्ग सेना-शत्रु को अधिक से अधिक विभक्त करने का प्रयत्न करेगी ताकि आप इसका लाभ उठा सकें।"[५५]

व्याकुल आखें आगे की कुछ रातो तक धैर्यपूर्वक आकाश की ओर देखती रही होगी, किन्तु वहा उन्हे राकेट दिखाई नहीं पड़े। रीज़ के इन शब्दो मे दुर्ग-सेना की निराशा का प्रतिबिम्ब है, "सत्ताईसवीं तारीख भी चली गई और कोई सैन्य-दल नहीं आए। अट्ठाइसवीं भी गई और कोई सहायता नहीं। उन्नीसवीं, तीसवीं और इकतीसवीं तारीख भी निकल गई और हमारी सहायता के लिए आने वाली किसी सेना का कोई चिन्ह नहीं। कितना दुखपूर्ण था यह। हमने इतने विश्वास के साथ आशा करके अपने आपको बनाए रखा था, हमारी आशाए इतनी पक्की थीं और हम यह निश्चित किए बैठे थे कि अब हमारे बाहर के मित्र शीघ्र ही आएगे और विद्रोहियों को मार भगायेंगे। परन्तु जब यह सब नहीं हुआ और हमने अपनी आशाओ को पूरा होते नहीं देखा तो हमारा अवसाद और अधिक बढ़ गया। हमारे दिल बैठने लगे और बहुतों ने तो (जिनमे मैं नहीं था) आशा के अन्तिम टिमटिमाते प्रकाश को भी छोड़ दिया और अपने आपको एक उदासीन, हठी और मौन निराशा के प्रति समर्पित कर दिया। जीवन के प्रति वे निराश थे और मारे जाने से पूर्व केवल मारने की उन्हें इच्छा थी। उनका जीवन उनके लिए भार-स्वरूप हो गया और उनमें से बहुत से अपने उन बेचारे साथियो की ओर जो हर शाम कब्र की ओर ले जाए जाते थे ईर्ष्या की दृष्टि से देखते थे।"[५६]

समय से पहले की गई आशाओ के द्वारा कभी-कभी उस दुख मे शान्ति मिल जाती

---

५४ इनस, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १३३

५५ फारेस्ट, ए हिस्ट्री आफ दि इण्डियन म्यूटिनी, जिल्द १, पृ० २८७

५६ रीज, उद्धृत ग्रन्थ, १६६-७०

थी, परन्तु अन्त में उससे और भी अधिक निराशा होती थी।। ३० जुलाई को श्रीमती केस ने लिखा, "कल करीव छ वजे जव हम भोजन कर रहे थे तो दूर से वन्दूको की आवाज सुनाई पडी, जिससे हम सवको वहुत अधिक उत्सुकता हुई और अग्रेजी आवाजो से प्रसन्नताकारी ध्वनि आने लगी। हर एक आदमी प्रसन्नता की एक उत्तेजित अवस्था मे इधर-उधर दौड़ रहा था, यह चिल्लाते हुए कि सहायता आ गई है। लोग समझ रहे थे कि वे दरवाजो तक आ गये हैं और प्रवेश करने की प्रतीक्षा मे ही हैं। अन्य सव लोगो की तरह हम भी यह देखने के लिए कि क्या मामला है, वाहर दौड़े। कर्नल पामर दौड़ कर श्रीमती इंगलिस की ओर गये, उनसे हाथ मिलाया और उन्हे वधाई देते हुए कहा कि सहायता के लिए अधिक सेना आ गई है। जहा तक मेरा सम्वन्ध है, मुझे तो अपने भोजन के कमरे से वाहर निकलते समय ऐसा लगा जैसे मानो अव शत्रु उसके अन्दर घुसने वाला ही हो। उत्तेजना तो काफी थी. परन्तु वह थोडे ही मिनट रही और फिर शान्त हो गयी। किसी को पता नहीं चला कि क्या मामला था। केवल एक वात विलकुल स्पष्ट थी और वह यह कि सहायता-सेना नहीं आई थी।"[५७] परन्तु फिर भी दुर्ग-सेना मे कुछ ऐसे दृढ आशावादी थे जो प्रत्येक तुच्छ घटना मे एक शुभ लक्षण देखते थे। ३० जुलाई को कैप्टेन एण्डरसन और उसके मित्रो ने एक सुन्दर मोर देखा। पक्षी परकोटे के ऊपर वैठा था और अपने पंखो को सजा रहा था। उसकी प्रशंसा करने वाले कुछ भूखे सिपाहियो ने सोचा कि उनके समाप्त हुए मांस मे वह एक वहुत अच्छी वृद्धि होगा और इसलिये उन्होने उसे पकाने के वर्तन मे भेजना चाहा। परन्तु एण्डरसन ने उसे एक शुभ लक्षण वाली चिडिया समझा और उसे शान्तिपूर्वक जाने दिया।[५८] यदि मोर सचमुच शुभ का सन्देश वाहक था तो तत्काल तो वह कोई सहायता नहीं लाया। परन्तु यदि पक्षी को छोड दिया गया तो उसी के समान अहिंसक पौधे इतनी आसानी से छोड़े जाने वाले नहीं थे। एण्डरसन कहता है, अरण्डी के पेडो की पत्तियो पर चमकता हुआ चन्द्रमा कभी-कभी आदमियो की पगड़ी के समान लगता था और कई वार हमे उस पर निशाना लगाने की प्रेरणा हुई।"

जुलाई के अन्त मे अस्पताल सदा भरा रहता था। "उसका दृश्य द्रावक था। हर जगह घायल अफसर और जवान खाटो पर पड़े थे, खून से लथपथ और कृमियो से भरे हुए। इलाज करने वाले, परिचारक और सेवक वहुत कम सख्या मे थे और अपनी सम्पूर्ण क्रियाशीलता के वावजूद किसी की सेवा नहीं कर पाते थे। कपड़े वदलना भी सम्भव नहीं था, क्योकि वह आते कहा से। यह ठीक है कि हमारे पास एक या दो धोवी थे, परन्तु वे जव-तव और वहुत अधिक मूल्य पर कपड़े धोते थे-वुरी तरह, अपर्याप्त रूप में और विना सावुन के, जिसकी दुर्ग-सेना मे वहुत वडी कमी थी। वे श्रम से दवे रहते थे, परन्तु कुछ नहीं करते थे। फिर कपडो की भी वडी कमी थी। यह एक विलास की चीज मानी जाती थी, जिसके उपभोग की अनुमति कुछ थोड़े लोगो को ही थी।

---

५७. केस, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १२०-१२१

५८ एण्डरसन, ए पर्सनल जर्नल आफ दि सीज आफ लखनऊ, पृ० ७४

सबके लिए पर्याप्त चारपाइया तक नहीं थीं।"[५९] दुर्ग-सेना की स्त्रिया अपने दुखो और पीडाओ की चिन्ता न कर अस्पताल के कर्तव्यों को अपनी इच्छा से करती थीं और बीमार और घायलो को आराम देने के लिये अपना सर्वोत्तम प्रयत्न करती थीं।

जब कि घेरे मे पडे लोग चिन्ता और आशा से अपने दिनो को गिन रहे थे तो हैवलाक भी सुस्त नहीं बैठा था। वह १७ जुलाई को कानपुर पहुच गया था। २० ता० को उसकी सेना के एक भाग ने अवध की तरफ नदी को पार कर लिया था। २५ ता० तक पार होने का काम समाप्त हो गया और स्वय जनरल अपने सैन्य-दलो से जाकर मिला। २६ ता० को उसने लखनऊ सडक पर ५ मील की दूरी पर मगरवारा नाम के स्थान में शिविर डाला। तीन दिन वाद उन्नाव मे उसकी प्रगति को रोका गया। एक भीषण लडाई के वाद उसने सिपाही-सेना को उस स्थान से हटा दिया, जिस पर वह दृढ़ता से अधिकार जमाए हुए थे। सिपाही पीछे हटे, परन्तु अपने विजयी शत्रु को उन्होने दीवालो से घिरे हुए शहर वशीरतगज मे, जो वहा से कुछ मील आगे था, फिर चुनौती दी। हैवलाक ने दूसरी विजय प्राप्त की, परन्तु उसे ऐसी हानि भी हुई जिसे उसकी छोटी सेना सहन नहीं कर सकती थी। उसने जो हिसाव लगा रखे थे वे दानापुर मे गदर के समाचार से उलट-पुलट हो गए। अब वह कलकत्ता से अति शीघ्र अधिक सेनाओ के आने की आशा नहीं कर सकता था और विद्रोही प्रकट रूप मे प्रत्येक सुविधाजनक चौकी पर उसके आगे वढने को रोकने के लिए दृढ सकल्प थे। टाइटलर ने विद्रोही सेना की शक्ति और सकल्प का कम अन्दाज लगाया था। हैवलाक के पास उन सवका विनाश करने के लिए, जो उसका विरोध करें, प्रचुर सेना नहीं थी। "उसे एक ऐसा अरुचिकर निर्णय करना पडा, जिससे उसके सैन्य-दलो को भी कम निराशा नहीं हुई। उसने मगरवारा मे फिर लौट कर आने का निश्चय किया जहा वह और अधिक सेनाओं के आने की प्रतीक्षा करना चाहता था, क्योंकि वह सोचता था कि बिना अधिक सैन्य-दलों की सहायता के आगे बढ़ना बुद्धिमानी नहीं होगी। प्रधान सेनापति को उसने यह समझाया, "मेरी सेना वीमारी के कारण और लगातार युद्धों के कारण घटकर १३६४ साधारण सैनिकों की रह गई है और हमारे पास कुल १० तोपें हैं जो अच्छी हालत मे नहीं हैं। इसलिये सफलता की किसी आशा को लेकर मैं लखनऊ के विरुद्ध अभियान नहीं कर सकता था, विशेषत जबकि मेरे पास सई नदी या नहर को पार करने के कोई साधन न थे। इसलिए मैंने दो बार पीछे हट कर, जबकि कोई शत्रु अभी तक मुझे हानि नहीं पहुचा सका है, कानपुर के साथ अपनी दूरी को कम कर लिया है। यदि मुझे शीघ्रतापूर्वक १,००० और अधिक अग्रेज सिपाहियों की सेना और मेजर औल्फर्ट्स का पूरा तोपखाना मिल जाता है तो मैं लखनऊ की ओर अपने प्रयाण को जारी रख सकता हूं या अवध मे शीघ्रता से आगे वढ़ा जा सकता है, क्योंकि मुझे कानपुर मे नावों और दो स्टीमरो के द्वारा गगा पार करने का अधिक आसान मार्ग मिल जाएगा, अथवा

---

५९ रीज, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १६१

में गंगा को पुन पार करके कानपुर मे ग्राड ट्रंक रोड के शीर्ष-स्थल पर अधिकार जमाए रख सकता हूं।"[६०]

हैवलाक के पीछे हटने के निर्णय के प्रति उसकी कमान के द्वितीय अधिकारी जनरल नील ने, जो इस वात पर उससे असन्तुष्ट हो गया था, विरोध प्रकट किया। उसका उद्वोधन इस प्रकार था, "मुझे गम्भीर रूप से खेद है कि आप एक पग पीछे हटे हैं। इससे हमारी प्रतिष्ठा पर वडा वुरा प्रभाव पडा है..... ..इस नगर मे अनेक प्रकार की खवरें फैली हुई हैं, जिनमे एक यह है कि आप जितनी तोपें ले गए थे उन सवको आप खो चुके हैं, इसलिए आप अधिक तोपें लेने के लिये पीछे हटे हैं। वस्तुत. सवका यह विश्वास है कि आप पराजित हो गए हैं और जवर्दस्ती आपको पीछे हटना पड़ा है। शत्रुओ से आपने जो तोपें छीनीं उन्हे आप अपने साथ वापस नही लाए, यह एक अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण वात है। लोग कभी यह विश्वास नहीं करेंगे कि आपने कोई तोप छीनी भी थी। आपके पीछे हटने की इस चाल का प्रभाव सव जगह हमारे उद्देश्य के लिए वहुत हानिकर होगा.....आपको फिर आगे वढना चाहिए और तव तक नही रुकना चाहिए जव तक आप लखनऊ की दुर्ग-सेना को न वचा लें।" हैवलाक अपने अधीन अधिकारी के, चाहे वह कितना ही योग्य हो, इस प्रकार के धृष्टतापूर्ण व्यवहार को सहन करने वाला आदमी न था। उसने शीघ्र उसे फटकार भेजी कि वह अपनी कमान के अधीन किसी अफसर की सलाह या आलोचना सुनना नहीं चाहता और न वह उन्हे ग्रहण करेगा। उसने लिखा, "इसे स्पष्टतः समझ लो और यह भी कि केवल यह विचार करके कि इस क्षण जनता की सेवा के मार्ग मे वाधा उपस्थित होगी, मैं आपको गिरफ्तार करने का दृढतर कदम नहीं उठा रहा हू।"[६१]

३ अगस्त को हैवलाक को छोटी अतिरिक्त सहायक सेना मिली और वह दूसरी वार लखनऊ की ओर वढा। हैवलाक के पीछे हट जाने के वाद सिपाहियो ने वशीरतगंज पर फिर वलपूर्वक अधिकार कर लिया था। अव जनरल ने वहां फिर नई विजय प्राप्त की। परन्तु यह जल्दी ही स्पष्ट हो गया कि लखनऊ को सहायता पहुंचाने के लिए वह पर्याप्त रूप से शक्तिशाली नहीं था। समस्या यह थी कि क्या वह अपनी अन्य सेना की हानि का खतरा मोल लेगा या कर्नल इंगलिस को अपने भाग्य पर अकेला छोडेगा। उसकी सेना का विनाश लखनऊ के पतन को निश्चित कर देता। परन्तु यदि वह प्रतीक्षा करता और अपनी सेना को अक्षत रखता तो सम्भव था कि विद्रोहियो द्वारा की गई कोई भूल उसे उन पर चोट करने का अवसर प्रदान करती और दुर्ग-सेना को अपना मार्ग वाहर निकालने मे समर्थ वनाती। वशीरतगंज की दूसरी पराजय ने सिपाहियो को इतना उत्साहहीन नहीं कर दिया था कि वे हैवलाक को अपने आधार मगरवारा तक विना विघ्न के पीछे हट जाने देते। उसे पीछे हटने से पूर्व वुटिया की चौकी पर युद्ध करना पडा। इसी समय उसे नील से पता चला कि विठूर और कानपुर को एक

६०. फारेस्ट, ए हिस्ट्री आफ दि इण्डियन म्यूटिनी, जिल्द १, पृ० ४६०
६१. वही, जिल्द १ पृ० ४६१-६२

शक्तिशाली विद्रोही सेना से भय था और बिना सहायता के वह खाई पर अधिकार रखने के अलावा और कुछ करने की आशा नहीं कर सकता था। नील को भय था कि "इस स्थान और इलाहाबाद से परे का सारा देश विद्रोह कर उठेगा और मुझे निश्चित विश्वास है कि यदि स्टीमर रवाना नहीं हुआ तो हमारा गोला-बारूद और आगे जाते हुए अस्त्र-शस्त्र शत्रु के हाथों मे पड जाएगे और हमारी बुरी हालत होगी।" इसलिए हैवलाक मगरवारा मे नहीं ठहर सका और उसे शीघ्र कानपुर वापस आना पडा। १३ अगस्त को उसने फिर गगा नदी को पार किया और १६ अगस्त बिठूर का युद्ध लडा गया। अपने प्रेषण-पत्र मे उसने लिखा, "मुझे गदर करने वालो के साथ न्याय करते हुए यह कहना चाहिए कि वे दृढता से लडे, अन्यथा एक पूरे घण्टे के लिए भी वे हमारे शक्तिशाली तोपखाने के विरुद्ध अपनी रक्षा नहीं कर सकते थे, यद्यपि उन्हे रणभूमि के हमसे अच्छे लाभ प्राप्त थे।"[६२] प्रत्येक ऐसे युद्ध मे जिसमे भारत-ब्रिटिश सेना का विद्रोहियो से सामना हुआ, विजेताओ को उनके पास अधिक अच्छे हथियार होने का लाभ मिला। यदि एन्फील्ड ने गदर किया तो एन्फील्ड ने ही गदर करने वालो को उखाड फेंकने मे भी सहायता दी।

अगस्त का महीना एक बडे अभाव का और लखनऊ मे घेरे मे पडे लोगो के लिए एक परीक्षा का काल था। शीघ्र सहायता आने की उनकी सारी आशा नष्ट हो गई। निराशा ने उनको अपने प्रति इतना अविश्वासी बना दिया कि हैवलाक की विजय के समाचार मे विश्वास करने के लिए भी वे अपने आपको प्रस्तुत नहीं कर सके। घेरा डालने वाले लोग खुलकर यह शेखी मारने लगे कि उन्होने हैवलाक के सैनिक दस्ते को मार कर पीछे भगा दिया है। ६ अगस्त को गुप्तवार्ता विभाग मे काम करने वाला ओघनसिंह नामक एक सिपाही रेजिडेंसी मे लौटकर आया, परन्तु वह अपने साथ कोई पत्र नहीं लाया। वह लगातार दो विजयों की खबर लाया, परन्तु मगरवारा तक पीछे हटने का उसका समाचार उत्साहवर्धक नहीं था। एक दूसरे सिपाही ने भी, जो शहर मे गया था, ओघनसिंह के कथन का समर्थन किया, परन्तु इस समर्थन से भी उनके सबसे बुरे भय की पुष्टि ही हुई। कितने समय तक सामग्री चलेगी ? कितने दिनों तक टूटी हुई दीवालें गोलाबारी को सहन करेंगी ? शत्रुओं के विस्फोटकारी युद्ध-कार्यों के विरुद्ध लगातार क्षीण होती हुई दुर्ग-सेना कब तक खाई को अपने अधिकार मे बनाए रख सकेगी ?

राशन की मात्रा घटानी पडी। रीज़ ने लिखा है, "हमारी महान खुराक मे मोटा बहुत अधिक मोटा, गेहू का बिना छना आटा, माश की दाल, खारी नमक और एक दिन बीच मे छोड कर गोमास का एक टुकडा, जिसमे आधी हड्डियां होती थीं, ये चीजें सम्मिलित थीं। यह सब सामान मेरे मुख्य बवर्ची के हाथो से गुजरता था जो एक गन्दा काला आदमी था, तीन-चार और व्यक्तियो के लिये भी जो भोजन बनाता था और जिसे मुझे बाध्य होकर बीस रुपये मासिक देने पडते थे। इस बवर्ची के हाथ से निकल कर यह सामान इतना गन्दा हो जाता था कि स्पार्टा का तो एक कुत्ता भी इसकी ओर अपनी नाक नहीं

६२ फारेस्ट, हिस्ट्री आफ दि इण्डियन म्यूटिनी, जिल्द १, पृ० ५०५.

उठाता। मेरी आधी सिगरेटें भी चुरा ली जाती हैं और सिगरेट पीना अब एक विलास की चीज है, जिसका उपयोग मैं यदा-कदा ही करता हूं।"[६३] जिन लोगो ने अधिक पूर्वोपाय कर लिये थे और दूरदर्शितापूर्वक सामान इकट्ठा कर लिया था, वे अपेक्षित रूप से अच्छी तरह रहे। परन्तु वसे प्रत्येक वस्तु का साधारणत. अभाव था। ३ अगस्त को श्रीमती केस ने लिखा है, "अब यह कहा जाता है कि हमारे पास केवल २० दिन के लिए सामग्री शेप है।" कमिसरियत विभाग का एक कसाई कर्नल इगलिस की बकरियो मे से तीन को मागने आज सवेरे आया। वह भोजन के लिए उन्हे मारना चाहता था। इससे यह दिखाई पड़ता है कि अब हमे मास की भी कमी होने जा रही है।"[६४] खाद्य-पदार्थो का मूल्य बहुत ऊचा चढ गया। जब सर हेनरी लारेंस की चीजें बेची गईं तो सूअर की जाघ का एक टुकड़ा ७ पौण्ड मे बिका और केवल एक दिन के भोजन के लिए पर्याप्त सूप का एक टिन २५ शिलिग मे। एक दर्जन ब्राडी की बोतलो के लिये २० पौण्ड देने पडे और सेमई के एक छोटे से डिब्बे के लिये ५ पौण्ड। चाकलेट की चार छोटी चक्कियो की कीमत २ पौण्ड १० शिलिग थी।

घेरे की अपनी दु.खान्त घटनाएं थीं, जिनमे से एक अत्यन्त तीखी पीड़ाजनक घटना का उल्लेख श्रीमती केस और लेडी इगलिस दोनो ने किया है। १४ अगस्त को एक सम्माननीय दिखाई देने वाली स्त्री ब्रिगेडियर की पत्नी से मिलने आई। उसका पिता कैण्ट मे एक पादरी था और श्वसुर सेना मे एक पदाधिकारी। उसका पति निर्माण-विभाग मे एक ओवरसियर था। उसके फेफडो में गोली लगी थी और वह तत्काल मर गया था। घेरे के पहले दिन उसके एक बच्चा पैदा हुआ था परन्तु शोक और चिन्ताओ के कारण उसका दूध सूख गया था। वह अपने बच्चे के लिये कुछ पोषण के अलावा और कुछ न चाहती थी। उसके पहले तीन बच्चे मर चुके थे। और यदि हो सके तो इस बच्चे को वह बचाने को चिन्तित थी। श्रीमती इंगलिस के पास दूध देने वाली दो बकरिया थीं और विधवा यह चाहती थी कि उनके दूध मे से कुछ थोडा यदि उसके बच्चे के लिए भी मिल सके तो अच्छा हो। अभाग्यवश श्रीमती इगलिश के बच्चे भी दूध चाहते थे और सबके लिए पर्याप्त दूध नहीं था। वह विधवा स्त्री घेरे की मुसीबतो मे भी जीवित बच गई, और अन्त मे सर कोलिन कैम्पबेल की सहायता से वह अपने घर चली गई, परन्तु बच्चा नहीं बचाया जा सका। बहुत से छोटे बच्चे दूषित पोषाहार के कारण मर गये और अन्य बहुत से हैजे और पेचिश के शिकार हुए।

खाने के अभाव से भी अधिक अफीम की कमी दुखदायक सिद्ध हुई। चोरी के द्वारा लायी गई अफीम का वास्तव मे एक लाभकारी व्यापार चल रहा था और घेरे मे पड़े मित्र लोग बाहर से सेना को छोड़ कर भागे हुए आदमियो से चोरी-चोरी अफीम खरीद कर मगवा लिया करते थे, परन्तु हर एक नशा करने वाला आदमी चोरबाजार की कीमत नही दे सकता था। इस विपत्ति मे पड़े लोगो मे से एक जोन्स नामक व्यक्ति भी था, "वह

---

६३ रीज़, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १९४-९५

६४ केस, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १२८-२९

गोरे रग का, यूरोपीय जैसा दिखाई देने वाला आदमी था जो ब्राडी का बहुत शौकीन था और उससे भी अधिक अफीम का।" उसे अभी हाल मे सार्जेन्ट बना दिया गया था। यूरोपीय सिपाही को प्रतिदिन एक ड्राम शराब मिल जाती थी, परन्तु जोन्स और उसके मित्र अपनी आदत की खुराक के बिना ही रह जाते थे। अन्त मे उसने सेना को छोड कर भागने का निश्चय किया। उसके साथ बहुत से अवध के राजा के गायक भी चले गये जो सब भारतीय ईसाई थे। कई नौकर भी उनके साथ गए परन्तु वे सब खाली हाथ ही नहीं गये। "वे बहुत सी जगह दीवालो पर लिखा छोड गये, 'चूकि मेरे पास अफीम नहीं है।'"[६५] बाहर जाकर उनका क्या हुआ, यह ठीक पता नहीं चला, परन्तु रीज़ ने बाद मे सुना कि वे सब मार दिये गये थे।

११ अगस्त को रेजिडेंसी का एक भाग धराशायी हो गया और बत्तीसवीं सेना के करीब आधे दर्जन आदमी भग्नावशेषो मे दब गये। उनमे से दो को खोद कर निकाला गया, परन्तु केवल एक बचा। श्रीमती केस ने लिखा, "उन पर और उन्हे खोद कर निकालने वाले आदमियो पर बराबर गोली चलती रही। घेरे के शुरू होने के समय से लेकर अब तक यह सबसे अधिक भयानक घटना घटी है। अब चूकि हर आदमी का जीवन बहुत अधिक मूल्यवान है, इसलिये उसकी हानि का जितना अधिक शोक हम करें वह थोड़ा ही है।"[६६] जब कि मृत्यु और सेना को छोड कर भागने के बारे मे शोक किया जा रहा था, बचे हुए लोगो की ईमानदारी के बारे मे सन्देह उससे भी अधिक चिन्ता पैदा कर रहा था। जिन लोगों पर सन्देह था उन्हें खाई के बाहर नहीं निकाला जा सकता था, परन्तु उन्हें बिना निगरानी के भी नहीं छोडा जा सकता था। २३ ता० को रेजिडेंसी का पीछे का बरामदा गिर गया, परन्तु उससे कोई हताहत नहीं हुआ। २६ अगस्त को श्रीमती इगलिस ने अपने पति को एक देशी सिपाही की, अपने साथी सिपाहियो की भावनाओ के बारे मे, जांच करते देखा। वह लिखती हैं, "सिखो पर विद्रोह का सशय था। जोन्स ने पहले से आवश्यक सावधानी बरत ली थी और उनको इस प्रकार रख दिया था कि वे पूरी तरह बत्तीसवीं सेना की कमान मे थे और अपनी जान को खतरे मे डाले बिना वे अपने स्थानो को नहीं छोड सकते थे। फिर भी अपनी दीवालो के अन्दर विश्वासघात के बारे मे सोचना भयानक था।"[६७] श्रीमती केस का कहना है कि सिखों पर सिर्फ इसलिए सन्देह था कि "किसी ने उन्हे यह कहते सुन लिया था कि उन्हें अपना वेतन चाहिए।" यह अच्छी प्रकार कल्पना की जा सकती है कि इस प्रकार के दुखपूर्ण वातावरण मे गुलाब, वासमूर्त और रजनीगन्धा के गुलदस्ते श्रीमती जरमन को कितने आनन्दप्रद मालूम हुए होगे।[६८]

---

६५ लेडी इगलिस के दि सीज आफ़ लखनऊ, एक डायरी, पृ० १३७ पर देखिए कैप्टन बर्न्स।

६६ केस, उद्धृत ग्रथ, पृ० १४६-४७

६७ इगलिस, उद्धृत ग्रथ, पृ० १३३

६८ उसके पति ने उसे २६ अगस्त को एक गुलदस्ता भेजा। ए डायरी केप्ट बाई मिसेज़ आर० सी० जरमन एट लखनऊ, पृ० ८२

६ अगस्त को घेरा डालने वालो ने उत्साहित होकर अपने राजा के राज्याभिषेक की घोषणा अपने शत्रुओं के प्रति की। उन्होंने कहा, "हमने अपने राजा को ताज पहना दिया है। फिरंगियो का शासन अब समाप्त हो गया है और हम जल्दी ही आपके बेलीगार्ड मे पहुचेंगे। विद्रोही सेना को एक वैधानिक मुखिया की बुरी तरह आवश्यकता थी जो सत्ता का प्रतीक हो और जिसके झण्डे के नीचे वे इकट्ठे हो सकें। वैध राजा कलकत्ते में कैद था, इसलिए उसके एक अवयस्क लड़के का चुनाव किया गया और यदि जनरल इनस की सूचना सही है तो उसे ७ जुलाई को नवाब बना दिया गया। यह सन्दिग्ध है कि बिरजिस कादर ने वास्तविक रूप मे राजा या नवाब के पद को ग्रहण किया या नहीं, क्योंकि अपनी घोषणा मे उसने अपने को वली कह कर पुकारा है। उसका बाप, जो गद्दी से उतार दिया गया था, दिल्ली से स्वतत्र था, परन्तु अब अवध के नये शासक के राज्याभिषेक की एक शर्त यह थी कि उसे, या ठीक कहे तो उसके परामर्शदाताओ को, बिना कुछ प्रश्न उठाए दिल्ली के सब आदेशो का पालन करना चाहिए। अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण सिपाही नेता स्वत: एकीकरण की आवश्यकता को समझते थे। राज्य के मुख्य अधिकार हिन्दू और मुसलमानो मे समान रूप से दिए गए और कुछ पुराने मत्रियो की सेवाएं बुद्धिमानीपूर्वक ली गईं। शराफुद्दौला को प्रधानमंत्री बनाया गया, परन्तु वित्त-विभाग महाराज बालकिशन को सौंपा गया। यदि सम्मू खां को उठा कर मुख्य न्यायाधीश के पद पर पहुंचाया गया तो राजा जैलालसिंह को युद्ध-मत्री बनाया गया। परन्तु चिनहाट के विजेता बरकत अहमद के दावो पर आश्चर्यजनक रूप से ध्यान नहीं दिया गया और ऐसे दरबारियो को, जिनकी सैनिक योग्यता की कभी जाच नहीं हुई थी, सेना का प्रभार दिया गया। बेगम हजरत महल जो अवयस्क वली की माता थी, उसकी ओर से शासन का सब काम करती थी।

जनरल इनस का कहना है कि राज-शक्ति को प्राप्त करने की इच्छा वाले अन्य व्यक्ति भी थे। फैजाबाद का मौलवी अहमदुल्ला शाह लखनऊ मे था और उसका व्यक्तित्व और पिछला लेखा ऐसा था कि उसे विद्रोही परिषद् मे स्वाभाविक रूप से एक महत्त्वपूर्ण स्थान मिल गया। यह सन्दिग्ध है कि वह लखनऊ की गद्दी के लिए लालायित था, क्योंकि उसकी मुद्रा की काल्पनिक कहानी के अनुसार वह अपने आपको खलीफात-उल्ला कह कर पुकारता था। उसके पद मे लौकिक और आध्यात्मिक अधिकार जुड़े हुए थे और उसके दावो का समझौता किसी पार्थिव शक्ति की अधीनता से नहीं हो सकता था। यह कहा जाता था कि बरकत अहमद और घुडसवार सेना अवध के शाही वंश के एक शाहजादे, सुलेमान कादर के दावों के पक्ष मे थी। सम्भवत इसी से इस बात का स्पष्टीकरण हो जाता है कि उसकी अपेक्षा प्रभावशाली दल के सदस्यो को तरजीह दी गई। तोपो की जित गूंज ने खाई मे पडे लोगो मे आने वाली सहायता के सम्बन्ध मे झूठी आशाएं जगाई थीं, यह वस्तुत. बिरजिस कादर के राज्याभिषेक के औपचारिक उत्सव की सूचक थी। राज्याभिषेक ने सिपाहियों के मनोधैर्य मे सुधार किया और उन्हे नये उत्साह की प्रेरणा दी।[६९]

---

६९. इनस, लखनऊ एन्ड अवध इन दि म्यूटिनी, पृ० ११७

यदि राज्याभिषेक ने नगर मे उत्साह को बढा दिया तो घेरे मे पडे लोगों के भाग्य मे अपने एक और मुख्य नेता की मृत्यु का शोक मनाना लिखा था। सर हेनरी लारेंस, मि० अमन्ने और मेजर बैंक्स को तो वे खो ही चुके थे और अब मुख्य इजीनियर मेजर एण्डरसन की बारी थी। वह बन्दूक की गोली से नहीं बल्कि पेचिस से मरा। घेरा पड़ने से पूर्व ही उसे यह बीमारी लग गई थी, परन्तु उसने इतना कडा परिश्रम किया कि उसे अपने मुख्यालय को छोडने का समय ही नहीं मिला। जब वह शारीरिक रूप से इजीनियरिंग के कार्यों की देखभाल करने मे बिलकुल असमर्थ हो गया तभी उसने अपना कार्य-भार कैप्टन फुल्टन को दिया। मेजर एण्डरसन अधिक काम, चिन्ता और विश्राम के अभाव का शिकार था।

हैवलाक के दूसरी बार पीछे हटने ने अवध के ताल्लुकेदारो को गम्भीर रूप से प्रभावित किया। वे अब बली का समर्थन किये बिना नहीं रह सकते थे और अब उनमे से बहुतों ने अपना कर लखनऊ भेज दिया। किसानो और पासी तीरन्दाजो की इन सैनिक टुकडियों से, जिनके पास न ठीक प्रकार के हथियार थे, न प्रशिक्षण था और न अनुशासन था, विद्रोहियो की सैनिक शक्ति मे सचमुच कितनी वृद्धि हुई, यह अत्यन्त सन्देहास्पद है। परन्तु संख्या ने स्वाभाविक तौर पर उनके मनोधैर्य में सुधार करने मे योग दिया और यह कुछ कम लाभ नहीं था क्योकि उनके पास अब भी गोला-बारूद की कमी थी। २१ अगस्त को ग्यारह साल का एक छोटा लडका गोलिया इकट्ठा करता हुआ पकडा गया था। उसे खाई के अन्दर लाया गया और उससे प्रश्न पूछे गए। उसके कहने से पता चला कि शत्रु रण-क्षेत्र से हमारे हथियारों की चोरी करते थे। वह कोई विशेष सूचना देता हुआ तो नहीं जान पडा, परन्तु शत्रु का वर्णन करते हुए वह कहता है कि उनकी सख्या बहुत बडी है। लडका यह भी कहता है कि हमारे शत्रुओ का यह भी इरादा है कि जब हमारी अधिक सेनाए आए तो वे उनसे खुले मैदान मे लडें।"[७०] जो सेना घेरा डाले पड़ी थी उसकी शक्ति के बारे में अगस्त मे विभिन्न अनुमान लगाए जा रहे थे और उसकी सख्या बीस हजार से लेकर चालीस हजार तक आकी जा रही थी। बाद मे कैप्टन एण्डरसन ने सुना कि उनकी सख्या पूरी एक लाख थी।

अगस्त मुख्यत सुरगों के लगाने का महीना था।[७१] पासी लोग सुरग लगाने मे अत्यन्त कुशल थे और भूमि उनके कार्यों के लिए अनुकूल थी। धरती के अन्दर का सघर्ष वस्तुत जुलाई से शुरू हुआ। सदेहास्पद आवाज पर कडी निगरानी रखनी पडती थी और सुरगों के लिए प्रतिकारी सुरगें बनानी पडती थीं। सुरगों के युद्ध का सबसे अधिक जोर कैप्टन फुल्टन पर पडा जो घण्टो तक एक सन्देहास्पद स्थान पर धैर्यपूर्वक इस प्रकार प्रतीक्षा करता रहता था जैसे चूहे के बिल के पास कुत्ता। कभी-कभी सघर्षशील दल इतने समीप

---

७० केस, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १६५

७१ २० जुलाई से लेकर ६ अगस्त तक आठ बार सुरग लगाकर हमले किए गए, १० अगस्त से ४ सितम्बर तक इस प्रकार के १६ हमले हुए। तालिकाबद्ध विवरण के लिए देखिए—इनस, लखनऊ एण्ड अवध इन दि म्यूटिनी, पृ० १६५-६६

बेगम हजरत महल

आ जाते थे कि उनके बीच मे केवल कुछ थोडे फुट की क्षीण मिट्टी की दीवाल रह जाती थी। १० अगस्त को रेजिडेंसी को दुबारा गम्भीर खतरा उपस्थित हुआ। सवेरे करीब ११ बजे मार्टिनियर के पास एक सुरंग फटी, जिसने लकड़ी के बाड़े के ५० फुट के भाग को साफ कर दिया। फिर इसके बाद लगातार गोलाबारी हुई। कर्नल इंगलिस बाल-बाल बच गया, परन्तु उसके बाद जो आदमी था उसे गोली लगी और वह मर गया। एक दूसरी सुरंग पूर्व की ओर फटी और दो यूरोपीय हवा मे उड़ गए, परन्तु एक हल्की झकझोर के अलावा उन्हे और कोई हानि नहीं हुई। उनमे से एक अहाते में गिरा और दूसरा बाहर जाकर पड़ा, परन्तु वह दीवाल को लांघ कर सुरक्षापूर्वक भाग गया। लगातार निगरानी रखने के बावजूद एक और सुरंग सिखो के पास फटी और उसने ३० फुट चौड़ा एक छेद कर दिया। यदि तत्काल सिपाही संकल्पपूर्वक दौडे होते तो उन्होने अहाते के अन्दर अपनी स्थिति बना ली होती। परन्तु उनकी हिचकिचाहट का प्रतिरक्षको ने पूरा-पूरा लाभ उठाया और नौ पौण्ड का गोला फेंकने वाली एक तोप उस जगह लगा दी गई, जिसने छेद को एक छोर से दूसरे छोर तक ढक दिया। रात को कर्नल इंगलिस की व्यक्तिगत निगरानी मे यह छेद अवरुद्ध कर दिया गया।

परन्तु घेरे मे पड़े लोगो के लिए अगस्त का महीना विश्रान्तिहीन दु ख का भी नहीं था। यदि हर एक कोने से मृत्यु उनकी ओर एकटक देख रही थी तो उन्हे जल्दी ही यह भी आश्वासन दिया गया कि उनके मित्रो का ध्यान उनकी ओर सतत रूप से लगा हुआ है। अंगद ने लौटने मे देर की, परन्तु वह कर्नल टाइटलर से दूसरा सम्वाद लेकर ही १५ अगस्त को लौटा। पत्र पर दिनाक ४ अगस्त अंकित था और उसमे लखनऊ को सहायता पहुंचाने के लिए हैवलाक के द्वितीय प्रयत्न की विज्ञप्ति थी। उसमे कहा गया था, "हम कल सवेरे लखनऊ के लिए अभियान कर रहे हैं और हमने अपनी सेना मे वृद्धि कर ली है। हम इतनी शीघ्र चाल से आगे बढेंगे जितना हम कर सकते हैं। अधिक से अधिक चार दिन में हम आपके पास पहुंचना चाहते हैं। आपको हमारी सब प्रकार सहायता करनी चाहिए। यदि हम बलपूर्वक अन्दर न आ सकें तो अपना मार्ग काटकर बाहर भी आ जाना चाहिए। हमारी सेना छोटी है।"[७२] अंगद शत्रु के हाथो मे पड़ गया था। जब वह बचकर निकलने मे सफल हुआ तो उससे पूर्व हैवलाक कानपुर के लिए दुबारा चल चुका था।

दुबारा पीछे हटने की खबर बिल्कुल असन्तोषजनक थी और कर्नल इंगलिस को आशंका थी कि टाइटलर यह अनुभव नहीं करता था कि उसकी स्थिति कितनी हताश है। इसलिए उसने उसे विस्तृत सूचना देना आवश्यक समझा और जनरल हैवलाक को निम्न लिखित पत्र लिखा : "गत रात मुझे कर्नल टाइटलर की मि० गब्बिन्स को लिखी सूचना मिली जो, मगरवारा से इसी महीने की ४ ता० को लिखी गई है। इस सूचना का अन्तिम अनुबन्ध इस प्रकार है, 'आपको हमारी सब प्रकार सहायता करनी चाहिए, यहा तक कि आपको अपना मार्ग काटकर बाहर भी आ जाना चाहिए, यदि हम बलपूर्वक अन्दर न आ सकें।' इससे मुझे बड़ी बेचैनी हो रही है क्योंकि अपनी निर्बल और छिन्न-भिन्न सेना के

७२ गब्बिन्स, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २८७। रेखांकित वाक्य ग्रीक अक्षरो में थे।

साथ मेरे लिए यह नितान्त असम्भव है कि मैं अपनी प्रतिरक्षा की स्थिति को छोड सकू। आपको यह ध्यान मे रखना चाहिए कि मै किस प्रकार कठिनाइयो मे पडा हू। मेरे पास १२० से ऊपर व्यक्ति बीमार और घायल हैं और कम से कम २२० स्त्रिया हैं तथा करीब २३० बच्चे हैं। किसी प्रकार की कोई गाडी नहीं है। इसके अलावा २३ लाख के खजाने का बलिदान करना पडेगा और विभिन्न प्रकार की करीब ३० तोपो का भी। इस खबर को प्राप्त करने के परिणामस्वरूप मैं सेना के राशन को शीघ्र आधा कर दूगा, जब तक कि आगे आप मुझे इस सम्बन्ध मे कुछ न लिखें। इस प्रकार हमारी सामग्री करीब १० सितम्बर तक चल जायगी। यदि आपको इस सेना को बचाने की आशा है तो बिना समय नष्ट किए आपको आगे बढ़ना चाहिए। हमारा शत्रु हमारी प्रतिरक्षा-पक्ति से कुछ थोडे गजों की दूरी पर है और प्रति दिन हम पर आक्रमण कर रहा है। शत्रु की सुरगों ने हमारी चौकी को पहले ही निर्बल कर दिया है और मुझे पूर्ण सहेतुक रूप से विश्वास है कि वे आगे और सुरगें लगा रहे हैं। उनकी १८ पौण्ड का गोला फेंकने वाली तोपें हमारी तोपों से १५० गज की दूरी के अन्दर हैं। उनकी स्थिति ऐसी है और हम काम करने वाले दलो को इकट्ठा करने मे असमर्थ हैं, इसलिए हम उनका उत्तर नहीं दे सकते और परिणामत हर घण्टे हमारा जो नुकसान हो रहा है वह बहुत बडा है। मेरे पास इस समय ३५० यूरोपीय लोगो और करीब ३०० देशी लोगों की शक्ति है और ये सब आदमी भयकर रूप से पीडित हैं। रेजिडेंसी का एक भाग गोलो की मार से गिराया जा चुका है, इसलिए बहुत-से आदमी शरण-हीन भी हो गए हैं। करीब पच्चीस दिन पहले हमारी देशी सेना को कर्नल टाइटलर के प्रमाण पर यह विश्वास दिला दिया गया था कि आप जल्दी पहुच रहे हैं। यह सेना स्वाभाविक रूप से अब विश्वास खो रही है और यदि इसके आदमी चले जाए तो हम नहीं जानते कि प्रतिरक्षा के लिए आदमी कहा से लाएगे। क्या आपने इस आदमी 'अगद' से मेरा एक पत्र और योजना प्राप्त कर ली ? कृपा कर इस प्रश्न का उत्तर दें।"[७३]

इस पत्र से पता चलता है कि दुर्ग-सेना की कितनी बुरी अवस्था हो गई थी। परन्तु भोजन की समस्या इतनी गम्भीर नहीं थी। यह ठीक है कि अधिकतर मामलों मे राशन आधा कर दिया गया था, परन्तु सर हेनरी लारेंस ने एक लम्बे चलने वाले घेरे का पूर्वानुमान कर लिया था और पर्याप्त सामग्री रख ली थी। जब कभी धनवान भारतीय अपनी सेवाओ का प्रस्ताव करते थे तो सर हेनरी लारेंस उन्हें अनाज भेजने के लिए कहता था। इस प्रकार प्राप्त अनाज दावत के बडे कमरे के पास स्नानागार मे जमा कर दिया गया था और कर्नल इगलिस और उसके परामर्शदाताओ को इस अतिरिक्त खाद्य सामग्री के बारे मे कुछ पता न था।[७४] गब्बिन्स की शिकायत थी कि पत्र के इस भाग को सुधारने

---

७३ गब्बिन्स, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २८६-२६०। गब्बिन्स ने लिखा है, "इस पत्र के सामान्य अभिप्राय से मैं सहमत था, परन्तु मैं समझता था कि हमारी स्थिति, विशेषतः खाद्य-स्थिति के खतरे इसमें बढा-चढा कर दिखाई गई है।

७४ कैप्टन बर्च, लेडी इगलिस के उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १५६। सैनिक अधिकारी इस खयाल में थे कि केवल दो सप्ताह की खाद्य सामग्री रह गई थी।

के उसके सुझाव को कर्नल इगलिस ने अस्वीकार कर दिया था। ब्रिगेडियर को कमिसरियत द्वारा दी गई सूचनाए स्वीकार करनी पड़ीं और गब्बिन्स से यह अपेक्षा नहीं की गई कि उसे अधिक सूचना होगी। जब तक ऊटरम और हैवलाक बलपूर्वक अपना मार्ग बनाते हुए रेजिडेंसी मे नहीं पहुंचे तब तक इस छिपे सामान की स्थिति प्रकाश मे नहीं आई। यह दोष लगाना कि इगलिस ने जान-बूझकर अपनी विपत्ति को बढा-चढ़ा कर दिखाया और इस प्रकार हैवलाक को अनावश्यक खतरे उठाने के लिए बाध्य किया, न्याय न होगा।

सहायता की पुकार पर कोई ध्यान न दिया गया हो, ऐसी बात न थी। २९ अगस्त को अंगद एक उत्तर लेकर लौटा। सीधी सड़क सुरक्षित नहीं थी क्योंकि उसे फतहपुर चौरासी जाना पड़ता जो एक विद्रोही ताल्लुकेदार का निवास था और जहा बिठूर में अपनी पराजय के बाद नाना ने शरण ली थी। इसलिए अंगद नानामऊ घाट पर उतर कर हैवलाक से मिला। हैवलाक ने किसी तत्काल सहायता का वचन तो नहीं दिया, परन्तु सर कोलिन कैम्पबेल के भारत आने का शुभ समाचार भेजा। हैवलाक ने लिखा, "मुझे आपका इस मास की १६ ता० का पत्र मिल गया है। मैं सिर्फ यह कह सकता हूं कि बातचीत मत चलाओ, बल्कि तलवार हाथ मे लिए हुए मर जाओ। सर कोलिन कैम्पबेल ने जनरल एन्यन की मृत्यु के समाचार प्राप्त होते ही केवल एक दिन की सूचना पर कमान सभाल ली है और उन्होने मुझे वचन दिया है कि ताजे सैन्य दल मेरे पास आएगे। मै सर्वप्रथम आपकी परवाह करूंगा। अतिरिक्त सेनाए मेरे पास बीस और पच्चीस दिन के बीच पहुच सकती हैं और मै लखनऊ पर अभियान करने की हर तैयारी करूगा।"[७५] अब धैर्यपूर्वक और अधिक सेनाओ के लिए प्रतीक्षा करने के अलावा और कोई चारा न था।

परन्तु दुर्ग-सेना सदा प्रतिरक्षा का कार्य ही नहीं करती रही थी। बार-बार उसके साहसी आदमियो की छोटी-छोटी टोलियो ने, जिनमे यूरोपीय और भारतीय दोनो ने ही विशेषता प्राप्त की, भाग-भाग कर शत्रु पर धावे किए। परन्तु इन छोटे युद्ध-कार्यो के केवल घेरे मे पड़े लोगो के मनोधैर्य को सुधारने मे ही सहायता की, क्योंकि उन्होने दिखा दिया कि युद्ध मे पहल करना सदा दूसरे पक्ष के हाथ में ही नहीं है। अगस्त का सबसे प्रसिद्ध कार्य जुहानीज के घर का नाश करना था जिसके ऊपर से कानपुर का तोपखाना दिखाई पड़ता था। यहा एक अद्भुत निशानेबाज बैठा दिया गया। अपनी दुनाली राइफल से हर गोली जो वह छोडता था अपने निशाने पर बैठती थी और उसके शत्रुओ ने प्रशसापूर्वक उसका नाम कील ठोकनेवाला बौब रख दिया था। अपने सुरक्षित स्थान पर बैठ कर उसने इतने अधिक आदमी मारे जितने दोनो पक्षो मे से किसी एक व्यक्ति ने नहीं मारे थे। शत्रुओं के एक दल ने उनको आश्चर्य मे डालते हुए मकान पर सहसा आक्रमण कर दिया। मकान मे रहने वाले लोगों को इसका पता न था और बौब अपने स्थान पर मारा गया। परन्तु मकान पर पुनः अधिकार कर लिया गया और बौब के स्थान पर दूसरे लोग आए, जिन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि उनकी पक्तियो मे केवल एक बौब ही कुशल निशानेबाज नहीं था। सूश्रा के घर से कैप्टन फुल्टन ने एक सुरंग लगाई। २० अगस्त को सुरंग मे आग लगा दी

७५ गब्बिन्स, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २९२। रेखांकित शब्द ग्रीक अक्षरों मे लिखे थे।

गई और जुहानीज का मकान पूरी तरह नष्ट हो गया। विस्फोट के बाद एक सहसाक्रमण हुआ और पडोस के कुछ घर नष्ट कर दिए गए।

मि० गब्बिन्स और उसकी पत्नी का एक दैवी ढग से बचाव हुआ। उनके घर की ऊपरी मजिल गोलियो से छिदी पडी थी। एक गोली उनके बिस्तर मे लगी जिस पर वे सो रहे थे और वे भयभीत होकर बिस्तर से बाहर उछल पडे।

सितम्बर का महीना अग्रेजो के लिए बहुत शुभ था। इसने दिल्ली का पतन देखा और लखनऊ के लिए अतिरिक्त सैन्य दलों का आना। परन्तु अतिरिक्त सैन्य दलो के आने का अर्थ सहायता न थी। इसी समय मूल्य बहुत चढ़ गये। इस महीने के पहले दिन रीज ने लिखा है, "जीवनोपयोगी वस्तुए कभी-कभी मिल जाती हैं, कैसे और कहा से यह हम पूछते ही नहीं। आटा एक रुपये प्रति सेर है, घी, जो बहुत पुराना मिलता है, १० रुपये प्रति सेर है; शक्कर १६ रुपये प्रति सेर, देसी तम्बाकू की पत्ती दो रुपये की एक पत्ती, ब्राण्डी की एक दर्जन बोतलें १५० रु० से १८० रु० तक, बीयर की एक दर्जन बोतलें ७० रु०, सूअर का मास ६० रु०, अचार की एक बोतल २० रु० और इसी प्रकार अनुपात मे अन्य सब वस्तुए। मैने तम्बाकू पीना बन्द कर दिया और इसके स्थान पर चाय की पत्तिया, नीम की पत्तिया और अमरूद की पत्तिया प्रयोग मे ला रहा हू और बेचारे सिपाही भी सतत रूप से ऐसा ही कर रहे हैं।"[७६] एक सिगार उस समय तीन रुपये मे मिलता था। ७ ता० को श्रीमती केस ने लिखा कि "साबुन इतनी दुर्लभ वस्तु हो गई है कि छोटे-छोटे वर्गाकार टुकडे सात रुपये प्रति टुकडे के हिसाब से बिक रहे हैं।"[७७] खाई मे किसी आदमी के पास इतने कपडे नहीं थे कि वह अधिक बार उन्हे बदल सके। वास्तव मे उन्हें कपडे बदलने के लिए समय ही नहीं मिलता था, यदि उनके पास कपडे होते भी। कर्नल इगलिस १६ मई से अपने कपडो को उतार कर नहीं सोया था। साबुन की कमी ने रेजिडेंसी की अत्यन्त पीडित आबादी को इस प्रकार उस स्वास्थ्य-रक्षा सम्बन्धी सहूलियत से भी वचित कर दिया जो उन्हें अब तक मिलती रही थी। धोबियों की सेवाओ को भी वे प्राप्त नहीं कर सकते थे, क्योंकि पहले तो खाई मे धोबी थे नहीं और फिर बिना माड और साबुन के धुलाई का भाव दस रुपये प्रति दर्जन था। बहुत-से आदमी बिना दूध और शक्कर के रहते थे। १७ सितम्बर को श्रीमती इगलिस ने तीन रुपये प्रति पौण्ड के हिसाब से कुछ काफी खरीदी। एक पौण्ड चाय आठ रुपये मे बिकती थी। १६ सितम्बर को कैप्टन मेन्सफील्ड की चीजें बेची गईं। एक पुरानी फलालैन की कमीज ५५ रु० मे बिकी और ब्राण्डी की एक बोतल २१ रु० मे।[७८]

श्रीमती केस सूचना देती है कि ५ सितम्बर को महिलाओं के कमरों की दीवाल का

---

७६. रीज, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २०५-२०६

७७. केस, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १८५

७८ वही, पृ० १६७-६८। १८ सितम्बर को श्रीमती केस को एक सस्ता धोबी मिला जिसने बिना साबुन या माड के कपड़े धोने के लिए प्रति सैकड़ा चौदह रुपये लिए।

एक भाग उस समय गिरा दिया गया जब वे भोजन कर रही थीं, इसलिए उन्हें अपने सोने के छोटे कमरे मे खाना खाना पडा। "मात्र परिवर्तन जो चौबीस घण्टो मे हम पर आया वह यह था कि हमे अपने भोजन के लिए दूसरे कमरे में जाना पड़ा। इसलिए हम पहले की अपेक्षा अब अधिक रूप से बन्दी हैं।"[७९] महिलाओ का निवास क्षेत्र छोड़ दिया गया और उसमे रहने वाली स्त्रिया अधिक सुरक्षित स्थानो मे चली गईं।

इस महीने के प्रारम्भ मे शाहगंज के शक्तिशाली ताल्लुकेदार राजा मानसिंह ने एक बडी सेना के साथ लखनऊ के पड़ोस मे डेरा डाला। इस खबर से दुर्ग-सेना को पूरी तरह से प्रसन्नता हुई हो ऐसी बात न थी, क्योकि राजा का रुख अब तक अनिश्चित था। उसने अभी निश्चित रूप से अंग्रेजो के उद्देश्यो के साथ अपने को बाधा नहीं था और शर्तों के लिए बातचीत चला रहा था। इसलिए उसकी उपस्थिति चिन्ता और आशा दोनो का ही कारण थी। यदि वह विद्रोहियो से मिलने का निर्णय करता तो रेजिडेंसी के मुट्ठी भर अंग्रेज और भारतीय एक पराभूत करने वाली संख्या के द्वारा कुचल डाले जाते। यदि दूसरी ओर वह उनकी सहायता करने का निश्चय करता तो दुर्ग-सेना सकारण रूप से अपनी रक्षा करने और शत्रु को मार कर पीछे हटाने की आशा कर सकती थी। कुछ भी हो, १४ सितम्बर को एक असाध्य विपत्ति पड़ी। कैप्टन फुल्टन के सिर मे एक गोली लगी और वह तत्काल मर गया। एक अर्थ मे फुल्टन प्रतिरक्षा की आत्मा था। गब्बिन्स कहता है कि उसने ही प्रथम बार मच्छी भवन मे एक दूसरी चौकी रखने की गलती को पहचाना। उसने उन खतरो का अल्प मूल्याकन नहीं किया, जो लखनऊ के प्रतिरक्षको को सहन करने थे, परन्तु उसने अपने को उनसे पराभूत नहीं होने दिया और उसका आशावाद दूसरो मे भी आशा का संचार करता था। "इस बात से सब सहमत होंगे कि फुल्टन को 'लखनऊ का प्रतिरक्षक' इस उपयुक्त उपाधि से विभूषित किया जाए।"[८०]

यद्यपि फुल्टन की मृत्यु एक गहरी चोट थी, फिर भी आह्लादजनक समाचार के आने मे भी देर न थी। १६ सितम्बर को अंगद को फिर एक पत्र के साथ भेजा गया। इंगलिस ने हैवलाक को लिखा, "मेरे पिछले पत्र की तारीख से शत्रु लगातार बिना रुके इस स्थिति के विरुद्ध प्रयत्न जारी रख रहा है और दिन या रात मे गोली चलाना कभी नही रुका है। आठ दिन में मेरे पास आदमियो के लिए शराब नहीं बचेगी। हम घटे हुए राशन पर रह रहे हैं। फिर भी मै अगले मास की १८ ता० तक साधारणत. सबको ठीक तरह से रखने की आशा कर रहा हूं। यदि आपने उस समय तक हमारे पास सहायता नहीं भेजी तो हमारे पास मास बिलकुल नहीं बचेगा क्योकि कुछ बैल हमे तोपो को स्थिति पर लगाने के लिए भी बचाने पड़ेंगे और मेरे आदमी बिना जानवर का मास खाये कठिन परिश्रम का काम नहीं कर सकेंगे। देशी सिपाहियो को पुनः आश्वासन देने के लिए मैं आपके आगे बढने का समाचार सुनने के लिए बहुत उत्सुक हूं।"[८१]

---

७९ केस, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १८३

८०. गब्बिन्स, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ३२१

८१ फारेस्ट, ए हिस्ट्री आफ दि इण्डियन म्यूटिनी, जिल्द १, पृ० ३२४-२५

वास्तव मे भारतीय सिपाही अपने स्वामियो के लिए एक समस्या बन गए थे। उन पर यह सदेह था कि वे छिपकर विद्रोहियो के साथ पत्र-व्यवहार कर रहे हैं। यह ठीक है कि कोई लेखबद्ध साक्ष्य न था, परन्तु अगद ने एक से अधिक बार ज्ञापित किया था कि बाहर घेरा डालने वालो को उन सब बातो की पूरी सूचना थी जो खाई के अदर हो रही थीं।[८२] कुछ सिख और स्थानीय आदमी सेना छोड कर भाग गए थे और यह सन्देह किया जाता था कि वे अदर के अपने बन्धुओ से सम्पर्क बनाए हुए हैं। इसलिए पहले ऐसे सावधानी के से उपाय किए गए जिनसे और अधिक आदमी सेना को छोड कर न भागें। अनिश्चित स्वामिभक्ति के आदमी चुपचाप ऐसी चौकियो को स्थानान्तरित कर दिए गए जहा से बचकर भागना साधारणत कठिन था। गब्बिन्स ने उनसे कहा कि वे अपने बचाये हुए रुपयों को उसके पास जमा कर दें। इसमे उद्देश्य यह था कि कठिनता से कमाए गए अपने पैसे को खोने का भय सिपाहियो को भागने से रोकेगा।[८३] परन्तु अविश्वास भी साधारणत सक्रामक होता है। भारतीय आदमी समझता था कि उसपर विश्वास नहीं किया जा रहा और उसके अफसर का उदाहरण सदा उसके अन्दर विश्वास और आशा की प्रेरणा नहीं देता था। जेम्स ग्राहम ने आत्महत्या कर ली और इसका एक अवसादकारी प्रभाव ही सम्पूर्ण दुर्ग-सेना पर पड सकता था।[८४] घेरा डालने वाले लोग अग्रेजी सेना मे लगे भारतीय सिपाहियो को धर्मत्यागी कह कर उलाहना देते थे और उनसे कहते थे कि उन्होने केवल अपना धर्म ही नहीं छोड दिया है बल्कि उसके विरुद्ध वे लड भी रहे हैं। अगद के सवाद अब अधिक गम्भीरता के साथ नहीं लिए जाते थे। इशारे से यह सुझाव किया जाता था कि यह आदमी कभी रेजिडेंसी को छोड कर नहीं जाता, बल्कि समय-समय पर अपने छिपने के स्थान से अग्रेज लोगों की विजयो के बारे मे झूठी कहानिया गढ कर यहां लाता है जिससे कि वे भ्रम मे पडे रहें। उनमे से कुछ यह भी अनुभव करते थे कि उन्होंने एक हारने वाले पक्ष के साथ अपने को सम्बद्ध कर लिया है। इसलिए अब यह उचित समय समझा गया कि उनकी सहायता के लिए और अधिक सेनाओ के आने के बारे मे कोई स्थूल साक्ष्य मिलना चाहिए। थकी हुई दुर्ग-सेना का यह सौभाग्य था कि इस प्रकार का साक्ष्य शीघ्रता से मिल गया। २२ ता० को अगद यह समाचार लेकर आया कि सहायता के लिए आने वाली सेना बिल्कुल पास आ पहुची है। वह एक पत्र हैवलाक से नहीं बल्कि ऊटरम से लाया जिस पर दिनाक २० सितम्बर पडा हुआ था और जिसमे यह शुभ सम्वाद दिया गया था कि "कल सेना ने नदी पार की और सब प्रबन्ध पूरा हो जाने के बाद कल आप के पास आने के लिए अभियान कर रही है और भगवत्कृपा से अब आप को सहायता देगी। हमने सुना है कि हमारे शहर मे पहुचने पर विद्रोही लोग आप पर एक जोर का धावा करने का इरादा कर रहे हैं। जैसे ही हम शहर पर आक्रमण करेंगे विद्रोही लोग आप पर इस आशा मे निगरानी रखेंगे कि आप अपनी कुछ दुर्ग-सेना

---

८२ गब्बिन्स उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ३०७

८३ वही, पृ० ३०६

८४. रीज़, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २२०

हमारी सहायता के लिए उपलब्ध करेंगे। मै आप को चेतावनी देना चाहता हूं कि आप अपने युद्ध-कार्यो से विरत होने के लोभ मे न पड़ें। जब आप हमें अपने पडोस मे युद्ध-रत देखें तो आप केवल इतनी सेना ही हमारी सहायता के लिए प्रस्तुत करें जिससे आपकी स्थिति को किसी प्रकार का खतरा न हो।"[८५] २३ ता० को कानपुर की तरफ दूर से तोपो की स्पष्ट आवाज सुनाई पड़ी और जैसे-जैसे दिन चढता गया आवाज और अधिक जोरदार होती गई। २५ ता० को हैवलाक और ऊटरम ने रेजिडेंसी मे प्रवेश किया। परन्तु लखनऊ को सहायता नहीं दी गई, वहा केवल अधिक सैन्य दल भेजे गए।

जिस समय गदर शुरू हुआ था सर जेम्स ऊटरम ईरान मे था। एक अत्यावश्यक बुलावा भेज कर उसे वापस बुलाया गया था और वह बम्बई और लंका होता हुआ समुद्र-मार्ग से २१ जुलाई को कलकत्ते आ पहुंचा। इसी समय गवर्नर-जनरल निचले प्रान्तो की सुरक्षा के सम्बन्ध मे गहरे रूप से चिन्तित था। दानापुर मे सिपाहियो ने ग़दर कर दिया था और आरा की दुर्घटना ने स्थिति को और अधिक बुरा बना दिया था। पहले यह इरादा किया गया था कि मध्यवर्ती भारत की सेना की कमान ऊटरम को दे दी जाय, परन्तु संकटकालीन परिस्थिति की माग थी कि उसकी सेवाओ का लाभ देश के उत्तर भाग को मिले। इसलिए दानापुर और कानपुर के सैनिक डिविजन मिला दिए गए और उन्हे संयुक्त रूप से उसकी कमान मे रख दिया गया। उसे विशेष काम यह दिया गया कि वह बरहमपुर से लेकर बनारस तक निचले प्रान्तो मे शान्ति स्थापित रखे। कानपुर मे हैवलाक की स्थिति अधिक अच्छी नहीं थी। युद्ध और व्यापक बीमारी ने उसकी सेना की संख्या को बुरी तरह घटा दिया था और उसके पास केवल ७०६ क्रियाशील सैनिको का सैन्य दल था। यदि ग्वालियर के विद्रोही उसकी ओर मुड कर आते तो वह अपनी घटी हुई शक्ति से कानपुर को अपने अधिकार मे रखने की आशा नहीं कर सकता था। २,००० सिपाहियो की सेना के साथ वह किसी भी विद्रोही सेना का मुकाबला करने को तैयार था। वह इससे लखनऊ को भी सहायता पहुंचा सकता था और आगरे या दिल्ली के लिए अभियान कर सकता था, परन्तु यदि उसे समय पर अतिरिक्त सैन्य दल नहीं मिले और इसी बीच यदि ग्वालियर के सैन्य दल उसके विरुद्ध आ डटे तो इसको छोडकर उसके पास और कोई विकल्प न था कि वह कानपुर को छोड दे और वापस इलाहाबाद आ जाए।[८६] गवर्नर-जनरल की परिषद् के एक सदस्य ने इस विकल्प की सलाह दी थी, क्योकि बनारस के साथ तार का सम्बन्ध टूट चुका था। परन्तु लखनऊ की बहादुर दुर्ग-सेना का बलिदान नहीं किया जा सकता था। लखनऊ अन्तिम चौकी थी, जिस पर अवध मे अंग्रेजो का अधिकार था और उसे बचाया जाना था। ऊटरम की प्रारम्भिक योजना यह थी कि बनारस से जौनपुर मार्ग के द्वारा लखनऊ को अभियान किया जाए और इस प्रकार उन अनेक नालो से बचा जाए जो कानपुर से जाने वाली सीधी सड़क को काटते हैं। किन्तु ज्यों ही उसे उन बातो का पता चला जिससे हैवलाक को खतरा था, उसने अपनी योजनाएं बदल दीं

---

८५. फारेस्ट, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द १, पृ० ३२७

८६. वही, जिल्द २, पृ० १४-१५

और सेनाओं को कानपुर भेज दिया गया। बन्नी के पुल के बारे मे उसे जो सूचना मिली थी उसका भी उसके निर्णय पर काफी प्रभाव पड़ा। उसका यह ख्याल था कि पुल नष्ट कर दिया गया है। जब उसे पता लगा कि पुल अभी तक सही-सलामत है तो उसने जौनपुर के रास्ते से लखनऊ को सहायता पहुचाने की अपनी पहली योजना छोड दी।

ऊटरम और हैवलाक पुराने मित्र थे। हैवलाक ने ऊटरम के अधीन ईरान मे सेवा की थी। इसलिए सयुक्त कमान के सेनापति के रूप मे ऊटरम की नियुक्ति का कडे रूप मे यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता था कि कैसे हैवलाक के ऊपर तरजीह दी गई है। फिर भी इससे हैवलाक को एक दु खपूर्ण निराशा हुई होगी। उसे कानपुर के युद्ध मे सफलता पर सफलता मिली थी। इसमे उसका दोष नहीं था कि वह व्हीलर को या बीबीगढ के अभागे बन्दियो को बचाने के लिए बहुत देर से आया। लखनऊ को सहायता पहुचाने मे असफलता के लिए भी उसे दोष नहीं दिया जा सकता था। उसने विद्रोही सेना पर तीन महत्वपूर्ण विजय प्राप्त की थीं, परन्तु बुद्धिमत्ता के कारण उसे अपने आदमियो को बाध्य होकर पीछे हटाना पडा था। अब जब कि अन्त मे अतिरिक्त सैन्य-दल आ रहे थे, यह उसका दुर्भाग्य ही था कि उसे अपने देशवासियो को सहायता पहुचाने के यश से वचित होना पडा। यह सब ऐसा लगता था जैसे मानो उच्चतर अधिकारियो ने उसके कार्य का अनुमोदन न किया हो। अन्तिम बात पर उसे प्रधान सेनापति ने पुन आश्वस्त किया। एक अत्यन्त प्रशसात्मक तार मे स्वीकार किया गया कि, "गत कठिन युद्ध-कार्यों मे जिस सतत शक्ति, सत्वर प्रतिक्रिया तथा उत्साहपूर्ण कार्य से आपकी सब कार्यवाहिया लक्षित रही हैं, वे उच्चतम प्रशंसा के योग्य हैं।"[८७] फिर भी अवध की राजधानी को पुन प्राप्त करने का उच्चतम सन्तोष उसके हाथ से निकलता ही दीख पडता था जब कि वह करीब-करीब उसकी पहुंच मे था।

परन्तु ऊटरम ने हैवलाक को उसके सैनिक जीवन के उच्चतम यश से वंचित नही किया क्योंकि वह समझता था कि इस प्रकार का अवसर मनुष्य के जीवन मे दुबारा नहीं आता,। ऊटरम कलकत्ता से स्टीमर के द्वारा भागलपुर और दानापुर होता हुआ बनारस आया, जहां से उसने यह पत्र भेजा, "मैं अतिरिक्त सैन्य दलो के साथ आपसे मिलूगा परन्तु लखनऊ को सहायता पहुंचाने का यश आपका ही रहेगा क्योंकि इस उद्देश्य के लिए आपने पहले से ही इतनी उदात्तता से सघर्ष किया है। मैं केवल कमिश्नर की असैनिक हैसियत से आपके साथ रहूगा और अपनी सैनिक सेवाओं को मैं आपको इस प्रार्थना के साथ सौंपता हू कि आप कृपा कर एक स्वयसेवक के रूप मे मुझे अपने नीचे रख लें। लखनऊ की दुर्ग-सेना को डटे रहने के लिए साहस दें। कर्नल इगलिस के साथ सचार साधन स्थापित करने मे खर्च की परवाह न करें।" वीरता की सर्वोत्तम परम्परा के योग्य यह एक उदात्त कार्य था, भले ही इसका औचित्य सदिग्ध हो। क्या ऊटरम के लिए यह उचित था कि वह अपने भारी उत्तरदायित्वो को, जिन्हे उसके पद ने उसके ऊपर डाला था, दूसरे सिपाहियों के

---

८७ फारेस्ट, ए हिस्ट्री आफ दि इण्डियन म्यूटिनी, जिल्द २, पृ० १३

कन्धों पर डाले ? यदि कुछ गलती हो गई तो कौन उत्तरदायी होगा ? यदि हर एक सेनापति इस प्रकार विषमावस्था मे अपने कर्तव्यो को अपने से बाद के आदमी को सौंपने लगे तो सैनिक अनुशासन की व्यवस्था कैसी होगी ? ऊटरम ने प्रश्न के केवल एक पक्ष की ओर देखा, अर्थात यह विश्वास कि इस साहसपूर्ण कार्य मे सफलता की आशा थी, परन्तु उसने असफलता के परिणामो को बिलकुल भुला दिया। यह कहना कठिन है कि जब एक साम्राज्य का भाग्यनिर्णय होने जा रहा हो तो सदाशयता कहां तक बरती जा सकती है। परन्तु ऊटरम के पक्ष मे यह तर्क दिया जा सकता है कि वह हैवलाक को पहचानता था और वह यह भी जानता था कि वह सदा उसके पास ही रहेगा और जिस क्षण आवश्यकता होगी कमान स्वयं सम्भाल लेगा। फिर ऊटरम का निर्णय प्रधान सेनापति को भेज दिया गया था और उसे उसका तथा गवर्नर-जनरल का भी अनुमोदन प्राप्त था। ऊटरम की नियुक्ति के समय सपरिषद्-गवर्नर-जनरल को हैवलाक के दूसरी बार पीछे हटने के बारे में पता नहीं था। उन्होंने सम्भवत: यह मान लिया था कि उसने अपने उद्देश्य को पहले ही पूरा कर लिया है। सर जेम्स ऊटरम के इस असाधारण त्याग के साथ सहमति प्रकट करके कैम्पबेल और कैनिंग ने भी समान रूप से अपने को उत्तरदायी बना लिया था और यह स्पष्ट था कि वे भी यह नहीं चाहते थे कि हैवलाक के महान कार्यों ने उसे जिस अवसर का पूर्ण अधिकारी बनाया है उससे उसे वंचित रखा जाए।

ऊटरम १५ सितम्बर को कानपुर आया। उसके साथ उसका बलाधिकरणिक (चीफ आफ स्टाफ) भावी मगदल का लार्ड नेपियर भी था जो एक असाधारण योग्यता का और विशेषता प्राप्त सिपाही था। १८ ता० को तैरने वाला पुल पूरा हो गया और दूसरे दिन सेना लखनऊ के लिए यात्रा करने लगी, इस बार अपने गन्तव्य स्थान पर पहुंचने के लिए सहायता के लिए जाने वाली इस सेना मे सब प्रकार के हथियारो के २७७९ यूरोपीय सिपाही थे और ४०० भारतीय सिपाही थे जिनमे कम से कम ३४१ सिक्ख थे। उन्हे पहले विरोध का सामना मगरवारा मे करना पड़ा परन्तु इस बार उन्नाव या बशीरतगंज मे लड़ाई नहीं हुई। सबसे बड़े आश्चर्य की बात यह हुई कि बन्नी पुल पर होकर सई नदी के मार्ग मे रुकावट नहीं डाली गई, क्योंकि सीधी भागती हुई विद्रोही-सेना पुल को नष्ट करने के लिए नहीं ठहरी थी। अंग्रेज सेनापतियों को निश्चयतः इतने बड़े सौभाग्य की आशा नहीं थी और वे लखनऊ के पड़ोस मे आलम बाग नामक स्थान पर २३ ता० को पहुंच गए। यहां एक शक्तिशाली सेना उनकी प्रगति को रोकने के लिए खड़ी थी। परन्तु विद्रोहियो को भगा दिया गया और लखनऊ के लिए सड़क साफ थी।

सबसे छोटा मार्ग अक्सर सबसे सुरक्षित नहीं हुआ करता। सबसे सीधा रास्ता चारबाग पुल और नहर पर होकर था, परन्तु इस पर जाने से भीषण गली की लड़ाई लड़नी पड़ती जिससे भारी जीवन-हानि होती। सबसे सुरक्षित मार्ग यह था कि पूर्व की ओर से बढ़ा जाय और दिलकुशा तक अभियान करके गोमती को पार किया जाय और फिर बाईं ओर मुड़ कर लोहे के पुल पर अधिकार कर लिया जाए और नगर की ओर फिर नदी पार कर बादशाह बाग को ले लिया जाय और तब

रेजीडेंसी को सहायता दी जाय। परन्तु भारी वर्षा ने सडक के कुछ भाग को भारी तोपखाने के जाने के अयोग्य बना दिया था। सहायता देने वाली सेना एक मार्ग से भी, जिसे इनस ने नहर के भीतर का मार्ग कह कर पुकारा था, अपने लक्ष्य स्थान पर पहुच सकती थी। यह मार्ग भी चारबाग पुल पर होकर जाता था, परन्तु रेजिडेंसी के लिए सीधे चलने के बजाय इससे सेना को दाईं ओर मुडना पडता, नहर के भीतर की ओर शहर का चक्कर लगा कर खुली जगह मे पहुचना पडता, जहा से बाईं ओर मुड कर रेजिडेंसी की ओर आगे बढ़ना पडता, उस मैदान मे से होकर जो कैमर बाग और दूसरे महलो तथा नदी के बीच मे पडता था।"[८८] इस रास्ते को ऊटरम ने पसन्द किया और हैवलाक ने २५ सितम्बर को सवेरे इसी मार्ग का अनुसरण किया क्योंकि पुल से परे किसी गम्भीर लडाई की आशका नहीं थी। पुल के ऊपर के मार्ग के लिए बडा मुकाबला हुआ, परन्तु उसके बाद अग्रेजी सेना की क्या हलचल होगी, इसका पूर्वानुमान नहीं किया गया था। अवध के नेताओ ने पुल से रेजिडेंसी तक जाने वाले सीधे मार्ग को दृढ़ता से अवरुद्ध कर दिया था और उन्हें अपनी गलती तब तक मालूम नहीं पडी जब तक कि उनके शत्रुओ ने बेगम कोठी पर अपना अधिकार नहीं कर लिया और वे सिकन्दर बाग नहीं पहुच गए। अग्रेजी सैनिक दस्ता रेजिडेंसी से ११०० गज दूर मोती महल पर रुका। मोती महल और रेजिडेंसी के बीच मे छत्तर मजिल नामक अनेक महल थे। छत्तर मजिल के लिए कोई प्रवेश-द्वार नहीं था और खास बाजार मे होकर एक चक्करदार मार्ग से जाना पडता था। दोनों सेनापति सैनिक दस्ते को लेकर साण्डर्स की चौकी मे होकर रेजिडेंसी मे घुस गए। यह महान वीरतापूर्ण कार्य भयकर हानि उठाकर किया गया। इस सैनिक दस्ते के आलम बाग छोडने से पूर्व २०७ अफसर और जवान हताहत हुए। २५ और २६ ता० को उनकी हानि ३१ अफसरों और ५०४ जवानों तक पहुच गई। मरे हुए लोगों मे वीर नील भी था जिसे "ब्रिटिश सेना का मूर्त आदर्श" कहा जाता है।

लेफ्टिनेंट-जनरल मैक्लाउड इनस का कहना है कि "यद्यपि हैवलाक की सेना को जो हानि उठानी पडी उस पर हमे शोक प्रकट करना पडता है, परन्तु फिर भी जिन कठिनाइयो पर विजय प्राप्त करनी पडी और जितनी शक्ति को विरोधी सेना का सामना करना पडा, उनको देखते हुए हमारी हानि बहुत तुच्छ थी। एक साहसिक महान कार्य बिना हानि के सम्पन्न नहीं किया जा सकता।" वह आगे टिप्पणी करते हुए कहता है कि २५ सितम्बर की शाम का यह मिलना यद्यपि पारिभाषिक सैनिक अर्थ मे लखनऊ रेजिडेंसी की सहायता नहीं माना जा सकता, परन्तु फिर भी साधारण बुद्धि की दृष्टि से यह सब आवश्यक बातो मे दुर्ग-सेना के लिए एक सहायता ही थी। भयकरतम कठिनाई मे यह एक मदद थी। सिर पर मडराने वाले खतरे से यह एक बचाव था। सुरक्षा-पंक्ति मे बिना एक क्षण की चेतावनी के भी दरार पडने की जो सम्भावना थी और जिसके कारण विपत्ति और पीडा का महान भय उपस्थित हो रहा था, उससे इसने विश्रान्ति दी। यह बहुत सम्भव था

---

८८ इनस, लखनऊ एण्ड अवध इन दि म्यूटिनी, पृ० २१८

कि सुरक्षा-पक्ति को भेद कर शत्रु, जो पहले से ही तैयार था, बड़ी भारी संख्या मे अन्दर घुस आता और उसको रोकने वाला कोई नहीं था। और फिर जब हम यह याद करते हैं कि दिल्ली से सिपाही आकर निकट भविष्य मे विद्रोहियो की संख्या मे वृद्धि कर सकते थे और खाइयो मे भी सिपाहियो के मन मे एक सशयालु भावना विद्यमान थी, तो इन सब बातो को देख कर हमे इस बारे मे सन्देह नहीं रह जाता कि हैवलाक के यहा आने से लखनऊ की दुर्ग-सेना उस दुर्भाग्य से बच गई जिसका खारतूम मे गार्डन को सामना करना पडा था।"[89] रेजिडेंसी के एक और निवासी का भी यही मत था कि हैवलाक और ऊटरम ठीक समय पर रेजिडेंसी पहुचे थे। "यदि वे समय पर न आए होते तो हमारे देशी सैन्य दल, जिन्होने उस समय तक अच्छा व्यवहार किया था और अनुकरणीय स्वामिभक्ति के साथ हमारे पीछे रहे थे, हमे निश्चय ही छोडकर चले जाते। और यदि वे ऐसा करते तो सकारण रूप से हम उन्हे दोषी भी नहीं ठहरा सकते थे क्योकि जीवन सभी को प्यारा है और आशा हमे लगभग बिल्कुल छोड चुकी थी।" उसने आगे यह भी कहा कि अधिक देर आगे डटे रहना बिलकुल असम्भव था। "कानपुर की दुर्घटना का पुन लखनऊ मे अभिनय होता, अथवा हमे, जैसा करने के लिए हम एक बार बात भी कर रहे थे, अपनी स्त्रियो, बच्चो और घायलो को विद्रोहियो के हाथो मे पडने से बचाने के लिए, बन्दूको से उडा देने के लिए बाध्य होना पडता और हम स्वय भग्नावशेषो पर लड़ते हुए मर जाते।"[90]

पहली सहायता अपनी दु खान्त कहानियो से रहित नहीं थी। हैवलाक के सैन्य दलो ने हर काले चेहरे को शत्रु मानना सीखा था और उनके शिकार वे कुछ थोडे-से स्वामिभक्त सिपाही हुए जिन्होने इतने लम्बे समय तक घेरे की मुसीबतो को अग्रेजो के साथ झेला था और प्रतिरक्षा की कठिनाइयो मे उनका साथ दिया था।[91] इससे भी अधिक तीव्र पीडाजनक अन्त श्रीमती बारट्रम का हुआ। उसका पति गोंडा मे सैनिक शल्य-चिकित्सक था। जब सर हेनरी लारेंस ने यह आदेश दिया कि बाहर की चौकियो से स्त्रियो को लखनऊ मे भेज दिया जाय तो वह पहले सिकरोडा आई और फिर वहा से सिपाहियो की एक टुकडी की सुरक्षा मे रामनगर आई। उसने वहा और शरणार्थियो को पाया और उनके साथ वह लखनऊ आई। डा० बारट्रम ने, जो पीछे रह गया था, बलरामपुर के राजा के यहा सुरक्षित शरण-स्थान पाया। उसने मित्रो की तरह सिपाहियो से "आसू बहाते हुए" विदाई ली और बहुत-से सिपाही मार्ग मे उसके साथ भी गए। डा० बारट्रम हैवलाक की

---

८९ इनस, लखनऊ एण्ड अवध इन दि म्यूटिनी, पृ० २२५

९० रीज, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २४८

९१. जोन्स, आरडिनल एट लखनऊ, पृ० २३५।

हैवलाक के सिपाहियो ने व्रत ले लिया था कि वे कभी किसी गदर करने वाले से कोई सम्बन्ध नहीं रखेंगे। सचमुच वे लोग हर काले चेहरे को शत्रु जैसा समझते थे, इसलिए, जिन स्वामिभक्त सिपाहियो ने शत्रु के विरुद्ध आक्रमण करने मे भाग लिया था उन्हें दूसरो से पृथक करने के लिए उनकी बाहो पर लाल बाजूबन्द बांधे गए थे।" पृ० २६८

सेना में सम्मिलित हो गया और जिस दिन सहायता सेना आई उससे एक दिन पूर्व उसकी पत्नी को पता लगा कि उसका पति उसके साथ अच्छी तरह सुरक्षित रूप से है। उसने स्वय और अपने बच्चे को अच्छे कपडे पहनाये और अपने पति के पुर्नमिलन की प्रतीक्षा करने लगी। कुछ अफसरों ने उसे बताया कि डा० बारट्रम के कल आने की आशा है, परन्तु वह कभी नहीं आया। अन्त मे उसे भयकर सत्य का पता लगा और वह था कि रेजिडेंसी के दरवाजे के ठीक बाहर उसका पति मार दिया गया था। उसका बच्चा भयकर रूप से निर्बल और दुबला-पतला था और उसमे जो कुछ शक्ति थी वह भी घेरे के समय पोषण के अभाव मे समाप्त हो गई थी। बेचारा बच्चा कलकत्ते मे मर गया और श्रीमती बारट्रम ने, अपने पति और इकलौते बच्चे से विरहित होकर अपने घर को अकेले यात्रा की।[९२] युद्ध पीडित हृदयो और टूटे घरो का कोई हिसाब नहीं रखता। ग़दर के कारण गोरे और काले लोगों की समान रूप से क्षति हुई।

रेजिडेंसी की उल्लास-भावना शीघ्र ही एक सामान्य निराशा की भावना मे परिवर्तित हो गई। श्रीमती केस २७ सितम्बर को लिखती हैं, "सब कुछ होने के बाद यह दिन अत्यन्त पीडाजनक रहा है, हर एक निराशा है और सब यह अनुभव कर रहे हैं कि वस्तुत' हमे विश्रान्ति नहीं मिली है। जो लडने वाले आदमी हमारे पास हैं, वे हमारी आपातिक अवस्था के लिए बहुत थोडे हैं और जितनी खाद्य सामग्री हमारे पास दुर्ग-सेना मे है उसके लिए आदमी बहुत अधिक हैं।" यह सूचना दी गई थी कि बाहर घेरा डालने वालो की सख्या एक लाख थी और नानासाहब उनके साथ था।[९३] दुर्ग-सेना को अभी यह पता न था कि ऊटरम आलम बाग जाने की और यहा और अधिक सेनाओ के आने की प्रतीक्षा करने के बारे मे गम्भीरतापूर्वक सोच रहा था। स्त्रियो, बच्चो और बीमारो को हटाना उसकी शक्ति के बाहर था और खाई मे अधिक देर तक ठहरना उसकी अल्प सामग्री को जल्दी समाप्त करना था। २ अक्तूबर को जनरल इगलिस ने अपनी पत्नी को विश्वास मे लेकर उससे यह कहा, "आज सवेरे जान ने मुझे बात करने के लिए बुलाया और मुझे एक बात बताई, जिसका पता केवल उसे, मि० कूपर को और दो सेनापतियों को है। वह यह है कि हमको सहायता देने के लिए जो सेना आई है, वह हमे खाद्य सामग्री के अभाव के कारण छोड कर जाने वाली है। यह सघर्ष और लडाई करती हुई आलम बाग पहुचेगी और वहा तब तक प्रतीक्षा करेगी जब तक और अधिक सैन्य दल न आ जाए।"[९४] परन्तु शीघ्र ही यह पता चला कि शहर मे होकर उनका जाना सम्भव न होगा और खाद्य सामग्री इतनी कम नहीं थी, जितना कर्नल इगलिस को भय था। सर हेनरी लारेंस का गुप्त अन्न-भण्डार जो स्नानागार मे बन्द था, अन्त मे खोद लिया गया और यह पाया गया कि राशन मे कमी करके ऊटरम के आदमियो को वहा रखना सम्भव होगा।

---

९२ इगलिस, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २२५-२६। स्वय श्रीमती बारट्रम का वर्णन "विडोज़ रेमिनिसेंसेज आफ दि सीज आफ लखनऊ" मे मिलेगा

९३ केस, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २१०-२१८

९४ इगलिस, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १७४-७५

राशन मे एकदम कमी कर दी गई। अब कमिसरियत आटा नहीं दे सकता था। इसके बजाय गेहूं दिया जाने लगा, और हर एक को अपने आप ही उसे पिसवाना पडता था। दाल बिल्कुल बन्द कर दी गई, नमक मे कमी की गई और हड्डियो सहित केवल ६ औंस गो-मांस प्रतिदिन दिए जाने की अनुमति दी गई। इसमे कोई आश्चर्य नहीं कि समर्थ शरीर के व्यक्तियो को भूखा रहना पड़ता था, जब तक कि वे अपने अल्प भोजन की पूर्ति अन्य किसी साधन से न करें। रीज स्वीकार करता है कि एक बार उसने अपने अनुपस्थित मित्र की मेज से, जिस पर वह नाश्ता कर रहा था, एक अच्छी चबाई हुई हड्डी ले ली और बाद मे उसे साफ कर गया।[९५] कभी-कभी वह कठिनता से एक अतिरिक्त चपाती प्राप्त कर लेता था, परन्तु किस प्रकार, यह वह हमे नहीं बताता। फिर भी दुर्ग-सेना मे ऐसे आदमियो की कमी न थी जो सबकी विपत्ति से पैसे बना रहे थे। ऊटरम के आने के बाद जब अंग्रेजो की स्थिति मे सुधार हुआ और कुछ महल लूटे गए, तो जवाहरात और शालो, रेशम और गोटे तथा तसवीरो और चमकदार पाण्डुलिपियो के साथ-साथ खाद्य पदार्थों के भण्डारो को भी व्यापारिक प्रवृति के दूरदर्शी लोगो ने इकट्ठा किया। ऐसे ही एक आदमी ने चाय, तम्बाकू, साबुन और कुछ इसी प्रकार की आवश्यक वस्तुओ के कई डिब्बे प्राप्त करने मे सफलता प्राप्त की और केवल इन्हीं से उसने एक हजार पौण्ड से अधिक नकद रुपये कमाए। ३ अक्तूबर को शक्कर किसी कीमत पर नहीं मिल सकी। एक सेर के लिए पच्चीस रुपये लगाए गए, परन्तु नहीं मिल सकी। ब्राडी की एक बोतल २५ रु० की थी, और श्रीमती इंगलिस कुछ साबुन लाई, "बादामी रंग के एक साधारण-से छोटे टुकडे की कीमत ४ रु० थी।"[९६] दो सप्ताह तक साबुन बिल्कुल नहीं मिला और उनकी जगह "बेसन" का प्रयोग किया गया।"[९७] कर्नल इंगलिस ने सामग्री का एक छोटा भण्डार इकट्ठा कर लिया था, इसलिए उसके विभाग के आदमी अन्य लोगो की अपेक्षा कुछ अधिक अच्छी हालत मे थे, परन्तु उन्हें भी केवल "गो-मास, चावल, दाल और चपातिया" ही मिलती थीं।

२४ ता० को राशन में और कमी करने का निश्चय किया गया, ताकि सामग्री

---

९५ रीज, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २५६। परन्तु हैवलाक के आने के ठीक पश्चात् दुर्ग-सेना की इतनी बुरी अवस्था न थी। रीज कहता है, "हैवलाक के आने के कुछ दिनो बाद तक हमारे पास बहुत-सी अच्छी चीजों की बहुतायत थी। मास को पकाने तथा कढ़ी बनाने के लिए मैंने मसालो को दिए जाते देखा और चूंकि हमे अपने बदीगृह से पूरी मुक्ति की आशा थी, इसलिए अपनी थोडी सब्जियो को हम कुछ-कुछ अधिक मात्रा मे खाने लगे क्योंकि अपने अपरिवर्तित मादे और अपरिष्कृत गो-मांस और दाल के बाद वे हमे बड़ी स्वादिष्ट मालूम पड़ती थीं।" पृ० २५४-५५

९६ केस, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २२१-२२

९७ वही, पृ० २३६। श्रीमती केस ने इसे साबुन के स्थान पर प्रयुक्त करने का सबसे अच्छा पदार्थ पाया। श्रीमती हैरिस ने अपनी साबुन की अन्तिम टिकिया १५ अक्तूबर को समाप्त की। ए लेडीज डायरी आफ दि सीज आफ लखनऊ, पृ० १३८

पहली दिसम्बर तक चल सके। दो दिन बाद श्रीमती केस लिखती हैं, "अब हम प्रति-व्यक्ति हर दिन दो चपातियो से शुरू कर रहे हैं और केवल दो चने की रोटिया हम सबको मिलती हैं। मैं अन्य किसी चीज की अपेक्षा साबुन की कमी से अधिक दुखी हूं।"[९८] सर जेम्स ऊटरम ने एक आदमी को १,००० रु० देकर कुछ चीनी लाने भेजा, परन्तु वह फिर लौट कर नहीं आया।[९९] डा० फेरिर ने अपने घर के निवासियो को एक नई चीज देकर रोज-रोज के एक ही प्रकार के भोजन मे कुछ परिवर्तन करने का प्रयत्न किया। श्रीमती जरमन ने अपनी डायरी मे १८ अक्तूबर को लिखा, "मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आज हमे चटक चिडिया की बनी कढ़ी, रात के भोजन मे मिलने जा रही है। डा० एफ० ने इसके लिए १५० चटक चिडिया मारी थीं। बहुत से लोगो ने कहा कि कढी बहुत स्वादिष्ट थी, परन्तु मुझे इसकी परीक्षा की प्रेरणा नहीं हुई।"[१००] जुलाई मे एक मोर को बिना हानि के छोड दिया गया था, परन्तु अक्तूबर मे कढी की एक तश्तरी के लिए १५० चटक चिडियो की हत्या की गई थी। नवम्बर मे यदि भूखे सिपाही एक चपाती और अधिक लेते थे तो एक रुपया उसकी कीमत के रूप मे रख देते थे। एक बार "कुछ बन्दूकधारी सिपाहियो ने, जो पहरा दे रहे थे, कर्नल इगलिस के दो मेमनो और श्रीमती कूपर के एक बडे बकरे को मार डाला।"[१०१] परन्तु इन स्त्रियो ने चू तक नहीं की। श्रीमती केस की बहन केरोलिन अपने चचेरे भाई को ६ नवम्बर को लिखती हैं, "पिछले चार महीनों से हम गो-मास और चावल पर रह रहे हैं। सब्जी हमे बिलकुल नहीं मिली। अब हमे कभी-कभी एक हरी जडी मिल जाती है जो पालक से मिलती-जुलती है और खूब स्वादिष्ट होती है। मुझे चावल अच्छे लगते हैं और उनसे कभी ऊबती नहीं। दो या तीन बार को छोडकर मास भी अच्छा और कोमल मिला है। फिर भी मैं आदमियो को इसके बारे मे बहुत शिकायत करते देखती हू। इस पिछले सप्ताह मे हमे बकरे का कुछ गोश्त भी मिला है। रोटी की बजाय हम चपाती खाते हैं, जो देशी लोगो का भोजन है। जबसे हमने अपने राशन मे कमी की है और सुना है कि हमे अपनी सामग्री पहली दिसम्बर तक चलानी है, तब से हमने प्रतिदिन चपातियों की एक निश्चित सख्या तक अपने को सीमित कर लिया है। हमारे पास खाने के लिए पर्याप्त है और यह आश्चर्य है कि इतने लम्बे समय तक हमारी खाद्य सामग्री चल सकी है, विशेषत जब कि हम सोचते हैं कि हमारी सख्या मे नई सेना ने भी आकर वृद्धि की है।"[१०२]

इसी बीच मानसिंह की समझौते की बातो का कुछ परिणाम नहीं निकला। यद्यपि वह ऊपर से अंग्रेजो की अधीनता स्वीकार करता था, परन्तु निश्चित रूप से वह अपने आपको किसी पक्ष से बाधना नहीं चाहता था। स्पष्टत वह दोनो युद्धकारियों से अच्छे

---

९८ केस, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २५०

९९ वही, पृ० २४७

१०० ए डायरी केप्ट बाई मिसेज आर० सी० जरमन एट लखनऊ, पृ० १०८

१०१ केस, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २६३

१०२ वही, पृ० ६५-६६

सम्बन्ध रखना चाहता था, जब तक कि युद्ध एक निर्णयात्मक मोड़ न ले। जुलाई मे उसने एक परिपत्र अपने ताल्लुकेदार बन्धुओ के पास भेज कर उनसे यह कहा था कि वे अंग्रेजो की सहायता करें। ऐसा मालूम नहीं होता कि इस पत्र ने उनके निर्णय को किसी हद तक प्रभावित किया हो, परन्तु लखनऊ के पड़ोस को छोडने से पूर्व उसने सीतापुर की कुमारी मेडेलिन जैक्सन और श्रीमती ओर के, जो दोनो विद्रोहियो की अभिरक्षा मे थीं, बचाव के प्रबन्ध मे सहायता दी। उसके कारिन्दे को इसके लिए प्रचुर इनाम दिया गया।[103] ऊटरम के आने का स्पष्ट उद्देश्य यह था कि लखनऊ मे स्थानीय बड़े लोगो की एक अस्थायी सरकार का निर्माण किया जाए, जो तब तक अंग्रेजो की ओर से उस स्थान को रखे रहे जब तक कि अंग्रेज दुबारा उस पर अधिकार न कर लें और इस बीच लखनऊ से दुर्ग-सेना को हटा लिया जाए। परन्तु ऊटरम लखनऊ को छोडने के पक्ष मे नहीं था, क्योकि उसे भय था कि ऐसा करने से अवध और रुहेलखण्ड के अनेक सरदार, जो इस समय ऊपर से अच्छा व्यवहार दिखा रहे थे, इस निष्कर्ष पर पहुंच जाएंगे कि अवध में अब अंग्रेजी राज्य समाप्त हो गया है। परन्तु उसने शीघ्र ही अनुभव कर लिया कि स्त्रियो, बच्चो और बीमारो को बाहर निकाल कर ले जाना व्यावहारिक नहीं था और आलम बाग के साथ सम्पर्क स्थापित करना भी सम्भव नहीं था। स्पष्टतः जब तक सहायता-सेना न आए उसे प्रतिरक्षात्मक कार्यवाही तक ही अपने को सीमित रखना था, परन्तु ऊटरम यह अनुभव करता था कि यदि रक्षा-पंक्तियो को बढा दिया जाए तो प्रतिरक्षा का कार्य आसान हो जाएगा। इसलिए कुछ छोटे-छोटे आक्रमण किए गए और पडोस के कुछ मकानो पर अधिकार कर लिया गया, जिससे अब उनकी पुरानी स्थिति विद्रोहियो की गोलाबारी से सुरक्षित हो गई। ऊटरम का बाहरी ससार के साथ भी सम्पर्क था। उसे नाना के सैन्य दलो और ग्वालियर-सैनिक-टुकड़ी के कालपी मे जमाव के बारे मे पता लगा और उसने प्रधान सेनापति को सलाह दी कि लखनऊ को सहायता देने से पूर्व कानपुर को सुरक्षित बनाना चाहिए। घेरा डालने वालो ने अपने को मुख्यत. सुरगें लगा कर आक्रमण करने तक सीमित कर लिया था, परन्तु उनकी कई सुरगें वास्तविक चिन्ता पैदा कर देती थीं। ऊटरम की वास्तविक चिन्ता भोजन के बारे मे थी। २८ अक्तूबर को उसने लिखा, "राशन को और अधिक घटा कर हम किसी प्रकार नवम्बर के अन्त तक काम चला सकते

---

१०३ यह मानसिंह ही था जिसने दारोगा वाजिदअली की सेवाओं को प्राप्त किया। वाजिदअली और मानसिंह के कारिन्दे या अभिकर्ता अनन्तराम ने ही मौलवी के शिविर मे होकर (७ मार्च, १८५८) श्रीमती ओर के बच्चे को सलामती से ले जाने की तरकीब की और उन्होंने ही श्रीमती डाइन तथा उसके परिवार के भागने का प्रबन्ध किया। जब मानसिंह चिनहाट चला गया तो सर जेम्स ऊटरम के निर्देश पर कुमारी एम० जैक्सन तथा श्रीमती ओर से पत्र-व्यवहार प्रारम्भ हुआ। वाजिदअली को नकद एक लाख रु० का इनाम मिला। अनन्तराम को ५ हजार का इनाम मिला और उसके साथ ही ५६० रु० के सरकारी लगान पर २,४१७ रु० की एक जायदाद और मिली। पोलिटिकल कन्सल्टेशन्स, सं० ८८६-८६१, ३० दिसम्बर, १८५६ (अनुपूरक)

हैं।" परन्तु उसे इतनी देर नहीं ठहरना पड़ा। सहायता महीने के मध्य तक आ गई और सहायता-सेना अपने साथ पर्याप्त खाद्य सामग्री लाई।

७ नवम्बर को एक सन्देशवाहक कानपुर से मेजर ब्रूस का एक पत्र लेकर आया। इसमे लिखा था कि सर कोलिन कैम्पवेल स्वय एक शक्तिशाली सेना लेकर आ रहा है और तीन दिन मे उसके आलम बाग पहुचने की आशा है। सर कोलिन कैम्पवेल ने सन् १८०८ मे सेना मे प्रवेश किया था और विमीरा के युद्ध मे अग्नि से उसका वप्तिस्मा संस्कार हुआ था। उसने वेस्ट इण्डीज़ मे सेवा की थी और चीन मे भी वह लडा था। जब वह भारत मे सन् १८४६ मे पहुचा तो वह परिपक्व योग्यता और प्रतिष्ठित यश का एक सिपाही था। वह चिलियावाला और गुजरात मे उपस्थित था और पेशावर डिवीज़न की कमान उसके हाथ मे थी। लार्ड डलहौजी के साथ मतभेद हो जाने के कारण उसने आधे वेतन पर अवकाश ग्रहण कर लिया। परन्तु क्रीमिया के युद्ध ने उसे फिर सक्रिय सेवा मे वापस बुला लिया। ११ जुलाई, १८५७ को उसे भारतीय सेना का प्रधान सेनापति बनाया गया और एक दिन की सूचना पर उसने भारत के लिए प्रस्थान कर दिया। १३ अगस्त को वह कलकत्ता आया। सिपाही-युद्ध के इतिहास मे यह एक विषम महीना था। उसने एकदम युद्ध-क्षेत्र के लिए प्रस्थान नहीं किया, बल्कि अपने आपको प्रशासनिक और सगठनात्मक कार्य मे लगाया। जब अतिरिक्त सैन्य दल इग्लैण्ड से आए तो वे तत्काल देश के उत्तरी भाग मे भेज दिए गए क्योंकि उनके लिए परिवहन, तम्बुओं के सामान, अस्त्र-शस्त्र और गोलाबारूद सब तैयार थे। २७ अक्तूबर को वह कलकत्ते से चल दिया। बनारस और इलाहाबाद के बीच अपने मार्ग मे वह शत्रुओं के द्वारा पकड़े जाने से बाल-बाल बचा। इलाहाबाद मे उसे ज्ञात हुआ कि ऊटरम घटे राशन पर नवम्बर के अन्त तक डटे रहने को तैयार था। प्रधान सेनापति ३ नवम्बर को कानपुर पहुचा। उसे एकदम यह निश्चय करना था कि उसे पहले लखनऊ की सहायता के लिए जाना है या ग्वालियर-सैनिक-टुकडी के विरुद्ध अभियान करना है, जो कानपुर को खतरा उत्पन्न कर रही थी। उन्होने कालपी मे अपनी सेना का जमाव कर रखा था और यह सूचना थी कि नाना उनसे मिलने जा रहा है। यह सम्भावना थी कि प्रधान सेनापति की अनुपस्थिति मे कानपुर पर आक्रमण हो जाए। उस दशा के लिए वह कानपुर मे पर्याप्त सैन्य दल नहीं छोड सकता था। साथ ही उसे यह भी आशंका थी कि यदि लखनऊ की भूख-पीडित दुर्ग-सेना को शीघ्र ही सहायता नहीं दी गई तो वह अपनी चौकी पर अधिकार कायम नहीं रख सकेगी। इसलिए उसने विढम को एक छोटी सैनिक टुकडी के साथ कानपुर में छोड दिया और स्वयं लखनऊ के लिए चल दिया। विढम को यह आदेश दिया गया था कि "यदि कानपुर की ओर शत्रु बढ़े तो उसे सर्वोत्तम सम्भव ढग से सामना करना चाहिए, परन्तु उसे आक्रमण करने के लिए बाहर नहीं जाना चाहिए, जब तक कि बमबारी के भय से उसे इसके लिए बाध्य न कर दिया जाए।"

कैम्पवेल ९ नवम्बर को कानपुर से चल दिया। उसके पास एक अत्युत्तम घेरा डालने के युद्ध मे कुशल सैनिक दल था, जिसमे पील के नौसैनिक ब्रिगेड के नाविक तथा घुडसवार सेना की एक टुकड़ी तथा घुडसवार तोपखाने के आदमी थे जिनका नेतृत्व होप-

ग्रांट कर रहा था। दिल्ली के पतन के कारण ब्रिगेडियर विलसन दो सैनिक दस्तो को भेजने में समर्थ हो गया था, जिनमें से एक कर्नल ग्रेटहेड की कमान मे बुलन्दशहर और अलीगढ़ होता हुआ आगरे की ओर बढ़ा। आगरे मे ग्रेटहेड ने इन्दौर के विद्रोहियो को हराया, जो शहर में अचानक घुसना चाहते थे। इसके बाद उसका सैनिक दस्ता कानपुर के अपने मार्ग पर आगे बढ़ा। फिरोजाबाद मे कर्नल होप ग्रांट ने कमान संभाली और सैनिक दस्ता अक्तूबर के अन्तिम सप्ताह मे कानपुर पहुंचा। इसके बाद होप ग्रांट ने आलम बाग के लिए अभियान किया और बंटेरा मे एक विद्रोही सेना से युद्ध किया। उसने बीमारों और घायलो को आलम बाग से कानपुर ले जाने का प्रबन्ध किया और प्रधान सेनापति के आदेशो के अनुसार उसने बंटेरा मे पड़ाव डाला, जहां प्रधान सेनापति ३५ मील के कड़े अभियान के बाद उससे मिला। सर कोलिन कैम्पबेल के पास समय कम था। इससे पूर्व कि विद्रोही सेना, जो उस समय कालपी में थी, कानपुर पर हमला करे, वह वहां लौट आना चाहता था।

कैम्पबेल जानता था कि यदि उसे एक ऐसा यूरोपीय मार्ग-दर्शक मिल जाए, जो उस भूमि से परिचित हो तो उसका काम पर्याप्त आसान हो जाएगा। थामस हेनरी कैवेने, जो लखनऊ के घेरे में घिरा हुआ एक आदमी था, स्वेच्छापूर्वक एक भारतीय गुप्तचर के साथ प्रधान सेनापति के शिविर मे जाने को तैयार हो गया। लखनऊ मे डिप्टी कमिश्नर के कार्यालय मे वह एक क्लर्क था, परन्तु घेरे ने प्रत्येक असैनिक व्यक्ति को सैनिक बना दिया था। उसने उस गुप्तचर को खोजा, जो ऊटरम के प्रेक्षण-पत्र और योजनाओं को ले जाने वाला था, परन्तु इस आदमी ने एक यूरोपीय साथी को अपने साथ ले जाने मे हिचकिचाहट अनुभव की। उसने सोचा कि अकेला तो वह शहर और चौकियो से ठीक प्रकार बचकर निकल सकेगा, परन्तु कैवेने की ऊंचाई के व्यक्ति के लिए कोई भी वेश-परिवर्तन कारगर न होगा और फिर उसके नीले नेत्र तो सब कथा कह देंगे। फिर उसका उच्चारण आसानी से उसकी पहचान करा देगा। अंगद ने अब काम करना बन्द कर दिया था। उसकी जगह नया स्काउट कनौजी लाल काम कर रहा था। अंगद तो एक सिपाही भी था, परन्तु कनौजी लाल वैसा नहीं था। विद्रोह के पहले वह एक कचहरी में नाजिर के रूप मे काम किया करता था और उसके पेशे का आदमी साधारणतः गुप्त वार्ता-विभाग से अपना कोई सम्बन्ध नहीं रखता था। परन्तु असाधारण परिस्थितियों से मनुष्य मे असाधारण गुण की आवश्यकता होती है और कनौजी लाल ने, कैवेने की तरह, गदर में अपनी साहसी भावना के लिए मौका पाया। कनौजी लाल से यह अनुरोध करके कि वह उसे अपने साथ चलने दे, कैवेने, नेपियर के पास गया। नेपियर ने इस साहसपूर्ण कार्य को व्यावहारिक नहीं समझा, परन्तु कैवेने का परिचय उसने सर जेम्स ऊटरम से कराया। ऊटरम ने पहले उसके विचार को निरुत्साहित कर दिया, यद्यपि वह यह अनुभव करता था कि कैवेने जैसे व्यक्ति की सेवाएं, जो शहर की प्रतिरक्षा के सम्बन्ध में इतनी अच्छी तरह जानता था, सहायता के लिए जाने वाली सेना के लिए अनमोल सिद्ध होगी। परन्तु जब उसने देखा कि कैवेने अपने संकल्प से डिगता नहीं तो उसने उसे जाने के लिए अनुमति दे दी। कैवेने ने अपने चेहरे और हाथो को लैम्प की

कालिख से पोत लिया और एक रगीन देशी पोशाक पहनी—एक पीला रेशमी कुर्ता, लाल पगडी, चुस्त पायजामा और देशी जूते। वह बिलकुल एक लखनऊ का बदमाश दिखाई पडने लगा और नेपियर उसे पहचान नहीं सका। इससे पहले कि कैवेने ने रात्रि के अन्धकार मे प्रस्थान किया, ऊटरम ने उसे एक बार और रगा। अग्रेजी सेना-पक्तियो मे होकर जाना कठिन नहीं था। दोनो आदमी नदी के पानी मे घुसकर उसके बाए किनारे पर होते हुए चले, और इस प्रकार वे पत्थर के पुल पर आए जहा उन्होंने शहर जाने के लिए नदी को पार किया। सडकों पर न तो भीड थी और न ठीक प्रकाश था, इसलिए वे सुरक्षापूर्वक बाहर खेतो मे पहुच गए। वहां वे मार्ग भूल गए और गलती से दिलकुशा बाग मे पहुच गए। उनकी यात्रा साहसिक कार्यो से भरी थी। एक बार एक सोते हुए गाव मे उन्होंने कुत्तो को जगा दिया, इस पर उनके झुण्ड के झुण्ड उनके पीछे भौंकते हुए दौडे। दो स्त्रियों ने तब उन्हें ठीक मार्ग पाने मे सहायता दी। इसके बाद वे सैनिक पुलिस के एक दल से मिले जहां उनसे कुछ प्रश्न पूछे गए और वे छोड दिये गए। इसके बाद वे एक दलदल मे फस गए और घुटने तक गहरे पानी मे उन्हें पूरे दो घण्टे तक चलना पडा। कैवेने के अनभ्यस्त पैर थक गए और उसके हाथों से रग छूट गया। कनौजी लाल की डाट-फटकार के बाद भी वह एक पग भी आगे नहीं बढा और उसने १५ मिनट तक विश्राम किया। फिर उन्हें कुछ ग्रामीण लोग मिले, जो अग्रेजों के भय से भागे जा रहे थे। जब रात समाप्त होने को थी और चादनी शीघ्रता से ढल रही थी, वे एक आमो के बाग मे आए। कैवेने आगे चलने मे बिलकुल असमर्थ था और उसने एक घण्टे सोने का आग्रह किया, परन्तु कनौजी लाल दिन निकलने से पूर्व अग्रेजी शिविर मे पहुचने को व्यग्र था। परन्तु उसका साथी आगे बढने मे बिलकुल असमर्थ था। उसने उसे एक मार्ग-दर्शक की खोज मे भेजा। जब भारतीय चला गया तो अग्रेजी घुडसवार सेना की एक चौकी के सिख घुडसवार ने अग्रेज को चुनौती दी। उसका इतना अच्छा भाग्य था कि ठोकर लगकर वह ठीक स्थान पर ही जा गिरा। सिखों ने प्रधान सेनापति के शिविर के लिए उसका मार्ग-दर्शन किया। "जैसे ही मैं दरवाजे पर पहुचा, एक कठोर चेहरे वाला प्रौढ़ आयु का आदमी बाहर निकला। मैं उसके पास गया और उससे सर कोलिन कैम्पबेल के बारे मे पूछा।" बुड्ढे आदमी ने कहा, "मैं ही सर कोलिन कैम्पबेल हू।" कैवेने ने अपनी पगडी मे से सक्षिप्त परिचय-पत्र निकाला, जिसे ऊटरम ने उसे दिया था। पहले से निश्चित एक सम्मिलित सकेत दिया गया जिसने रेजिडेंसी के चिन्तित आदमियों को यह सूचना दी कि कैवेने का उद्देश्य सफल हो चुका है। यद्यपि वह सेना का आदमी नहीं था, फिर भी उसकी वीरता के कारण उसे विक्टोरिया क्रास प्रदान किया गया। भारत सरकार ने उसे बीस हजार रुपए का नकद इनाम भी दिया और उसकी पद-वृद्धि एक सहायक कमिश्नर के रूप मे कर दी गई—"महान पुरस्कार, परन्तु सचमुच वह इससे भी कहीं अधिक पुरस्कारों का अधिकारी था।"[१०४] कैवेने के मार्ग-दर्शक कनौजी लाल को बाद मे तहसीलदार बना दिया गया।

---

१०४. नार्मन, फारेस्ट द्वारा उद्धृत, ए हिस्ट्री आफ दि इण्डियन म्यूटिनी जिल्द, २ पृ० १२७

उसे ५,००० रु० का नकद इनाम मिला और ८३७ रु० वार्षिक आमदनी के गांव उसे दे दिए गए। अंगद तिवारी को उसकी प्रत्येक सफल यात्रा के लिए नकद इनाम दिया गया। केवल अपनी अन्तिम यात्रा के लिए उसे पाच हजार रुपए मिले, जो उसकी स्थिति के आदमी के लिए एक बहुत बडी रकम थी। उसने लगान-मुक्त जमीन के लिए माग नहीं की, परन्तु उसे तीन हजार रुपए की एक जायदाद भी दी गई।[१०५]

सर कोलिन रेजिडेंसी की ओर आगे बढने मे लखनऊ की पीड़ाजनक सड़को से बचना चाहता था। यद्यपि उसके पास उससे बहुत अधिक शक्तिशाली सेना थी, जितनी सितम्बर मे ऊटरम और हैवलाक के पास थी, फिर भी उसने असाधारण सैनिक खतरो का मोल लेना अस्वीकार कर दिया। उसने १३ नवम्बर को आलम बाग से प्रस्थान किया और दिलकुशा और मार्टिनियर पर अधिकार करने के पश्चात् उसके सैन्य दलो ने वहां रात बिताई। उसका वास्तविक लक्ष्य मोती महल था, जहां सम्मिलित रूप से तैयार की गई पूर्व योजना के अनुसार ऊटरम को उससे मिलना था। फिर भी शत्रु को भ्रम मे डालने के लिए उसने बेगम कोठी पर गोलाबारी शुरू की। १६ ता० को कोलिन ने नहर को उसके गोमती मे मिलने के स्थान पर पार किया और सिकन्दरा बाग पर चढ़ाई की। विद्रोही नेताओ ने इस दिशा से किसी आक्रमण की आशंका नहीं की थो और दूसरी तरफ के दरवाजे बन्द कर दिए गए थे। सिकन्दरा बाग की रक्षा करने वाले सिपाहियो के पास तोपें नहीं थीं, परन्तु दीवालें मजबूत थीं और वे अन्त तक दृढ संकल्प के साथ लड़े। छोटी बन्दूकों का भारी तोपखाने से कोई मुकाबला न था और आक्रमण द्वारा स्थान पर अधिकार कर लिया गया। जाल मे फंसकर सिपाही अन्तिम आदमी तक मारे गए और उनके दो हजार मृत पुरुष बाग मे इधर-उधर पड़े थे। वैयक्तिक वीरता के अनेक महान कार्य इस युद्ध मे किए गए और कई लोग बाल-बाल भी बचे। लार्ड राबर्ट्स ने मुकर्रब खां नामक एक पंजाबी मुस्लिम की वीरता का साक्ष्य दिया है। दरवाजे के भारी किवाड़, जिनमें होकर सिपाहियो का एक गिरोह पीछे हट रहा था, आक्रमणकारी सैन्यदलो के विरुद्ध बन्द ही किए जाने वाले थे, जब कि मुकर्रब खा ने, "अपना बाया हाथ, जिसमे वह एक ढाल पकड़े था, उनके बीच मे घंसा दिया जिससे किवाड़ बन्द नहीं हो सके। तलवार से कटने के कारण जब उसका हाथ बुरी तरह घायल हो गया, तो उसने उसे बाहर खींचा और एकदम दूसरा हाथ घंसा दिया और इस प्रकार उसका दाया हाथ भी कट कर अलग हो गया।"[१०६] मुकर्रब खा की वीरता की स्वीकृति में उसे "आर्डर आफ मैरिट" का पदक प्रदान किया गया, क्योकि विक्टोरिया क्रास के लिए भारतीय अधिकारी नहीं माने जाते थे।

कदम रसूल और शाह नजफ को दुबारा अधिकार मे किया गया। शाह नजफ अवध के एक भूतपूर्व शासक की कब्र थी और इसकी मजबूत दीवालो मे आसानी से छेद

---

१०५. पुरस्कृत व्यक्तियो की सरकारी सूची देखिए

१०६. राबर्ट्स, फोर्टी-वन ईयर्स इन इण्डिया (एक जिल्द वाला सस्करण, १६०८), पृ० १८१

नहीं किए जा सकते थे। अचानक ६३वीं रेजीमेण्ट के कुछ सिपाहियो ने पीछे की दीवाल मे एक छोटा-सा छिद्र देखा और प्रवेश कर लिया गया। इसी समय ऊटरम ने मोती महल के बीच के भवनों को उडा दिया था और १७ ता० को घेरे मे पडे लोगों को सहायता-सेना मिली, जिसके ४६६ अफसर और जवान चार दिन के युद्ध-कार्यों मे हताहत हो चुके थे। घायल लोगों मे स्वय प्रधान सेनापति भी था।

अन्त मे लखनऊ की रक्षा कर ली गई और घेरे मे पडे लोग अब स्वतन्त्रता के मधुर फल और जीवन के आनन्द का उपभोग करने मे स्वतन्त्र थे। "एक सतरा लाया गया, वह बहुत स्वादिष्ट लगा। एक डबल रोटी और कुछ ताजा मक्खन हमे दिया गया। हमने इस सादे भोजन को इतने स्वाद के साथ खाया, जितना किसी रसिक आदमी ने भी कभी न खाया होगा। हमे कुछ रम (शराब) दी गई। सर्वोत्तम शराब भी कभी इतने आनन्द के साथ नहीं पी गई होगी। परन्तु इससे भी बडा एक आनन्द प्राप्त होना था। अनेक गाड़ियो पर लदे पत्र और अखबार आ पहुचे थे।"[१०७] परन्तु विमुक्ति की यह प्रसन्नता कुछ लोगों के लिए बिछुडे प्रियजनों और दिवगत साथियो की दुखभरी स्मृतियों के कारण दुख मे परिणत हो गई। कितनी ही पत्नियां अपने पतियों के लिए शोक मना रही थीं, कितनी ही माताओं ने अपने बच्चों को कपडे की तह मे बांधकर खाई मे दफन किया था। उनकी परीक्षाएं समाप्त हो चुकी थीं, उनकी चिन्ताए अब मिट गई थीं। परन्तु विमुक्त पत्नियों और माताओ ने उस स्थान को शोक और भारी हृदय से छोडा। विजय का समय उनके लिए शोक का समय था। साधारण सैनिक भी प्रफुल्ल हृदय से अभिमान नहीं कर सकता था क्योंकि जब दुर्ग-सेना रेज़िडेंसी से चल रही थी तो हैवलाक अपनी मृत्यु-शय्या पर पडा था। सर कोलिन कैम्पबेल उससे १७ ता० को मिला और उसे पता चला कि उसकी प्रथम तीन विजयों के उपलक्ष्य मे उसे "नाइट कमाण्डर आफ दि आर्डर आफ बाथ" की उपाधि प्रदान की गई है। उसने अपनी पत्नी को लिखा, "२६ सितम्बर के कागज उसके (सर कोलिन कैम्पबेल के) साथ आए जिनमे मेरे प्रथम तीन युद्धों के उपलक्ष्य मे "कमाण्डर आफ दि बाथ" के रूप में मेरी पद-वृद्धि की घोषणा की गई है। तब से मैंने नौ युद्ध और लडे हैं।" युद्ध ने उसके स्वास्थ्य को बिलकुल गिरा दिया था और आवश्यक वस्तुओं के अभाव और रूखे-सूखे भोजन ने शेष काम पूरा कर दिया। पेचिश के लक्षण दिखाई पडने लगे और २० ता० को उसे दिलकुशा ले जाया गया। वह जानता था कि उसका अन्त समीप है और उसने अपने पुत्र को छोडकर किसी और को अपनी परिचर्या नहीं करने दी। हैवलाक एक महान सिपाही और कट्टर ईसाई था। सिपाही के रूप मे रण-क्षेत्र मे मृत्यु उसके लिए कोई भय की चीज नहीं थी और एक ईसाई के रूप मे वह कहीं भी किन्हीं भी परिस्थितियो मे मृत्यु का सामना करने के लिए तैयार था। उसने ऊटरम से कहा, "मैंने चालीस वर्ष से अपने जीवन पर इस प्रकार शासन किया है कि जब भी मृत्यु आएगी, मैं निर्भय होकर उसका सामना करूगा।" २४ नवम्बर को उसका स्वर्गवास हो गया और उसके अन्तिम अवशेष आलम बाग में शहर के पास एक पेड़ के

---

१०७. रीज़, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ३३७-३८

नीचे दफना दिए गए। उसके देशवासियो की दृष्टि मे इस स्थान के साथ उसका नाम सदा के लिए सम्बद्ध हो गया है। उसकी मृत्यु के दो दिन बाद उसे बैरन की उपाधि प्रदान की गई। इंग्लैण्ड की महारानी ने हाउस आफ कामन्स को भेजे गए एक राजकीय सन्देश में हैवलाक की प्रशंसा की। "महामहिम सम्राज्ञी, मेजर-जनरल सर हेनरी हैवलाक, बार्ट, के० सी० बी०, को अपने अनुग्रह और प्रशंसा का सूचक एक विशिष्ट पुरस्कार देने की इच्छुक हैं। यह उनकी उन प्रमुख और विशेषतापूर्ण सेवाओ के लिए दिया जाएगा जो सर हेनरी हैवलाक ने भारत में अंग्रेज और देशी सैन्य दलो की कमान को संभाल कर कीं और विशेषतः जिन वीरतापूर्ण और सफल युद्ध-कार्यों के द्वारा उन्होंने लखनऊ की दुर्ग-सेना को सहायता दी। महामहिम सम्राज्ञी हाउस आफ कामन्स से सिफारिश करती हैं कि उन्हें सर हेनरी हैवलाक के आयु पर्यन्त १,००० पौण्ड प्रति वर्ष की पेंशन देने के लिए प्रबन्ध करने की अनुमति दी जाए।"[१०८]

कैम्पबेल ने रेजिडेंसी पर अधिक देर तक अधिकार रखना बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं समझा। उसे तत्काल वहां से स्त्रियो, बच्चो और बीमारो को हटाना था। अपनी वास्तविक हलचल को छिपाने के लिए उसने कैसर बाग के विरुद्ध एक तोप लगा दी और जब रेजिडेंसी के निवासी अपनी बत्तियो को जलती छोड़कर चले गए, तो सिपाहियों को यह सन्देह तक नहीं हुआ कि रेजिडेंसी खाली कर दी गई है। वे रेजिडेंसी को खाली कर दिए जाने के बाद भी उस पर गोलाबारी करते रहे। ऊटरम चाहता था कि उस स्थान को छोड़ने वाला वह अन्तिम आदमी हो, परन्तु इंगलिस ने आग्रह करते हुए कहा कि अपने दुर्ग के दरवाजो को बन्द करने का अधिकार उसका है। परन्तु अन्तिम अंग्रेज जिसने खाई को छोडा कैप्टन वाटरमैन था। जब दुर्ग-सेना छोड़कर गई, वह गहरी नींद में सो रहा था। जब वह अचानक उठा तो चारो ओर उसने जो अस्वाभाविक सन्नाटा देखा उससे वह पीडित हो उठा। वह बाहर गया, परन्तु कोई दिखाई नहीं पड़ा। वह एक चौकी पर गया और उसे भी खाली पाया। तब वह मृत्यु के भय से इधर-उधर दौडने लगा और अन्त मे उसने पीछे हटते हुए सैनिक दस्ते के पीछे के भाग से सम्पर्क स्थापित कर लिया। यह कहा जाता है कि उसको इतना जबर्दस्त धक्का लगा था कि थोडी देर के लिए उसका दिमाग चल गया था। चार बन्दियों में से केवल दो अपने जेलर के साथ चलने के लिए बचे थे। घेरे के समाप्त होने से पूर्व ही रुक्नुद्दौला मर गया था और तुलसीपुर के तरुण राजा का तूफानी जीवन उसके आलम बाग पहुंचने से पूर्व ही समाप्त हो गया था। सर कोलिन समय को नष्ट नहीं कर सकता था, क्योंकि कानपुर फिर गम्भीर संकट मे था। उसने सर जेम्स ऊटरम को आलम बाग मे छोड़ दिया। इस चौकी को अंग्रेजों के लखनऊ लौटने की साई के रूप में अधिकार मे रखना था। कानपुर से कोई निश्चित सूचना नहीं आई। जब कैम्पबेल बन्नी पहुंचा तो दूर से तोपो की आवाज घोषणा कर रही थी कि ग्वालियर सैनिक टुकड़ी ने अन्ततः उस स्थान पर आक्रमण कर दिया है।

---

१०८. मार्शमैन, मेमोयर्स आफ़ मेजर जनरल सर हेनरी हैवलाक, के० सी० बी०, पृ० ४५३

ग्वालियर के विद्रोही एक लम्बे समय से निष्क्रिय रहे थे। जून मे ही उन्होने सशस्त्र विद्रोह कर दिया था। फिर इतने लम्बे समय तक उन्होने कार्य को क्यो रोके रखा, यह रहस्य है। जब इन्दौर के आदमियो ने आगरे पर अभियान किया तो उनके ग्वालियर के मित्र उनके साथ नहीं मिले। जब हैवलाक आदमियों की कमी के कारण महान संकट मे था, उस समय उन्होने कानपुर के विरुद्ध अभियान नहीं किया। यदि उन्होने उस समय उस पर आक्रमण करने का सकल्प कर लिया होता तो कानपुर खाली करना पडता और विद्रोहियों के उद्देश्य की प्रतिष्ठा बहुत अधिक बढ जाती। उन्होंने उस समय निष्क्रिय उदासीनता की प्रवृत्ति धारण कर ली, जब कि सैनिक महत्व के स्थान पर अधिकांश प्रतिरक्षक थे ही नहीं तथा हैवलाक और ऊटरम लखनऊ के लिए चले गए थे। एक विवेकी नेता ने निश्चयत उसी विषम क्षण मे वार किया होता। स्पष्टत ग्वालियर सैनिक टुकडी के भारतीय अफसरों मे एक भी ऐसा आदमी न था, जिसके पास देखने के लिए आख और योजना बनाने के लिए दिमाग हो और इस सेना के जवान सिंधिया के रुपयों के लाभ से ऊपर नहीं उठ सके। ग्वालियर के महाराजा के अंग्रेज मित्र उसे और उसके मुख्य मन्त्री सर दिनकरराव राजवाडे को विभिन्न उपायो से इस बात का श्रेय देते रहे कि वे विद्रोहियों को अपने पुराने स्थान पर निष्क्रिय रख रहे हैं। अंग्रेज लोगो के उद्देश्य के लिए यह कुछ कम सेवा न थी कि इतनी शक्तिशाली सैनिक टुकडी इतने लम्बे समय तक विद्रोहियों को प्राप्त नहीं हो सकी। यह सम्भव था कि वे आगरे के किले का घेरा डाल देते या दिल्ली के प्रतिरक्षकों से मिल जाते, जिसके लिए अभी समय था। यह भी सम्भव था कि वे आसपास के ग्रामीण क्षेत्र में छापा-मार युद्ध करते। परन्तु उन्होंने इस प्रकार का कोई कार्य नहीं किया। अक्तूबर मे उन्होंने अपनी सुस्ती हटाई और कालपी की ओर चले। मैलेसन कहता है कि दिल्ली के पतन के बाद जिस विश्रान्ति का अनुभव सिंधिया को हुआ उसके कारण उसकी चौकसी मे कमी आ गई और सैनिक टुकडी पर उसका प्रभाव समाप्त हो गया। तात्या टोपे ने, जिसे मैलेसन एक "थका हुआ, योग्य और चालाक आदमी" बताता है, उनके अनिश्चय का लाभ उठाया और उनकी कमान स्वयं धारण कर ली। दृश्य के पीछे वास्तविक रूप मे क्या हुआ, इसका हमे पता नहीं है। इसी समय कुवर सिंह भी बादा और कालपी के मार्ग मे था। हो सकता है कि तात्या के अभिकर्ता अन्तत ग्वालियर के आदमियों के निर्णय को प्रभावित कर सकते हों, परन्तु उन्होंने धीमे-धीमे और हिचकिचाहट के साथ काम किया। उनकी सख्या पाच हजार थी और तोपखाने के सिपाहियो का एक अच्छा दल उनके पास था। ९ नवम्बर को वे कालपी पहुचे और उन्होने तात्या की कमान मे अपने को रख दिया।

रामचन्द्र पाण्डुरंग, जिसका दूसरा नाम तात्या टोपे था, उन थोडे-से योग्य सैनिक नेताओं मे था जिन्हें गदर ने पैदा किया। वह एक देशस्थ ब्राह्मण था। उसका पिता बाजीराव के अनेक आश्रितों मे से एक था। तात्या अपने व्यक्तिगत रूप से नाना का अनुयायी था और स्वामिभक्ति और कृतज्ञता के बन्धनों से वह उसके साथ बंधा था। जोन लैंग, जिसने उसे बिठूर में देखा था, उसका इस प्रकार वर्णन करता है, "वह करीब मंझले कद का आदमी था, करीब ५ फुट ८ इच का, कुछ पतला-दुबला-सा, परन्तु बिलकुल

सीधा। वह देखने मे बिल्कुल सुन्दर नहीं लगता था। उसका मस्तक नीचा था, नाक नथुनो पर जरा चौड़ी थी और उसके दात अव्यवस्थित और भद्दे रंग के थे। उसकी आंखें अभिव्यक्तिमय थीं और चालाकी से भरी थीं, बहुत-से एशियावासियो की तरह। मुझे वह विशेष योग्यता का आदमी नहीं जान पड़ा।"[१०९] उसे सैनिक अनुभव कुछ नहीं था। सम्भवतः उसे उतना ही सैनिक प्रशिक्षण मिला था, जितना उसकी पीढी के एक औसत दर्जे के तरुण को मिलता था। परन्तु बाडा लगाने और गोली चलाने की अपनी कुशलता के आधार पर वह उस अप्रत्याशित कार्य को करने के लिए योग्य नहीं ठहर सकता था जो उसे अब करना था। स्पष्टतः उसने अपनी जाति के छापामार व्यूह-कौशल की स्वभाविक अन्तःप्रवृति को अपने पूर्वजो से पाया था और यह सुविदित था कि वह बडी कुशलतापूर्वक अपने अंग्रेज शत्रुओ को चकमा देकर उनसे बच कर निकल गया था, जबकि वे समझते थे कि उन्होने उसे सुरक्षित रूप से अपने जाल मे फंसा लिया है। नवम्बर १८५७ मे गति ही सफलता का विश्वास दिला सकती थी। यदि वह कानपुर १३ ता० को आ जाता जबकि कैम्पबेल लखनऊ मे व्यस्त था तो विंढम के निरस्त्र कर दिए जाने की, जो उस समय कानपुर की कमान सभाले था, पूरी सम्भावना थी। परन्तु १७ ता० को, जिस दिन सर कोलिन ने रेजिडेंसी मे प्रवेश किया, तात्या का आगे का सैन्य दल अभी अपने लक्ष्य से १५ मील दूर था।

विंढम ने अपना विजय-यश क्रीमिया मे प्राप्त किया था। साहस में वह किसी से कम न था। परन्तु उसके प्रधान ने उसे यह आदेश दे दिया था कि जब तक निर्विशेष रूप से आवश्यक न हो, उसे खाइयो के बाहर युद्ध नहीं करना चाहिए। १७ ता० को विंढम शहर से परे चला गया। उसने यह सोचा कि महत्वपूर्ण स्थानो पर जोरदार हमले के द्वारा वह विस्तृत रूप से शत्रु की सेना को हरा सकेगा और नगर और उसके पास के क्षेत्र को आग और लू से बचा सकेगा। इसी बीच लखनऊ से उसका सब सम्पर्क टूट गया। २४ ता० को विंढम ने कालपी सड़क और नहर के मिलने के स्थान पर डेरा डाल दिया और पहली चोट करने का इरादा किया। २६ ता० को उसने तात्या के सैन्य दलो के एक भाग को पीछे हटने पर विवश किया और वे अपनी दो तोपें पीछे छोड़ गए। परन्तु उसे मुख्य सेना का अभी सामना करना था। दूसरे दिन उसकी सैन्य चालो को विफल कर दिया गया। और उसकी सेना को हरा दिया गया। २८ ता० को विंढम की स्थिति और अधिक खराब हो गई और उसे जबर्दस्ती शहर छोड़कर खाई मे शरण लेनी पड़ी।

२८ ता० को तोप की गड़गड़ाहट से चेतावनी पाकर जब सर कोलिन कानपुर की ओर चला तो उसे एक पत्र दिया गया जिसमे उससे तत्काल सहायता की प्रार्थना की गई थी। इसके ठीक बाद ही क्रमशः दो संवाद आए, जिनमे से दूसरे मे यह बुरी खबर थी कि विंढम को खाई मे खदेड़ दिया गया है। प्रधान सेनापति ने अपने सैन्य दलो और मार्ग-रक्षको को पीछे छोड़ा और वह अपने कर्मचारीवर्ग के कुछ आदमियो के साथ घोड़े पर चढ़ कर तेज चाल से भागा। यह उसका सौभाग्य था कि नावो का पुल अभी वैसा ही अक्षत

१०९. लैंग, वाडरिंग्स इन इण्डिया एण्ड अदर स्केचेज, पृ० ४१०-११

था। जब उसने कानपुर के लिए नदी पार की तो अंग्रेजी सेना अपनी अन्तिम सास ले रही थी। परन्तु उसे सहायता मिल गई और तात्या ने यह अनुपम अवसर खो दिया।

कैम्पबेल एकदम हमला नहीं कर सका। जब तक कि मार्ग-रक्षक दल सडक पर नहीं पहुच गया, वह आगे नहीं बढ़ सका। मार्ग मे रक्षा करते हुए जिन स्त्रियो, बच्चो और बीमारो को वह अब तक अपने साथ लाया था, उनकी सुरक्षा वह अपना प्रथम कर्तव्य समझता था। परन्तु तात्या ने उसे इस प्रकार न छोडा। अंग्रेजी शिविर के विरुद्ध भारी गोलाबारी की गई और ४ दिसम्बर को उसने एक गम्भीर भूल को सुधारने का प्रयत्न किया। आग के बेडों के द्वारा उसने नावो के पुल को जलाने का प्रयत्न किया। परन्तु अब अधिक विलम्ब हो गया था और पुल पर कडा पहरा था। ६ दिसम्बर को कैम्पबेल ने तात्या पर चढाई की। उसकी योजना सरल थी। तात्या का केन्द्र करीब-करीब अभेद्य था और उसके बायें पार्श्व को आसानी से मोडा नहीं जा सकता था। इसलिए सर कोलिन ने उसके दाए भाग पर चोट करने का निश्चय किया और ग्वालियर की सैनिक टुकडी को नाना के सैन्य दलो से पृथक करके उन्हें विस्तृत रूप से नष्ट करने का निश्चय किया। सख्या की दृष्टि से तात्या की सेना उसके शत्रु की सेना की अपेक्षा अधिक थी, परन्तु जिन तत्वों से वह निर्मित थी वे असमान योग्यता के थे। नाना के अनुयायी, जिनकी सख्या अनुमानत १०,००० थी, नए रगरूट थे। विद्रोही सेना पर अचानक आक्रमण किया गया। वे अपने नाश्ते का भोजन पका रहे थे और उनकी चपातिया तवे पर सिक ही रही थीं, जबकि उनपर आक्रमण किया गया और वे पक्ति के चारों ओर इधर-उधर भाग गए। जनरल मैन्सफील्ड से कहा गया था कि वह उनके बाए स्कन्ध को घेर ले और उनके पीछे हटने की पक्ति को काट दे। परन्तु मैन्सफील्ड अपने सैन्य दलो को पुरानी छावनी के बाडों और घरो मे फसाना नहीं चाहता था, इसलिए विद्रोही बिठूर सडक पर होकर पीछे हट गए। शहर अब भी तात्या की सेना के अधिकार मे था, परन्तु चूकि उसकी सेना का दाया भाग हटा दिया गया था और उसका शिविर उसके हाथ से जा चुका था, इसलिए उसके लिए अपनी स्थिति पर आगे बते रहना सम्भव न था और रात्रि के अन्धकार मे वह पीछे हट गया। ८ ता० को होप ग्रांट को बिठूर भेजा गया परन्तु उसे पता लगा कि सिपाही सराय घाट मे हैं। जब वह दूसरे दिन सवेरे जल्दी वहा पहुचा, तो वे अपनी तोपें चढा रहे थे। एकदम हमला किया गया और विद्रोहियो को विवश होकर एक बार और पीछे हटना पडा। इस प्रकार कानपुर को ले लेने और कैम्पबेल के युद्ध-कार्य के आधार को काट देने की तात्या की योजना विफल हो गई। उसकी योजना गुप्त नहीं रहती थी और अभीक्षरण करने वाले सतर्क पुरुष उसकी हलचलो को नियमित रूप से सूचना दे देते थे। जो कुछ सफलता उसने प्राप्त की थी, उसके पीछे आश्चर्य का कोई तत्व न था। यद्यपि उसकी सेना छिन्न-भिन्न कर दी गई थी, उसकी तोपें पकड ली गई थीं, फिर भी वह अंग्रेज सेना के लिए एक खतरा बना रहा।

बिठूर ने फिर विजेताओ का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया और ब्रिगेडियर होप ग्रांट को वहा भेजा गया। यह सूचना दी गई थी कि युद्ध से एक दिन पहले नाना वहा रात को सोया था, परन्तु केवल उसका महल ही अंग्रेज लोगो के रोष का एकमात्र विषय न

था। इसके साथ-साथ मन्दिर भी नष्ट कर दिए गए।[110] परन्तु होप ग्राट को केवल विनाश के उद्देश्य के लिए ही नहीं भेजा गया था। जब जुलाई मे नाना अवध को भागा था तो वह अपने खजानो को अपने साथ नहीं ले जा सका था। वे महल के बड़े कुएं मे डाल दिए गए थे। कुएं का पानी निकाला जाना था। परन्तु इंजीनियरो के पास कोई यान्त्रिक साधन न थे। इसलिए पानी को डोलो से निकालने का प्रारम्भिक तरीका वरता गया। हर एक आदमी इसी खयाल से काम कर रहा था कि कुएं से जो कुछ निकलेगा वह उसका वैध पुरस्कार माना जाएगा। जब पानी निकाल दिया गया तो कुएं की तह मे लकड़ी की कुछ भारी बल्लियां मिलीं। "जैसे ही लकड़ी की इन भारी बल्लियो को हटाया गया, एक बड़ी मात्रा मे चांदी की सिल्लियां मिलीं जो पानी मे पड़ी रहने के कारण बहुत काली हो गई थीं। चांदी की इन चीजो के अलावा, ठोस चादी का बना भूतपूर्व पेशवा का शाही हौदा भी मिला और इसके अलावा एक बडी मात्रा मे सोने की तश्तरियां तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुएं भी हाथ लगीं। ऐसा लगता था कि तश्तरियां जल्दी मे वैसे ही उलट-पुलट डाल दी गई थीं और उनके नीचे पानी निकालने वाले इंजीनियरों को एक बहुत बड़ी संख्या में गोला-बारूद के सन्दूक मिले जिनमे देशी रुपये और सोने की मुहरें (हर एक सोने की मुहर की कीमत कम से कम १६ रुपये थी) भरी हुई थीं। अकेले इन सिक्को की कीमत उस समय शिविर मे २७ दिसम्बर को २ लाख पौंड से अधिक बताई गई थी। सोने और चांदी की तश्तरियो और अलकृत जवाहरातो की कीमत इससे अलग थी।"[111] फोर्ब्स-मिशल ने सुना था कि तश्तरियो और अन्य बहुमूल्य वस्तुओ की कीमत दस लाख पौंड से अधिक थी और यह भी कि प्रत्येक प्राइवेट सिपाही को एक हजार रुपये से अधिक इनाम के रूप मे मिलेंगे।[112] परन्तु कुएं के अन्दर जिन लोगों ने परिश्रम किया, उन्हें निराश होना पड़ा। सिक्कों पर सरकार ने अपनी सम्पत्ति के रूप मे दावा किया, क्योकि यह सन्देह था कि वे खजाने से आये हैं। तश्तरियों और जवाहरातो पर भी, जो भूतपूर्व पेशवा की सम्पत्ति थी, सरकार ने अपना दावा किया और सैन्य दलो को कुछ न मिला।

दिल्ली पर अधिकार किया जा चुका था, कानपुर को बचा लिया गया था और लखनऊ को सहायता-सेना भेज दी जा चुकी थी। अब फतेहगढ पर कब्जा करना बाकी था। फर्रुखाबाद से कुछ मील दूर यह स्थान पहले एक पठान नवाब के अधिकार मे था। फतेहगढ़ एक सैनिक महत्व की चौकी था जो कानपुर से आगरा जाने वाली सड़क का समादेशन करता था। तोप-गाड़ियो का कारखाना यहा स्थापित किया गया था और विद्रोह के शुरू होने के समय यहा के किले का समादेशक अधिकारी कर्नल स्मिथ था। १०वीं देशी पैदल सेना जो फतेहगढ़ मे रखी गई थी, समुद्र को पार कर बर्मा चली गई थी और वहा सुरक्षित

---

११०. कैप्टन ओलिवर जोन्स का कहना है, "उसका (नाना का) महल गिरा दिया गया, उसकी मस्जिद उड़ा दी गई और इतनी पूरी तरह से कि एक भी पत्थर दूसरे के ऊपर बचा नहीं रह गया।" जोन्स, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ५०-५१

१११. गार्डन-अलेक्जेण्डर, रिकलेक्शन्स आफ ए हाईलैण्ड सुबाल्टर्न, पृ० १६४-६५

११२. फोर्ब्स-मिशल, रेमिनिसेन्सैज आफ दि ग्रेट म्यूटिनी, पृ० १५२

समझी जाती थी। उन्होने सचमुच जेल मे एक विद्रोह को दवा दिया था, परन्तु कर्नल स्मिथ ने स्त्रियो, बच्चों और युद्ध मे भाग न लेने वाले आदमियों को जून के प्रारम्भ मे ही कानपुर भेजना अधिक उचित समझा। उनमे से कुछ तो वापस आ गए परन्तु शेष कानपुर के समीप विद्रोहियों के हाथ मे पड गए। जून के मध्य मे १०वीं सेना के कुछ देशी अफसरों ने स्मिथ को चेतावनी दे दी कि वे आगे उनके आदेशो का पालन नहीं करेंगे और कुछ थोड़े से यूरोपीय लोगो ने, जो वहा थे, किले में शरण ली। जून के प्रारम्भ मे स्मिथ और उसके साथी जब किले को अपने अधिकार मे रखने मे असमर्थ हो गए तो वे तीन नावो मे बैठकर किले से चले गए। इन नावों पर गोली चलाई गई, परन्तु कुछ भगोडे नदी की धारा के साथ-साथ निकल जाने मे सफल हो गए। परन्तु उन्हे भी विठूर के समीप पकड लिया गया।[११३] १८ जून को सिपाहियो ने औपचारिक रूप से अपने को फर्रुखाबाद के नाम मात्र के नवाब की अधीनता मे रख दिया। १८०१ की सन्धि के अनुसार अवध के नवाब ने फर्रुखाबाद का जिला अंग्रेजो को दे दिया था और साथ ही उसने उस कर को भी अंग्रेजों को दे देना स्वीकार किया था जो उसे स्थानीय शासक से मिलता था। अब फर्रुखाबाद के नवाब ने एक वर्ष बाद अपनी भूमि कम्पनी की सरकार को दे दी और उसके बदले मे अपने और अपने आश्रितों के लिए एक लाख आठ हजार रुपये की पेंशन ले ली।[११४] जब अंग्रेजी राज्य-सत्ता उखाड फेंकी गई तो विद्रोहियो ने स्वाभाविक रूप से नेतृत्व के लिए उसकी ओर देखा क्योकि वह भूतपूर्व शासक-वंश का वैध प्रतिनिधि था। औपचारिक रूप से उसे अपनी पुरानी अमलदारी का शासक घोषित कर दिया गया, परन्तु यह आश्चर्य की बात थी कि उसका अपने पडोसी, मैनपुरी के हिन्दू राजा से मेल न था, यद्यपि इस हिन्दू राजा के साथ भी अंग्रेजों ने अत्याचार किया था।

सर कोलिन कैम्पबेल, फतेहगढ़ के विद्रोहियो को चारो ओर से घेरना चाहता था। कर्नल सीटन की अधीनता मे एक सैनिक दस्ता दिल्ली से भेजा गया था। प्रधान सेनापति ने एक सैनिक टुकडी कर्नल वालपोल की अधीनता मे सीटन से मैनपुरी के पास मिलने के लिए भेजी। सर कोलिन भी बाद मे गगा के सहारे-सहारे आगे बढ़ना चाहता था। इस प्रकार दोआब को विद्रोहियो से साफ करना था और उन्हें खदेड कर रुहेलखण्ड और अवध पहुचाना था। मैनपुरी से हाडसन, सीटन के प्रेषण-पत्रो को लेकर घोडे पर सवारी करता हुआ प्रधान सेनापति के शिविर मे गया। यह एक अद्वितीय साहस का काम था, परन्तु उसने यह भी दिखा दिया कि मैनपुरी और मीरन-की-सराय के बीच का प्रदेश, जहा हाडसन को कैम्पबेल मिला, बिलकुल अमित्रतापूर्ण नहीं था, क्योकि हाडसन ने अपने अधिकतर मार्ग की यात्रा दिन मे की और उसने कहीं विद्रोही सैन्य दलों के लक्षण नहीं देखे। केवल उसकी वापसी यात्रा मे उससे यहा कहा गया कि चौबीस सवार जिन्हें उसने छिवरामऊ मे छोडा था, काट डाले गए हैं और विद्रोही वहीं आस-पास छिपे हुए

---

११३ भगोड़ो मे से कम से कम दो बच गए। जोन्स और चर्चर ने कृपालु ग्रामीणो के पास शरण ली थी और सुरक्षापूर्वक कानपुर भेज दिए जाने से पूर्व वे उनके पास रहे

११४. एचिसन, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द २, पृ० ३६-४०

हैं।[११५] प्रधान सेनापति के काली नदी पर पहुंचने से पूर्व सिपाहियो ने पुल को तोड़ा था। लकडी के फट्टे हटा दिए गए थे, परन्तु उसके ढाचे की मरम्मत हो सकती थी। यह एक आश्चर्य की बात थी कि जबकि मरम्मत का काम चल रहा था विद्रोही वहा कहीं दिखाई नहीं पड़े और उन्होंने उसी समय गोली चलाना शुरू किया जब कि पुल की पूरी तरह मरम्मत हो चुकी थी। कैप्टन आलीवर जोन्स ने जो उस समय वहां उपस्थित था कहा, "इन सिपाहियो और विद्रोहियो का सचालन करने वाले भी कितने अद्भुत रूप से महामूर्ख हैं! ये लोग तब तक ठहरे रहे जब तक हमे पुल की मरम्मत करने का समय मिल गया। यदि ऐसा करने के बजाय ये उस समय ही हम पर आक्रमण कर देते जब हम पहली बार यहां आए थे या जब पुल आधा वन चुका था उस समय यदि ये हमला करने की व्यवस्था करते, तो हमे अपने काम मे देर भी लगा सकते थे और सम्भवतः हमारा नुकसान भी कर सकते थे; क्योकि इस वात मे वडा अन्तर है कि एक ओर तो भारी गोलावारी मे किसी पुल की मरम्मत की जाए और दूसरी ओर बिना किसी विरोध के।"[११६] लेफ्टिनेंट-कर्नल गार्डन-अलैक्जेण्डर हमे सूचना देता है कि जब नवाब ने किले को खाली किया तो "एक लाख पौण्ड के मूल्य की सरकारी सम्पत्ति मिली, जिसमे तोपो को ले जाने वाली गाड़ियो के कारखाने मे काम मे आने के लिए पकाई हुई लकडी, सब प्रकार की बन्दूकें, सिपाहियो के कपड़े, तम्बू और सब प्रकार का सैनिक सामान सम्मिलित था।" "विद्रोहियो ने किले मे बन्दूक, गोली और बारूद तैयार करने का एक कारखाना स्थापित कर रखा था, परन्तु उनमें से किसी ने भी उस स्थान को उडाने की नही सोची थी। इतना ही नहीं, जब प्रधान सेनापति ने ३ ता० की शाम को किले मे प्रवेश किया और किले की प्राचीर से विद्रोहियो को नावो मे बैठ कर नदी को पार करते देखा गया तो यह पता चला कि उन्होने नावों के पुल को भी काट कर अलग नहीं किया था।"[११७]

सीटन पहले बेवार के समीप वालपोल से मिला और फिर ४ जनवरी को वह प्रधान सेनापति से मिला। सेना फतेहगढ़ में एक लम्बा पडाव डाले पड़ी रही। चारो ओर के प्रदेश में "एक विशेष प्रकार के उपद्रवी स्वभाव के मुसलमान" बसे हुए थे और उन्हें दण्ड देने के लिए तथा व्यवस्था कायम करने के लिए एक सैनिक दल भेजा गया। इस सैनिक दल के साथ कमिश्नर मि० पावर भी गया, जिसका उसके शिविर के मित्रो और प्रशंसको ने "फासी पर चढाने वाली शक्ति" नाम रख छोड़ा था। "प्रत्येक पड़ाव पर मि० पावर ने सक्षिप्त न्याय-विधि की एक कचहरी की और उसने युद्ध मे भाग लेने वाले उन बीसो निर्दय राजद्रोहियो को मृत्यु की सजा दी जिनका गत जून मे फतेहगढ मे हुए अत्याचारो से सम्बन्ध था। यही केवल मऊ मे करीब १०० ऐसे गदर करने वाले और विद्रोही लोगो को, जो कस्बे मे और उसके आसपास गावो मे छिपे हुए थे, हमारे वहा (तीन दिन) के पड़ाव

---

११५. हाडसन, हाडसन आफ हाडसन्स हार्स, पृ० २६०-६४

११६. जोन्स, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ८२

११७ गार्डन-अलेक्जेण्डर, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २१०। कैप्टन आलिवर जोन्स भी देखिए, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ८३

मे अर्थात् ११ जवनरी की प्रात तक सक्षिप्त मुकदमा चला कर कस्बे के मध्य मे एक वर्गाकार स्थान मे एक बडे पीपल के पेड की शाखाओं से लटका कर फासी दे दी गई।"[११८]

ग्राड ट्रक रोड अब सुरक्षित हो गई। बगाल और पजाव, तथा कलकत्ता और लाहौर के बीच सचार-साधन पुन स्थापित हो गया। परन्तु अवध और रुहेलखण्ड अब भी विद्रोहियो के हाथ मे थे। फतेहगढ़ के पतन ने रुहेलखण्ड के मार्ग को खोल दिया था। सर कोलिन सोचता था कि विजय के बाद ही "आगे बढ कर रुहेलखण्ड पर अधिकार कर लेना चाहिए। विद्रोहियों के बडे-बडे जमावो के नेताओ को, जिनके वहा होने का हमे पता है, हमे समूल नष्ट कर देना चाहिए। उनकी तोपों को हमे अपने हाथो मे कर लेना चाहिए और जिस प्रकार दोआब मे हमारी राजसत्ता पुन स्थापित की जा रही है उसी प्रकार क्रियात्मक रूप मे हमे यहां भी करना चाहिए।"[११९] वह अवध की विजय को सन् १८५८ के शरत् काल तक के लिए स्थगित रखना चाहता था ताकि वह अपनी सेनाओ को सहारनपुर और वरेली के विरुद्ध केन्द्रित कर सके क्योकि यह सूचना मिली थी कि इन्हीं स्थानो मे विद्रोही सेनाए इकट्ठी हो रही थीं। उसका विचार था कि जब सब आस-पास के प्रदेश अधीन कर लिए जाएगे और सब विद्रोही सेनाओं को अवध मे सचित कर दिया जाएगा तो उनका सफाया करने मे आसानी होगी। प्रधान सेनापति और उसके परामर्शदाताओं का मत था कि ३०,००० आदमियों से कम की सेना को लेकर अवध को जीतने का प्रयास नहीं करना चाहिए। इसके विपरीत गवर्नर-जनरल का यह मत था, और दूसरे लोग भी उसके इस मत से सहमत थे, कि भारत-आग्ल सेना को अवध पर सबसे पहले ध्यान देना चाहिए। हैवलाक ने रेजिडेसी को छोडने का अनुमोदन नहीं किया था और यह कहा जाता है कि उसे ऊटरम का समर्थन प्राप्त था। लखनऊ पर अग्रेज़ी झण्डे के दिखाई न पडने का यह अर्थ माना जाता कि विद्रोहियों की विजय हो गई है और इसका राजनीतिक प्रभाव अग्रेजों के उद्देश्य के लिए प्रतिकूल पडता। राजनीतिक दृष्टि से लखनऊ उतना ही महत्वपूर्ण था जितना दिल्ली। गवर्नर-जनरल ने लिखा, "भारत मे हर एक की निगाह लखनऊ पर है जैसे कि दिल्ली पर थी। अवध केवल सिपाहियों का मिलन-स्थान नहीं है जिसकी ओर वे देखते हैं और जहा काम करके उनकी आशाए और भविष्य बनेंगे या बिगडेंगे, वल्कि यह नगर एक राजवश का प्रतीक है और इसका एक राजा भी है जो अपने को बचाने का प्रयत्न कर रहा है। अवध और उसके साथ हमारे सम्बन्ध एक ऐसी बात है जो प्रत्येक भारतीय के मस्तिष्क मे गत दो वर्ष से विद्यमान रही है। प्रत्येक भारतीय सरदार का ध्यान इस ओर लगा है कि हमने जो कुछ प्राप्त किया है उसको हम अपने अधिकार मे रखने में समर्थ हैं या नहीं।"[१२०] इसलिए इससे आगे के युद्ध मे अवध को रुहेलखण्ड की उपेक्षा प्राथमिकता मिली थी और ऊटरम को, जो आलम बाग मे ठहरा हुआ अवध को पुन लेने की प्रतीक्षा कर रहा था, पीछे हटने की अनुमति नहीं दी जा सकती थी। इन

११८. गार्डन-अलेक्ज़ेण्डर, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २१४

११९. फारेस्ट, ए हिस्ट्री आफ दि इण्डियन म्यूटिनी, जिल्द २, पृ० २५४

१२० फारेस्ट, ए हिस्ट्री आफ दि इण्डियन म्यूटिनी, जिल्द २, पृ० २५३-५४

राजनीतिक विचारो की सैनिक निर्णय के ऊपर विजय हुई और प्रधान सेनापति को गवर्नर-जनरल की वात माननी पड़ी।

अवध के राज्य पर उत्तर की ओर से आक्रमण पहले किया जा चुका था। नैपाल का वास्तविक शासक जंगवहादुर आवश्यकता के समय सहायता करके अग्रेजो के साथ अपनी मित्रता को दृढ़ करना चाहता था। जब ग़दर शुरू हुआ और अग्रेजो की प्रतिष्ठा स्पष्टतः घट रही थी तो उस समय जग वहादुर ने अग्रेज़ी सरकार के सामने नैपाली सेना की सेवा का प्रस्ताव रखा। यद्यपि इस प्रस्ताव को एकदम स्वीकार नहीं किया गया, परन्तु लार्ड कैनिंग ने इस मित्रतापूर्ण रवैये को निरुत्साहित करना ठीक नहीं समझा और फलतः जुलाई मे ३,००० गुरखो के एक सैनिक दल ने गोरखपुर जिले मे प्रवेश किया। यहा मुहम्मद हसन को नाजिम वना कर एक विद्रोही सरकार स्थापित कर दी गई थी। पुराने शासन मे मुहम्मद हसन गोरखपुर का नाजिम था, परन्तु इस प्रदेश के अग्रेज़ी राज्य मे मिलाए जाने के वाद उसका यह पद जा चुका था। पर्याप्त व्यक्तिगत खतरे को उठाकर भी उसने फैजावाद से भागे कर्नल लैनोक्स तथा दूसरे शरणार्थियो को शरण दी थी और अवध मे विद्रोहियो का साथ देने के बाद भी उसने निरपराध लोगो का रक्त नही वहाया।[१२१] वाद मे जब अग्रेज़ी सरकार ने उसे क्षमा-दान देने का प्रस्ताव किया तो उसने स्पष्टत. उत्तर दिया कि वह अपने राजा और स्वामी के लिए लड़ रहा था न कि अपने लिए। प्रथम वार उसके विरुद्ध ही गुरखा लोग भेजे गए थे और गोरखपुर से फिर वे जौनपुर और आजमगढ की ओर चले। केवल इस छोटी-सी सैनिक टुकड़ी को ही देने से संतुष्ट न हो कर जंग वहादुर ने अपनी व्यक्तिगत सेवाएं भी अर्पित कीं। यदि एक निर्णयात्मक नहीं तो कम से कम यह एक अतिरिक्त कारण अवश्य था जिससे सन् १८५७-५८ के शीतकालीन युद्ध मे अवध को अन्य प्रदेशो की अपेक्षा प्राथमिकता दी गई। २१ दिसम्बर को जगवहादुर १०,००० आदमियो की एक सेना लेकर सीमान्त पर पहुंचा और वहां जनरल जी० एच० मेकग्रेगर उससे मिला, जिसे गुरखा सैनिक दल के साथ गवर्नर-जनरल का एजेंट नियुक्त किया गया था।

जब यह निश्चय कर लिया गया कि दूसरे युद्ध का उद्देश्य अवध का पतन होना चाहिए तो प्रधान सेनापति फतेहगढ़ से कानपुर चला। परन्तु जाडा समाप्त होने तक अभियान प्रारम्भ नहीं हो सका। जनरल फ्रैंक्स को पूर्व दिशा से अवध मे प्रवेश करना था और राजनीतिक कारणो से सर कोलिन को जगवहादुर की प्रतीक्षा करनी थी। सर कोलिन १८ फरवरी के करीव अपने युद्ध-कार्यो को प्रारम्भ करने के लिए उत्सुक था, परन्तु जग बहादुर और जनरल फ्रैंक्स की २७ ता० से पूर्व लखनऊ मे आने की आशा नहीं हो सकती थी। लार्ड कैनिंग का विचार था कि जग बहादुर के लिए प्रतीक्षा

---

१२१. यदि मुहम्मद हसन प्रयत्न न करता तो गोडा का यरेशियन हेड कलर्क जार्ज यूवर्ड मरवा दिया गया होता। देखिए यूवर्ड, एन एपीसोड आफ दि रिवेलियन एण्ड म्यूटिनी इन अवध आफ १८५७ एण्ड १८५८, पृ० ३६-४०। परन्तु यूवर्ड का वर्णन गलत बातों से भरा पड़ा है।

करना बुद्धिमानी होगी। "जब वह यह देखेगा कि उसे चालाकी से इस बडी लडाई मे लगा दिया गया है तो वह आगबबूला हो उठेगा—मुझे विश्वास है कि वह हमसे मित्रता तोड देगा और एक सप्ताह के अन्दर अपनी पहाडियों मे वापस चला जाएगा। इस सहायता का खोना हमारे लिए बडा असुविधाजनक होगा, परन्तु उसके साथ हमारे सम्बन्धो का बिगडना तो और भी अधिक बुरा होगा। इसलिए यदि कुछ और देर हो तो मैं उसे स्वीकार करने के लिए बिलकुल प्रस्तुत हू।"[१२२] इस प्रकार एक शक्तिशाली पडोसी को प्रसन्न करने की आवश्यकता के सामने प्रधान सेनापति को भी झुकना पड़ा।

जनरल फ्रैंक्स पहले ही चल पडा था। उसके साथ पहलवान सिंह नामक एक गुरखा अफसर भी था। इन दोनों ने १९ फरवरी को चन्दा नामक स्थान मे अवध के सैन्य दलों से, जो बन्दा हसन और मेहदी हसन की अधीनता मे थे, युद्ध किया। मेहदी हसन ने बुधायन के समीप उनकी प्रगति को रोकने का प्रयत्न किया, परन्तु उसे इस बार फिर हरा दिया गया। फ्रैंक्स ने इसके बाद सुल्तानपुर की ओर अभियान किया जहा लखनऊ के एक सेनापति गफूर बेग की अधीनता मे एक शक्तिशाली सेना उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। एक घमासान लडाई लडने के बाद उसने अपनी सेना को विश्राम देने के लिए पडाव डाला। दूसरे दिन जालन्धर से तीसरी सिख सेना उससे आकर मिली। ४ मार्च को फ्रैंक्स लखनऊ से ८ मील की दूरी पर था। जंग बहादुर कहीं ११ मार्च तक लखनऊ पहुच पाया।

इसी समय ऊटरम को आलम बाग मे बडे बुरे समय का सामना करना पड रहा था। उसके पास आदमियो की इतनी कमी थी कि वह इतने खतरो से भरे स्थान को आसानी से बचाये नहीं रख सकता था। यह स्थान लखनऊ से इतना समीप था कि अधिक देर तक विद्रोहियो के ध्यान से बचकर नहीं रह सकता था। कानपुर के साथ इसकी सचार-पक्ति इतनी लम्बी थी कि बिना कठिनता के उसे बनाए रखना सम्भव नहीं था। यदि अवध को तत्काल ही नहीं जीता जा सका तो उसे कानपुर के अधिक समीप किसी सैनिक स्थान पर जाने के लिए आलम बाग को छोडना पडता। चूकि आलम बाग का अपने आप मे कोई राजनीतिक महत्व नहीं था, इसलिए अवध का कोई अन्य स्थान भी प्रान्त में अंग्रेजों के पैर जमाए रखने के संकल्प का सूचक हो सकता था। परन्तु यदि अगला आक्रमण लखनऊ पर होना था तो उसके लिए यह आवश्यक था कि वह किसी भी मूल्य पर आलम बाग को अपने अधिकार मे रखे और उसने सफलतापूर्वक ऐसा किया भी, यद्यपि इस बीच कम से कम छः आक्रमण लखनऊ पर किए गए। आक्रमण ठीक समय पर किए गए थे और दृढ सकल्प के साथ किए गए थे। एक बार आक्रमण उस समय किया गया जब दुर्ग-सेना का एक भाग मार्ग-रक्षा के काम से बाहर गया हुआ था। अपने अनुयायियों मे साहस और सकल्प की प्रेरणा भरने के लिए एक बार विद्रोही सेना का नेतृत्व एक आदमी ने कपि-देवता हनुमान के वेश को धारण कर किया, एक बार स्वयं रानी अपने सैन्य दलों को उत्साहित करने के

---

१२२ फारेस्ट, ए हिस्ट्री आफ दि इण्डियन म्यूटिनी, जिल्द २, पृ० ३०३

लिए युद्ध-क्षेत्र मे दिखाई पड़ी। ऊटरम पर कभी अचानक आक्रमण नहीं किया गया। शत्रुओ की हलचल का पता लगाने वाले उसके सिपाही उसे सदा उनकी योजनाओं का पता देते रहते थे।[123] कभी-कभी सिपाहियों के आक्रमण की योजनाएं अत्युत्तम होती थीं, परन्तु उन्हे कार्यान्वित करने वाला कोई योग्य अफसर नहीं था। जैसा कि फ़ारेस्ट ने कहा है, "सिपाहियों के भारी नुकसान ने यह सिद्ध कर दिया कि उनमे साहस की कमी नहीं थी, बल्कि यदि किसी चीज की कमी थी तो नेतृत्व की, जैसा कि दिल्ली मे भी देखने में आया। यदि उनका नेतृत्व ऐसे आदमियो के हाथ मे होता जो युद्ध-कार्यो से परिचित होते, तो अंग्रेज़ कमाण्डर के लिए अपनी बढ़ी हुई स्थिति को बनाए रखना असम्भव हो जाता और न वह कानपुर के साथ संचार-साधनों को खुला रख सकता।" तीन महीने तक ऊटरम विद्रोही सेना को रोके रहा और भारी कठिनाइयों के बावजूद आलम बाग पर अपना अधिकार जमाए रहा। इसी बीच सर कोलिन कैंम्पबेल ने लखनऊ पर अन्तिम आक्रमण करने की अपनी सब तैयारियो को पूरा कर लिया। कानपुर की ओर से अब उसे कोई चिन्ता नहीं थी। अवध के लिए प्रस्थान करने से पूर्व उसने कानपुर की प्रतिरक्षा के लिए उस आक्रमण के विरुद्ध उपयुक्त प्रबन्ध कर दिया था, जिसे बची हुई ग्वालियर सैनिक टुकडी के सिपाही कर सकते थे। उसने होप-ग्रांट को कानपुर से २५ मील दूर फतेहपुर चौरासी मे भेजा जहा नाना छिपा हुआ बताया जाता था। होप ग्रांट १७ फरवरी को वहा पहुंचा और उसने उस किले को, जो विद्रोही नेता जसंसिह का निवास-स्थान था, उड़ा दिया, परन्तु नाना वहा नहीं था। १ मार्च को होप ग्राट को आदेश दिया गया कि वह अपने प्रधान से बंटेरा मे मिले। सर कोलिन एक दिन पूर्व कानपुर से चल चुका था और पचास मील घोड़े पर चढ़ कर वह आलम बाग पहुंचा और फिर वहां से नए मुख्यालय बटेरा में वापस आया। २ मार्च को सवेरे लखनऊ के विरुद्ध युद्ध-कार्य शुरू हुआ।

इसी बीच लखनऊ की प्रतिरक्षा पर्याप्त रूप से शक्तिशाली बना दी गई थी। नदी के किनारे मिट्टी से भर दिए गए थे और शहर मे तीन पृथक् पंक्तियों मे अवरोधक खड़े कर दिए गए थे। परन्तु गोमती नदी के उत्तरी किनारे की ओर ऐसा ही ध्यान नहीं दिया गया था, जिससे प्रतिरक्षकों को अपने काम मे उसी प्रकार की कठिनाई हुई जैसी दन्त-कथाओ के एक आंख वाले जानवर को होती है। सर कोलिन के साथ १९ हजार आदमी थे और जब फ्रैंक्स और जंग बहादुर उससे आकर मिले तो उनकी संख्या बढ़ कर तीस हजार से ऊपर हो गई। प्रधान सेनापति निश्चित योजना के अनुसार धीरे-धीरे और नियमित रूप से आगे बढ़ा और यदि कोई युद्ध-कार्य अपने समय से पहले सम्पन्न हो गया तो उस पर अधिक प्रसन्न भी नहीं हुआ। ऊटरम नदी के उत्तरी किनारे पर

---

१२३. "अगद, अजूर तिवारी और दूसरे लोग अद्भुत रूप से ठीक सूचनाएं देते थे। हमे उनके आयोजित सब आक्रमणों की, उनके वास्तविक रूप से किए जाने के घंटो पूर्व, परिपूर्ण सूचना मिल जाती थी।" माड एण्ड शेरर, मेमायर्स आफ़ दि म्यूटिनी, जिल्द २, पृ० ४४७

गया । उसका काम यह था कि वह नदी के उस ओर शत्रुओ के सैन्य दलो का सफाया करे । उसने कार्य-क्रम के अपने भाग को पूरा किया और लोहे के पुल को अपने अधिकार मे बनाए रक्खा, परन्तु उसे पुल को पार करने की अनुमति नहीं दी गई थी, क्योंकि सर कोलिन किसी आकस्मिक दुर्घटना का खतरा मोल लेने को तैयार नहीं था और युद्ध-कार्य मे कुछ नुकसान अवश्य होता चाहे वह कितना ही कम क्यों न होता । विद्रोही सेना के सामूहिक रूप में बच कर निकल जाने का कारण बाद मे ब्रिगेडियर कैम्पबेल की इस भूल-चूक और ढिलाई को बताया गया ।[१२४] गोमती के दक्षिण की ओर मुख्य सेना ने दिलकुशा पर अधिकार कर लिया । इसके बाद मार्टीनियर को ले लिया गया और फिर एक के बाद एक किलेबन्द महलों, दिवालों से घिरे बागों, मस्जिदो और मकबरो को लिया गया । अन्त मे विद्रोहियों ने देखा कि वे अब अपनी स्थिति पर टिक नहीं पा रहे हैं और उन्होने शहर खाली कर दिया । वे साहस के साथ लडे थे और जब बेगम कोठी पर आक्रमण किया गया तो ८६० प्रतिरक्षक अकेले मध्यवर्ती आगन मे मरे पडे थे । स्वयं राजमाता ने कभी हिम्मत नहीं हारी और अपने आदमियो के बीच वह उस उत्साह के साथ घूमती थी जिसका परिणाम अधिक अच्छी सफलता होना चाहिए था । परन्तु कुछ काम न आया और १८ मार्च को शहर के सब शक्तिशाली स्थान अग्रेजो के हाथ मे थे । एक शक्तिशाली विद्रोही सैन्य दल ने, जिसे सम्भवत बेगम से प्रेरणा मिली थी, १९ ता० तक मूसा बाग को अपने अधिकार मे रखा । मौलवी जो अन्यों की अपेक्षा अधिक दृढ़-निश्चयी था, २२ ता० से पूर्व अपने स्थान से नहीं हटाया जा सका । इस प्रकार लखनऊ का पतन हुआ, परन्तु अवध को अभी जीतना बाकी था । बन्दी महिलाओं ने रसेल को बताया कि उनके आदमी अब भी जीतेंगे ।[१२५]

अन्य जीते गए शहरों का जो हाल हुआ था, वही लखनऊ का भी हुआ । बेगम कोठी पर कब्जा कर लेने के बाद जो भयानक विनाश और लूट की गई, उसका वर्णन रसेल ने इस प्रकार किया है, "लूट का दृश्य अवर्णनीय था । सिपाहियों ने अनेक सग्रहागारों को तोड दिया था और उनके सामान को चौक मे इकट्ठा कर दिया था, जो अनेक चीजों से भरा पडा था । उसमें डिब्बे, कसीदा किए गए कपडे, सोने और चादी के गोटे, चादी के वर्तन, हथियार, भाडे, ढोल, शाल, गर्दन पर डालने के लम्बे रुमाल, बाजे, दर्पण, तस्वीरें, किताबें, बहिया, दवाई की बोतलें, भडकीली पताकाए, ढाल, भाले और अनेक प्रकार की वस्तुए थीं जिनके नाम यदि गिनाए जाए तो यह कागज का पन्ना किसी सौदागर की वस्तुओ की सूची बन जाएगा । इन चीजों मे से होकर आदमी चल रहे थे, उत्तेजना से

---

१२४ गार्डन-अलेक्जेण्डर का मत है कि "सरकारी तौर पर स्वय प्रधान सेनापति २०,००० आदमियों के बचकर फैजाबाद भाग जाने के लिए उत्तरदायी था, परन्तु मूसा बाग की हास्यास्पद विफलता के लिए अकेला ब्रिगेडियर कैम्पबेल ही उत्तरदायी था ।" गार्डन-अलेक्ज़ेण्डर, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २७७

१२५ "ये स्त्रिया कहती हैं कि उन्हें पूरा विश्वास है कि हम अन्त में हरा दिए जाएगे ।" रसेल, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द १, पृ० ३३८

पागल और 'लूट के नशे मे मस्त'। मैंने इस वाक्यांश को सुना तो था परन्तु इस चीज को पहले कभी नही देखा था। उन्होने चिड़ियो को मारने वाली छोटी बन्दूको और पिस्तौलो को तोड कर टुकड़े-टुकड़े कर दिया, केवल उन पर चढ़े हुए सोने को लेने के लिए या उनके कुन्दो मे जड़े हुए रत्नो को निकालने के लिए। उन्होने चौक के बीच मे आग जलाई और उसमें गोटे को और कसीदा की गई शालो को, उनमे से सोना और चादी निकालने के लिए जलाया। उन्होने चीनी मिट्टी के बर्तनों, शीशे की वस्तुओ और बहुमूल्य रत्नो को चूर-चूर कर दिया। तस्वीरो को उन्होने फाड़ डाला या आग की लपटो मे फेंक दिया। मेज-कुर्सी आदि लकड़ी के सामान का भी यही हाल हुआ।"[126] द्वेषपूर्ण भावना से एक स्त्री के बताए बिना जिसका पता लगना कठिन था ऐसे एक संग्राहागार की सम्पत्ति का वर्णन करते हुए लेफ्टिनेंट-कर्नल गार्डन-अलेक्जेण्डर कहता है, "अन्दर मैंने एक बड़ा खुश्क-सा संग्रहागार पाया जो १४ फुट लम्बा और उतना ही चौड़ा एक वर्गाकार कमरा था और जो काफी ऊंचा था। उसके तीन ओर तीन-तीन फुट के फासले पर अलमारियां लगी हुई थीं, ठीक छत तक। इन अलमारियो मे बहुमूल्य चीजें भरी हुई थीं, जैसे बड़े-बड़े डिब्बे जिनमें बहुत बढिया कश्मीरी शाल रखे हुए थे, चांदी और जवाहरातो से मढ़ी हुई तलवारें थीं और दूसरे हथियार थे। एक ठोस सोने की सन्दूकची थी जिसमे अलग-अलग खाने बने हुए थे जो ठीक वैसी लगती थी जैसे कि अंग्रेजो की रसोई की मसालेदानी। इसे मैं स्वयं उठा कर ले आया और मैंने उसे युद्धजित वस्तुओ के अभिकर्ता को दे दिया। इस सन्दूकची का प्रत्येक खाना बहुमूल्य रत्नों से पूरी तरह भरा पडा था, जैसे कि हीरे, लाल, पुखराज और नीलम। एक जो अन्य अद्भुत वस्तु मिली वह थी अनेक शक्वाकार टोपियां जो उस प्रकार के मुकुट से मिलती थीं, जिसे हमारे "पीयर" लोग पहनते हैं। उनमें बहुमूल्य रत्न जैसे हीरे आदि, जड़े हुए थे। परन्तु ये टोपियां पतले गत्ते की बनी हुई थीं और उनके ऊपर रंग-बिरंगी रेशमी मखमल लगी हुई थी।"[127] कर्नल गार्डन-अलैक्जेण्डर ने स्वयं प्राप्त की हुई वस्तुएं युद्धजित वस्तुओ के अभिकर्ताओं को सौंप दीं परन्तु खोज करने वालों ने लूट के अधिकतर माल को स्वयं रख लिया। फोर्ब्स-मिशल मजाक करता हुआ टिप्पणी करता है कि जब कि शिविरानुचरो और दूसरे लुटेरों से जनता के हित या सेना के लाभ के लिए लूट के माल को निकलवा लिया गया, "सैनिको द्वारा यह सन्देह किया जाता था कि टूटे डिब्बो में बन्द कुछ छोटी सन्दूकचियां थीं, जिनमें इतनी राशि थी कि जिससे स्काटलैण्ड, इंग्लैण्ड और आयरलैण्ड की बन्धक रूप मे रक्खी हुई जायदादो को छुड़ाया जा सकता था और जिनसे दुनिया भर के सर्वोत्तम स्थानो मे मछली मारने एवं शिकार खेलने के अधिकार प्राप्त किए जा सकते थे। ये सन्दूकचियां युद्धजित माल के अधिकर्ताओ ने गायब कर लीं। मैं स्वयं एक ऐसी भारी ऋण-ग्रस्त जायदाद का नाम जानता हूं जिसे लखनऊ की लूट के दो साल के अन्दर एक लाख अस्सी हजार पौण्ड चुकाकर बन्धक-भार से मुक्त किया गया था।" लूट के माल के इस प्रकार के अपहरण के मामलों के बाद भी युद्धजित वस्तुओं के अभिकर्ताओं

१२६. रसेल, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द १, पृ० ३३३
१२७. गार्डन-अलेक्जेण्डर, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २८३

ने जिस माल को इकट्ठा किया वह बहुत था। फोर्ब्स-मिशल कहता है, "हमारे लखनऊ से चलने से पूर्व युद्धजित वस्तुओ के अभिकर्ताओ ने जितना माल इकट्ठा किया था उसका मूल्य ६ लाख पौंड से अधिक आका गया था (३१ मई, १८५८ के "दि टाइम्स" के अनुसार) और एक सप्ताह के अन्दर यह साढे बारह लाख पौण्ड तक पहुच गया। इस सबका क्या हुआ ?"[१२८]

किसी भी दु खान्त घटना का एक अच्छा पहलू भी होता है। कभी-कभी लूट से लोभी लुटेरों को काफी परेशानी भी होती थी। लेफ्टिनेंट मेजेण्डी के आदमी हर एक चीज की लूट के लिए तैयार रहते थे। कुक्कुट और कबूतर मांस के लिए बहुत अच्छी चीजें थीं, और हरे तोते (अधिक ठीक कहें तो छोटे तोते के बच्चे) भी अप्रिय साथी नहीं थे। परन्तु पकडी हुई चीजो मे एक बडा तेन्दुआ भी था जो सडक के किनारे एक पिंजरे मे बन्द पाया गया था। उसकी खाल पाने के लिए उसे एकदम गोली से मार दिया गया जिस पर सारी सेना ने दावा किया। कुछ भारवाही बैलों को, जिन तोपो मे वे जुते हुए थे, उनके साथ पकड लिया गया, परन्तु वे बडे कष्टदायक सिद्ध हुए। "इस ससार मे युद्ध-बन्दी कभी भी इतने विद्रोही सिद्ध नहीं हुए होंगे जितने ये सींगधारी श्रीमान्। तर्क और खुशामद दोनों का ही इन पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। जब से वे हमारे हाथों मे पडे उन्होंने एकमत से हमारी तोपें ढोने से इन्कार कर दिया।"[१२९]

विद्रोह के नेता, मौलवी और बेगम, सुरक्षापूर्वक बच कर निकल गए थे। फीरोजशाह भागा, परन्तु एक बार फिर लडने के लिए। कुवरसिंह अपने अदम्य उत्साह और अकथनीय परिश्रम का ताजा साक्ष्य देने के लिए पहले ही आजमगढ़ जा चुका था। परन्तु अवध के शाही परिवार के सभी सदस्य इतने भाग्यवान नहीं थे। रसेल कुछ बन्दी बेगमों और उनकी परिचारिकाओं से मिलने गया। वह कहता है, "हमने उन सबको एक बडे, नीची छत के अन्धाकारयुक्त और गन्दे कमरे के फर्श पर देखा। इस कमरे मे खिडकिया तक न थीं। जब ब्रूस प्रवेश करता था तो दीवालो के चारों ओर झुकी पडी हुई महिलाओं की आवाजें तीव्र हो उठती थीं तथा वे बडे जोर से शोर करती थीं।"[१३०] उस "महान समान स्तर पर ला देने वाले" ने एक सक्षिप्त रात मे बेगमो को भिखारिनें बना दिया था। परन्तु उनसे छोटे दर्जे की स्त्रियों ने शहर की प्रतिरक्षा मे अपने प्राण उत्सर्ग कर दिए थे।[१३१] लखनऊ के पतन के कुछ थोडे दिनों बाद "एक झुर्रिया पडी हुई बुढ़िया जो वृद्धावस्था के कारण झुक कर दुहरी हो रही थी" लोहे के पुल के पास छिपी हुई, फटे-चिथडे कपडों के छोटे-छोटे टुकडे इकट्ठे करती हुई देखी गई थी। बाद मे उसे "बिलकुल मृत" पाया गया और "उसके हाथ से लगा हुआ मोमबत्ती के समान एक सूत का टुकडा पाया गया जो अशत

---

१२८ फोर्ब्स-मिशल, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २२८

१२९ मेजेण्डी, अप अमग दि पडीज, पृ० २०१-२०२

१३० रसेल, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द १, पृ० ३५७

१३१ गार्डन-अलेक्जेण्डर ने देखा कि सिकन्दर बाग के मृतकों में कुछ हब्शी स्त्रिया भी थीं। "वे जगली बिल्लियों की तरह लड़ीं और उनके मारे जाने के बाद ही पता लगा कि

जला हुआ था। जहा इस मृत स्त्री का हाथ रखा था वहीं कूड़े मे छिपा फर्श के नीचे गया हुआ एक बास दिखाई पडा, जिसमे एक पलीना लगा हुआ था। वास एक वड़ी सुरंग तक जाता था।[१३२] यह कभी पता न चल सकेगा कि इस बुढिया के निर्बल हाथ किस अन्याय का प्रतिकार करने के लिए प्रयत्नशील थे। उसके टिमटिमाते जीवन को किस दु:खान्त घटना ने कटु बना दिया था, इसकी खोज इतिहास कभी नही कर सकेगा। स्वभावतः शहर को छोड़ कर लोग चले गए। सर जेम्स ऊटरम ने नागरिको को लौटने का निमन्त्रण दिया, परन्तु एक सरकारी रिपोर्ट का कहना है कि सिपाहियो ने निवासियो के साथ जो भयभीत कर देने वाला और उजड्ड व्यवहार किया था उसके कारण अधिकांश लोग शहर से बाहर रहे। फिर भी धीरे-धीरे वे लोग आने लगे और जैसे-जैसे सैनिक अधिकारियो ने कड़ा नियन्त्रण रखना शुरू किया, आदमियो ने देखा कि पहले की अपेक्षा अब उन्हे तंग नहीं किया जाता है और वे लगभग सब के सब वापस चले आए।[१३३]

२१ मार्च को पादरी मि० मेक के ने एक प्रभावशाली प्रवचन दिया। उसने कहा कि लखनऊ के पतन ने उसे निश्चित विश्वास दिला दिया है कि ब्रिटिश साम्राज्य का वह हाल नहीं होगा जो 'विश्व के अब तक के विशाल साम्राज्यों' का हुआ है, क्योंकि इंग्लैण्ड एक ईसाई देश है।[१३४] परन्तु सैनिक और असैनिक अधिकारियों ने इस विनिश्चय मे कुछ भी आश्वासन नहीं पाया। लखनऊ के लिए जाने से पूर्व सर जेम्स ऊटरम को गवर्नर-जनरल की ओर से एक घोषणा मिली थी परन्तु इसका प्रकाशन तब तक स्थगित कर दिया गया था जब तक कि लखनऊ अंग्रेजो के अधिकार मे न आ जाए। इसका कारण यह था कि गवर्नर-जनरल को आशंका थी कि अन्यथा उसकी उदारता कमजोरी और भय के कारण उत्पन्न मानी जाएगी। परन्तु ऊटरम ने इस घोषणा को बहुत कठोर और समझौते की भावना से रहित पाया, क्योंकि इसके अनुसार केवल ६ विशिष्ट जमींदारों और ताल्लुकेदारों को अपवाद-स्वरूप छोडकर, शेष सब अवध के जमींदार रईसो को उनके पूर्वजो के समय से चली आई हुई भूमि से हाथ धोना था। गवर्नर-जनरल ने इस घोषणा मे अवध के लोगो को याद दिलाया था कि उनकी राजधानी अब अंग्रेजी सरकार की कृपा पर, जिसके वे विरुद्ध लडे थे, आश्रित थी। "वे एक महान अपराध के दोषी रहे हैं और अब उन्होने अपने को एक न्याय्य प्रतिशोध का पात्र बनाया है।" "गवर्नर-जनरल का पहला काम उन लोगो को पुरस्कार देना होगा जो अपनी वफादारी मे स्थिर रहे हैं।" "गवर्नर-जनरल आगे अवध के लोगों के समक्ष यह घोषित करता है कि उपर्युक्त अपवादो को छोड़ कर प्रान्त की जमीन के

वे स्त्रिया थीं।" गार्डन-अलेक्जेण्डर, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १०४। फोर्ब्स-मिशल एक स्त्री का उल्लेख करता है जिसने सिकन्दराबाद के चौक में एक बडे पीपल के पेड़ पर बैठ कर कई अंग्रेज सिपाहियो को गोली से मारा और बाद में स्वय मारी गई। रेमिनिसैन्सेज आफ़ दि ग्रेट म्यूटिनी, पृ० ५७-५८

१३२ मेजेण्डी, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २३६-३८

१३३. फारेन सीक्रेट कन्सल्टेशन्स, स० ५३-५५, २५ जून, १८५८,

१३४. रसेल, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द १, पृ० ३५६

सम्बन्ध मे स्वामित्वाधिकार अब इस अग्रेजी सरकार ने ले लिया है और यह सरकार ही आगे इस अधिकार का प्रयोग जिस ढग से उचित समझेगी करेगी।" "उन तालुकेदारो, सरदारों और जमींदारो को और उनके अनुयायियो को, जो तत्काल अवध के चीफ़ कमिश्नर को समर्पण करेंगे और अपने हथियार उसे दे देंगे और उसके आदेशो का पालन करेंगे, सम्माननीय गवर्नर-जनरल वचन देते हैं कि उनके जीवन और प्रतिष्ठा सुरक्षित रहेंगे, यदि उनके हाथ अग्रेजो की हत्या मे बहाए गए खून से सने हुए नहीं हैं। परन्तु इसके अतिरिक्त उनके साथ की जाने वाली अन्य किसी कृपा के सम्बन्ध मे या उस स्थिति के सम्बन्ध मे जिसमे उन्हें आगे रक्खा जाएगा, उन्हें अग्रेजी सरकार के न्याय और कृपा पर ही अपने को पूरी तरह छोड देना चाहिए।"[१३५] रसेल ने इस घोषणा पर कटु टिप्पणी करते हुए कहा, "इन शब्दों का भारतीयो के कानो के लिए कोई अर्थ नहीं है और उनसे उनके मस्तिष्को मे भी कोई खास विचार पैदा नहीं होता। अधिक से अधिक वे निर्वीर्य शब्द हैं, जिन्हे हम वास्तविक रूप मे लागू नहीं कर सकते। अभी काफी समय लगेगा जब कि अवध हमारा हो सकेगा। दुख की बात है कि लखनऊ के पतन से हमे अवध पर विजय नहीं मिली है जैसा कि लार्ड कैनिंग ने उस समय सोचा होगा जब कि उसने अपने निरर्थक वक्तव्य को इलाहाबाद से जारी किया।"[१३६] जप्ती के भय से भयभीत लोगों को सन्तुष्ट करने के लिए ऊटरम ने प्रयत्न किया, किन्तु अग्रेजी न्याय मे विश्वास करने का अभी लोगों के पास कोई कारण न था और अग्रेजो की दया की बात उनके लिए एक कल्पना मात्र थी। उनकी भूमि के छिन जाने का अर्थ था कि वे असम्मानपूर्ण ढग से जीवन बिताए। इसलिए तालुकेदारो ने अपनी जागीरो के लिए लडने का दृढ निश्चय किया जैसा कि उनके पूर्वजो ने नवाबो के समय मे किया था। "लडाइया फिर एकदम नए सिरे से शुरू हो गईं और पहले से भी अधिक विस्तृत क्षेत्र मे।"

---

१३५ इनस, लखनऊ एण्ड अवध इन द म्यूटिनी, पृ० ३३९-४०

१३६ रसेल, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द १, पृ० ३५५

अध्याय ६

बिहार

पटना के निकट उपद्रवो की शुरुआत से लखनऊ की मुसीबतें बढ गयीं। १८५७ में पटना का शासक विलियम टेलर था, जो बड़ा शक्तिशाली व्यक्ति था और किसी भी प्रकार की अव्यवस्था सहन नहीं कर सकता था और न वह किसी प्रकार की जिम्मेदारी से ही बचता था। वह उन विरले लोगो मे से था जो कभी गलती नहीं करते और दूसरे लोगो के निर्णयों की अपेक्षा अपनी सहज बुद्धि पर अधिक विश्वास करते हैं। वह ५ वर्ष तक शाहाबाद का जिला-जज रहा था और वह सदर-कोर्ट मे पहुंचना चाहता था, लेकिन जब शीघ्र कार्रवाई करने की जरूरत पडी तो उसका न्यायिक प्रशिक्षण कोई बाधा सिद्ध न हुआ। यूरोपीय बागान मालिकों को टेलर की शक्ति से बडा बल प्राप्त था क्योकि बिहार मे उनके बड़े बड़े स्वार्थ निहित थे और अराजकता तथा अव्यवस्था से उनका व्यापार चाहे चौपट न होता, लेकिन उनके लाभ की हानि तो हो ही सकती थी। यदि दमनकारी उपायो से शान्ति स्थापित हो सकती थी और ग़दर दबाया जा सकता था तो टेलर ही ऐसा व्यक्ति था जो यह कार्य कर सकता था और बिहार मे उसी की आवश्यकता थी। वह जानता था कि पटना मे विद्रोह की चिनगारी धधक रही है क्योकि पटना वहाबी लोगों का केन्द्र था और हर एक वहाबी अच्छा-खासा बगावती था। टेलर की दृष्टि में सम्भवतः हर मुसलमान विद्रोही था, यद्यपि मौला बख्श, जो उसका दाहिना हाथ था, एक मुसलमान था और शाह कबीरुद्दीन, "पीला हथौड़ा" भी मुसलमान ही था। काजी रमजान अली ने अंग्रेजों के लिए छपरा जिले की रक्षा की थी जबकि सारे नागरिक अफसर वहां से जा चुके थे और सैयद विलायत अली खां "देशी की अपेक्षा कहीं अधिक विलायती" था। लेकिन ये सब लोग वास्तव मे अपवाद स्वरूप थे।

कलकत्ता और बनारस के नदी और थल मार्गों का नियंत्रण पटना द्वारा होता था, इसलिए उत्तर पश्चिमी प्रान्तो के लिए पटना एक कुंजी था। पास की छावनी दानापुर मे ७वीं, ८वीं और ४०वीं देशी पैदल सेना की रेजीमेंटें रखी गयीं थीं। इनके अलावा देशी तोपखाने की एक टुकड़ी, शाही १०वीं पैदल सेना और अंग्रेजी तोपखाने की एक टुकड़ी भी थी। मेरठ के ग़दर के बाद से भारतीय सेनाएं नागरिको और अफसरों के लिए समानरूप से परेशानी का कारण थी। मेजर जनरल लायड, जिसके हाथों में दानापुर डिवीजन की कमान थी, पिछले ५३ वर्षों से सेना में था और सन्थाल-विद्रोह को रोकने के कारण उसके बारे में लार्ड डलहौजी की बडी अच्छी राय बन गई थी। दानापुर के सिपाहियों मे से अधिकाश निकट के जिले शाहाबाद के थे। इन लोगो ने ७ जून को बनारस

के उपद्रवों की बातें सुनीं और फलस्वरूप वहा भी गडबडी की आशका हो गई। देशी सिपाहियों को नि शस्त्र करने के लिए जनरल लायड ने गम्भीरता पूर्वक विचार भी किया था और इसी उद्देश्य से मद्रास-फ्यूसीलियर्स के १५० आदमी वहा आए भी, लेकिन देशी सिपाही स्वामिभक्त ही रहे। उसने लिखा है कि "मैं यह अच्छी तरह जानता था कि चाहे कुछ भी किया जाता, लेकिन सभवत ये लोग अपने हथियारों के साथ ही भाग जाते। मुझे प्रसन्नता है कि फिलहाल उन्हे नि शस्त्र नहीं करना पडा, क्योंकि इस समय उत्तर-पश्चिम के क्षेत्रों मे डटे हुए हमारे लोगों और अफसरों के प्राणो की रक्षा के लिए वहा अग्रेज सेनाओं का भेजना आवश्यक था।"[1] भारत सरकार, बगाल सरकार, पटना के कमिश्नर और दानापुर डिवीजन के कमांडिग जनरल सब यह अनुभव करते थे कि कलकत्ता और कानपुर के बीच यातायात मार्ग का सुरक्षित बना रहना बहुत जरूरी है, लेकिन इस बारे मे सब के अपने-अपने समाधान थे। लार्ड केनिंग 'क्रोध मे शासन' करने को तैयार नहीं था। सर फ्रेडरिक हालीडे ने खबर मगाई, लेकिन सिपाहियों द्वारा विद्रोह कर दिये जाने पर उसे किस प्रकार रोका जाए, इसके बारे मे जनरल लायड कोई प्रभावशाली उपाय नहीं सोच सका, किन्तु टेलर अज्ञात शत्रु को पहले से ही जान लेने और पहला वार करने के लिए उत्सुक था।

बिहार मे सर्वत्र मेरठ विद्रोह की खबर से बडी अशाति फैली। बनारस के समाचार से भय पैदा हो गया और बहुत से अग्रेजो ने देहात मे अपने-अपने काम छोड कर पटना मे शरण ली। ७ तारीख को दानापुर मे सभावित विद्रोह की अफवाह से पटना मे खतरा पैदा हो गया था। टेलर शहर के सारे अग्रेजो की सुरक्षा के लिए अपने आपको जिम्मेवार समझता था और उसने अपने आवास को सुरक्षित कर वहां सबको शरण दी। किन्तु उसे इस सुरक्षा के लिए देशी पहरेदारो पर निर्भर करना पडता था और उसकी सम्मति मे उनकी स्वामिभक्ति सदेह से परे नहीं थी। इसलिए उसने रात्रे के सिखो को[2] पटना बुलवाया। यह बताया गया कि रास्ते में इन लोगों को देहातियों ने ईसाई कह कर उनका मजाक उडाया और उनको सिखों के बडे पुजारी ने गुरुद्वारे मे प्रवेश नहीं करने दिया।

जून के महीने मे दानापुर मे कोई उपद्रव नहीं हुआ, लेकिन देशी सिपाहियों को तुरन्त नि शस्त्र कर देने के बारे मे सरकार को राजी न कर सकने के कारण टेलर बहुत निराश हुआ। टेलर के तर्कों का जनरल लायड पर कोई प्रभाव न हुआ लेकिन जो खबरें उसके अपने गुप्तचर ला रहे थे उनके कारण उसकी चिन्ता और भी बढ गई। सब बडे बडे जमींदार विरोधी होते जा रहे थे। वहाबियों के बारे मे यह सुना जा रहा था कि वे एक बडे सरकार-विरोधी षड्यन्त्र मे लगे हुए हैं। १२ जून को रात्रे के सिक्खों के बीच एक नाजिब सरकार-विरोधी बातें फैलाते पाया गया। उस पर मुकदमा चला और अपराध सिद्ध होने पर उसे फासी दे दी गयी। टेलर ने अनुभव किया कि वह और अधिक प्रतीक्षा

---

१ फारेस्ट, ए हिस्ट्री आफ दि इडियन म्यूटिनी, जिल्द ३, पृ० ४१२

२ यह ध्यान में रखने की बात है कि रात्रे के सब जवान सिख नहीं थे बल्कि उनमे कुछ गैर-सिख भी थे।

नहीं कर सकता। वह वहाबी नेताओं को अदालत मे नही ला सकता था क्योंकि "हाल मे हुए सरकार-विरोधी षड्यंत्रों में से किसी मे भी उनका कितना सीधा हाथ था, इस बारे मे कोई ऐसा साक्ष्य न था जिसके आधार पर उनके खिलाफ कोई कानूनी कार्यवाही की जा सकती।"[3] और टेलर ने मंजूर किया कि इस सम्बन्ध मे उसके भेंदिये जो पत्र लाये उनमें से एक को छोड़ कर बाकी सब जाली थे। मैलेसन ने लिखा है कि "इन वहाबियो (मौलवियो) मे शाह मोहम्मद हसन, अहमद उल्ला, वैजुलहक ही प्रमुख थे। इन तीनो को खुले आम गिरफ्तार करने का मतलब होता उपद्रवो की शुरुआत और टेलर इसी बात को नहीं होने देना चाहता था। किन्तु जन-सुरक्षा की दृष्टि से उनका पकड़ा जाना जरूरी था, इसलिए टेलर ने उन तीनो को तथा दूसरे लोगो को राजकीय मामलों मे सलाह-मशवरा करने के हेतु उपस्थित होने का आदेश भेजा। जब बैठक समाप्त हो गयी तो दूसरों को तो जाने दिया गया लेकिन इन तीनो को रोक लिया गया और उनसे कहा गया कि वर्तमान स्थिति मे उन तीनों पर निगरानी रखना जरूरी है।" इस कार्यवाही मे मैलेसन को कहीं कोई गलत बात नही दिखाई दी। मैलेसन कहता है कि "टेलर देश की शासकीय शक्ति का प्रतिनिधित्व करता था और वे मौलवी उस सत्ता की प्रजा थे। वे लोग टेलर के कोई अतिथि नही थे, वे लोग सरकार की वाणी सुनने के लिए उसके घर गये थे और उस शासकीय वाणी मे उन्हे आदेश दिया गया कि जब तक संकट बना रहे तब तक उन्हें सम्मानपूर्वक नजरबन्द रहना चाहिए।"[4] अपने इस आचरण के बारे मे टेलर का दृष्टिकोण यह था कि "मैंने इन तीनो प्रमुख व्यक्तियो को उनकी सारी जाति के अच्छे बरताव के लिए बन्धक रूप मे रोक लिया था, न कि इसलिए कि उनके खिलाफ पर्याप्त प्रमाण प्राप्त किये जाएं और उन्हे दंडित किया जाए। यद्यपि यह कदम काफी साहसिक और सम्भवतः खतरनाक था और कमजोर लोगो के खयाल से यह बात उपद्रव का कारण भी हो सकती थी। किन्तु मैने इस बात की कीमत आक ली थी और मुझे खुशी है कि इस बात से जो नतीजे निकले वे मेरी आशा से भी अधिक अच्छे रहे।"[5] निःसंदेह यह खतरनाक कदम था लेकिन साहसिक नहीं था। जिन लोगो को कोई शक-शुबहा न हो उन्हे अपने घर बुला लेना और जब वे कोई भी प्रतिरोध न कर सकें तब उन्हे गिरफ्तार कर लेना, इस बात के लिए किसी साहस की आवश्यकता नही थी। यह भी शंकास्पद है कि टेलर ने वस्तुतः इस बात की कीमत आक ली थी, क्योकि सीधे-सच्चे व्यवहार के लिए अंग्रेजो की जो प्रतिष्ठा थी उसे इस कदम से धक्का लग सकता था, विशेषतः ऐसे समय जबकि इस प्रतिष्ठा को खतरे मे नहीं डाला जा सकता था। टेलर के समर्थको का, जिनमे मैलेसन भी था, कहना है कि ८ वर्ष बाद वहाबियो ने एक षड्यंत्र किया था और मौलवी अहमद

---

३ फारेस्ट, ए हिस्ट्री आफ़ दि इंडियन म्यूटिनी, जिल्द ३, पृ० ४००

४. मैलेसन, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द, १, पृ० ५२-५३

५. फारेस्ट, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द, ३, पृ० ४०१। सामयिक आवश्यकता के आधार पर एडवर्ड लाकवुड ने, जो उस समय पटना मे था, इन गिरफ्तारियों को न्यायूय बताया। लाकवुड, दि अर्ली डेज आफ़ मार्लबरो कालेज, पृ० १५५-७८

उल्ला नामक जिस वहाबी नेता को टेलर ने २० जून को गिरफ्तार किया था, इस अवसर पर उसपर देश-द्रोह का मुकदमा चलाया गया। यह ध्यान रखने की बात है कि दूसरे मामलो में टेलर की सूचनाए गलत साबित हुईं। डुमराव के महाराजा और टिकारी की रानी पर पहले शक किया गया था। अपने अग्रेज शासकों की तरह ही बडे-बडे जमींदार भी अपने जान-माल की रक्षा के लिए चिन्तित थे और यदि उन्होने इस हेतु कुछ जग लगे हथियार खोद कर निकाल लिए या सशस्त्र रक्षक भर्ती कर लिए तो उन लोगो पर भी विद्रोह का शक किया जाने लगा।

एक समूची जाति के रूप मे वहाबियों ने विद्रोह का साथ नहीं दिया था। हो सकता है कि अपने अनेक देशवासियो की तरह कुछ वहाबियों ने १८५७ के विद्रोह मे भाग लिया हो, लेकिन यदि पूरी की पूरी जाति ने सिपाही-नेताओ का साथ दिया होता तो सर जान लारेंस पजाब स्थित अग्रेजी सेनाओ को वहा से हटाना और ब्रिटेन के लिए इतने अधिक पजाबी मुसलमान भर्ती करना सुरक्षित न समझता। बम्बई मे सिपाही-षडयत्र का पता देने वाले फोरजेट ने उच्चवर्गीय वहाबियो से प्राप्त सहयोग के बारे मे लिखा है कि "मुझे दुख है कि बम्बई मे भी वहाबी विरोधी भावनाए थीं, लेकिन यह कहते हुए मुझे प्रसन्नता है कि मुझे वहाबियो का सहयोग ही मिला। बम्बई के मुसलमानो का सबसे बडा काजी एक कट्टर वहाबी था जिसका सहयोग रात-दिन प्राप्त हुआ, इसी प्रकार पुलिस सूबेदार मोहम्मद बुन्दे ने, जो वहाबी था, सोनापुर मे किये गए सिपाहियों के एक षडयत्र के उद्घाटन मे मेरी काफी सहायता की थी।"[६] यदि वहाबियो के नेता बिहार मे कोई दूसरा निर्णय करते तो बम्बई के वहाबियो के लिए यह कठिन था कि वे वहा के पुलिस कमिश्नर के साथ सहयोग करते। ३० सितम्बर, १८५८ के अपने ब्योरे मे बगाल के लेफ्टिनेंट गवर्नर ने लिखा कि "वहाबियो के खिलाफ कभी कोई बात सिद्ध नहीं हुई और न उनके विरुद्ध कुछ कहा गया, बल्कि एक वृद्ध वहाबी नेता द्वारा दी गयी सूचना पर कोई ध्यान नहीं दिया गया।"[७]

पटना के "सुसस्कृत" कमिश्नर की इस धोखेबाजी का परिणाम अच्छा नहीं हुआ क्योकि अगले महीने ही पटना मे एक अजीब ढग का उपद्रव हुआ, जो ग़दर के इतिहास मे बेमिसाल है, क्योकि इस व्यापक उपद्रव के पीछे कोई फौजी विद्रोह नहीं था।

टेलर जो कुछ कर चुका था उसी पर निश्चित नहीं बैठा रहा। वहाबी नेताओं की गिरफ्तारी के बाद एक आज्ञा निकाली गयी कि पटना के सारे निवासी चौबीस घण्टे के अन्दर सारे हथियार जमा कर दें और बिना आज्ञा के नौ बजे रात्रि के बाद घर से बाहर न निकलें। ये दोनो ही आज्ञाए लागू नहीं की जा सकीं, क्योकि ये गैर-कानूनी थीं और ऐसे नाजुक मौके पर इन आज्ञाओ के कारण उत्तेजना ही फैली। कमिश्नर ने इस सम्बन्ध मे सरकार से पूर्व-स्वीकृति की आवश्यकता अनुभव नही की और लेफ्टिनेंट गवर्नर ने

---

६ फोरजेट, आवर रियल डेंजर इन इंडिया, पृ० १३१

७ बगाल सरकार के अधीन निचले प्रान्तो पर विद्रोह का जो प्रभाव पड़ा, उसके बारे मे बगाल के लेफ्टिनेंट गवर्नर का ब्योरा, पृ० ५

अनुभव किया कि उसके सामने एक ऐसी स्थिति पैदा कर दी गई है, जिसके औचित्य के बारे मे उसे पर्याप्त सूचना नहीं दी गई थी। असिस्टेंट सेक्रेटरी के द्वारा लेफ्टिनेंट गवर्नर के विचार स्पष्ट रूप से टेलर तक पहुचा दिए गए और टेलर की अपेक्षा किसी भी दूसरे कम आत्म-विश्वासी व्यक्ति को ये विचार सतर्क कर सकते थे। "लेफ्टिनेंट गवर्नर आपको अनावश्यक कठोरता और गैर-कानूनी कार्रवाइयो के विरुद्ध ईमानदारी से सावधान करना चाहते हैं। आपने उन्हे जो अपूर्ण जानकारी कराई है उसको ध्यान मे रखते हुए ले० गवर्नर को यह संशय है कि आप जो काम करते रहे हैं, वह काफी असाधारण और आपत्तिजनक है। सम्भव है कि इन कार्रवाइयो के लिए आपके पास पर्याप्त कारण हो, लेकिन आपने अभी तक उनका स्पष्टीकरण नहीं किया है। आपके इस प्रकार के कार्यो से ले० गवर्नर को गहरा असन्तोष है जो स्पष्ट शब्दो मे आपको पहले ही व्यक्त किया जा चुका है।"[८]

टेलर ने उत्तर मे लेफ्टिनेंट गवर्नर को लिखा कि जिन कार्यवाहियो के बारे मे शिकायत की गई है उनके बारे मे तब तक वह कोई निर्णय न करें "जब तक कि यह निश्चय नहीं कर लिया जाता कि इनके कारण चारो ओर सुरक्षा एव विश्वास स्थापित करने मे, पूरे शहर मे शाति स्थापित होने मे तथा लोगो मे सत्ता के प्रति आदर-भाव एवं भय उत्पन्न करने मे कितनी सहायता मिली है।" अधिकारो की चर्चा करते हुए टेलर ने लिखा कि मौके पर मौजूद होने के कारण "अपने स्थानीय अनुभव के आधार पर मुझे ऐसे मामलो मे निर्णय करने" का अधिकार दिया जाना चाहिए और यदि ऐसे समय "साहसपूर्ण तथा निर्णयात्मक कार्यवाहियां करने के उत्तरदायित्व"[९] से वह झिझकता तो वह अपने पद के योग्य सिद्ध नहीं हो पाता। सक्षेप मे टेलर ने साध्य की सफलता को ही साधन के औचित्य का निर्णायक ठहराया किन्तु दुर्भाग्यवश साध्य की प्राप्ति अभी नहीं हुई थी और शासको की आतक की नीति असफल हो गई।

३ जुलाई की शाम को झण्डे लहराते हुए और ढोल बजाते हुए मुसलमानो का एक विशाल जुलूस सडको पर निकला। अफीम एजेंट के सहायक डा० लीएल ने ५० नजीबो और ८ सिखो को अपने साथ चलने का हुक्म दिया। लेकिन मौके पर पहुंचने के पहले ही वह कत्ल कर दिया गया। इसके बाद उपद्रवी तितर-बितर कर दिये गये और उनका एक आदमी मारा गया तथा एक बुरी तरह घायल हुआ। पीर अली नामक एक स्थानीय पुस्तक विक्रेता, जो एक वहाबी था, इन उपद्रवियो के नेता के रूप मे गिरफ्तार किया गया। इस सिलसिले मे ४३ आदमियो पर मुकदमा चलाया गया। ये लोग किसी साधारण अदालत के सामने पेश नहीं किये गये बल्कि टेलर और पटना के मैजिस्ट्रेट लोइस के कमिशन के सामने उपस्थित किये गये। "जिरह की आवश्यकता" और "अदालती विधि-विधान" को पूरा करने की इजाजत नहीं दी गई, यह बात टेलर ने भी अप्रत्यक्ष रूप से मानी है।[१०] उन ४३ व्यक्तियो मे से १६ को फासी दी गयी, ५ को आजन्म कारावास,

---

८. फारेस्ट, ए हिस्ट्री आफ दि इण्डियन म्यूटिनी, जिल्द ३, पृ० ४०५

९. वही, जिल्द ३, पृ० ४०६

१० २५ मई, १८५६ को टेलर ने एक पत्र बगाल सरकार को लिखा कि "ऐसे

१ को कोडे लगाये गये और केवल ३ बरी किये गये। सजा पर सिर्फ टेलर ने दस्तखत किये थे और फासी की आज्ञा वाले १६ व्यक्तियो को तुरन्त फासी दे दी गयी। टेलर के उत्तराधिकारी सैमुअल्स को यह शक था कि ये दण्ड समुचित गवाहियो पर आधारित नहीं थे इसलिए उसने सारे कागजात निजामत अदालत को भेज दिये। इस अदालत के न्यायाधीशों ने जेल और कोडे की सजा पाने वाले व्यक्तियो के मामलो तक ही अपनी जाच सीमित रखी, क्योकि फासी पाने वाले तो रह नहीं गये थे, और उनकी जाच का निर्णय टेलर के विरुद्ध गया। "इन मुकदमो के कागजात पूरी तरह देखने पर अदालत का यह मत है कि कैदी सख्या १५-२३, २५-२८, ३०, ३१, ३८, ३६ और ४० के बारे मे पर्याप्त सबूत नहीं हैं। जहा तक २४ सख्या वाले सादत अली का सवाल है, जिसका नाम रोड्रिग्स[11] ने अपने ५ जुलाई को दरोगा के सामने दिये गये बयान मे लिया था और जिसकी अगले दिन उसने पहचान की, हमारा यह विचार है कि रोड्रिग्स का साक्ष्य और अधिक जाच करने पर विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता। इसलिए हमारी सिफारिश है कि इसकी सजा में भी छूट दी जानी चाहिए।"[12] टेलर ने जिन शेष २१ लोगों को दडित किया था, निजामत अदालत ने उनमे से १६ को छोड दिया। अधिकाश सजाओ के लिए लोइस ने लिखित रूप मे अपनी जिम्मेदारी से इन्कार कर दिया। लोइस ने लिखा कि "जिस उपद्रव मे डा० लीएल की हत्या हुई, उस उपद्रव से सम्बन्धित कुछ व्यक्ति कमिश्नर टेलर, तथा मेरे सामने पेश किये गये थे। उन लोगो मे से कुछ अवश्य ही अपराधी थे[13] और समुचित कार्यवाही के बाद उनको फासी दे दी गई, शेप का इस मामले से कितना और क्या सम्बन्ध था, इसके बारे मे मुझे काफी शक है और उनके विरुद्ध जो सबूत थे उनके आधार पर उन्हे दोषी ठहराना मेरे लिए असम्भव था। इसलिए मैंने यह प्रस्ताव

सकट के समय यदि डा० लीएल के हत्यारों के साथ श्री सैमुअल्स ने अपनी इच्छा के अनुसार कार्य किया होता, यदि उसने जिरह तथा अदालती कार्यवाही की औपचारिकता को पूरी तरह बरता होता और यदि उसने कैदियों के सिरों को ढक दिया होता जिससे कि गवाह चकरा जाते, तो निश्चय ही पटना के ईसाइयों ने भगवान को धन्यवाद दिया होता कि ऐसे समय उनके जान-माल की रक्षा का भार सैमुअल्स के ऊपर न था।"

११ यह एक भारतीय था जिसने अपना धर्म बदल लिया था और जिसका हिन्दू नाम राधाकृष्ण था। सैमुअल्स लिखता है कि रोड्रिग्स ने ५ तारीख को थाने में ८ आदमियों को पहचाना। इसके दूसरे दिन उसने मौलाबख्श के सामने २७ आदमियों को, ६ तारीख को ४ और व्यक्तियो तथा ५ अगस्त को कुछ और व्यक्तियो को पहचाना

१२ पार्लियामेंटरी पेपर्स, ईस्ट इण्डिया, १८५८, स० २५८, पृ० ६

१३ पीर अली निश्चय ही उपद्रव का नेता था। उसके घर से प्राप्त एक पत्र में यह वाक्य मिला, "शहर के कुछ सभ्य व्यक्ति जेल मे हैं और सरकार के अत्याचार तथा दमन से प्रजा परेशान हो गई है और उसे कोसती है।" कमिश्नर के सामने लाए जाने पर उससे पूछा गया कि सरकार उसकी जान बख्श दे, इसके लिए उसे क्या कहना है? "बडी गौरवपूर्ण शाति के साथ, जैसी कि इस तरह की उत्तेजनात्मक परिस्थिति में हम लोग

रखा कि आगे की जांच-पड़ताल होने तक के लिए उन्हे छोड देना चाहिए। मेरे इस सुझाव का विरोध टेलर ने इस आधार पर किया कि सबके विरुद्ध एक जैसे सबूत होने से सभी समान रूप से अपराधी ठहरते हैं। मैं उनकी बातो से सहमत नहीं हो सका और मै अपनी पहली ही राय पर कायम रहा। टेलर ने बाद मे यह सुझाया कि कैदियों को १० वर्ष का कारावास दिया जाय और जब देश मे फिर से शाति स्थापित हो जाय और सरकार यदि उचित समझे तो उनके मामले मे फिर से जाच-पडताल करे।"[१४] इस बारे मे सैमुअल्स की टिप्पणी से काफी प्रकाश पडता है, क्योकि उसका कहना है कि मुकदमे के समय सरकारी गवाहो के कोई बयान नहीं लिये गये। अलीपुर जेल मे इन लोगो ने बताया कि मौला बख्श के दबाव के कारण उन्होने झूठी गवाहिया दीं। सारे मामले की तैयारी मौला बख्श ने की थी और उसका दफ्तर टेलर के अहाते मे लगाया गया था तथा उसका काम था कि वह गवाहो को तैयार करे। सैमुअल्स लिखता है कि "जब एक प्रमुख मुकदमा चल रहा था तब प्रान्त के दूसरे जिले बिलकुल शात थे।" "इन सजाओ का परिणाम, जिन्हे लोग ठीक नहीं मानते थे, केवल यही हो सकता था कि जनता मे असन्तोष बढ़े।"[१५] ४ मार्च, १८५६ के अपने ब्योरे मे गवर्नर-जनरल ने लिखा कि "मै समझता हू कि टेलर द्वारा किए गए मुकदमे मे बिना अपेक्षित प्रमाणो के लोगो को दोषी ठहराया गया और उन्हे फासी दी गई।" किन्तु टेलर के संभावित त्यागपत्र के कारण गवर्नर-जनरल इस मामले की सार्वजनिक जाच के लिए तैयार नहीं थे, यदि टेलर स्वय इसके लिए तैयार होता तो अलग बात थी। लेकिन यह बात महत्वपूर्ण है कि ऐसी सार्वजनिक जाच के लिए टेलर स्वयं तैयार नहीं हुआ। कर्नल मैलेसन ने इस उपद्रव को एक ग़दर के रूप मे देखा और पटना के रक्षक के रूप मे टेलर की प्रशंसा की और उन उच्च अधिकारियो की निन्दा की जो कमिश्नर से असहमत थे। लेकिन इस कर्नल ने निजामत अदालत के जजो के निन्दात्मक शब्दो और लोइस द्वारा किए गए मुक़दमे के वर्णन के बारे मे कुछ भी नही कहा।

गिरफ्तार व्यक्तियो के साथ टेलर ने स्वयं यह सौदा किया कि वे दूसरो को फसा कर खुद मुक्त हो सकते हैं। जब एक देशी पुलिस का अफसर विद्रोहात्मक पत्र-व्यवहार करने के मामले मे उसके सामने लाया गया तो टेलर ने उससे कहा कि "मै तुमसे एक

हमेशा ही नहीं रख पाते, उसने प्रश्नकर्ताओ की ओर देखते हुए जवाब दिया : "कुछ बाते ऐसी होती हैं जिनमे प्राणों की रक्षा करना अच्छी चीज है लेकिन कुछ ऐसी होती हैं जिनके लिए प्राणो की बलि दे देना ज्यादा अच्छा होता है।" कमिश्नर के अत्याचारो की निन्दा करते हुए उसने कहा कि "तुम मुझे या मेरे जैसे दूसरे लोगो को भले ही फासी पर लटका दो लेकिन हमारी जगह सैकडों नये व्यक्ति पैदा होंगे और आपका उद्देश्य कभी पूरा नहीं होने देंगे।" के, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द ३, पृ० ८५-८६

१४. ८ फरवरी, १८५८ का लोइस का पत्र। पार्लियामेंटरी पेपर्स, ईस्ट इण्डिया, १८५८, सख्या २२६, पृ० ८

१५ पार्लियामेंटरी पेपर्स, ईस्ट इन्डिया, १८५८, सख्या, २२६, परि०, पृ० ७-११

सौदा करने को तैयार हूं, तुम मुझे तीन लोगो की जानें दो और मैं तुम्हें तुम्हारी जान लौटा दूगा।"[१६] पीर अली कोई धनी आदमी नहीं था, लेकिन यह शक किया जाता था कि उसके पीछे कोई मालदार व्यक्ति था। पीर अली के साथ ही शेख घसीटा नामक व्यक्ति पर मुकदमा चला कर उसे फासी दी गई थी। वह पटना के सबसे बडे मालदार व बैंक के मालिक सैयद लुत्फ अली के यहा नौकर था। इसलिए उसे हिरासत मे रखा गया, क्योंकि यह शक किया गया था कि यही व्यक्ति पीर अली के सगठन को अधिक आर्थिक सहायता देता था। उसके खिलाफ यह अभियोग था कि उसने एक प्रमुख विद्रोही को शरण दी थी। लुत्फ अली के सौभाग्य से उस पर टेलर द्वारा नहीं, बल्कि पटना के एक सीनियर जज की अदालत मे मुकदमा चला और वह छोड दिया गया।[१७] यदि पटना मे कोई भारतीय अपने को सुरक्षित नहीं समझता था तो क्या हुआ, टेलर को कलकत्ता के व्यापारी-वर्ग का समर्थन प्राप्त था और उसने यह जानने की जरा भी चिन्ता नहीं की कि दानापुर के सिपाहियो पर उसके कार्यो का क्या प्रभाव पड रहा था?

दानापुर डिवीजन की कमान जनरल लायड के हाथों मे थी और उन्हें गदर की कोई आशका न थी—जब तक कि किन्हीं अप्रत्याशित परिस्थितियों से सिपाहियों मे ही उत्तेजना न फैल जाए। इसलिए भारत सरकार ने सिपाहियो को नि शस्त्र करने का कठिन निर्णय जनरल लायड के विवेक पर ही छोड दिया। बनारस जाते हुए जब अग्रेज सेनाए पटना होकर गुजर रही थीं तो जनरल लायड से कहा गया कि "जब रेजीमेट दानापुर पहुच जाए और यदि आपके पास देशी सेनाओ पर शक करने का पर्याप्त कारण हो और आपकी राय

---

१६. फारेस्ट, ए हिस्ट्री आफ दि इडियन म्यूटिनी, जिल्द ३, पृ० ४०८

१७ लुत्फ अली पर मुकदमा चलाने वाले और बाद में उसे रिहा कर देने वाले फर्कहार्सन ने बाद में बगाल सरकार से शिकायत की कि मुकदमे के निर्णय के मामले में टेलर ने उस पर अवाछित प्रभाव डालने की चेष्टा की। "कमिश्नर टेलर द्वारा १८५७ के अधिनियम ११ के अन्तर्गत सैयद लुत्फ अली खा पर एक मुक़दमा दायर किया गया और जिसे मैंने इस महीने की २३ और २४ ता० को सुना। यह मुकदमा उपरोक्त मोहब्बत नामक एक व्यक्ति को जानबूझ कर शरण देने के अभियोग के बारे में था, चूकि अभियोग की पुष्टि में समुचित प्रमाण नहीं थे इसलिए मैंने उसे रिहा कर दिया। आखिरी वक्त में कमिश्नर ने चाहा कि मुकदमे की तारीख और बढा दी जाय ताकि और दूसरे नए गवाह पेश किये जा सकें, जिससे यह सिद्ध हो जाय कि उक्त कैदी ने एक बगावती को अपने यहा शरण दी थी। कमिश्नर की यह बात मानने से मैंने इन्कार कर दिया, यद्यपि कमिश्नर ने मुझे चेतावनी दी थी कि ऐसा करते हुए मुझ पर बहुत बड़ी जिम्मेदारी आ जाती है। ऐसी विषम परिस्थितियो में मैंने इस मामले के सारे कागजात भेजना उचित समझा है ताकि यह मालूम हो सके कि यह मामला किस ढीले-ढाले ढग से और आगे चलाने के लिए भेजा गया है। यहा यह बात भी फैली हुई है कि पिछले दिनों पटना शहर के विद्रोह में भाग लेने वाले और इस कारण दंडित कुछ लोगों को जिस कमीशन ने, जिसके अध्यक्ष श्री टेलर थे, सजाए दीं, उनमे तो वैसे सबूत भी प्राप्त नहीं हो सके जैसे कि लुत्फ अली खा के मामले मे थे और जो मैंने रद्द कर दिये

में उन्हें निःशस्त्र किया जाना ठीक हो तो पांचवें फ़्यूसिलियर्स को वहां उतार कर इस मामले मे आप उनकी सहायता शौक से ले सकते हैं, लेकिन यह बहुत जरूरी है कि आप रेजीमेट को कम-से-कम समय के लिए ही रोकें।"[१८] इसके बाद एक बड़ी मूर्खतापूर्ण सलाह दी गई। तीनों रेजीमेंट नि.शस्त्र की जाने वाली थीं। किन्तु उन्हे यह सावधानीपूर्वक बताना था कि उनका निःशस्त्र किया जाना उनके भले के लिए ही है, जिससे कि वफादार सैनिकों को विद्रोहियो के षड्यन्त्र से बचाया जा सके क्योकि प्रत्येक रेजीमेंट मे कुछ ऐसे अवांछित व्यक्ति थे। पानसनबी ने यही बात बनारस मे अपने सिपाहियो के सामने कही थी। लेकिन उन्हे विश्वास नहीं हुआ क्योकि सिपाही कोई बच्चे तो थे नहीं, बल्कि कुछ तो उनमे से बहुत चतुर थे और उन्हें इस प्रकार निःशस्त्र किया जाना उतना ही खला जितना कि अंग्रेजो को।

नील की खेती करने वालो की नाक बड़ी लम्बी थी और जनरल लायड को मिलने वाले आदेश उनसे छिपे नहीं थे। १५ जुलाई को लायड को एक पत्र मिला और २० जुलाई को नील के ये साहब गवर्नर-जनरल से मिले और उनसे कहा कि वे दानापुर के सिपाहियों को निःशस्त्र कर दें। उन्हें पता था कि सिपाहियों को निःशस्त्र करने की बुद्धिमत्ता एवं उपयोगिता के बारे मे लायड को सन्देह है, इसलिए उन्होने उसे यह कदम उठाने के लिए मजबूर करने की कोशिश की जिससे कि उनकी थैलियो पर आच न आए। इस प्रकार एक सैनिक रहस्य का खूब विस्तृत प्रचार हुआ, लेकिन यह नहीं मालूम कि किस प्रकार और कितनी जल्दी यह बात दानापुर के सिपाहियो मे फैली। सिपाहियो के खबर प्राप्त करने के अपने ढग थे और कई बार तो ये इतने निश्चित और शीघ्रतापूर्ण होते कि उसके सामने सरकारी ढंग भी मात थे।

एक निर्णयात्मक कदम उठाने मे लायड बहुत दिनो तक हिचकता रहा, लेकिन २४ जुलाई को उसने निर्णय कर लिया। चूंकि वह इस बात से पूरी तरह सहमत नहीं था इसलिए उसने बीच का रास्ता अपनाया। यदि तीनो देशी रेजीमेंटें अंग्रेजी तोपो के सामने खडी कर दी जातीं और उन्हे हथियार डालने के लिए कहा जाता तो कुछ को छोड़ ज्यादातर सिपाहियो ने आज्ञा का पालन किया होता और यदि कुछ विरोध भी होता तो वह शक्ति से दबा दिया गया होता, या फिर सिपाहियो से कोई छेड-छाड़ न की जाती क्योकि अभी तक उनसे अशांति के कोई भी चिन्ह प्रकट नहीं हुए थे; हालाकि टेलर की उग्र नीति के कारण काफी उत्तेजना थी और यह सम्भव था कि जब तक कि किसी अप्रत्याशित घटना

थे।" फर्कहार्मन ने कहा कि इस मामले से न केवल सिविल सर्विस बल्कि पूरी अग्रेज जाति के चरित्र के सम्बन्ध मे सर्वसाधारण की बड़ी खराब धारणा हो गई है। लुत्फ अली के मामले से सम्बद्ध कागजात के साथ कमिश्नर द्वारा उसे भेजे गए कई निजी पत्र भी उसने भेजे, जिनमें उसे कैदी के खिलाफ भडकाने वाली बातें थीं। सलग्न २, १९९-२२२, कोर्ट को भेजे गए पत्र मे, सितम्बर १, १८५७। अन्य पार्लियामेंटरी पेपर्स (स ५) १८५७, पृ० १७-१८, परिशिष्ट बी, पृ० ७५-९१

१८. फारेस्ट, ए हिस्ट्री आफ दि इडियन म्यूटिनी, जिल्द ३, पृ० ४१४

से कोई खतरा ही न पैदा हो जाता, पहले की तरह ही सब बातें चलती रहतीं। लेकिन लायड ने उनकी अभिताडन टोपिया इस ख्याल से ले लीं कि उन्हे बेइज्जत किये बिना ही उनके हथियार बेकार हो जाए। दूसरे दिन सवेरे बैरक स्क्वायर मे यूरोपियन सेनाए बुलाई गई और साथ ही दो बैलगाडिया भी भेजी गई ताकि अभिताडन-टोपिया एकत्र की जा सकें। वापसी मे ७वीं और ८वीं रेजीमेंट ने शोर मचाया और इनको रोकने की चेष्टा की। लेकिन उनके अफसरो की कोशिश से शाति स्थापित हो गई और गाडिया जाने दी गई। इस झगडे के सारे समय ४०वीं रेजीमेंट पूरी तरह अनुशासन मे रही, बल्कि वह उन दो रेजीमेंटो के अपने भाइयो का विरोध करने के लिए भी तैयार थी।

लायड का काम अभी आधा ही हुआ था, क्योकि प्रत्येक सैनिक के पास अभी भी १५-१५ टोपिया और थीं। लायड का ख्याल था कि मागने पर ये टोपिया भी वापिस कर दी जाएगी और यह काम आसानी से देशी अफसरो को सौंपा जा सकता है। लेकिन सैनिको ने टोपिया देने से इन्कार किया और इस बार अग्रेज अफसरो का कहना-सुनना भी किसी काम नहीं आया। अफसरों से चला जाने के लिए कहा गया और कहा जाता है कि उन पर गोलिया चलाई गई। यूरोपियन अस्पताल के पहरेदारो ने अफसरो को भागते देखा और उन्होने 'खतरे की बन्दूकें छोड़ीं। इस प्रकार जो शाही १०वीं रेजीमेंट अभी तक शात थी मैदान मे आ गई। रोगी अस्पताल की छत पर चढ गए और वहा से उन्होंने गोलिया चलाकर "लगभग एक दर्जन बदमाश" मारे। ४०वीं देशी पैदल सेना ने पहले तो इन लोगों का साथ नहीं दिया, लेकिन यूरोपियन अस्पताल की छत से जब १०वीं रेजीमेंट द्वारा गोलिया बरसती देखीं तो उन लोगो ने भी विद्रोहियों का साथ दिया।[१९] टेलर ने देखा कि उसकी भविष्यवाणी सही सिद्ध हो रही है और लायड ने सारा मामला गडबडा दिया है। लायड को चाहिए था कि वह इतना महत्वपूर्ण काम देशी अफसरो पर न छोडता बल्कि अपनी उपस्थिति मे टोपिया एकत्र करवाता। जिस समय यह उपद्रव उठ खडा हुआ वह नदी मे एक जहाज पर था। इसलिए सेना के अफसर उसकी सलाह से वचित रहे। लायड जानता था कि विद्रोहियो की वापसी को नहीं रोका जा सकता। ये विद्रोही अपने शाहाबाद जिले के मुख्यालय आरा की ओर बढ़े। कुछ लोग अपनी पत्नियों और बच्चो को पीछे छोड गए क्योंकि इस उपद्रव की पहले से कोई योजना नहीं थी।

लायड ने इन भगोडों का पीछा नदी मे किया और उसके जहाज ने उनकी कुछ नावों को डुबो दिया लेकिन इसके अतिरिक्त वह और कुछ नहीं कर सका। उसे इन लोगो के गतव्य स्थान का भी पता नहीं था। वे आरा जा सकते थे, वे चाहते तो पटना की ओर बढ कर उस शहर को खतरे मे डाल सकते थे या फिर गया की ओर जा सकते थे। पटना की रक्षा करना उसका तात्कालिक कर्त्तव्य हो गया था, इसलिए दो तोपों के साथ एक दस्ता वहां भेजा गया और इन सिपाहियो की गतिविधि जानने की प्रतीक्षा की जाने लगी। राइ-फलधारी सैनिको का एक दस्ता २६ तारीख को एक जहाज में सोन नदी के ऊपर की ओर भेजा गया, लेकिन धारा गहरी नहीं थी इसलिए जहाज आगे नहीं जा सका। एक दूसरा

---

१९ के, ए हिस्ट्री आफ दि सिपाय वार, जिल्द ३, पृ० ९३-९४

जहाज नागरिको के लिए आरा भेजा गया लेकिन वह रेत मे फंस गया। एक तीसरा जहाज इलाहाबाद की ओर से कलकत्ता जाने वाले यात्रियो को लेकर शाम को आया। यह काफी देर से प्राप्त हो सका क्योकि इसका कप्तान अपने यात्रियो को जगाने के लिए तैयार नहीं था। २९ तारीख की शाम को यह जहाज कप्तान डनबर की कमान मे थोड़ी सी सेना के साथ रवाना हुआ।

इस अभियान का बड़ा बुरा अन्त हुआ। जगदीशपुर के बाबू कुंवर सिंह के नेतृत्व मे सिपाहियो ने इस अंग्रेज जत्थे पर छिप कर हमला किया। सबसे पहले कप्तान डनबर की मृत्यु हुई। "हमारे दस्ते के सामने से, दाहिने बाजू से, बाएं बाजू से अधेरे को चीरती हुई गोलियो की भारी बौछार हो रही थी।" सारा दस्ता अस्तव्यस्त हो गया। "एक दिन पहले स्वस्थ और आशाओ से भरे हुए जो ४०० आदमी चले थे, उनमे से आधे तो गिद्धों और सियारो का भोजन बनने के लिए पीछे रह गए और जो लौटे उनमे से करीब ५० ही ऐसे थे जो घायल नहीं थे।"[२०] इस दुर्घटना का कुप्रभाव टेलर जैसे आशावादी और आत्म-विश्वासी व्यक्ति पर भी इतना गहरा हुआ कि वह पूरी तरह से घबरा उठा और उसने सारे जिला-अफसरो को पटना आने का हुक्म दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि टेलर पटना के कमिश्नर के पद से हटा दिया गया और पूर्वी बंगाल के मेमनसिंह जिले मे जज बना कर भेज दिया गया। टेलर ने इस बात की शिकायत की और जब देखा कि कुछ नहीं हो सकता तो उसने त्यागपत्र दे दिया। लेकिन टेलर ने इस बारे मे अपना विरोध आसानी से नहीं छोडा, बल्कि उसने लेख लिखकर आन्दोलन शुरू किया जिसके फलस्वरूप उसके कई समर्थक हो गए।

आरा पर हमला होना कोई आश्चर्य नहीं था। क्योकि टेलर ने वहां के मजिस्ट्रेट वेक[२१] को गदर की संभावना से सूचित कर रखा था। तुरन्त एक परिषद बुलाई गई और स्त्रियां तथा बच्चे दानापुर भेज दिए गए। यह भी तय किया गया कि रेलवे इन्जीनियर श्री बायले का मकान सुरक्षित रखा जाय ताकि लोग समय पडने पर उसमे शरण ले सकें। इस मकान मे थोड़ी खाद्य सामग्री और हथियार भी रखे गए लेकिन गैर-सरकारी यूरोपियनो ने पीछे ठहरना सुरक्षित नहीं समझा। उनमे से दो को छोड़ शेष दानापुर चले गए।[२२] यदि टेलर ने वेक की सहायता के लिए रात्रे के ५० सिख जवान न भेजे होते तो ये सारी तैयारियां किसी काम की न होतीं। २६ जुलाई को एक सवार ने सूचना दी कि सिपाहियो ने सोन नदी पार कर ली है। तुरन्त ही इस सूचना की पुष्टि भी हुई और १५ यूरोपियन तथा यूरेशियन और ५० सिक्ख बायले द्वारा सुरक्षित किए गए मकान मे चले गए। इन

---

२०. "४५० में से २५० सैनिक ही जहाज तक जीवित पहुचे। तब से १०० के लगभग घावों और बीमारियों के कारण मर गए।" मैक डानेल का यह वर्णन सीवकिंग ने उद्धृत किया है, ए टर्निंग पोइंग इन दि इंडियन म्यूटिनी, पृ० ६७-६८

२१. सिवकिंग का कथन है कि मजिस्ट्रेट वेक हेयरवर्ड दि वेक का वशज था।

२२. हाल्स, टू मन्थ्स इन आरा, इन १८५७, पृ० १४। गैर सरकारी यूरोपियनों मे से एक ने ही पीछे रह कर सेवा की। हाल्स, टू मन्थ्स इन आरा इन १८५७, पृ० १३

लोगो के साथ अकेला मुसलमान, डिप्टी कलक्टर सैयद अजीमुद्दीन हुसैन भी था।[२३] २७ जुलाई को सिपाहियो ने आरा मे प्रवेश किया और उन्होने अपने आपको कुवर सिंह की कमान के अधीन कर दिया।

कुवरसिंह की आयु उस समय लगभग ७० वर्ष की थी। उसका स्वास्थ्य भी बहुत अच्छा न था। पटना के कमिश्नर डब्ल्यू० डैम्पियर ने नवम्बर १८५४ मे बताया था कि उसका जीवन कुछ वर्षो का ही और है।[२४] कुवर सिंह की बहुत बडी जमीन-जायदाद थी, जिससे उसे कम से कम तीन लाख रुपया प्राप्त होता था और वह १ लाख ४८ हजार की सालाना की मालगुजारी देता था। कुवर सिंह पढ़ा-लिखा नहीं था और चूकि उसे काम-काज संभालने की भी शिक्षा नहीं मिली थी, इसलिए वह अपनी जायदाद की देखभाल भी नहीं कर पाता था और उस पर भारी कर्जा हो गया था। डैम्पियर और टेलर दोनों ही यह मानते थे कि कुंवर सिंह को उसके बेईमान एजेण्टों ने ही धोखा दिया है। डैम्पियर ने लिखा है कि उसके अपने नौकर ही उसकी अनुभवहीनता का लाभ उठाते थे और सूद की ऊची दरों पर बडी बडी रकमों के पट्टे लिख देते थे। "मैं केवल यही कह सकता हू कि उसे कुछ हजार रुपये ही मिले हैं जबकि वह लाखो रुपयो की देनदारी के लिए बध गया है।" टेलर ने लिखा कि "जिला शाहाबाद मे बाबू कुवरसिंह की बहुत बडी और कीमती जायदाद है। बाबू कुवर सिंह एक उच्च कुल और पुराने घराने के हैं। वह एक उदार और लोकप्रिय जमींदार हैं और उनकी रियाया उन्हें बहुत स्नेह करती है और उनके जिलों के देशी और यूरोपियन लोग उनका आदर करते हैं। किन्तु अधिकाश राजपूतों की तरह बाबू कुवर सिंह भी बिलकुल अशिक्षित हैं, इसलिए बडी आसानी से वे सदा स्वार्थी लोगों के शिकार रहे हैं और उनके स्वार्थी एजेण्टों ने उन्हें अपने हाथ की कठपुतली बना रखा है। उदार प्रकृति और फिजूलखर्ची की खानदानी आदतो के कारण उनका खर्च बहुत बढ़ा हुआ है और उसकी पूर्ति कर्ज लेकर ही की जाती है।"[२५] कुवर सिंह पर १३ लाख रु० का कर्ज हो गया था और उसने तथा उसके ऋण-दाताओं ने सरकार से प्रार्थना की थी कि वह उसकी जायदाद का प्रबन्ध अपने हाथ मे ले ले और धीरे-धीरे उसका ऋण चुका दिया जाय। डैम्पियर और उसका उत्तराधिकारी टेलर दोनो ही ऐसा करने के लिए तैयार थे, लेकिन कुवरसिंह के खून पर मोटे होने वाले उसके साथी कुवर सिंह पर अपना प्रभाव छोड देने के लिए भला कैसे राजी हो सकते थे और टेलर को यह शक हो गया कि उसके ऋण-दाताओ को भडकाने मे शाहाबाद के मजिस्ट्रेट कनलिफ का हाथ था।[२६] राजस्व-बोर्ड ने सुझाया कि कुवर सिंह कहीं से १० लाख रुपये का कर्ज ले ले और इसके लिए विनायक राव के पुत्र किरवी निवासी नारायण राव और माधव राव से बात की गई लेकिन अनुपयुक्त शर्तों

---

२३ वही, पृ० ३८

२४. बगाल सरकार के सचिव डब्ल्यू० ग्रे को २२ नवम्बर, १८५४ को डब्ल्यू० डेम्पियर का पत्र।

२५ राजस्व-बोर्ड के मत्री को लिखा टेलर का पत्र, दिनाक १६ दिसम्बर, १८५६

२६. राजस्व-बोर्ड के मत्री के नाम टेलर का पत्र, दिनाक १६ दिसम्बर, १८५६

के कारण बात-चीत भंग हो गई। कुंवर सिंह को बचाने के विचार से टेलर ने सुझाव दिया कि जरूरी भुगतान के लिए छोटे कर्ज लिए जाएं और शाहाबाद के डिप्टी कलक्टर सैयद अज़ीमुद्दीन हुसेन खा को जायदाद की देख-रेख के लिए नियुक्त किया जाए। उसने लिखा कि "रिपोर्ट के साथ जो वक्तव्य नत्थी किया गया है उससे बोर्ड को ज्ञात होगा कि लगभग ६ लाख रुपया चुका दिया गया है और केवल २,५६,५०० रु० का नया कर्ज लिया गया है।" लेकिन टेलर की ईमानदारी के साथ की गई कोशिशें भी उस गरीब सरदार को बरबाद होने से नहीं बचा सकीं। बोर्ड ने उसके प्रस्ताव को ठुकरा दिया और १८५७ में कुंवर सिंह ने अपने आप को दिवालिया अनुभव किया।[२७] वह अपनी पैतृक जायदाद के प्रति बहुत अनुरक्त था। जैसा कि टेलर ने लिखा है, "वास्तविक बात यह है कि कुवर सिंह पुराने जमाने के सरदारो कैमरन या मैक्डोनल्ड की तरह उत्साही है, जो पिछले वर्षों मे आई कठिनाइयो का सामना करने के लिए हमेशा उद्यत रहा है और अपनी जायदाद के प्रति सामन्ती अनुराग के कारण वह बड़ा भावुक हो गया है।" अपनी पैतृक जायदाद के नष्ट हो जाने की सम्भावना देखकर वह उसे बचाने के लिए मजबूर हो गया। जहां तक अंग्रेजो का सवाल है, उसके मन मे उनके लिए कोई घृणा नहीं थी, बल्कि इसके विपरीत उसके सम्मानपूर्ण एवं शिष्ट बरताव, और खेलो मे उसका शौक होने के कारण कई अंग्रेजों से उसकी मैत्री थी। उसका बड़ा से बड़ा दुश्मन भी उस पर यह दोषारोपण नहीं कर सकता था कि उसने निरपराध व्यक्तियो का खून बहाया।[२८]

कर्नल मैलेसन का कहना है कि सिपाहियो से उसकी गुप्त सांठ-गांठ थी और उसके ही आदमियों ने वे नावें दी थीं, जिन पर चढ़ कर विद्रोहियो ने सोन नदी पार की। शाहाबाद के मजिस्ट्रेट बेक का निश्चित मत था कि कुंवर सिंह का विद्रोह पूर्व-नियोजित था। उसने लिखा, "मैं जानता हूं कि लोग यह समझते हैं कि कुंवर सिंह का विद्रोह पूर्व-नियोजित नहीं था, वह पिछले तीन महीने से समय की प्रतीक्षा कर रहा था।"[२९] टेलर भी इस बात से आश्वस्त था कि उसकी इस प्रकार की कोई योजना नहीं थी। १४ जून, १८५७ को उसने बंगाल सरकार के सचिव को लिखा कि "कई लोगो ने अनेक जमींदारों और विशेषकर बाबू कुंवर सिह की स्वामिभक्ति पर शक करते हुए पत्र लिखे हैं। लेकिन मैं उसके साथ अपनी व्यक्तिगत मित्रता और मेरे लिए उसके दिल मे जो स्नेह है उसके आधार पर कह सकता हूं कि ये बातें गलत हैं। इसी प्रकार के दोषारोपण डुमरांव और हथवा के राजा पर भी किए गए हैं। मैं उनसे बिलकुल सहमत नहीं

---

२७ यह मालूम होना चाहिए कि अपने भारी ऋण के बावजूद कुंवर सिंह ने राजकीय ऋणों में चदा दिया था क्योंकि कुवर सिंह का नाम भी नाना और दूसरे विद्रोही नेताओं के साथ उल्लिखित है जिनके चन्दे की रकम जब्त कर ली गई थी।

२८. "वह बहुत बड़ा खिलाड़ी था और साधारणतः यूरोपियनों को वह बहुत पसद था", हाल्स, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ८५।

२९. १२ जनवरी, १८५८ को आरा के मजिस्ट्रेट एच० सी० बेक ने पटना के कमिश्नर को लिखा।

हूं।"[३०] टेलर ने और भी दूसरे राजाओ और सरदारो के बारे मे भी लिखा होगा, जिन पर विद्रोह का शक किया गया।

कुवर सिंह के एक खास दोस्त और साथी ने बताया कि हिंसा की धमकी दिए जाने पर ही उसने विद्रोहियों का साथ दिया। कुवर सिंह की मृत्यु के बाद निशानसिंह गिरफ्तार किया गया। इसलिए अपने नेता को बचाने के लिए झूठा बयान देने की उसे कोई आवश्यकता नहीं थी, यद्यपि वह अपनी जान बचाना चाहता था। इसलिए विद्रोहियों के साथ उसने अपना जो सम्बन्ध बताया, वह अविश्वसनीय है। अपने मुकदमे के दौरान उसने बताया कि "जेठ, आषाढ़ और सावन के महीने मे गत वर्ष में आरा मे ठहरा था। इस बीच दानापुर के विद्रोही सिपाही वहा पहुचे और उन्होने शहर लूट लिया। इसके बाद उन्होंने कुवर सिंह के नौकरों को धमकाया कि या तो वे उसे वहा ले आए, अन्यथा वे जगदीशपुर को लूट लेंगे। यह धमकी मेरे सामने नहीं दी गयी थी, बल्कि इसके बारे मे मैंने जो सुना था उसी के आधार पर मेरा यह कहना है। इस प्रकार कुंवर सिंह उसी दिन जगदीशपुर से आरा आए, जिस दिन सिपाही आरा आए थे अर्थात् १८ सावन को।"[३१] यहा सवाल यह उठता है कि इतने कम समय में और इतने नौकर-चाकरो के साथ कुवर सिंह किस प्रकार सिपाहियों से जा मिला? उन अशात दिनो में हर एक जमींदार किसी भी आकस्मिक घटना के लिए तैयार था। अपनी गिरफ्तारी की सम्भावना के लिए कुंवर सिंह के पास समुचित कारण था। बेक ने उस पर विद्रोह का दोषारोपण किया था और यह बात उसने अपने तक ही नहीं रखी थी। सैमुअल्स ने कहा कि कुवर सिंह का यह विद्रोह अपनी आर्थिक कठिनाइयों के कारण किया गया विद्रोह था। आगे वह लिखता है कि "मजिस्ट्रेट को उस पर पूरी तरह से शक था और उसने इसे छिपाने की कोई चेष्टा नहीं की। एक डिप्टी कलक्टर उसे बुलाने के लिए भेजा गया लेकिन उसका दोषी मन भयभीत हो गया। उसने अपने गाववालो मे यह बात फैला दी कि अधिकारी लोग उसे फासी देना चाहते हैं, इसलिए लोगों को चाहिए कि वे उसे एक डोम के हाथो मरने से बचाए।"[३२] फारेस्ट का कहना है कि टेलर ने जब एक आदमी "उसे पटना बुलाने के लिए" भेजा तो उसने बुढापे का और स्वास्थ्य खराब होने का बहाना बना दिया। लेकिन इस बीमारी की बात पर शक करने का कोई कारण नहीं दिखाई देता था, क्योंकि १६ दिसम्बर, १८५६ को टेलर ने राजस्व बोर्ड को लिखा था, "अन्त मे मैं यह बताना चाहता हू कि बाबू अब बहुत बुड्ढा हो गया है और अब यह कहते हुए दुख होता है कि वह इतना बीमार है कि वह कदाचित ज्यादा दिन न जिये।"[३३] इसलिए

---

३० १४ जून, १८५७ को कमिश्नर डब्ल्यू० टेलर ने बगाल सरकार के सचिव को लिखा

३१ काली किंकरदत्त, १८५७-५६ के भारतीय आंदोलन के बिहार सम्बन्धी दौर से सम्बद्ध कुछ नए खोजे गए कागजात, पटना यूनिवर्सिटी जर्नल, जिल्द ८, १९५४

३२ सैमुअल्स द्वारा बगाल सरकार के सचिव ए० आर० यंग को भेजा गया पत्र, स० १५१५, २५ सितम्बर १८५८, पृ० ४।

३३. राजस्व-बोर्ड के सचिव को टेलर का पत्र, दिनाक १६ दिसम्बर, १८५६

बाबू कुवरसिंह की सतर्कता का कारण संभवतः उसका दोषी मन नहीं था।

हमे ठीक मालूम नही है कि कुंवर सिंह को पटना कब बुलाया गया, लेकिन यह बात सम्भवतः जुलाई के दूसरे सप्ताह की होगी, क्योकि १६ तारीख को वेक ने बंगाल सरकार के सचिव को लिखा—"मैं उसकी (कुंवरसिंह की) गतिविधि पर नजर रखे हुए हूं और कमिश्नर ने उसे पटना बुलाया है ताकि उसके बारे मे जो खबरें प्राप्त हुई हैं, उन पर चर्चा की जा सके। सुना है कि वह बीमार है और वह इसी बीमारी के कारण आना नहीं चाहेगा, लेकिन मैंने सुना है कि वह कहता है कि वह पटना नहीं जाएगा और यदि उसे फिर बुलाया गया, तो वह उसका विरोध करेगा।"[३४] २० जून को वहाबी नेता टेलर के निमत्रण पर उससे मिले थे और गिरफ्तार कर लिए गए थे। जुलाई के शुरू मे जिन लोगो पर दंगा-फसाद करने का शक था उन सबको फांसी दे दी गई। यह नहीं माना जा सकता कि पटना मे होने वाली इन घटनाओ के बारे मे कुंवर सिंह को कुछ पता न हो और इसलिए जब कमिश्नर का बुलावा आया, तो उसका घबड़ाना स्वाभाविक ही था, क्योकि उसे यह डर लगा होगा कि आखिरकार मजिस्ट्रेट कमिश्नर को उसके विरुद्ध करने मे सफल हो गया। डिप्टी मजिस्ट्रेट से कहा गया था कि वह "कुवर सिह के बारे मे सारी बातो की छानबीन कर एक गुप्त रिपोर्ट कमिश्नर को दे।" जो कुछ भी वह जान सका, वह यही था कि यदि उसने विद्रोह किया तो कुंवर सिंह के लोग अपने इस सामन्ती सरदार का पूरा साथ देंगे। "लेकिन इससे अधिक और कुछ ज्ञात नहीं हुआ।"[३५] वेक के खुले दोषारोपण और टेलर के निमंत्रण ने इस वृद्ध सरदार को सावधान कर दिया। उसे हिंसा की आशंका थी और उसके स्वामिभक्त काश्तकार अपने सरदार की रक्षा के लिए तैयार थे। ऐसे समय विद्रोही सिपाही आरा पहुंचे और यदि निशान सिंह का कथन सत्य है, तो उन्होने कुंवर सिंह से सहयोग मांगा। वह उनका स्वाभाविक नेता था, क्योकि उनमे से बहुत सारे राजपूत थे। यद्यपि उसने कोई सैनिक शिक्षा प्राप्त नहीं की थी, लेकिन "उसकी धारणा थी कि यदि उसे सैनिक शिक्षा मिलती तो वह एक बहुत अच्छा कमांडर बनता।"

कुंवर सिंह के प्रमुख सहायकों मे उसका भाई अमर सिंह,[३६] उसका भतीजा रितभंजन सिंह, उसका तहसीलदार हरकिशन सिंह और उसका साठ वर्षीय मित्र निशान सिंह थे। दिलावर खां और सरनाम सिंह का भी उल्लेख किया गया है। शाहाबाद के राजपूत इस बात पर तुले हुए थे कि वे यह सिद्ध कर दें कि रजपूती वीरता गुजरे जमाने की बात नहीं है।

सिपाहियो ने खजाना लूट लिया और जेलो से कैदी छोड दिए और इसके बाद घेरा शुरू हुआ। कुंवर सिंह के पास दो पुरानी तोपें थीं, लेकिन समुचित गोला-बारूद नहीं

---

३४. कोर्ट को प्रेषित पत्र, दिनाक १ सितम्बर १८५७ सख्या २ में सलग्न ६३। अगले पार्लियामेटरी पेपर्स, (सख्या ५), १८५७, पृ० २८, परिशिष्ट 'बी'।

३५. फारेस्ट, ए हिस्ट्री आफ दि इन्डियन म्यूटिनी, जिल्द ३, पृ० ४३३।

३६. दयाल सिंह और राजपति सिह नामक उसके दो और भाई थे।

था, इसलिए पिटे हुए लोहे के गोले और दरवाजो के पीतल के हत्थे काम मे लाए गए। आत्मरक्षा की लडाई मे सिखो ने बडा भारी काम किया। घेरे मे घिरे हुए डाक्टर हाल का कथन है कि "यदि सिख भी, जो हमारे साथ थे, धोखा दे देते तो उन्होंने हमारा नाश्ता बना कर खा लिया होता।"[३७] ऐसा करने के लिए प्रलोभन भी कम नहीं थे। पहले तो उनकी जाति और धर्म की भावना को उकसाया गया और बाद मे लोभ दिखाया गया। अग्रेजो का साथ छोड देने के लिए प्रत्येक आदमी को पांच सौ रुपये का प्रलोभन दिया गया। उनका जमादार हुकुम सिंह इस घेरेबन्दी मे शक्ति का स्तम्भ सिद्ध हुआ। जब पानी खत्म हो गया, तो सिखो ने अठारह फुट गहरा कुवा खोदा। जब जानवरो के मास की कमी हो गई, तो हुकुम सिंह और उसके आदमी छिपकर इस छोटे-से किले से बाहर गए और कुछ भेडें लाए। जब बागियो ने सुरग लगाने की चेष्टा की तो इस बात का पता लगाकर हुकुम सिंह ने उनका प्रयत्न विफल कर दिया। वह सभी जगह मौजूद रहता था। "तोप के हर गलत निशाने पर वह हस कर बडे ताने के साथ कहा करता था—कुछ परवाह नहीं।" छत पर चढ कर उसने घेरा डालने वालो पर ईंट-पत्थर तक फेंके।[३८] ३१ जुलाई को घिरे हुए लोगो की सहायता के लिए आने वाली फौज की दुर्दशा के बारे मे बताया गया, लेकिन सिख फिर भी तब तक मजबूती से डटे रहे जब तक कि उनकी सहायता के लिए मेजर विन्सेंट आयर नहीं आ गया और इसके बाद घेरा उठ गया।

विन्सेंट आयर इलाहाबाद जा रहा था। अफगान-युद्ध के समय उसने काफी नाम कमाया था और बाद मे उसकी नियुक्ति ग्वालियर कटिंजेंट मे हुई थी। जब ग़दर शुरू हुआ तो वह बर्मा मे था। जिस दिन उपद्रव शुरू हुआ, वह दानापुर से होकर जा रहा था। उसने देखा कि छावनी के ऊपर से लपटें उठ रही हैं। २८ तारीख को वह बक्सर पहुचा और वहा मालूम हुआ कि बागियों का एक झुड आने वाला है। वह फिर गाजीपुर के लिए रवाना हुआ, जो कि उन दिनो अफीम के व्यापार का बहुत बड़ा केन्द्र था। गाजीपुर से वह २५ हाईलैंडर्स के साथ बक्सर लौट आया और एक सौ साठ बन्दूकचियों वाले दल के कप्तान एल० एस्ट्रेन्ज से जा मिला। बक्सर से वह आरा गया और रास्ते में उसे डनबर की पराजय की सूचना मिली। डनबर की तरह आयर पर भी बागियों ने रास्ते मे छिपकर हमला किया, लेकिन उनकी बन्दूकें आयर के तोपखाने और एन्फील्ड राइफलों का मुकाबला न कर सकीं। बीबीगज के पास कुवर सिंह ने फिर मुकाबला करना चाहा किन्तु एस्ट्रेन्ज के बन्दूकची कुवर सिंह के हमले के सामने बराबर मैदान छोड रहे थे। जब उसके दाहिने पक्ष पर किरचों से हमला किया गया तो बागियों ने मैदान छोड दिया। यह लडाई २ अगस्त की रात को लडी गई थी और दूसरे दिन सवेरे आरा मुक्त कर दिया गया। "इस सारे समय मे आरा के अग्रेज बन्दी थे। कई ईसाई और यूरेशियन परिवार कुवर सिंह के हाथ मे थे और उसके जाने के समय तक वे सभी सुरक्षित थे। वास्तव मे हम यह नहीं

---

३७ हाल्स, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ३६

३८. वही, पृ ६७

जानते कि दूसरे बागियो ने जो अत्याचार किये, उनमे कुंवरसिंह भी कभी शामिल हुआ।"[39]

आरा से कुंवर सिंह जगदीशपुर के अपने पैतृक किले मे चला गया जहां उसका पीछा आयर ने किया। काफी कड़ा मुकाबला हुआ लेकिन कुंवर सिंह के साथी आयर के सैनिकों के सामने न टिक सके और कोई नहीं बच सका और सारे घायल बागी फासी पर लटका दिए गए और इस प्रकार आरा मे किए गए वर्ताव का वदला लिया गया। कुंवर सिंह द्वारा बनवाया गया एक विशाल मन्दिर भी नष्ट कर दिया गया, "क्योंकि कहा जाता है कि विद्रोह करने के लिए उसे ब्राह्मणो ने ही भडकाया था।"[40] जगदीशपुर का महल और दूसरी इमारतें भी नष्ट कर दी गयीं। यहा प्रधान सेनापति को इस बात का श्रेय अवश्य दिया जाना चाहिए कि "वर्तमान संकट के समय एक कमांडर के कर्तव्यों के बारे मे गलत धारणा के कारण मेजर आयर ने जगदीशपुर के हिन्दू मन्दिर का जो विनाश किया" उसकी उसने निन्दा की, जबकि इसके साथ ही मेजर आयर के अधीनस्थ अफसरो एवं सैनिकों के निर्णय, वीरता एव तत्परता की उसने गवर्नर-जनरल से प्रशसा की।

कुवर सिंह की सेना हार गयी, उसका गढ नष्ट कर दिया गया लेकिन बूढा शेर झुका नहीं। जगदीशपुर के जंगलो से भाग कर वह रोहतास की पहाड़ियो मे चला गया, जिसके कारण ग्रांड ट्रंक रोड को खतरा उत्पन्न हो गया जो स्थल मार्ग से अंग्रेजो के यातायात के लिए बड़ी महत्वपूर्ण थी। लेकिन कुंवर सिंह के सामने तो और दूसरी बातें और बड़ी-बड़ी योजनाएं थीं। वह अच्छी तरह जानता था कि युद्ध की जीत या हार का फैसला निचले प्रान्तों मे नहीं बल्कि उत्तर भारत मे होना है। २० अगस्त को इलेक्ट्रिक टेलीग्राफ के डिप्टी सुपरिटेन्डेंट के एक पत्र से बीडन को पता लगा कि कुंवर सिंह "रोहतास के पास अकबरपुर मे है और अमर सिंह सहसराम जाने वाली ग्रांट ट्रंक रोड को छेके हुए है और उसके आदमियों द्वारा सरकारी अफसरों और दूसरे लोगो को खतरा पैदा

---

३९. हाल्स, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ८६। आरा के मजिस्ट्रेट एच० सी० वेक ने १२ जून, १८५८ को पटना के कमिश्नर को एक पत्र लिखा, जिसमे उसने भी कुवर सिंह की ऐसी ही प्रशसा की है "इस जिले के उपद्रवों में एक बात यह अच्छी हुई कि आरा से लौटते हुए सिपाहियो के अलावा अगेजों की हत्या नहीं की गई।" "यूरोपियन, यूरेशियन, हिन्दू और बंगाली ठीक उसी दिन जिले के बाहर जाने दिये गये जिस दिन बागी सिपाहियों ने सोन नदी पार की और विद्रोह शुरू हुआ।" "कलक्टर के कार्यालय का एक क्लर्क सैमुअल्स तथा आरा का एक यूरेशियन कुंवर सिंह के द्वारा गिरफ्तार कर लिए गये थे, लेकिन बागियों के चले जाने के बाद वे सही सलामत रिहा कर दिये गये।"

४०. फारेस्ट, ए हिस्ट्री आफ दि इंडियन म्यूटिनी, जिल्द ३, पृ० ४५६। फौजी न्यायालय के निर्णय के बाद आरा में कई लोगों को फासी दी गयी। फासी की सजा पाने वालों ने कोई भय प्रदर्शित नहीं किया। "कई लोगों ने अन्तिम प्रार्थना केवल यही की कि उन्हें खुद ही गले की रस्सी ठीक करने की अनुमति दी जाय और उन्होने वीरतापूर्वक मृत्यु का आलिंगन किया।"; सीवकिंग, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १०६

हो गया है।" किन्तु सितम्बर के शुरू मे शाह कबीरुद्दीन ने सुना था कि कुवर सिंह रीवा मे था। वह मिर्जापुर जिले मे जगलों को चीरता हुआ रीवा के हिन्दू राज्य में चला गया, जहा का राजा कुवर सिंह का सम्बन्धी बताया जाता था। कुवर सिंह की आखरी मजिल तो कदाचित दिल्ली ही थी। लेकिन पोलिटिकल एजेंट विलोबी ओसबोर्न ने रीवा के राजा को समझाया कि वह कुवर सिंह के खिलाफ तगडा मोर्चा ले और अन्त मे उसे रीवा छोडना पडा। यदि शाह कबीरुद्दीन की सूचना सही थी तो इस सकट के समय इस वृद्ध सरदार के अधिकाश साथी उसका साथ छोड चुके थे और उसके पास केवल ५०० सैनिक रह गए थे। सितम्बर के महीने मे वह मिर्जापुर-रीवा क्षेत्र मे मडराता रहा और उन दोनो ही क्षेत्रो को उससे सकट बना रहा।[४१] वह अक्तूबर मे बादा मे था।[४२]

इस समय तक दिल्ली का पतन हो चुका था और इन बदली हुई परिस्थितियो के अनुसार कुवर सिंह को अपनी योजनाए बदलनी पडीं। २५ अक्तूबर को शेरर ने म्योर को लिखा कि "ऐसा पता लगा है कि कुवर सिंह (आरा का) बादा से चल पडा है और कालपी मे ग्वालियर कटिंजेट से मिलने वाला है, लेकिन मेरी बादा की खबर अच्छी नहीं है।"[४३] महीने के अन्त तक शेरर को और भी सही खबरो का पता लगा, "कुवर सिंह बादा के १२ या १५०० बागियों और ३ या ४०० अपने आदमियो के साथ कालपी आ गया है।"[४४] म्योर ने २ नवम्बर को लिखा कि "कुवर सिंह एक अनुशासनहीन भीड" के साथ अवध मे प्रविष्ट होने के लिए कालपी पहुच गया है। ग्वालियर कटिंजेंट बडी सरगर्मी से तथा सावधानी के साथ कालपी की ओर बढ़ रही है।"[४५] नवम्बर मे मेजर एलिस को पता चला कि जगदीशपुर के सरदार को बादा के किसी जमींदार ने पन्ना की सीमा मे पराजित किया है और वह अब ग्वालियर की ओर बढ़ रहा है। पहले की एक खबर के अनुसार कानपुर पर किये जाने वाले हमले मे मदद देने के लिए नाना ने उसे आमन्त्रित किया था। निशान सिंह का कहना था कि ग्वालियर कटिंजेंट का कुवर सिंह के साथ पत्र-व्यवहार चल

---

४१ चेस्टर का १० सितम्बर, १८५७ का पत्र। टकर का १ सितम्बर का कालविन के नाम पत्र। म्योर और कोल्डस्ट्रीम, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द १, पृ० ५३६।

४२ ८वीं देशी पैदल सेना के अफसरों द्वारा ११ सितम्बर, १८५७ को बादा से भेजे गये दिल्ली के बादशाह के नाम एक पत्र के अनुसार कुवर सिंह अगस्त में बादा पहुचा। उन्होंने लिखा कि "हमारी विजय का समाचार सुनकर जगदीशपुर के बाबू कुवर सिंह ने हमारी सहायता के लिए प्रार्थना की, जिसके फलस्वरूप ४०वीं देशी पैदल सेना के देशी अफसर अपने ८०० आदमियों के साथ उससे जा मिले।" २८ अगस्त, १८५७ के दिन पूरी की पूरी ७वीं और ८वीं रेजीमेंट तथा ४० वीं रेजीमेंट के २०० सिपाही प्रान्तीय बटालियन के ६० सिपाहियों के साथ आरा से चल कर बादा पहुचे।

४३ म्योर एण्ड कोल्डस्ट्रीम, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द २, पृ० ३२०

४४ म्योर एण्ड कोल्डस्ट्रीम, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द २, पृ० ३२२।

४५ वही, जिल्द २, पृ० २१२।

रहा था और उससे कहा गया था कि जब तक कि वे वहां न पहुंच जाएं वह जमना पार न करे। यहा यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सहसराम-रोहतास क्षेत्र से निकल कर कुंवर सिंह मिर्जापुर की ओर बढा जिससे रीवा, मिर्जापुर तथा इलाहाबाद के कुछ भागो को खतरा पैदा हो गया। धीरे-धीरे उसके साथी उसे छोडते जा रहे थे और वह रीवा के राजा से लडने की स्थिति मे नहीं था। इसलिए वह बादा चला गया जहा का नवाब पहले ही विद्रोह में शामिल हो चुका था। बादा से वह कालपी गया जहां उसे नाना के अथवा ग्वालियर कंटिंजेंट के या दोनो के ही आमन्त्रण पर कानपुर के आक्रमण मे शामिल होना था। यदि निशान सिंह की बात सत्य है तो कानपुर की लड़ाई के वक्त कुंवर सिंह मौजूद था। तात्या की हार के पश्चात् वह मराठा सरदारो के साथ कालपी नहीं गया बल्कि लडाई के सबसे महत्वपूर्ण केन्द्र लखनऊ गया। वहां वली ने उसका हार्दिक स्वागत किया और उसे सम्मानसूचक परिधान पहनाया। इसके अतिरिक्त उसे आज़मगढ के लिए एक फरमान दिया गया।

फरवरी १८५८ मे कुंवर सिंह लखनऊ और दरियाबाद के बीच मे कहीं था।[४६] मार्च महीने मे वह सबसे अधिक सक्रिय रहा। गुरखे आजमगढ़ क्षेत्र को बागियो से खाली करवा रहे थे, लेकिन जब वे सर कोलिन कैम्पबेल की सहायता के लिए लखनऊ पहुंचे तो जिले के सब रक्षक दूर हो चुके थे। यह स्थिति इस वृद्ध राजपूत की गृद्ध दृष्टि से न बच सकी और वह आजमगढ़ से २० मील दूर अतरौली गांव पर टूट पड़ा। कर्नल मिलमैन के हाथो मे यहा की कमान थी और उसने कुवर सिंह के विरुद्ध मोर्चा लिया किन्तु उसे मैदान छोड़कर भागना पडा। इसके बाद कुंवर सिंह ने आज़मगढ़ पर कब्ज़ा कर लिया। मिलमैन की सहायता के लिए जब कर्नल डेम्स गाजीपुर से दौड़ा और उसने शहर पर हमला किया तो उसे पीछे हटा दिया गया।[४७] आज़मगढ का पतन और उसके बाद अंग्रेज़ी सेनाओ का लगातार दो बार हारना वास्तव मे बडी खराब खबर थी, हालाकि लखनऊ को फिर से ले लेने के कारण अंग्रेज़ो की इज्ज़त एक बार फिर बढ़ गयी थी। आज़मगढ़ की रक्षा के लिए इलाहाबाद से लार्ड मार्क कर को तत्काल भेजा गया और उसने शहर पर फिर अधिकार कर लिया, जहा कि कुछ दिनो बाद सर एडवर्ड लुगर्ड भी पहुच गया। इस मजबूत संयुक्त मोर्चे के सामने कुवर सिंह की कुछ नहीं चल सकती थी, इसलिए उसने अपने प्रान्त बिहार मे लौट जाना तय किया। कुंवर सिंह ने अनेक वीरतापूर्ण लड़ाइयां लड़ीं जिनमे से एक का वर्णन मैलेसन ने किया है "उसने डगलस को तब तक पास नहीं फटकने दिया जब तक कि उसने अपने मुख्य दस्तों की विभाजित दो पक्तियो को फिर से ठीक न कर लिया। वह बाद मे आराम से पीछे हट गया और यद्यपि उसके बहुत से आदमी

४६ भारत सरकार के विदेश विभाग के सचिव को ब्रिगेडियर-जनरल मैकग्रेगर द्वारा १० फरवरी, १८५८ को भेजा गया पत्र, फारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशन्स, सख्या १३८६, ३० दिसम्बर, १८५६

४७. कुवर सिंह की गिरफ्तारी के लिए घोषित इनाम की रकम इसके बाद १० हजार रु० से बढा कर २५ हजार रु० कर दी गयी।

मारे गए लेकिन उन्होंने आखरी दम तक दृढ़ निश्चय का परिचय दिया। जब बराबर ४-५ मील तक पीछा करने के बाद डगलस शिथिल हो गया तो दोनो विभाजित पक्तिया मिल गयीं और उन्होंने रात की लडाई के लिए मोर्चा बाध लिया।"[४८] इस प्रकार वह शिवपुर घाट पहुचा जहा उसने कई नावें जमा कीं। उसने जानबूझ कर यह खबर फैलाई कि नावो की कमी के कारण वह हाथियो द्वारा नदी पार करने वाला है। २०० आदमियो की एक छोटी सी टुकडी के अतिरिक्त उसके सारे आदमी जनरल डगलस के वहा पहुचने से पहले ही दूसरे किनारे पर पहुच गए।

अब कुवरसिंह जगदीशपुर वाले अपने नष्ट-भ्रष्ट घर की ओर जा रहा था। वृद्ध शेर अपनी मांद की ओर अब केवल मरने के लिए ही गया। गगा पार करते हुए एक तोप के गोले से उसकी बाह क्षत-विक्षत हो गयी और इस बारे मे यह कहा जाता है कि उस वृद्ध सरदार ने अपनी ही तलवार से वह क्षत-विक्षत बाह काट कर गगा के पवित्र जल मे अन्तिम भेंट के रूप मे चढा दी।[४९] इस आखरी यात्रा मे भी उसे विरोध का मुकाबला करना था। उसके पास मुश्किल से २ हजार थके-मादे, अस्त्रहीन आदमी रह गये थे, जिनके पास बन्दूकें भी नहीं थीं। आयर की भाति ही आरा का कप्तान ली ग्रांड भी उन्हीं जगलो मे इस वृद्ध सरदार पर आक्रमण करना चाहता था लेकिन वह मरणासन्न शेर अभी भी जोरदार प्रत्याक्रमण कर सकने की स्थिति मे था। ली ग्रांड की सेना मे केवल सिखों मे ही अनुशासन एव व्यवस्था बनी रही। यूरोपियन सैनिक तो पूरी तरह से घबरा गए और बुरी तरह से हारे। ३५वीं रेजीमेंट के १५० आदमियों मे से पूरे १०० मारे गये। ली ग्रांड और अन्य दो अफसर भी मारे गये। सब तोपची मार डाले गये।[५०] लीग्रांड की सेनाओ की यह पराजय २३ अप्रैल को हुई और २४ अप्रैल को कुवर सिंह की मृत्यु हो गई, लेकिन वह आखिरकार एक विजेता के रूप मे ही मरा।[५१]

कुवर सिंह की मृत्यु के बाद उसकी सेना की कमान उसके भाई अमर सिंह के पास आई। यद्यपि वह कोई विशेष सैनिक प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति न था, लेकिन अपने पूर्वज राजपूतो की वीरता और शौर्य उसे प्राप्त था। अपने काश्तकारों की भक्ति के सहारे, जो बडे-बडे इनामो के प्रलोभनो से भी अप्रभावित रहे, उसने शाहाबाद जिले मे एक

---

४८ मैलेसन, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द २, पृ० ४७३-७४

४९ कुवर सिंह के व्यक्तित्व के बारे में कई प्रकार की दन्तकथाए प्रचलित हैं, जिनमें से एक यह भी है। प्रथम महायुद्ध के दिनों में मुझसे आरा के एक किसान ने कहा था कि बाबू कुवर सिंह अभी जीवित हैं और वे अनुकूल समय पाकर जरूर लौटेंगे तथा अंग्रेज़ों से लडेंगे।

५० "२२ ता० की शाम को आरा से चलने वाले ३०० अग्रेज और सिखों में से लगभग आधे ही जीवित लौटे हैं।" यह सूचना आरा के कार्यवाहक मजिस्ट्रेट आडहर्स्ट ने २४ अप्रैल, १८५८ को लिखे पत्र में पटना के सर्किट कमिश्नर को दी।

५१ कर्नल बर्च को २ मई, १८५८ को लिखे पत्र में यह तारीख कर्नल कोरफील्ड ने दी है।

समानान्तर सरकार बनाली थी। उसने अपने मजिस्ट्रेट और जज नियुक्त किए और एक जेल भी बनाई। जिस प्रकार अंग्रेज सरकार ने उसके सिर के लिए इनाम घोषित कर रखा था ठीक उसी तरह उसने बड़े अंग्रेज अफसरो के लिए इनाम घोषित किए। राजस्व अदा न करने पर उसने जायदादें बेच दीं। शासन का कार्य चलाया। सैमुअल्स लिखता है कि "शाहाबाद का यह आन्दोलन राष्ट्रीय विद्रोह की सारी गरिमा से मंडित था और जिसे कई छोटे जमींदारो का समर्थन प्राप्त था और लगभग सारे जिले के राजपूत खुले-आम इसमे साथ दे रहे थे।" "कुंवर सिंह के चले जाने के बाद कुंवर सिंह के गांव के राजपूतो का सामान्य रवैया विरोध न करने का था।" उन्होने "पुलिस के थानो का फिर से खोले जाने का विरोध नहीं किया। यूरोपियन सारे जिले मे सुरक्षापूर्वक घूमते थे, किन्तु उन्होने पुलिस की किसी प्रकार की सहायता नहीं की, लेकिन जब पुलिस गाव मे किसी बागी को गिरफ्तार करने आती, तो वे लोग उसे गांव से बाहर निकाल देते। उनका विश्वास था कि परम्परागत नेताओं की पुकार पर उनके रिश्तेदार उनकी जाति की रक्षा के लिए लड़ रहे हैं।"[५२]

अमर सिंह को अनेक विपरीत परिस्थितियो का सामना करना पड़ा। आरा की ओर ३ अंग्रेज सेनाएं बढ रही थीं। दानापुर की ओर से डगलस ने सोन नदी पार की। आजमगढ से सर एडवर्ड लुगर्ड और सहसराम क्षेत्र से कर्नल कोरफील्ड आए। २ मई को कोरफील्ड ने बताया कि "अमरसिंह बहुत घबराया हुआ है और लड़ने के लिए तैयार नहीं है लेकिन सिपाही जोर दे रहे हैं। उसकी कमान मे २,००० से लेकर २,५०० तक सिपाही हैं और ३००-४०० के लगभग अच्छे घुड़सवार हैं। जगदीशपुर मे बहुत-से बदमाश और राजपूत जमींदार हैं।"[५३] अंग्रेजो के खिलाफ खुली लड़ाई मे इस राजपूत सरदार की जीत होनी मुश्किल थी। इसलिए उसने जंगलो से बाहर आना मजूर नहीं किया और गोरिल्ला-युद्ध से वह अपने शत्रुओ को परेशान करता रहा और उनके लिए आने वाले माल तथा रसद आदि को नष्ट करता रहा। जगदीशपुर का पतन हो गया, लेकिन अमर सिंह ने लतावरपुर मे जाकर शरण ली। लुगर्ड ने जंगल के बीच चौड़ी सड़कें बनाने का प्रयास किया ताकि बागियो को पकडा जा सके लेकिन वे लोग बराबर छोटे-छोटे दल बनाकर उसकी पकड़ से बचते रहे। लुगर्ड इस प्रकार की लड़ाई को ज्यादा दिन बर्दाश्त नहीं कर सका और गिरते हुए स्वास्थ्य का बहाना बनाकर कमान से हट गया। इस बीच बागियो ने आस-पास के गावों पर हमला कर अंग्रेजों के भक्त जमींदारो को दंडित किया। जून के महीने मे गंगा के किनारे घुरमार के निकट अमर सिंह दिखाई दिया। ऐसा बताया गया कि वह अवध मे जाना चाहता था। गाजीपुर के मजिस्ट्रेट को डर था कि इस राजपूत सरदार का उद्देश्य गाजीपुर पहुंचना था। गब्बिन्स को शक था कि कहीं अमर सिंह बनारस पर आक्रमण न कर दे।[५४] जुलाई १८५८ मे उन्होने आरा पर हमला किया

---

५२. यग को भेजा गया सैमुअल्स का पत्र, सख्या १५१५, दिनाक २५ सितम्बर, १८५८,

५३. कर्नल बर्च को कर्नल कोरफील्ड द्वारा भेजा गया २ मई, १८५८ का पत्र।

५४. फारेन सीक्रेट कन्सल्टेशन्स, सख्या १८८, २५ जून, १८५८ और संख्या १४८-१५६, २७ अगस्त, १८५८।

और रेल-विभाग के सहायक श्री विक्टर का कस्बे के वाहर का वगला जला दिया। जब वागियो का पीछा किया गया तो वे अमर सिंह के गाव चले गए।[५५] अगले महीने फिर आरा पर आक्रमण हुआ। आरा का तत्कालीन कमाडर कर्नल वाल्टर यह खबर मिलते ही कि वागी शहर से १२ मील दूर पश्चिम मे हैं, सेना लेकर चल पडा। जैसे ही वह विद्रोहियो के निकट पहुचा वे रातों-रात गायव हो गए, लेकिन आरा की रक्षा हो गई। दूसरे दिन सवेरे वाल्टर कोअ्र सिस्टेंट मजिस्ट्रेट का एक पत्र मिला कि बागी फिर शहर के निकट पहुच गए हैं। जव तक सेनाए लौटकर आईं बागियों ने कुछ दूकानें लूट लीं, कैदियो को छुडा लिया और २०-२५ मकान लूट लिए। वापसी मे इन वागियों ने अग्रेजो के भक्त जुमेरा के एक जमींदार चौधरी प्रतापनारायण सिंह का मकान जला दिया। दूसरे दिन सवेरे ५० सवारो की एक टुकडी ने आकर आरा मे गडबडी की।[५६] एक टुकडी ने गया पर हमला किया, जेल तोड दी और कैदियो को रिहा कर दिया। निराश होकर डगलस ने पूरा जगल घेर लेना चाहा, ताकि बागियों को खदेडा जा सके। ७ सैनिक दलो ने एक-साथ जगल मे प्रवेश किया लेकिन अप्रत्याशित बाढ के कारण यह आक्रमण व्यर्थ हो गया। वास्तव मे अग्रेज पैदल सेना उतनी जल्दी से आगे नहीं वढ सकती थी जितनी कि बागी लोग इन जगलों मे आगे बढ़ जाते थे। छोटे हैवलाक ने डगलस को घुडसवारो से काम लेने का परामर्श दिया। यह तरकीब अमर सिंह के आदमियो का पीछा करने मे ज्यादा कारगर हुई और २० अक्तूबर को हैवलाक ने दलदल वाले एक गाव मे इन लोगो को जा पकडा। बागियो की सेना नष्ट कर दी गई। लेकिन उनका नेता कैमूर की पहाडियो मे भाग गया। नवम्बर १८५८ मे डगलस ने वहा उस पर हमला किया और इस प्रकार पश्चिमी बिहार की लडाई समाप्त हुई। लेकिन अभी भी अमर सिंह बचा हुआ था। निशान सिंह गिरफ्तार किया जा चुका था और उसे फासी दे दी गई थी। हरकिशन सिंह को फासी दी जा चुकी थी। अमर सिंह की सारी सेना नष्ट कर दी गई थी लेकिन वह हार मानने को तैयार नहीं था। अक्तूबर १८५९ मे कर्नल रैम्जे ने जगवहादुर से सुना कि जगदीशपुर निवासी अमर सिंह तराई के बागियों से मिल गया है, और आशा है कि वह वाला तथा नाना राव की सेनाओ की कमान सम्भालेगा।[५७]

विहार के भूमि-पति वरावर अग्रेज सरकार के साथ रहे। एक बार दरभगा, डुमराव और हथवा के महाराजाओ की स्वामिभक्ति पर शक किया गया लेकिन उन्होंने और उनके साथी जमींदारो ने सरकार को जन और धन की सहायता दी। यद्यपि गया और चम्पारन मे तथा छोटा नागपुर और देवघर मे कुछ उत्पात हुए, लेकिन ये उत्पात शाहावाद के गम्भीर उपद्रवो की तरह व्यापक नहीं थे।

---

५५ पटना के सर्किट कमिश्नर को ब्राडहर्स्ट द्वारा भेजा गया पत्र, दिनाक ८ जुलाई, १८५८

५६ पटना के सर्किट कमिश्नर को ब्राडहर्स्ट द्वारा भेजा गया पत्र, दिनाक ५ अगस्त, १८५८

५७ फारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशन्स, सख्या १६०, ४ नवम्वर, १८५९। नेपाल मे शरण लेने वाले महावीरसिंह नामक एक सिपाही ने ८ नवम्वर, १८५९ को वताया कि "कुवर सिंह का भतीजा उमर सिंह भोजपुरियो के साथ २ महीने पूर्व लाखन सिंह से जा मिला है।" फारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशन्स, स० ५२५-३०, ३० दिसम्वर, १८५९ (पूरक)

अध्याय ७

झांसी

झांसी बुन्देलखण्ड के अन्तराल मे एक छोटी मराठा अमलदारी थी। पेशवा के समय मे यह एक सूबेदार या प्रान्तीय शासक का प्रान्त था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन ने इसकी स्थिति को बढाकर इसे एक राज्य कर दिया। महान बुन्देल राजा छत्रसाल ने अपने राज्यक्षेत्र के एक तिहाई भाग की वसीयत अपने सहायक पेशवा बाजीराव प्रथम के लिए मुस्लिम आक्रमण के विरुद्ध उसकी सामयिक सहायता के उपलक्ष्य मे की थी। पेशवा ने अपनी ओर से बुन्देलखण्ड के अपने भाग को तीन प्रान्तो मे बांट दिया। पहले भाग को गोविन्दपन्त खेर के अधीन कर दिया गया, जिसने सागर को अपना मुख्यालय बनाया। दूसरा भाग जिसमे बांदा और कालपी शामिल थे, पेशवा के औरस पुत्र शमशेर बहादुर को दे दिया गया। तीसरे भाग, झासी की सूबेदारी रघुनाथ हरि नेवलकर के परिवार मे पैतृक बन गई। उसने अपने भाई शिवराम भाऊ के पक्ष मे राज्य-त्याग कर दिया। ब्रिटिश सरकार ने सन् १८०४ मे शिवराम भाऊ के साथ एक समझौता किया।[1] सन् १८१७ मे शिवराम भाऊ के उत्तराधिकारी और पौत्र रामचन्द्रराव के साथ एक सन्धि की गई जिसके द्वारा उसको, उसके दायादो और उत्तराधिकारियो को अमलदारी की गारन्टी दी गई।[2] सन् १८३५ मे रामचन्द्रराव, जिसे "महाराजाधिराज फिदवी बादशाह जामजाह इग्लिस्तान" की उपाधि दी गई थी, नि.सन्तान मर गया और उसकी विधवा पत्नी ने, अपनी बहन के पुत्र कृष्णराव को गोद रख लिया। चूकि एक दूसरे परिवार के बालक को गोद लेना स्थानीय रिवाज के अनुसार अमान्य था, अत. उत्तराधिकार के लिए प्रतिद्वन्द्विता हुई और भारत सरकार ने अपना निर्णय रघुनाथराव के पक्ष मे, जो मृत शासक का चाचा और शिवराम भाऊ का पुत्र था, दिया। रघुनाथराव लम्पट चरित्र का मनुष्य था और उसमे प्रशासकीय योग्यता बिलकुल नहीं थी। उसके कुशासन ने राज्य को विनाश के समीप ला दिया। ब्रिटिश सरकार ने हस्तक्षेप किया और राज्य का

---

१. एचिसन, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द ३, पृ० १६४-६६

२ वही, जिल्द तीसरी, पृ० १६८-७१। "राव रामचन्द्र उसके दायादो और उत्तराधिकारियो को, मोट परगना को छोड़कर, उस राज्य-क्षेत्र का, जिस पर स्वर्गीय राव शिव भाऊ का अधिकार था, पैतृक शासक नियुक्त करने एव उनकी यह स्थिति स्वीकार करने के लिए" उस सन्धि पत्र के दूसरे अनुच्छेद के अनुसार ब्रिटिश सरकार अनुमति देती है।

शासन अपने हाथ मे ले लिया। रघुनाथराव बिना किसी वैध सन्तान के मर गया और उत्तराधिकार के लिए उसके औरस पुत्रो, कृष्णराव, जो रामचन्द्रराव का दत्तक पुत्र कहा जाता था और गगाधरराव, जो दिवगत महाराज का जीवित भाई था, के बीच विवाद हुआ। ब्रिटिश सरकार ने अपना निर्णय गगाधरराव के पक्ष मे दिया। परन्तु उसे शासकीय अधिकार सन् १८४३ तक नहीं दिए गए।[3] उसने सस्कृत हस्त-लिखित ग्रन्थो के एक उत्कृष्ट पुस्तकालय का निर्माण किया और झासी नगर की उन्नति की।

नवम्बर सन् १८५३ मे गगाधरराव की मृत्यु हो गई और उन्होने अपना कोई निजी दायाद नहीं छोडा। परन्तु अपनी मृत्यु से एक दिन पूर्व उन्होंने अपने दरबार के मुख्य उच्चकुलीन पुरुषों, झासी के राजनीतिक अभिकर्ता (पोलिटिकल एजेंट) मेजर एलिस तथा झासी सेना-भागो के समादेशक अधिकारी कैप्टन मार्टिन के समक्ष नेवलकर परिवार की एक अन्य शाखा के एक बालक को गोद ले लिया। उन्होने स्वय मेजर एलिस को एक खरीता दिया, जिसमे उन्होने अपनी विधवा पत्नी और बालक को सरकार की रक्षा मे सौंपा। उन्होने प्रार्थना की, "मेरी राजभक्ति के उपलक्ष्य मे सरकार इस बालक के साथ दयालुता का व्यवहार करे। जब तक मेरी विधवा पत्नी जिये, इस अमलदारी के सम्पूर्ण सत्ताधारी के रूप मे तथा गोद लिये गए पुत्र की माता के रूप मे राज्य का प्रशासन उसके अधिकार मे रहे।"[4] इसके बाद एक स्मरणपत्र गवर्नर-जनरल को भेजा गया, जिसमे विधवा रानी ने दतिया और ओरछा के बुन्देल राज्यो के उदाहरण देते हुए कहा कि किस प्रकार वहा दत्तक पुत्रो के दावे स्वीकार कर लिये गए थे। मेजर एलिस ने भी उसके दावे का समर्थन किया, परन्तु गवर्नर-जनरल के एजेंट मेजर माल्कम की राय भिन्न थी। गंगाधरराव की मृत्यु के समय लार्ड डलहौजी कलकत्ता से बाहर थे और राज्य के भविष्य के सम्बन्ध मे कोई तात्कालिक निर्णय सम्भव नहीं था। फिर भी लार्ड डलहौजी का तर्क यह था कि झासी का मामला दतिया और ओरछा के समान नहीं था, क्योंकि इन राज्यो के विपरीत, झासी कभी एक सम्पूर्ण-प्रभुत्व-सम्पन्न स्वतन्त्र राज्य नहीं रहा था। यह पहले पेशवा की सरकार के अधीन था और फिर ब्रिटिश सरकार के। उसका यह भी मत था कि ब्रिटिश प्रशासन राज्य की जनता के लाभ के लिए होगा। अत मार्च सन् १८५४ मे झासी को ब्रिटिश भारतीय अधिराज्य मे मिला लिया गया और रानी को एक काफी बडी पेंशन का वचन दिया गया। उसके जीवन भर के लिए साठ हजार रुपये की पेंशन निश्चित कर दी गई और शहर के महल मे रहने की उसे अनुमति दे दी गई।[5] ब्रिटिश न्यायालयों

---

३ एचिसन, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द ३, पृ० १७२

४ पारसैनिस, झासी सस्थानाच्या महाराणी लक्ष्मीबाई साहेब ह्यान्चें चरित पृ० ४३-४४

५ फारेस्ट टिप्पणी करता है, "छ हजार पौण्ड प्रति वर्ष को किसी प्रकार एक क्षुद्र वेतन मात्र नहीं समझा जा सकता। पेशवा को आठ हजार की राशि प्रदान की गई थी।" फारेस्ट, ए हिस्ट्री आफ दि इण्डियन म्यूटिनी, जिल्द ३, पृ० ४। पेशवा की पेंशन अस्सी हजार पौण्ड थी, आठ हजार पौण्ड नहीं।

के अधिकार-क्षेत्र से उसे मुक्ति दे दी गई और यह भी विधान कर दिया गया कि उसके जीवन-काल मे उसके वैयक्तिक अनुचर-वृन्द को वही विशेषाधिकार प्राप्त रहेगे। दत्तक-ग्रहण भी निषिद्ध नहीं किया गया । दामोदरराव को परिवार के खजाने तथा अपने गोद लेने वाले पिता की वैयक्तिक सम्पत्ति का वारिस स्वीकार कर लिया गया। यह पता चला कि गंगाधरराव की मृत्यु के समय खजाने मे छः लाख रुपये नकद थे । इस धनराशि को न्यास के रूप मे भारत सरकार ने अवयस्क राजकुमार के लिए रखा। परन्तु सदा की तरह भारतीय भावनाओ की उपेक्षा कर सरकार ने लोगो के मनोभावो को ठेस पहुंचायी । नेवलकर परिवार की कुल-देवी महालक्ष्मी के मन्दिर के लिए जो गाव दिए गए थे, वे सरकार ने वापस ले लिए । रानी ने पहले पेंशन लेना अस्वीकार कर दिया था, परन्तु अन्त मे जब उसने अपने भाग्य के साथ समझौता कर लिया तो उसे पता चला कि पेंशन मे बहुत-सी कटौतिया होती हैं, जिनमें एक कटौती गंगाधरराव के ऋण से सम्बन्धित है । रानी समझती थी कि यह राज्य की देयता है । विशेषत. उस पर और सामान्यत· हिन्दुओं पर जिस बात ने आघात किया, वह थी गो-हत्या को फिर से जारी करना जो एक लम्बे समय से ब्राह्मण-शासन मे झासी नगर मे राजाज्ञा द्वारा निषिद्ध थी ।[६] जब रानी ने दामोदरराव के यज्ञोपवीत-संस्कार के व्यय के लिए उसके ही निमित्त रखे हुए छ. लाख रुपयो मे से एक लाख रुपए के लिए आवेदन किया, तो सरकार ने उसे तब तक देना अस्वीकार कर दिया जब तक वह चार ऐसे जमानती न लाये जो, यदि बालक वयस्क होने पर उस राशि की मांग करे, तो उस धन को वापस दिलाने की जमानत कर सकें। रानी फिर भी आशा करती रही कि उसके और बालक के साथ न्याय किया जाएगा यदि संचालको के न्यायालय मे उसके मामले का ठीक प्रकार से प्रतिनिधित्व किया जाए। इसलिए अन्य राजकुमारो की तरह, जिनके अधिकार-स्वत्व छीन लिये गये थे, रानी ने भी अपने अभिकर्ता लन्दन भेजे। इस कार्य मे रानी के साठ हजार रुपये व्यय हुए, परन्तु संचालकों को सपरिषद्-गवर्नर-जनरल के निर्णय को परिवर्तित करने का कोई कारण नहीं दिखाई दिया।

मेज़र मालकम का कहना है कि रानी "एक उच्च चरित्र" की महिला है और "झांसी मे हर कोई उसका बहुत आदर करता है।"[७] यह भी स्वीकार किया जाता था कि रानी ने "उस विश्वस्तता और राजभक्ति को अधिक महत्व नहीं दिया जो झासी के राज्य ने हमारी सरकार के प्रति सदा उन अवस्थाओ मे भी दिखाई जब उसके लिए पर्याप्त प्रलोभन हो सकता था और जब हमारी शक्ति उस महत्वपूर्ण स्थिति पर नहीं पहुंच सकी थी जो उसकी तब से हो गई है।" इसलिए झासी को मिलाने का औचित्य सम्बद्ध लोगो को विशेषत· सन्देहास्पद ही दिखाई पड़ता था।

रानी लक्ष्मीबाई साधारण मा-बाप की लड़की थीं। उनके पिता मोरोपन्त ताम्बे, चिमनजी अप्पा के वैयक्तिक अनुचरो मे थे और उनके साथ ही बनारस मे रहते थे।

---

६. मैलेसन, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द १, पृ० १८२-८३

७ के, ए हिस्ट्री आफ दि सिपाय वार, जिल्द १, पृ० ९१

कहा जाता है कि यहीं उनकी प्रथम पत्नी भागीरथी बाई से उन्हे एक कन्या उत्पन्न हुई। माता-पिता ने उसका नाम मणिकर्णिका रखा, परन्तु उसके विवाह के समय जो नाम उसके ससुराल वालो ने उसे दिया, उसी से वह बाद मे प्रसिद्ध हुई। उसकी बाल्यावस्था के सम्बन्ध में हमें प्राय कुछ मालूम नहीं है। उसकी जन्म-तिथि के सम्बन्ध मे भी हम कुछ नहीं जानते। न मालूम किस साक्ष्य के आधार पर पारसंनिस ने यह कहा है कि उसका जन्म १६ नवम्बर, १८३५ को हुआ था।[८] इसके साथ ही पारसंनिस हमे यह भी सूचना देते हैं कि मोरोपन्त ताम्बे, चिमनजी के अन्य आश्रितो की तरह, बिठूर मे बाजीराव द्वितीय के दरबार से सम्बद्ध हो गया था। इसलिए मोरोपन्त १८३५ मे बनारस मे नहीं हो सकता था, क्योकि चिमनजी की मृत्यु सन् १८३२ मे हो गई थी। दूसरी ओर, लक्ष्मी बाई की बाल्यावस्था का मणिकर्णिका नाम उसके बनारस मे जन्म की कथा को कुछ समर्थन प्रदान करता है। लक्ष्मीबाई बाल्यावस्था मे नानासाहब और तात्या टोपे के साथ खेला करती थी, इस कहानी को सन्देहास्पद ही समझना चाहिए, क्योकि नानासाहब और तात्या सम्भवत उसकी आयु के नहीं हो सकते थे। सैनिक विद्रोह के बाद उसके व्यक्तित्व के सम्बन्ध मे अनेक कल्पित कहानिया गढ़ी गईं और झासी के शासक के साथ उसके विवाह के पश्चात् कुछ पूर्ववर्ती कहानिया सम्भवत प्रचलित हो गईं। वह अपने पति से अवस्था मे काफी छोटी थी, क्योकि उसके पति की प्रथम रानी की मृत्यु के पश्चात् उसके साथ उसका विवाह हुआ था। प्रसिद्ध वकील जान लैंग ने, जिससे रानी ने अपने राज्य के मिला लिए जाने के पश्चात् परामर्श किया था, उसका चरित्र-चित्रण सक्षेप मे इस प्रकार किया है, "वह करीब मझले कद की स्त्री थी, कुछ मोटी परन्तु अधिक नहीं। तरुणावस्था मे उसका चेहरा अति सुन्दर रहा होगा, और इस समय भी उसमे बहुत आकर्षण है, परन्तु मेरे सौन्दर्य के विचार के अनुसार, वह कुछ गोल अधिक था। हाव-भाव भी बहुत अच्छे थे और बहुत बुद्धिमत्तापूर्ण। आखें विशेषत सुन्दर थीं और नाक की बनावट बडी सुकुमार थी। वह अधिक गोरी नहीं थी, परन्तु वह काली बिल्कुल नही थी। आश्चर्य है कि वह अपने शरीर पर कोई गहने नहीं पहनती थी, सिर्फ सोने के कर्ण-फूलो को छोडकर। सादी सफेद मलमल ही उसका वेश था, वह इतनी महीन बुनी हुई थी और इस प्रकार खिची हुई उसके शरीर पर पडी रहती थी कि उसकी आकृति की रूपरेखा साफ-साफ दिखाई देती थी—और वस्तुत उसकी आकृति बहुत सुन्दर थी। जो चीज उसकी सुन्दरता बिगाडती थी वह थी उसकी आवाज।"[९] जब मेजर एलिस ने सरकार के झासी को मिलाने सम्बन्धी निर्णय को सप्रेषित किया तो उसने साफ और गूजती हुई आवाज मे घोषणा की, "मेरा झासी नहीं देंगे"—मैं अपनी झासी नहीं दूगी। चाहे यह एक अप्रत्याशित अन्याय का विरोध हो या एक भावुक हृदय का क्षणिक उद्वेग, झासी को मिलाए जाने का

---

८ पारसनिस, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २७। उसका आगे कहना है कि जब मोरोपन्त बिठूर गया तो उसकी कन्या की आयु चार वर्ष की थी। यदि १८३२ में वह चार वर्ष की थी तो १८५७ म उसकी अवस्था करीब तीस वर्ष रही होगी।

९. लैंग, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ९३-९४

कोई प्रतिरोध नहीं किया गया। लक्ष्मीबाई ने किले मे अपने पति का निवास शान्तिपूर्वक छोड दिया और नगर के उस महल में आ गई जो उसे दिया गया था और वह एक हिन्दू विधवा का जीवन बिताने लगी। उसके सैन्य दल को भंग कर दिया गया और बगाल सेना की १२ वीं देशी पैदल सेना ने किले पर अधिकार कर लिया। हर काम शान्ति पूर्ण ढंग से होता गया और नए शासको को चिन्ता का कोई कारण दिखाई नहीं पड़ा। कैप्टन अलेक्जेंडर स्कीन को राज्य के प्रभार से युक्त राजनीतिक अधिकारी नियुक्त किया गया और दुर्ग-सेना की कमान कैप्टन डनलप ने संभाली।

चर्बी लगा हुआ कारतूस झासी मे भी चर्चा का एक साधारण विषय रहा होगा जैसा कि अन्यत्र। मई मे मेरठ और दिल्ली की खबरें आईं, परन्तु कैप्टन डनलप और उसके सहयोगियो ने अपने आदमियो मे कोई अशान्ति के लक्षण नहीं देखे। जून मे मृत्यु-दण्डित सिपाही अमन खां के, जिसे सर रावर्ट हैमिल्टन विश्वसनीय समझता था, शपथाभि-साक्ष्य के अनुसार, "मेरी रेजीमेट (१२ वीं देशी पैदल सेना) के किसी आदमी का एक नौकर या सम्बन्धी दिल्ली से एक चिट लाया, जिसमे कहा गया था कि बंगाल प्रेसीडेंसी की सारी सेना ने विद्रोह कर दिया है और चूंकि झासी मे स्थित रेजीमेट ने ऐसा नहीं किया है, इसलिए इसमे सम्मिलित आदमी जाति-बहिष्कृत या धर्म-भ्रष्ट हैं।"[१०] यह ताना काम कर गया और ५ जून को उपद्रव शुरू हुआ। सौभाग्यवश पहले दिन की घटना की प्रामाणिक सूचना हमे प्राप्त है। ६ जून को झासी के डिप्टी सुपरिन्टेंडेंट कैप्टन गोर्डन ने मेजर अर्स्किन और मेजर वेस्टर्न को लिखा, "स्कीन की प्रार्थना पर मै तुम्हे कुछ पंक्तियां यह बताने के लिए भेज रहा हू कि १२ वीं देशी पैदल सेना के एक पक्ष ने या उसके एक भाग ने छावनी मे खुला विद्रोह कर दिया है और स्टार फोर्ट को ले लिया है, जिसमे बारूदखाना है। उन्होने सारे खजाने को भी हस्तगत कर लिया है जिसकी राशि लगभग ४½ लाख है। तोपखाने के लोग भी उनमे सम्मिलित हो गए हैं और हमारे पास यहा केवल दो तोपें हैं। उन्होने इस प्रकार से यह किया है। कल दोपहर बाद तीन बजे के करीब सिपाहियो का एक गिरोह यह हल्ला करते हुए कि डकैतो ने बारूदखाने पर हमला बोल दिया है इस जगह पर भाग आया। अनेक आदमी, जो सीधे रूप से इस मामले मे सम्मिलित नहीं थे, विद्रोहियो मे शामिल हो गए और उन्होने एक दम तोपो को भर कर मोर्चे पर लगा दिया। अच्छे या कुछ कमजोर दिल वाले आदमी सन्ध्या के समय फिर बाहर चले गए, परन्तु बारूदखाना अभी भी करीब ५० आदमियो और दो तोपो की रक्षा मे है। हम इस कठिन परिस्थिति मे हैं कि न तो मैं स्वयं और न हमारे पक्ष (विंग) का कोई आदमी ही यह विश्वास कर सकता है कि घुडसवार सेना पर भरोसा किया जा सकता है। मै ठाकुरो की सहायता से किले से विद्रोहियो को हटा दूंगा, परन्तु पहली गोली शेष सब को खुले रूप से विद्रोही बना देगी।" इससे यह भी कहा गया है कि बहुत से बुन्देल ठाकुरो ने अपनी सेवा का प्रस्ताव रखा है और उनमे से काफी लोग ले भी लिए गए हैं। "ग्वालियर और कानपुर से सहायता लेने के लिए एक्सप्रेस गाडियां भेज दी गईं

१० फारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशन्स, सख्या २८३, ३० दिसम्बर, १८५६ (अनुपूरक)

हैं।" "मैंने समथर और ओरछा से भी सहायता के लिए आवेदन किया है। दतिया से कोई सहायता की आशा नहीं की जा सकती, क्योकि वहा राजा की अभी मृत्यु हुई है और अव्यवस्था फैली हुई है।"[11] स्कीन और गोर्डन एकदम उस स्थान के यूरोपीय और ईसाई परिवारो के साथ किले मे बन्द हो गए। उन्हें पता था कि वे किसी स्थान से सहायता की आशा नहीं कर सकते थे और उन्हें अपने ही साधनों पर निर्भर करना था। यह महत्व-पूर्ण है कि गोर्डन ने खाद्य-सामग्री का कोई उल्लेख नहीं किया है। नौकरों के साक्ष्य से यह मालूम पड़ता है कि पहले दिन वे स्वतन्त्रतापूर्वक अपने स्वामियों और स्वामिनियो के पास जा सके थे और उनके भोजन का प्रबन्ध बाहर से किया गया था।

कैप्टन डनलप और सेना के दूसरे अधिकारी अब भी शेष सैन्य दलो को स्थिर रखने की आशा कर रहे थे और वे अपनी पक्तियो (लाइनो) मे सोए। ६ तारीख को जेल का दरोगा बख्शीश अली भी अपने रक्षको सहित सैनिक विद्रोह मे शामिल हो गया और सिपाहियों ने न केवल कैप्टन डनलप, लेफ्टिनेंट टर्नबुल और इनसाइन टेलर पर ही गोलिया चलाई बल्कि दो हवलदारों पर और एक सिपाही पर भी, जिसने इनसाइन टेलर को बचाने की कोशिश की थी। १४वीं सेना के कैप्टन कैम्पबेल को चोट आई, परन्तु एक वर्णन के अनुसार वे किसी प्रकार अपनी जगह पर बैठे रहे और किले मे पहुच गए इसके बाद किला अवरुद्ध कर दिया गया और अब यह केवल समय का ही प्रश्न था कि कितनी जल्दी भगोड़े भूख से परास्त हो जाएगे। तीन आदमी वेश बदल कर किले से बाहर निकल गए, परन्तु वे पकड़ लिए गए और मार डाले गए। ८ तारीख को कैप्टन गोर्डन के सिर पर गोली मारी गई, अथवा उसने हताश होकर आत्महत्या कर ली।[12] लेफ्टिनेंट पोविस को एक देशी नौकर ने किले के अन्दर मार डाला। दोपहर बाद स्कीन ने सुरक्षित व्यवहार के आश्वासन पर या बिना किसी शर्त के बाहर आने का निश्चय किया, और पुरुषो, स्त्रियो तथा बच्चो का पूरा दल तलवार से उडा दिया गया। लाशें जोखन बाग मे, जहा यह हत्याकाण्ड हुआ था, तीन दिन तक खुली पडी रहीं। तब उन्हें एक ही गड्ढे में दफना दिया गया। जेल के दारोगा बखशीश अली ने इस अविवेकपूर्ण वध मे मुख्य भाग लिया था। केवल एक स्त्री और दो बच्चे किले से सही सलामत बच निकले। जब श्रीमती मुटलो देशी वेश मे निकल भागी तो उसका रग गोरा न होने के कारण किसी ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया।

सर राबर्ट हैमिल्टन, जिन्होंने एक वर्ष बाद इन दु:खद घटनाओं की जाच करवाई, कहते हैं, "यह कहीं वर्णित नहीं है कि मृत्यु से पूर्व इन अभागे यातनाग्रस्त लोगों मे से किसी एक के प्रति भी किसी प्रकार का अपमान किया गया। न केवल कोई साक्ष्य ही नहीं है,

---

११ फारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशन्स, संख्या २८१, ३० दिसम्बर, १८५६ (अनुपूरक)

१२ देखिए भगवान् ब्राह्मण का साक्ष्य, फारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशन्स, संख्या २८४, ३० दिसम्बर १८५६ (अनुपूरक)। इसकी पुष्टि शकर शाह ने की है, फारेन सीक्रेट कन्सल्टेशन्स, संख्या ३४५, २५ सितम्बर १८५७। ए० जी० जी० सेन्ट्रल इण्डिया के एक पत्र दिनाक ७ अगस्त, १८५७ का सहपत्र।

बल्कि इसके विपरीत यह भी निर्भय रूप से कहा जा सकता है कि एक भी शव को न तो बाद में विकृत किया गया था और न उसके साथ दुर्व्यवहार किया गया था। असन्दिग्ध रूप से उन्हें उसी स्थान पर छोड़ दिया गया था जहा वे मरे थे और इसमे भी सन्देह नहीं है कि उनके कपडे चुरा लिए गए थे और कुछ की (सब की नहीं) लाशो पर नील पड़े हुए थे, परन्तु इससे अधिक कुछ न था। इन अतिशयोक्तिपूर्ण वक्तव्यो का, जो सार्वजनिक रूप से छपे हैं, विश्वस्त रूप से खण्डन किया जा सकता है। जो कुछ वास्तविक रूप में हुआ वह मृतको के सम्बन्धियो तथा मित्रो के लिए अत्यन्त पीड़ाजनक था और मानवता के नाम पर कलंक था। अब उनकी भावनाओ को अपूर्ण ब्योरों से, जो तथ्य के विरुद्ध हैं, चोट पहुंचाने की आवश्यकता नही है क्योंकि इस प्रकार के ब्योरो का गढना प्रत्येक ईसाई की भावना के लिए घृणाजनक है।"[१३]

सैनिक विद्रोह और हत्याकाण्ड दोनो का कारण झासी की रानी का षड्यन्त्र बताया गया। उस पर यह भी अभियोग लगाया गया कि उसने "धर्मान्धता के काले अभियन्त्रो" का प्रयोग किया है। परन्तु रानी ने सफाई देते हुए कहा कि वह दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियों का असहाय रूप से शिकार हुई है। रानी को ब्रिटिश सरकार से वास्तविक शिकायत थी, इसलिए संशयालु मस्तिष्को ने जोखन बाग के वध के पीछे उसका हाथ देखा। परन्तु इस अभियोग को सहारा देने के लिए जो साक्ष्य दिया गया वह अधिकतर सुनी-सुनाई बातो पर आधारित था और गवाह व्यक्तिगत जानकारी की बातो मे भी एक दूसरे का खण्डन करते हैं। मेजर स्कीन के खानसामा शहाबुद्दीन, कैप्टन गोर्डन के हुक्मबर्दार शेख हिंगन और अर्दलियों के जमादार मादर बख्श, इन सबका यह दावा था कि उन्हे अपने मालिकों, स्कीन और गोर्डन के ५ जून की शाम को किले में भागने का पता था। शहाबुद्दीन ने साक्ष्य दिया कि "मेजर स्कीन कचहरी से अपने घर आए और अपनी पत्नी, बच्चो और कुमारी ब्राउन को कैप्टन बर्गेस की गाड़ी मे बिठला कर, जो उन्हे देखने आए थे, उन सबको कैप्टन बर्गेस के साथ किले मे भेज दिया। इसी समय उन्होने अपनी गाड़ी को लाने की आज्ञा दी, जिसके आ जाने पर वे उसमे बैठकर जोखन बाग गए जहां श्री गोर्डन उनसे मिले।"[१४] शेख हिंगन का कहना है कि जब कैप्टन गोर्डन को खतरे की सूचना दी गई और गोलियों की आवाज सुनाई पड़ी, उस समय वे अपने बंगले मे बैठे लिख रहे थे। "कैप्टन स्कीन की खाली बग्घी को लेकर सईस कैप्टन गोर्डन के घर पर पहुंचा।" कैप्टन गोर्डन ने उससे पूछा कि क्या मामला है, तब सईस ने उन्हें बताया कि किस प्रकार डनलप और टेन्नर गोली से मार दिए गए और स्कीन पर, जब वे अपनी कचहरी मे काम कर रहे थे, गोली चलाई गई। कैप्टन स्कीन तब मकान पर गये और बग्घी मंगवाई, लेकिन चूकि बग्घी देर से तैयार हो रही थी, इसलिए वे स्वयं अपनी पत्नी और बच्चों को लेकर उनके साथ किले तक घूमते चले गये और बग्घी आपके (कैप्टन गोर्डन के) लिए भेजी है। कैप्टन गोर्डन तब बग्घी मे बैठ गए और किले मे पहुंचे। मैं उनके साथ गया। जब हम शहर के सेयर

१३. फारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशन्स, सख्या २८०, ३० दिसम्बर, १८५६ (अनुपूरक)
१४. एनल्स आफ दि इण्डियन रिबेलियन, पृ० ५२०

दरवाजे पर पहुचे तो हमे सपरिवार कैप्टन स्कीन मिले और वे सव बग्घी मे बैठ गए।"[१५] मादर बख्श का भी यह दावा था कि वह गोर्डन के साथ था। उसका कथन यह है, "दोपहर बाद तीन बजे सर्वश्री स्काट और पर्सेल परिवार के दो व्यक्ति जिला कचहरी से कैप्टन गोर्डन के बगले पर भागे आए और कहा कि सेना पक्तियो मे लडाई हो रही है। कैप्टन गोर्डन ने इधर-उधर देखा और अपनी वन्दूक मगवाई तथा कैप्टन स्कीन के पास चल दिये। मैं उनके साथ गया। वे किले पर गए जहा वह कैप्टन स्कीन से शहर दरवाजे पर मिले और वे दोनों साथ-साथ किले के भीतर गए।"[१६] मादर बख्श आगे कहता है कि कैप्टन गोर्डन ने उसे दतिया के वकील सुन्दरलाल के पास दो तोपें लाने के लिए और नाथूसिंह को ओरछा के वकील के पास सहायता के लिए भेजा। कैप्टन गोर्डन ने अर्स्किन को अपने एक पत्र मे सूचना दी कि उसने समथर और ओरछा से सहायता मागी हैं परन्तु दतिया से उसे किसी प्रकार की सहायता की आशा नहीं है। शहाबुद्दीन की कहानी मे एक गल्प का पूरा मजा है। उसका दावा है कि वह दो बार विद्रोहियों के हाथ मे पडा, दो बार उसे मृत्यु की सजा दी गई, परन्तु हर बार किसी सौभाग्यपूर्ण घटना ने उसे बचकर आने मे सहायता दी और वह लौटकर अपने मालिक के पास आ गया। फारेस्ट ने एक बगाली के वक्तव्य से, जो सीमाशुल्क समाहर्ता (कस्टम्स कलक्टर) के कार्यालय से सम्बद्ध था, प्रचुरता से उद्धरण दिए हैं। इस बगाली का कहना है कि ८ जून को "बगालियो की एक सामान्य तलाशी ली गई और मैं और कस्टम्स विभाग के दो अन्य व्यक्ति गुण्डों के हाथों में पड गए और हमे खींचकर रिसालदार के सामने ले जाया गया जिसने आज्ञा दी कि जब तक किले का आत्मसमर्पण न हो जाए, हमे हिरासत मे रखा जाए।"[१७] इस व्यक्ति को अपनी हिरासत के समय मे हुई घटनाओं की कोई व्यक्तिगत जानकारी सम्भवत नहीं हो सकती थी और उससे पूर्व भी उससे यह आशा नहीं की जा सकती कि रानी के महल मे जो कुछ हुआ, उसका उसे पता होगा। उसने सिर्फ जो कुछ सुना, उसे कहा। उसने यदि यह सुना कि रानी ने यह कहा कि अग्रेज सूअरों से वह कुछ सम्वन्ध नहीं रखेगी, तो उसने यह भी सुना कि "रानी को यह भय दिलाया गया था कि यदि उसने विद्रोहियों का साथ देने से इन्कार किया तो उसका तत्काल वध कर दिया जाएगा। फलत उसने सहमति दे दी और १००० आदमियो की कुमुक भी उन्हें दी। उसने उन्हें दो भारी तोपें भी दीं जिन्हें उसने आज्ञा देकर धरती के अन्दर से खुदवा कर निकलवाया था।" इस गुमनाम महाशय के साक्ष्य का कम से कम एक आधार पर खण्डन एक प्रत्यक्षदर्शी के द्वारा किया गया है। बगाली का कहना है कि "कैम्पबेल पर प्रथम आक्रमण किया गया और यद्यपि वह घायल हो गया था परन्तु फिर भी वह अपने तेज घोडे की पीठ पर बैठा रहा जिसने छलाग मार कर एक दरवाजे को पार किया और सलामती से विना अधिक चोट पहुचाये अपने स्वामी को किले मे पहुचने में समर्थ

---

१५. फारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशन्स, सख्या २८६, ३० दिसम्बर १८५६ (अनुपूरक)
१६ फारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशन्स, सख्या २८७, ३० दिसम्बर १८५६ (अनुपूरक)
१७ एनल्स आफ दि इण्डियन रिवेलियन, पृ० ५१८

बनाया।[१८] फ्रांसिस टेग रायली का निश्चय पूर्वक कहना है कि लेफ्टिनेंट कैम्पबेल पर पाच या छः वार गोली चलाई गई थी और उसकी घोड़ी घायल हो गई थी। तब एक आदमी सामान्य सैनिको मे से घोडे पर चढ कर आया और उसने कैम्पबेल पर गोली चलाई। "इस समय लेफ्टिनेंट कैम्पबेल मुझे चिल्ला कर पुकार रहे थे और अपने हाथ को हिला रहे थे और मुझ से यह कह रहे थे कि तुम भाग जाओ। मैंने लेफ्टिनेंट कैम्पबेल को गिरते देखा और तब मैं घोडे को तेज दौड़ाकर भाग आया।"[१९] जो कुछ कस्टम्स कलक्टर के दफ्तर के आदमी ने सुना, तथ्य नहीं था। जिन गवाहो के उद्धरण सर राबर्ट हैमिल्टन ने दिये हैं, उनमे शहाबुद्दीन रानी के पिता मोरो बलवन्त ताम्बे पर, जिनका दूसरा नाम मामा साहब भी था, यह आरोप लगाता है कि उन्होने सिपाहियो के साथ क्रियात्मक सहयोग किया। रानी के आदमियों को अंग्रेजो के साथ उनकी कठिनाइयो मे सहानुभूति दिखाने का कोई कारण नहीं था और यह माना जा सकता है कि मामा साहब ने उनके शत्रुओं के साथ अपने को निश्चित रूप से एकाकार कर लिया। उसका आगे कहना है कि रानी के आदमी और तोपें किले के विरुद्ध प्रयुक्त किए जाते थे और इसे अस्वीकार नहीं किया जाता था। सैनिक विद्रोह के उस विवरण मे, जिसे रानी ने अर्स्किन को भेजा, वह कहती है कि उसके आदमी ८ तारीख को विद्रोहियों मे शामिल हुए। इस गवाह के द्वारा सबसे बुरा अभियोग जो रानी पर लगाया गया है, वह यह है कि वह हत्याकाण्ड के बाद बख़शीश अली के साथ पल्टन मे रिसालदार के पास गई। इसकी पुष्टि किसी ने नहीं की है और यद्यपि शहाबुद्दीन पल्टन मे था, परन्तु जैसा उसने स्वयं स्वीकार किया है, वह वहां कैद मे था। उसका कहना है कि सूबेदार लालबहादुर और जेल का दरोगा बख़शीश अली दोनो "अपने वचन देकर अफसरों को किले के बाहर लाये।" शेख हिंगन ने कहा कि जब गोर्डन ने यह सुना कि रानी के आदमी भी आक्रमणकारियो मे हैं, तो उसने रानी को लिखा और रानी ने उसे यह उत्तर दिया "मै क्या कर सकती हूं ? सिपाहियो ने मुझे घेर रखा है और वे कहते हैं कि मैंने भद्र पुरुषों को छिपा रखा है। वे मुझ से किला खाली करवाने को कहते हैं और कहते हैं कि हमारी सहायता करो। अपने आप को बचाने के लिए मैंने तोपें और अपने अनुगामी भेजे हैं। यदि तुम अपने आप को बचाना चाहते हो तो किले को छोड़ दो। कोई तुम्हे हानि नहीं पहुंचायेगा।" शेख हिंगन का दावा है कि उसने इस पत्र को पढ़ा। वह इसमे यह और जोड़ता है कि गोर्डन ने एक दूसरा सन्देश भेजा जिसका कोई उत्तर नहीं मिला। उसके अनुसार हिन्दू और मुसलमान विद्रोहियो ने सुरक्षा का वचन दिया था जिस पर घेरे मे पड़े हुए व्यक्ति अपने शरण-स्थान से बाहर आए। दूसरी ओर मादर बख़्श का दावा था कि वह गोर्डन के पत्र को रानी के पास ले गया और वही उसके उत्तर का भी वाहक था, परन्तु उसका कहना है कि उत्तर मे क्या लिखा था इसका उसको पता न था। श्रीमती मुटलो ने झांसी शहर और जोखन बाग मे कई दिन कब्रो मे विताये और उसे कोई पहचान न सका। वह दृढतापूर्वक कहती हैं, "श्री ए०

---

१८. एनल्स आफ़ दि इण्डियन रिबेलियन, पृ० ५१७

१९. वही, पृ० ५२४-२५

स्कीन और श्री गोर्डन रानी के पास गए और उससे उन्होने करीब पचास या साठ बन्दूकें, कुछ बारूद, गोलिया और छर्रे प्राप्त किए तथा रानी ने हमारी सहायता के लिए किले मे स्वय अपने लगभग पचास सिपाही भेजे।"[२०] इस कथन की अभी किसी दूसरे गवाह ने सम्पुष्टि नहीं की है। सम्भव है कि रानी ने अपने आदमी किले मे यूरोपीयों की सहायता करने के लिए भेजे हो, परन्तु यह बिलकुल असम्भव है कि स्कीन और गोर्डन स्वय उससे मिलने गए होगे। गोर्डन ने अर्स्किन और वेस्टर्न को लिखे अपने पत्र मे, जो स्पष्टत घेरा पडने से पूर्व लिखा गया था, ऐसी किसी भेंट का उल्लेख नहीं किया है। घेरे के बाद व्यक्तिगत भेंट का प्रयत्न केवल एण्ड्रयूज, पर्सेल और स्काट के द्वारा किया गया था और उन्हें विद्रोहियो के द्वारा पकड लिया गया था तथा मार डाला गया था। श्रीमती मुटलो आगे कहती हैं कि जब रानी ने ६ तारीख को सर्वव्यापी विद्रोह के बारे मे सुना तो "उसने अपने सब सिपाहियों को किले से बुलवा लिया। रानी और उसके सिपाही रेजीमेट से मिल गए, इसलिए हमने उसी रात अपने कपडे बदले और किले से बाहर जाना चाहा, परन्तु ऐसा कर नहीं सके। सवार किले के चारो ओर थे। इसलिए हम शुक्रवार की रात, शनिवार और रविवार को वहीं रहे। सोमवार को प्रात करीब ८ बजे श्री गोर्डन को गोली मारी गई। उस रेजीमेट के सूबेदार ने कैप्टन स्कीन को लिखा कि वे किले से बाहर आए और कहा, "हम तुम मे से किसी को नहीं मारेंगे, हम तुम सब को तुम्हारे स्वदेश भेज देंगे ? इस पर कैप्टन स्कीन ने रानी को लिखा कि वे सिपाहियो से शपथ लेने को कहें और पत्र पर स्वय अपने हस्ताक्षर कर दें। सब हिन्दुओं ने अपनी शपथ ली, 'यदि हम मे से कोई तुम्हारे आदमियों को छूए तो गो-मास खाए'। मुसलमानो ने भी शपथ ली, 'यदि हम में से कोई तुम्हारे आदमियो को छुए तो सूअर खाए।' रानी ने इस शपथ-पत्र के ऊपर अपने हस्ताक्षर किए और वह कैप्टन स्कीन को दे दिया गया।" श्रीमती मुटलो के अनुसार यह पत्र पढ़ा गया और सब जाने को सहमत हो गए। घेरे मे पडे हुए कुछ व्यक्ति भारतीय वेश में थे। जैसे ही वे बाहर आये, सिपाहियों ने सुरक्षा के लिए उनकी टोली के चारो ओर घेरा डाल दिया। श्रीमती मुटलो और उनकी आया को किसी ने नहीं देखा और वे घेरे से बाहर हो गईं। आया ने अपनी मालकिन को अपने घर ले जाने से इन्कार कर दिया और वह उसे जोखन बाग ले गई जहा वह करीब एक मास तक रही। यह कहानी अनेक कठिनाइयां उपस्थित करती है। उन दिनों भारतीय बडे लोगो मे अपने पत्रों पर हस्ताक्षर करने का रिवाज नहीं था और न वे उत्तम पुरुष मे ही लिखते थे। रानी इसमे अपवादस्वरूप नहीं थी। अपने सब शासकीय पत्र-व्यवहार मे वह अपनी मुद्रा का प्रयोग करती थी। श्रीमती मुटलो की स्थिति की स्त्री को इस बात की जानकारी न हो यह सम्भव था, परन्तु स्कीन के लिए तो यह आश्चर्यजनक ही माना जाएगा कि वह रानी

---

२० एनल्स आफ दि इण्डियन रिबेलियन, पृ० ५२६। गोडसे ने एक अत्यन्त कल्पना प्रसूत कहानी दी है जिसे हम अन्यत्र कहीं नहीं पाते। उसका कहना है कि विद्रोह के प्रारम्भ से एक दिन पूर्व गोर्डन और स्कीन रानी से मिले और उससे प्रार्थना की कि वह झासी का प्रभार सभाल ले।

के हस्ताक्षर के लिए प्रार्थना करे। निःसन्देह वह हस्ताक्षर की अपेक्षा मुद्रा से अधिक परिचित था। श्रीमती मुटलो के पति और बहनोई खतरे की प्रथम सूचना पाकर ही किले में चले गए थे। बाद मे श्री स्कीन ने उसे बुलाने का प्रबन्ध किया था। क्या यह सम्भव था कि जब किला खाली किया जा रहा था, तो श्रीमती मुटलो अपने आदमियो से अलग होकर आया के समीप आकर खडी होती ? उस शाम जोखन बाग झासी का सबसे अधिक खतरनाक स्थान था। यही वह स्थान था जहां यूरोपीय लोग ले जाए जाते थे और मार डाले जाते थे। इसलिए सभी शान्ति-प्रिय लोग इस स्थान से दूर रहना चाहते थे। श्रीमती मुटलो और उनकी आया ने, दो बच्चो को साथ लिए वेश बदले एक अकेली स्त्री के लिए इस स्थान को क्यों सुरक्षित समझा ? श्रीमती मुटलो का कहना है कि रानी "मेरी और दौलतराम की खोज कर रही थी।" (दौलतराम श्रीमती मुटलो का देशी रक्षक था)। क्या रानी के आदमियों के लिए एक ऐसी स्त्री का पता लगाना कोई कठिन काम था जो बच्चों के साथ एक हिन्दू श्मशान जैसे खुले स्थान मे रह रही थी ?[२१]

सर राबर्ट हैमिल्टन ने रानी पर यह स्पष्टतः अभियोग नहीं लगाया कि उसने विद्रोहियों के साथ षड्यन्त्र किया है। उसने १२वीं देशी पैदल सेना के एक सिपाही का उल्लेख किया है, जिसका निर्देश ऊपर किया जा चुका है। इस सिपाही को मृत्यु की सजा दी गई थी और उसी समय उसने एक बयान दिया। हैमिल्टन का कहना है कि "उसके दृढ़तापूर्ण कथन दूसरे लोगो के द्वारा दिए गए वक्तव्यो की पुष्टि करते हैं और स्वयं उनके द्वारा पुष्ट होते हैं। जहा तक वे जाते है, मैं समझता हूं, वे विश्वास किए

---

२१. श्रीमती मुटलो के किले में जाने के पश्चात् उसके लिए यह सम्भव नहीं था कि बाहर जो कुछ हो रहा है उसका उसे पता हो। उसने अपने वक्तव्य में दौलतराम और गणेशीलाल का उल्लेख किया है। दौलतराम सागर से झासी आया था और स्पष्टतया वह ब्रिटिश गुप्तचर था। वह दतिया भी जाया करता था। भारत के राष्ट्रीय अभिलेखागार (नेशनल आर्काइव्स आफ इण्डिया) के गुप्तवार्ता पत्रों में गणेशीलाल का एक पत्र है जो दतिया से दिनाक २२ फरवरी, १८५८ (फ़ारेन सीक्रेट कन्सल्टेशन, सख्या १३६, ३० अप्रैल, १८५८) को लिखा था। इस पत्र में श्रीमती मुटलो और दौलतराम दोनों का उल्लेख है। पारसैनिस का कहना है कि गणेशीलाल दतिया का दीवान था। श्रीमती मुटलो के इस कथन के समर्थन मे कि स्कीन ने किले को रानी के इस आश्वासन पर छोडा कि घेरे में पड़े व्यक्तियो की जानें बख्श दी जाएगी, पिकने को स्पष्टतः कोई साक्ष्य नहीं मिला। वह कहता है, "कैप्टन स्कीन के यह सकेत कर देने पर कि दुर्ग-सेना समझौता करना चाहती है, विद्रोही और ग़दर करने वाले लोग दरवाजे के समीप इकट्ठे हो गये और देशी डाक्टर सलेह मुहम्मद के मान्य से उन्होंने पवित्रतम शपथें खाकर वचन दिया कि यूरोपीयों और ऐंग्लोइण्डियनों को इस शर्त पर कि वे किला खाली कर दें, और अपने हथियार डाल दें, सलामती से चले जाने की अनुमति दे दी जायगी।" पिंकने के अनुसार, हत्याकाण्ड की आज्ञा रिसालदार ने दी। पिंकने की रिपोर्ट, पृ० ६, अनुच्छेद ३५

योग्य हैं। सिपाही अमन खा, जिसका यहा प्रसग है, इस बारे मे निश्चित था कि "ग़दर से पूर्व विद्रोहियो ने रानी से परामर्श नहीं किया।" वह यह भी कहता है कि विद्रोही सिपाहियो ने अपनी तोप की नोक पर शेष सब को यह धमकी दी कि यदि वे उनमें शामिल नहीं हुई तो तुरन्त मार डाले जाएगे। सवार और सिपाहियो को इस प्रकार अपने वश मे कर लिया गया। फिर सब मिलकर अपनी भरी बन्दूकों को लेकर रानी के महल मे गए और सहायता तथा सामग्री की माग की। उसे उनके सामने झुकने के लिए तथा उन्हें बन्दूकें, अस्त्र-शस्त्र और सामग्री देने के लिए बाध्य होना पडा।"

इन वक्तव्यों का मिलान हम गदर के सम्बन्ध मे रानी के उस वर्णन से कर सकते हैं जिसे सागर डिवीज़न के लेफ्टिनेंट जनरल, कमिश्नर और एजेंट, मेजर डबल्यू० सी० अर्स्किन को भेजे गए उसके पत्रो मे सप्रेषित किया गया था। रानी से बलपूर्वक विशाल धन-राशि लेकर विद्रोही १२ जून को झांसी से दिल्ली के लिए चल दिए। उसी दिन एक हरकारा एक पत्र को लेकर अर्स्किन के पास भेजा गया। दो दिन बाद एक दूसरा हरकारा एक दूसरे पत्र को तथा झासी मे हुई घटनाओं के वर्णन को लेकर चला। हरकारों ने कागज अपनी लाठियों मे छिपा लिए और झासी और सागर के बीच के जगली प्रदेश मे अपने जीवन को खतरे मे डालते हुए उन्होंने यात्रा की। मार्ग मे उनको लूट भी लिया गया, क्योंकि उस प्रदेश मे सब जगह अराजकता थी और निर्बल आदमी बलवानों की कृपा पर आश्रित थे। रानी ने लिखा, "झासी स्थित सरकारी फौजों ने अपनी विश्वासहीनता, क्रूरता और हिंसा से सब यूरोपीय असैनिक और सैनिक अफसरों, क्लर्कों और उनके सम्पूर्ण परिवारो को मार दिया है और चूकि रानी के पास तोपो की कमी थी और सिपाही भी उसके पास कुल १०० या ५० थे जो उसके मकान की रक्षा मे लगे थे, अत वह उनकी कुछ सहायता नहीं कर सकी, जिसका उसे भारी खेद है। बाद मे विद्रोहियों ने उसके और नौकरो के साथ अत्यन्त हिंसात्मक व्यवहार किया और उससे बलपूर्वक प्रभूत धन राशि ली और कहा कि चूकि रानी को रियासत के उत्तराधिकार का अधिकार है, इसलिए उसे प्रबन्ध भी करना चाहिए जब कि सिपाही बादशाह के पास दिल्ली जा रहे हैं। सिपाही जानते थे कि रानी बिल्कुल असहाय और ब्रिटिश अधिकारियो पर आश्रित है, जो स्वय इस समय ऐसे दुर्भाग्य मे पडे हैं, इसलिए उन्होंने उसके पास झासी के तहसीलदार, डिप्टी कमिश्नर के राजस्व और न्यायिक सरिश्तेदारों तथा न्यायालयो के अधीक्षकों (सुपरिन्टेंडेन्टो) के द्वारा यह सन्देश भिजवाया कि यदि उसने किसी प्रकार उनकी प्रार्थना को पूरा करने मे आनाकानी की तो उसका महल तोपो से उडा दिया जाएगा। अपनी स्थिति को ध्यान मे रखते हुए रानी को उनकी सब प्रार्थनाओ को मानने की अनुमति देने के लिए बाध्य होना पडा और भारी हानि भी सहनी पडी। अपने जीवन और सम्मान को बचाने के लिए उसे जायदाद और नकद के रूप मे बहुत धन देना पडा। यह जानकर कि जिले मे कोई ब्रिटिश अफसर नहीं बचे हैं, रानी ने जनता की भलाई और सुरक्षा का ध्यान कर और उससे प्रेरित होकर पुलिस आदि के रूप मे सम्पूर्ण अधीनस्थ शासकीय अभिकरण (गवर्नमेंट सबोर्डीनेट एजेंसी) के पास इस प्रकार के परवाने भेजे कि वे अपनी जगहो पर बने रहें और सदा की

तरह अपने कर्तव्यो को करते रहे। रानी के अपने जीवन और निवासियों के विषय में सदा भय वना रहता है। यह उचित था कि इस सब का प्रतिवेदन तुरन्त भेज देना चाहिए था, परन्तु विद्रोहियो ने इसके लिए. रानी को अवसर नहीं दिया। चूंकि आज दिन वे दिल्ली चले गये हैं, इसलिए रानी ने झटपट इसे लिखा है।" दिनांक १४ जून के पत्र मे रानी ने प्रतिवेदन किया कि जिले मे सब जगह अराजकता फैली हुई है और उपद्रवी सरदारों ने देहात के गढों पर अपना अधिकार जमा लिया है और पड़ोस मे लूट-मार कर रहे हैं। "यह उसकी शक्ति के विल्कुल परे है कि वह जिले की सुरक्षा के लिए कुछ भी प्रवन्ध कर सके, क्योकि इसके लिए रुपये की जरूरत पडेगी जो उसके पास नहीं है। महाजन भी इस प्रकार के समय में उसे रुपया उधार नहीं देंगे। इस समय तक तो उसने अपनी वैयक्तिक सम्पत्ति को वेचकर और वड़ी असुविधापूर्वक किसी प्रकार शहर को लूटे जाने से वचाया है और पिछली सरकार के स्वरूप को कायम रखा है। शहर और मुफस्सिल चौकियो कि रक्षा के लिए उसने वहुत से आदमियों को रखा है, परन्तु सक्षम सरकारी सेना और निधि के विना वह देखती है कि आगे डटे रहना असम्भव है। इसलिए उसने जिले की हालत के सम्वन्ध मे कुछ टिप्पणिया लिखी हैं, उन्हे भी वह इसके साथ भेज रही है। उसे विश्वास है कि शीघ्र आदेशो की कृपा की जाएगी, जिनका पालन वह निश्चयतः करवायेगी।"[२२]

इस स्पष्टवादी पत्र मे प्रच्छन्न कुछ नहीं है। रानी स्पष्टतापूर्वक यह स्वीकार करती है कि उसे विद्रोही सैन्य दल की वात माननी पड़ी, परन्तु ऐसा उसने हिंसा की धमकी से डर कर किया। रानी यह भी स्वीकार करती है कि उसने प्रशासन के उत्तरदायित्व को सभाला, परन्तु ऐसा उसने जनता के हित मे किया और उसने सरकार से प्रार्थना की कि शान्ति और सुव्यवस्था की स्थापना के लिए वह सैन्यदल भेजे। यदि वह सिपाहियों के साथ मिली हुई होती तो उसके लिए सबसे अच्छा मार्ग यही होता कि वह सिपाहियो से अनुरोध करती कि वे उसके पास ही ठहरे रहें क्योकि उनके चले जाने से तो वह न केवल अंग्रेजो के प्रतिशोध का मुकावला करने मे असहाय रह गई, वल्कि पड़ोसियों के आक्रमण और अपने सम्वन्धियों के पड्यन्त्रो के समक्ष भी असहाय बन गई। अर्स्किन ने रानी की सच्चाई मे सन्देह नहीं किया और आगे वीडन को भेजे हुए पत्र मे उसने यह और जोड़ा कि रानी का वर्णन "उस सब से मिलता है जिसे मैंने अन्य श्रोतो से सुना है।" अर्स्किन ने रानी से कहा, "आप मालगुजारी वसूल करें, पुलिस भर्ती करें और सुव्यवस्था स्थापित करने के लिए अपना पूरा प्रयत्न करें। जव अफसर झासी पहुंचेंगे तो हिसाव कर लिया जाएगा और आपके साथ उदारता का व्यवहार होगा। मैंने एक घोषणा निकलवाने के लिए भेजी है (जिसका अनुवाद मैं संलग्न कर रहा हू), जिसमे सब जिलो के निवासियों से कहा गया है कि वे ब्रिटिश सरकार के रिवाजो के अनुकूल रानी की आज्ञा का पालन करें, जो कुछ समय तक उचित प्रवन्ध करेंगी।"[२३] यह उपाय किसी प्रकार अपवादस्वरूप

२२. फारेन सीक्रेट कन्सल्टेशन्स, सख्या ३५४, ३१ जुलाई, १८५७

२३. फ़ारेन सीक्रेट कन्सल्टेशन्स, सख्या ३५३, ३१ जुलाई, १८५७

नहीं था। पन्ना के राजा को दमोह जिले का प्रभार दिया गया था। भारत के अन्य भागों मे भी इस प्रकार की विषमावस्था मे सत्ता का अस्थायी हस्तान्तरण किया गया।

गवर्नर-जनरल ने अर्स्किन के कार्य का केवल सशर्त अनुमोदन किया। भारत सरकार के सचिव (जी० एफ० एडमण्डस्टन ने अर्स्किन को सूचना दी, "मुझे यह कहना है कि यद्यपि सपरिषद्-गवर्नर-जनरल आपको इस बात के लिए दोष नहीं देते कि जिन परिस्थितियों मे आप थे, उनमे आपने रानी के कार्यों के उसके स्वय के लेखे और उसके मनोभावों को स्वीकार किया और ब्रिटिश सरकार की ओर से झांसी राज्य क्षेत्र का प्रबन्ध उसे सौंप दिया, परन्तु यह परिस्थिति रानी को बचा नहीं सकेगी, यदि उसका वर्णन झूठा निकल गया। मेजर एलिस ने सरकार को जो विवरण दिया, उससे यह मालूम होता है कि रानी ने ग़दर करने वाले विद्रोहियो की सहायता अवश्य की और उसने उन्हें बन्दूकें और आदमी भी दिये।"[२४] यह मेजर एलिस के द्वारा भेजे गये सन्देश से पूर्णतया मिलता था क्योंकि इसमे जोर देकर कहा गया था कि ग़दर करने वाले लोगों ने रानी पर इस बात के लिए जोर डाला कि वह बन्दूको और हाथियों से उनकी सहायता करें।[२५] कुछ भी हो, रानी ने सपरिषद-गवर्नर-जनरल की जानकारी मे और वैधानिक अधिकारियों के आदेश पर अपने पति की अमलदारी के प्रशासन को अपने हाथों मे लिया। परन्तु जुलाई सन् १८५७ मे भारत सरकार झासी के हत्याकाण्ड को नहीं भुला सकी जिसमे करीब ६० पुरुषो, स्त्रियों और बच्चो की जानें गईं। फिर भी उन्होने अपने निर्णय को रोके रखा क्योंकि उस समय वे कुछ भी करने की परिस्थिति मे नहीं थे। झासी बदला मागती थी और शिकार कोई काफी महत्व का व्यक्ति ही हो सकता था। लेकिन रानी की निष्पापता की पुष्टि सालो वाद एक अप्रत्याशित स्थान से हुई जब कि सन् १८८९ में मार्टिन नामक एक अग्रेज रानी लक्ष्मी वाई की स्मृति की सफाई देने के लिए सामने आया। रानी के दत्तक पुत्र दामोदरराव को उसने आगरा से २० अगस्त को लिखा, आप की वेचारी मा के साथ वड़े अन्याय और निर्दयता का व्यवहार किया गया और उनके सच्चे मामले को मेरे से अच्छा और कोई नहीं जानता। उस वेचारी ने जून १८५७ मे झासी के यूरोपीय निवासियो के हत्याकाण्ड मे कोई किसी प्रकार का भाग नहीं लिया। इसके विपरीत उन्होने उन्हें उनके किले मे जाने के बाद दो दिन तक भोजन-सामग्री दी। कुर्रर से १०० टोपीदार वन्दूकों वाले आदमियों को मगवा कर उन्होने हमारी सहायता के लिए भेजा। परन्तु किले मे एक दिन रखे जाने के वाद वे शाम को यापस भेज दिए गए। तव रानी ने मेजर स्कीन और कैप्टन गोर्डन को परामर्श दिया कि वे एक दम दतिया चले जाए और वहा के राजा की सुरक्षा मे अपने को रख दें परन्तु यह भी उन्होने नहीं किया। अन्त मे वे सव हमारे ही सैन्य दलो, पुलिस, जेल और पूर्व के अपराध-मामलो के द्वारा मार डाले गए।"[२६] टोपीदार वन्दूको वाले आदमी असदिग्ध

---

२४ फारेन सीक्रेट कन्सलटेशन्स, सख्या ३५५, ३१ जुलाई, १८५७

२५. फारेन सीक्रेट कन्सलटेशन्स, सख्या १७९, ३१ जुलाई, १८५७

२६ पारसनिस, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १२५। दामोदरराव का पुत्र इमली वाजार,

रूप से ठाकुर ही थे जिनका उल्लेख गोर्डन के पत्र और शेख हिंगन के साक्ष्य में भी हुआ है। जब इन लोगो को वापस भेज दिया गया तो बाहर वालों ने समझा कि रानी ने ही उन्हे वापस बुला लिया है।

रानी ने फिर भी अंग्रेजो के साथ अपने मित्रतापूर्ण सम्बन्ध कायम रखने मे अपने प्रयत्नो मे कोई कमी नहीं आने दी। सर राबर्ट हैमिल्टन का मध्यवर्ती भारत से लम्बे समय तक सम्बन्ध रहा था और उस प्रदेश की राजनीति की जितनी जानकारी उसे थी, उतनी और किसी अफसर को नहीं थी। जब वह छुट्टी के बाद अपने घर वापस आया तो रानी ने उसके पास एक हार्दिक अनुरोध भेजा। इस पत्र में रानी कहती है कि उसने अपनी विपन्नावस्था मे इन लोगो को पत्र लिखे हैं: जवलपुर के कमिश्नर, मध्यवर्ती भारत के लिए गवर्नर-जनरल के कार्यकारी एजेंट, आगरा के लेफ्टिनेंट गवर्नर, जालौन के डिप्टी-कमिश्नर, ग्वालियर के पोलिटिकल एजेंट और मेजर एलिस, परन्तु उसे भय है कि इनमें से कुछ पत्र शायद अपने निर्दिष्ट स्थान तक पहुंच ही नहीं सके हैं। आगरा को भेजे गए पत्र के भाग्य के सम्बन्ध मे उसे कुछ निश्चय नहीं था, क्योकि उसका सन्देशवाहक किले मे न घुस सकने के कारण उसे किसी भिश्ती को दे आया था।[२७] मार्टिन का कहना है कि आगरा को भेजा गया पत्र कहीं इधर-उधर नहीं हुआ था। वह लिखता है, "रानी ने जवलपुर में कर्नल अर्स्किन के पास खरीता भेजा और आगरा के चीफ़ कमिश्नर कर्नल फ्रेजर के पास भी, जिसे मैंने स्वय उन्हें दिया, रानी की व्याख्या सुनने के लिए, परन्तु नहीं ! झासी एक खीज का शब्द हो गया था और विना सुने ही उसे कठोर रूप में निन्दित कर दिया गया।"

इस बीच रानी के शत्रु भी सुस्त नहीं रहे। गंगाधरराव की मृत्यु के बाद उत्तराधिकार का दावा परोल के सदाशिवराव नामक एक व्यक्ति ने किया जो उसका भतीजा बनता था और जिसे कई बार हटाया जा चुका था। वह समझता था कि ब्रिटिश सत्ता के हटा दिए जाने और सिपाहियो के चले जाने के बाद अन्ततः उसका अवसर आ ही गया था। उसने कुछ सैन्य दलो की भरती की और झांसी से करीब तीस मील दूर करेरा के गढ को ले लिया तथा पुलिस और ब्रिटिश सरकार के राजस्व अधिकारियो को भगा दिया। इस स्थान से उसने पडौस के गावो मे अशान्ति पैदा करना शुरू कर दिया और झांसी के महाराज का पद भी उसने ग्रहण कर लिया। रानी के आदमियो ने उसे करेरा के गढ़ से बाहर निकाल दिया, लेकिन अपने आप को महाराज कहने वाले उस व्यक्ति ने पीछे हट कर सिन्धिया के राज्य-क्षेत्र मे नरवर मे अपने लिए सुरक्षित स्थान बना लिया। यहा उसने फिर एक सेना इकट्ठी की और अपनी कानून विरोधी कार्यवाहिया शुरू की। इस वार वह बन्दी बना लिया गया और झांसी के किले मे रख दिया गया।[२८]

इन्दौर मे रहता है। मार्टिन का पत्र पाया नही जा सका है, परन्तु पारसैनिस का दावा है कि उन्होने उसे देखा।

२७. फारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशन्स, सख्या २६६, ३० दिसम्बर, १८५६ (अनुपूरक)

२८. ब्रिटिश सत्ता के पुनः सस्थापित हो जाने के बाद उसे फासी दे दी गई।

परन्तु रानी के सकटों का अभी अन्त नहीं था। उसे अब अधिक भयंकर शत्रुओ का सामना करना था। बुन्देले एक लड़ाकू कौम हैं। मुगल काल मे उन्होंने केन्द्रीय सत्ता की केवल अनिच्छुक अधीनता स्वीकार की और उसकी कमजोरी से लाभ उठाने के किसी अवसर को उन्होंने जाने नहीं दिया। पिण्डारी युद्ध के दिनो मे बुन्देला किसान उस समय की सरकार से सहमत नहीं था और दूसरे लोगो को हानि पहुचा कर भी वह अपने घर की शान बढाना चाहता था। बुन्देले मराठो को अपने प्रदेश मे बलपूर्वक घुस आने वाले मानते थे और यदि उनका बस चलता तो वे झासी, जालौन और ऐसे दूसरों जिलो को, जो किसी समय उनके थे, वापस छीनने मे प्रसन्नता अनुभव करते। जब ग़दर शुरू हुआ तो पहले अंग्रेज़ो के प्रति उनकी प्रवृत्ति कमजोरदिली की थी। हम देख चुके हैं कि किस प्रकार गोर्डन ने सम्थर और ओरछा के बुन्देल राज्यों से सहायता की प्रार्थना की। रायली हमे बताता है कि "शनिवार ६ जून के करीब दोपहर के समय ओरछा और दतिया के राजाओं के पास से इन्कार आ गया, यह कहते हुए कि वे हमारी कोई सहायता नहीं कर सकते।"[२९] ओरछा के दीवान ने कुछ ब्रिटिश भगोडो का जो स्वागत किया वह निश्चयत रूखा था।[३०] जब उसने झासी के ब्रिटिश निवासियों को ही सामयिक सहायता देने मे असमर्थता प्रकट कर दी या इन्कार कर दिया, तो ब्राह्मण विधवा के साथ शक्ति-परीक्षण मे उसने कोई हानि नहीं देखी।

पारसैनिस का कहना है कि ओरछा के दीवान नत्थे खा ने झासी पर आक्रमण करने से पूर्व रानी के सामने यह प्रस्ताव रखा था कि यदि वह अपनी अमलदारी उसे दे दें तो वह उसे उतनी ही पेंशन देगा जितनी उसे ब्रिटिश सरकार से मिलती थी। हम नही जानते कि इसका कोई प्रामाणिक आधार है अथवा यह उन्हीं अनेक लोक गीतो मे से किसी पर आधारित है जिनमे ग्रामीण कवि रानी की वीरता का यश गाते हैं। ओरछा की सेना ने कब झासी पर आक्रमण किया इसे हम ठीक-ठीक रूप मे नहीं जानते परन्तु युद्ध मे रानी ने अपनी स्थिति को नुकसान मे पाया। उसके पास थोडे सैनिक थे और उसके सैनिक सग्रहागार भी अत्यन्त हीन थे। अपने सकट मे रानी ने अपने सरदारों से राजभक्ति की याचना की और सामन्ती बन्धन रक्त के सम्बन्धो से अधिक बलिष्ठ सिद्ध हुए। बुन्देल ठाकुर झासी के शासक के चारो ओर इकट्ठे हो गए और यहा तक कि ओरछा की रानी का जामाता भी पीछे न रहा। परन्तु युद्ध की प्रारम्भिक अवस्थाओ मे युद्ध झासी के विरुद्ध गया और नत्थे खा किले की दीवारों के नीचे तक बढ़ आया। सम्भवत इस कठिन परिस्थिति के समय ही प्रथम वार रानी अपने सैन्य दलो मे दिखाई पडी। ओरछा

---

२९ एनल्स आफ दि इण्डियन रिबेलियन, पृ० ५२३

३० कैप्टन ए० सी० गोर्डन को सन्देह था कि सारी टोली के विनाश के लिए टेहरी (ओरछा) और बानपुर के अधिकारियों के बीच एक विश्वासघात की योजना पहले से ही बन गई थी, परन्तु मुहम्मद अली (बानपुर के राजा के मुख्तार) और प्रेम नारायण (टेहरी के राजा के शिक्षक) की ईमानदारी के कारण विफल हो गई। "पिकने की रिपोर्ट, पृ० ११, अनुच्छेद ६१

के सैन्य दल पीछे हटा दिए गए। दतिया की ओर से जो कष्ट पैदा किए गए उनके बारे मे भी हम पढते हैं। एक समय यह सुझाव दिया गया था कि ओरछा और दतिया दोनो मिलकर (झांसी की) अमलदारी को आपस मे बांट लें। ब्रिटिश लोगो के पुनः सत्ता प्राप्त कर लेने पर अपने राज्य को उनके अधीन कर देने मे रानी को किसी प्रकार का अपमान या असम्मान अनुभव नहीं हो रहा था, परन्तु अपने परिवार के पुराने प्रतिद्वन्द्वियो के अधीन होने मे उसे वास्तविक अवज्ञा अनुभव हो रही थी, यद्यपि वे सार्वभौम सत्ता की ओर से लड़ने का बहाना कर रहे थे। सर रावर्ट हैमिल्टन को लिखे गए अपने पहली जनवरी सन् १८५८ के पत्र मे रानी ने शिकायत की, "देश की उपद्रवग्रस्त स्थिति से लाभ उठाकर दतिया और ओरछा के सरदारो ने पहले अपने-अपने राज्यो की सीमा से लगे झांसी इलाका जिले के पूर्वी और पश्चिमी दोनो भागो पर अधिकार जमा लिया। ३ सितम्बर को (इन दोनो सरदारों ने मिल कर काम करते हुए) ओरछा की सेना ने, जिसमे ठाकुर और राज्य के सम्बन्धी सम्मिलित थे तथा जिसमे ४०,००० आदमी और २८ तोपें थीं, स्वयं झांसी पर आक्रमण कर दिया और दूसरे सरदारो को अपनी सहायता करने पर विवश किया। यद्यपि मैंने दोनो पत्र, जो मुझे कमिश्नर से मिले थे, नत्थे खां के पास उसके परिशीलन के लिए भेज दिए थे, परन्तु उसने उन पर कोई ध्यान नही दिया।[31] इस पर मैंने कमिश्नर को फिर लिखा और उसने मुझे उत्तर मे (१६ अक्तूबर के पत्र के द्वारा) कहा कि ब्रिटिश सेनाएं जवलपुर मे इकट्ठी हो रहीं है और वह स्वयं झांसी आएंगे और छोटे या वडे सबके चाल-चलन की परीक्षा करेंगे और उनके साथ तदनुकूल व्यवहार करेंगे। इस बीच मैंने अपनी सम्पत्ति को बेचकर और रुपया व्याज पर कर्ज लेकर अपनी पूरी-पूरी कोशिश की है—आदमियो की एक टोली को भर्ती किया है और शहर की रक्षा के लिए तथा आक्रमणकारी सेना का सामना करने के लिए उचित कदम उठाए हैं।" अन्त मे वह कहती है, "इन परिस्थितियो मे मै बिना ब्रिटिश सरकार की सहायता के इन शत्रुओ से पीछा छुड़ाने की और अपने भारी कर्ज को चुकाने की किसी प्रकार आशा नहीं कर सकती। कमिश्नर मेरी सहायता के लिए चलने के लिए तैयार नहीं जान पडता, क्योकि उसने अपने ६ नवम्बर के पत्र मे लिखा है कि ब्रिटिश सैन्य दलो की सेवाओ की इस समय उसके स्थान पर ही जरूरत है। चूंकि इन अल्पदर्शी व्यक्तियो को ब्रिटिश सर्वोच्च सत्ता का ध्यान नहीं है और ये मेरा और सारे देश का नाश करने के लिए सब कुछ कर रहे हैं, इसलिए मैं आपसे प्रार्थना करती हूं कि आप मुझे जो सर्वोत्तम सहारा दे सकते हैं दें और मुझे तथा जनता को बचाएं, जो अन्तिम अवस्था तक पिस चुके हैं और शत्रु का सामना करने मे समर्थ नहीं हैं।" सर रावर्ट हैमिल्टन ने इस पत्र का उत्तर दिया हो, ऐसा नहीं जान पड़ता। उसने अपना संकल्प पहले ही कर लिया था।

---

३१ पारसैनिस का कहना है कि इस अवसर पर झासी के किले मे यूनियन जैक का प्रदर्शन किया गया। यह सम्भव नहीं है, क्योंकि एक यूनियन जैक जिसे ब्रिटिश सरकार ने झासी के एक भूतपूर्व शासक को भेट किया था, सर ह्यू रोज के आदमियो को किले में मिला था।

जबलपुर डिवीजन के कमिश्नर ने रानी से कहा था कि वह उनकी ओर से तब तक राज्य को रखे रहे जब तक कि ब्रिटिश अधिकारी पुन उसके प्रभार को न सभाल लें। रानी ने इस दुर्वह कर्तव्य को अपने ऊपर ले लिया था, परन्तु शीघ्र ही उसे पता लगा कि पूर्व और पश्चिम से उसके जिलो पर आक्रमण हो रहा था और उसके किले का घेरा, विद्रोहियो द्वारा नहीं, बल्कि ब्रिटिश सरकार की अधीनता स्वीकार करने वाले बुन्देल सरदारों के द्वारा ही डाला जा रहा था। रानी ने रक्षा के लिए प्रार्थनाए कीं, परन्तु उन पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। रानी अदम्य उत्साह वाली स्त्री थी। वह ओरछा और दतिया के द्वारा अपने को दण्डित किया जाना सहन नहीं कर सकती थी। उसने सेना दलों की भर्ती की, तोपो का ढलवाना और युद्ध के अस्त्र-शस्त्रों का बनवाना शुरू किया और अपने सहायक खोजे।[३२] उसके नए सैन्य दलो ने उसके शत्रुओं को मऊरानीपुर और बरवा सागर मे हराया। नत्थे खा का अपमान हुआ परन्तु रानी भी विद्रोहियों मे फस गई। उसके नए रगरूटो मे अनेक विद्रोही थे और उसके सहायको मे बानपुर और शाहगढ़ के विद्रोही राजा सम्मिलित थे। उसके सामन्तो ने जीत का मजा चखा था और अब वे लूट के माल के लिए युद्ध करने को तैयार थे। परन्तु सन् १८५८ के जनवरी और फरवरी के महीनो की ब्रिटिश जासूसों की रिपोर्ट से यह मालूम होता है कि रानी अब भी औपचारिक रूप से अपने को सौपे गए राज्य-क्षेत्र को वापस देने को तैयार थी, यदि अंग्रेज लोग उसके साथ सम्मान और दयालुता का व्यवहार करते।

दिनाक ८ जनवरी की एक सूचना इस प्रकार है, "यह सूचित किया गया है कि झासी जेल के दरोगा बखशीश अली ने रानी से पूछा कि वह अंग्रेज़ी सेनाओ के साथ लडेंगी या नहीं, जिसके उत्तर मे रानी ने उससे कहा कि वह लडेंगी नहीं, परन्तु वह अपने अधीनस्थ सब जिलों को ब्रिटिश अधिकारियों के झासी आने पर उन्हें लौटा देंगी। यह सूचना पाकर दरोगा ने रानी की सेवा छोड दी।"[३३] २६ जनवरी को यह सूचना थी कि रानी ने अपने सैन्य दलो को ओरछा की सेना से लडने के लिए मऊरानीपुर भेजा है। उसने एक वकील को कमिश्नर के पास भेजा था। यदि वकील के साथ अच्छा व्यवहार किया गया तो वह अंग्रेजो से नहीं लडेंगी, बल्कि सारे जिलो को लौटा देंगी, परन्तु यदि इसके विपरीत अंग्रेज अधिकारियो ने अप्रसन्नता प्रकट की तो वह आखिरी दम तक लडेंगी। बारूद और बन्दूको का निर्माण किया जा रहा था।[३४] हमे बताया गया है कि फरवरी मे भी रानी लडने के लिए तैयार नहीं थी, यद्यपि युद्ध के लिए उसकी तैयारिया बिना किसी कमी के चल रही थीं।[३५] मार्च मे उसकी परिषद् मे मतभेद उत्पन्न हो गया। १५ मार्च की गुप्त-वार्ता हमे सूचना देती है, "रानी के अधिकारियो ने परामर्श के लिए एक परिषद् की, जिसमे

---

३२ जब ओरछा के सैन्य दलों ने झासी का घेरा डाला, तो बानपुर के राजा ने रसद-सामग्री भेजी।

३३ फारेन पोलिटिकल कन्सलटेशन्स, संख्या २६५, ३० दिसम्बर, १८५९ (अनुपूरक)

३४ फारेन सीक्रेट कन्सलटेशन्स, संख्या ३३, २६ मार्च, १८५८

३५ फारेन सीक्रेट कन्सलटेशन्स, संख्या ४२, २६ मार्च १८५८

काशीनाथ हरि और लल्लो वख्शी ने प्रस्ताव किया कि अंग्रेजो के साथ समझौता कर लेना चाहिए। मामा साहब और गंगाधर की यह राय थी कि राज्य को चूंकि वड़ी कठिनाई से और विना युद्ध के वापस पाया है, इसलिए उसे छोड़ देना उचित न होगा। वख्शी और काशीनाथ ने यह कह कर इसका प्रतिवाद किया कि राज्य को स्वयं स्वर्गीय राजा ने अंग्रेजो को दे दिया था।"[३६] यहां यह ध्यान रखना चाहिए कि इन सूचनाओ पर सदा विश्वास नहीं किया जा सकता। एक सूचना के अनुसार शहजादा फीरोज शाह झांसी में था, परन्तु दूसरे साक्ष्य से इसकी पुष्टि नहीं होती, यद्यपि आन्तरिक रूप से यह असम्भव नही था। एक दूसरी सूचना के अनुसार तात्या टोपे ने रानी को सलाह दी कि वह अंग्रेजों से समझौता कर ले। परन्तु इसकी सम्भावना दिखाई नहीं पड़ती। लेकिन रानी ने एक अभिकर्ता को सागर भेजा था और सर रावर्ट हैमिल्टन को लिखा गया उसका पत्र भी इन सूचनाओ की बिल्कुल अनुकूलता मे है। जनवरी मे रानी ब्रिटिश उपेक्षा के कारण अति क्रुद्ध हो गई थी। फरवरी मे वह परिस्थितियो की गति के अनुसार अपना कार्यक्रम वनाने की तैयारी कर रही थी और मार्च मे उसके कुछ परामर्शदाताओ ने आक्रमण नीति का समर्थन किया। झासी के अंग्रेजी राज्य मे मिलाए जाने के वाद जिन सैन्य दलो को विसर्जित किया जा चुका था, उन पुराने दलो की रानी ने फिर भर्ती शुरू कर दी थी। वे जोर से लड़ाई के पक्ष मे थे। उनके लिए शान्ति का अर्थ था वेरोजगारी और विनाश। कुछ बुन्देल सरदारो को अपनी पुरानी सत्ता का मजा मिल चुका था और वे अंग्रेजी अधिकार को फिर स्थापित देखने के लिए अनिच्छुक थे। कुछ भी हो, रानी के सामने कोई विकल्प नहीं था। ब्रिटिश गतिविधि को वह वडे ध्यान से देखती रही। सर ह्यू रोज झासी के लिये चल पडा था और उसका इरादा मित्रतापूर्ण नहीं मालूम पड़ता था। झुकने का अर्थ था अपनान को निमन्त्रण देना। अत. सम्मान को वचाने के लिए लड़ना ही एकमात्र मार्ग था, चाहे फिर अन्य सव कुछ भले ही विनष्ट हो जाए।

सर ह्यू रोज का अनुभव केवल सेना तक ही सीमित नहीं था। उसने कूटनीति मे भी प्रसिद्ध प्राप्त की थी। उसने अपने सैनिक जीवन का प्रारम्भ सन् १८२० मे सवसे छोटे अफसर के रूप मे किया था और वीस साल मे वह उन्नति करते हुए लेफ्टिनेन्ट-कर्नल के पद पर पहुंच गया। तुर्क-मिश्री युद्ध के दौरान मे उसने सीरिया मे विशेष प्रसिद्धि प्राप्त की और उसके वाद उसे वहीं कौंसल-जनरल नियुक्त किया गया। सन् १८५१ मे वह कुस्तुन्तुनियां के ब्रिटिश दूतावास का सचिव वना और क्रीमिया-युद्ध के समय "क्वीन्स कमिश्नर" के रूप मे फ्रांसीसी सेना के मुख्यालय से सम्वद्ध रहा। सितम्वर सन् १८५७ मे सर ह्यू पूना डिवीजन की कमान को संभालने के लिए वम्वई आया। दिसम्वर मे उसे सेन्ट्रल इण्डिया फील्ड फोर्स का कमाण्डर नियुक्त किया गया। इस सेना को, प्रधान सेनापति के अवध और उत्तर-पश्चिमी प्रान्त मे व्यस्त रहने के समय मे, राजपूताना फील्ड फोर्स तथा सागर और नर्मदा फील्ड फोर्स के सहयोग से मालवा, वुन्देलखण्ड, राजपूताना और मध्यवर्ती-भारत मे काम करना था। सर ह्यू के यहा आने के

३६. फारेन सीक्रेट कन्सल्टेशन्स, सख्या १४७, ३० अप्रैल, १८५८

थोडी देर बाद ही सागर से अशान्ति की खबर उसके पास पहुची। सागर के मिट्टी के किले मे, जिसमे १७० यूरोपीय स्त्री और बच्चे शरण ले रहे थे, केवल ६८ यूरोपीय तोपचियो की एक अत्यन्त छोटी दुर्ग-सेना थी। छावनी मे ३१वीं देशी पैदल सेना के सिपाही राजभक्त थे और सचमुच वे ४७वीं देशी पैदल सेना के अपने विद्रोही बन्धुओ के विरुद्ध लडे भी थे, परन्तु किले के निवासी फिर भी उनमे पूरा विश्वास नहीं करते थे। चारो ओर का प्रदेश विद्रोहियो के हाथ मे था। ५२वीं देशी पैदल सेना ने जबलपुर मे विद्रोह कर दिया था। उन्होने अपने अफसरो को सूचना दे दी थी कि यदि यूरोपीय सैन्य दल आए तो वे विद्रोह कर देंगे। यूरोपीय सैन्य दल तो नहीं आए, परन्तु एक गोंड राजा[37]को, जिसका राज्य छीन लिया गया था, और उसके पुत्र को फासी दे दी गई, जिसके फलस्वरूप सिपाहियो ने विद्रोह कर दिया। सागर का पूरे अर्थ मे अवरोध तो नहीं किया गया, परन्तु चूकि पडोस का गढकोट का गढ विद्रोहियो के हाथ मे था और बुन्देल सरदार पडोस के जिलो की शान्ति भग कर रहे थे, इसलिए ब्रिगेडियर अरक्षित अनुभव कर रहा था। यह भी भय था कि ३१वीं देशी पैदल सेना की राजभक्ति अधिक देर तक इस स्थिति का सामना नहीं कर सकेगी। पूर्व कार्यक्रम के अनुसार सागर की रक्षा का भार मद्रास सैन्य दलो को दिया गया था परन्तु दो मास से पूर्व उनके आने की आशा नहीं थी। इसलिए मुख्य लडाई लडने से पूर्व सर ह्यू रोज़ ने झासी पर अभियान करने का निश्चय किया। पहला विद्रोही गढ़ जिससे उसका सामना पडा राहतगढ़ था। जिस समय ब्रिटिश सैन्य दल इस किले के बाहरी प्राकार पर गोलियो की लगातार बौछार कर रहे थे, बानपुर के राजा ने उन पर धावा बोल दिया।

बानपुर के बुन्देल राजा मर्दानसिह को विद्रोहियों के उद्देश्य से कोई लगाव नहीं था। वह तो अपने पुरखाओं के राज्य-क्षेत्र के लिए लड रहा था। एक समय था जब चन्देरी और उस पर आश्रित ज़िले उसके पूर्वजो के हाथ मे थे। उसके बाप को अपने भूतपूर्व राज्य के दो-तिहाई भाग को सिन्धिया को देने के लिए बाध्य होना पडा था।[38] यदि सिन्धिया के ऊपर सर्वोच्च सत्ता रखने वाले अग्रेज चन्देरी को उसके वास्तविक स्वामी को वापस दिलवाने के लिए तैयार हो जाते, तो मर्दानसिह उनकी ओर से भी लडने को तैयार था। वस्तुत उसने अग्रेज़ शरणार्थियो का आतिथ्य किया था और ललितपुर के विद्रोहियो से वह लडा भी था।[39] परन्तु जब उसे यह पता लगा कि उसका सहयोग सम्भवत अभीष्ट पुरस्कार की प्राप्ति नहीं करवा सकेगा, तो उसने बिना किसी हिचकिचाहट के अपना भाग्य विद्रोहियो के साथ युक्त कर दिया और स्थानीय ठाकुरो की सहायता से उसने

---

३७ शकर शाह, मैलेसन, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द ३, पृ० १०३

३८ पिकने की रिपोर्ट, पृ० ३, अनुच्छेद १८

३९ १४ जून को मर्दानसिह ने कैप्टन गोर्डन से जबर्दस्ती एक पत्र पर हस्ताक्षर करवा लिए जो इस प्रकार था, "डकैती और रक्तपात आदि के कारण और सिपाहियों के विद्रोह के कारण मै इस जिले का प्रबन्ध करने मे असमर्थ हो गया और इसके फलस्वरूप मैंने इसका पभार बानपुर के राजा को सौप दिया। मै अपने धर्म के अनुसार दृढतापूर्वक

ऐतिहासिक किले को अपने अधिकार मे ले लिया। उसका आक्रमण तो सुयोजित था, किन्तु राजा राहतगढ के घेरे को नहीं उठा सका और किला जीत लिया गया। विद्रोहियों ने अपना अगला मोर्चा बीना नदी के किनारे पर बरोदिया में लिया। इस छोटे किले की रक्षा दृढ संकल्प अफगानो और पठानो का एक दल कर रहा था, परन्तु उनके नेता को मार डाला गया और बानपुर का राजा भी घायल हुआ। अतः इस स्थान को खाली कर दिया गया। ३ फरवरी को सर ह्यू सागर पहुंचे और स्थानीय आदमी एक बडी संख्या मे ब्रिटिश सैन्य दलो को प्रयाण (मार्च) करते देखने आये क्योंकि एक भी ब्रिटिश रेजीमेट पहले सागर मे नहीं रही थी। परन्तु स्वागत अमिश्रित नहीं था। लो का कहना है, "कुछ गलियो में उदासीन रूप से रोष दिखाते हुए शैतान की तरह देखने वाले लोग काफी बड़ी सख्या में थे जो हमे वहा देखना नहीं चाहते थे।"[४०] गढ़कोट को जीतकर सर ह्यू को लगा कि अब वह झासी की ओर मुडने के लिए स्वतन्त्र है, परन्तु सामग्री और परिवहन की कमी के कारण उसे अपने अभियान को कुछ दिन के लिए स्थगित करना पड़ा। फरवरी के अतिम दिन उसने बम्बई के गवर्नर को लिखा, "सामग्री और परिवहन की कमी के कारण मुझे अभाग्यवश रुकना पड़ रहा है, जो सार्वजनिक सेवा के लिए बड़ी हानिकर बात है। मैंने नौ मूल्यवान दिन खो दिए हैं, जो मेरे लिए दुगुने मूल्यवान थे, न केवल इसलिए कि मौसम का यह समय ऐसा है जब कि प्रत्येक गर्म दिन यूरोपीय सिपाहियो के स्वास्थ्य और जीवन को खतरे मे डालने वाला है, बल्कि इसलिए भी कि प्रत्येक दिन ने विद्रोहियों को अपने उस मनोधैर्य को पुनः प्राप्त करने मे सहायता की है जिसे वे मेरे युद्ध-कार्यों के कारण खो चुके थे।"[४१] इसलिए सर ह्यू ने आगे कदम उठाने से पूर्व अपनी कमान के नीचे सेना की प्रत्येक शाखा के सुधार करने मे अपने को लगा दिया। उसका उद्देश्य था वेगपूर्ण कार्य और कुचलने वाली चोटें।

सर ह्यू के सामने यह विकल्प था कि वह झासी को पीछे छोड़कर चरखारी होता हुआ कालपी जा सकता था, क्योकि चरखारी का राजा अंग्रेजो का पक्का मित्र था। झासी के किले को वह अपने सैन्य दलों के लिए अधिक प्रबल समझता था, परन्तु साथ ही वह इसे भी बुद्धिमानी नहीं समझता था कि इतने मजबूत विद्रोही दल को वह अपने पीछे छोड़ दे। इसलिए उसने पहले झासी को लेने और उसे एक उदाहरण बनाने का निश्चय किया। सर राबर्ट हैमिल्टन भी, जो सेना के साथ था, यही राय रखता था। उसने तर्क दिया कि नीति की माग यही है कि तात्या के मुख्यालय कालपी पर आक्रमण करने से पूर्व झासी को परास्त किया जाय। सागर के साथ आवागमन के मार्ग को बनाए रखना आवश्यक था, इसलिए लेफ्टिनेंट पेंडरगास्ट को अर्द्ध-बर्बर खोड लोगो के एक समूह के साथ बरोदिया मे

कहता हूं कि मैंने अपनी स्वतन्त्र इच्छा से इसे लिखा है। इस जिले में जो भी ब्रिटिश सैन्य दल आएं, उन्हे राजा की सहायता करनी चाहिए।" पिंकने की रिपोर्ट, पृ० ११, अनुच्छेद ५६

४०. लो, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १८६-८७

४१. फारेस्ट, ए हिस्ट्री आफ दि इण्डियन म्यूटिनी, जिल्द ३; पृ० १६६

छोड़ दिया गया। नरुत के मार्ग को बानपुर का राजा मजबूती के साथ अपने कब्जे मे किए हुए था। इसलिए सर ह्यू ने मदनपुर वाले कम कठिन मार्ग से, जिसकी रक्षा शाहगढ़ का राजा कर रहा था, आगे बढने का निश्चय किया। परन्तु उसने एक छोटी सेना लेकर नरुत पर कूटाक्रमण किया जब कि मुख्य सेना ने दूसरे किले को ले लिया। शाहगढ़ बिल्कुल उसकी कृपा पर आश्रित था और राज्य को ब्रिटिश लोगो ने मिला लिया। बानपुर के राजा ने अब घर-फूक नीति स्वीकार की और उसकी राजधानी बिल्कुल खाली पाई गई। महल लूटा गया और नष्ट कर दिया गया। बाद मे जो कुछ बचा उसमे आग लगा दी गई। फिर तालबेहट को विद्रोहियो से साफ किया गया। २१ मार्च को अंग्रेजी सेना झासी के सामने आई, यहा सर ह्यू रोज से ब्रिगेडियर स्टुअर्ट, जिसने इस दौरान मे गुना प्रदेश को साफ कर दिया था और चन्देरी के प्रबल किले को अपने हाथ मे कर लिया था, दुबारा आकर मिला।

सर ह्यू जब झांसी से कुछ ही मील की दूरी पर था, उसे एक महत्वपूर्ण निश्चय करना पडा। कानपुर की पराजय ने तात्या टोपे को हतोत्साह नहीं किया था। वह एक छोटे बुन्देल राज्य चरखारी की इसी नाम की राजधानी मे सहसा दिखाई दिया था और राजा ने अपने सकट मे अपने अंग्रेज मित्रो से सहायता के लिए एक अत्यावश्यक याचना की थी। इसलिए सर ह्यू को यह सन्देश दिया गया कि वह शीघ्रता से उसकी रक्षा के लिए जाए, क्योंकि बुन्देलखण्ड के राजभक्त राजाओ को सरक्षण देना आवश्यक माना गया था। यह भय था कि चरखारी का पतन सम्भवत उस क्षेत्र के अन्य मित्रतापूर्ण राज्यो के विरुद्ध आक्रमण को जन्म देगा और बुन्देलखण्ड मे अंग्रेजों की प्रतिष्ठा कम हो जाएगी। परन्तु सर ह्यू का तर्क था कि चरखारी के किले का पतन सम्भवत उसके वहां पहुचने से पूर्व ही हो जाएगा, जब कि झासी के विरुद्ध कार्यवाही का अर्थ होगा राजा को अधिक शीघ्रता से सहायता पहुचाना, क्योंकि तात्या सम्भवतः चरखारी को छोडकर अपना सैन्य-दलो को बढ़ाने के लिए झासी आएगा। इसलिए सर ह्यू रोज ने झासी को पराजित करने के प्रयत्न मे अपनी शक्ति लगाने का निश्चय किया और सर राबर्ट हैमिल्टन भी इस बात मे उससे सहमत था।

घेरा २२ मार्च को शुरू हुआ। २५ ता० को दाईं श्रेणियों ने गोलाबारी शुरू की। २६ ता० को बाईं श्रेणियां पूरी हो गईं और उन्होने किले के परकोटे पर गोलियों की बौछार शुरू की। रक्षको ने भी सकल्प के साथ गोलाबारी का उत्तर दिया और स्त्रिया भी मरम्मत के काम मे हाथ बटाती देखी गईं। सन्ध्या के समय स्वय रानी ने अपने आदमियों मे उत्साह और उमग की भावना भरने के लिए रक्षा-कार्यो का चारो ओर घूम कर निरीक्षण किया। किला दृढ़ था, रानी के आदमी उसके व्यक्तित्व के प्रति अनुरक्त थे और उसे बाहर से अधिक सैन्य दलों के आने की आशा थी। वे जल्दी आ भी गए। ३१ ता० को २०,००० आदमी तात्या टोपे की अधीनता मे झासी को सहायता पहुचाने आए। सर ह्यू को अब यह निश्चय करना था कि वह इस बाहर से आई हुई शत्रु सेना का सामना करने के लिए किले के घेरे से अपने सैन्य दलों को हटा ले या घेरे को कायम रखते हुए अपनी सेना के केवल एक अश से उसका सामना

करे। उसने दूसरा मार्ग अपनाया और एक कठिन लड़ाई के बाद तात्या की सेना को तितर-बितर कर दिया।

तात्या के परास्त होने के बाद सर ह्यू अब अपना सारा ध्यान झांसी के युद्ध-कार्यों की समाप्ति मे लगा सकता था। रानी ने बुद्धिमानी से सारे ग्रामीण क्षेत्र को वीरान कर दिया था। परन्तु सर ह्यू को खाद्य-सामग्री के बारे में चिन्ता नहीं थी, क्योंकि सिन्धिया और ओरछा की रानी ने उसके पास पर्याप्त खाद्य-सामग्री भेज दी थी। यह असम्भव था कि घेरे मे पडे लोगो को देर तक तात्या टोपे के पीछे हट जाने का पता न चलता, परन्तु फिर भी उनके मनोधैर्य पर इसका कुछ प्रभाव न पड़ा और पड़ा हो तो इसका कोई लक्षण प्रकट नहीं हुआ, क्योकि जब ३ अप्रैल को उन पर आक्रमण किया गया तो उन्होने अपने शत्रुओ पर विनाशकारी गोलाबारी की। आक्रमणकारियो पर उन्होने सभी प्रकार के अस्त्र फेंके, जैसे बारूद से भरे मिट्टी के बर्तन, लकड़ी के लट्ठे या जो कुछ भी उनके हाथ मे आया। अन्त मे पीछे का दरवाजा टुकड़े-टुकडे कर दिया गया और अंग्रेज सिपाहियो ने अन्दर घुसने का प्रयत्न किया, परन्तु मार्ग चट्टान के बड़े-बड़े टुकडो से अवरुद्ध था, अत' दाईं ओर से मुख्य आक्रमण विफल कर दिया गया और उसमें अंग्रेजो को बडा नुकसान उठाना पड़ा। परन्तु एक दूसरा दल अधिक सौभाग्यशाली था और उसने एक छोटे छिद्र से होकर प्रवेश कर लिया। बाईं ओर के सेना के दस्ते को परकोटे पर ठहरने की जगह मिल गई और वहा से वह उस सडक पर पहुंच गया, जो महल को जाती थी। अब गली-गली, घर-घर और कमरे-कमरे मे भयकर युद्ध हुआ और रक्षक लोग चीतो की तरह लड़े। किसी ने न तो किसी से शरण मांगी और न दी गई। "आक्रमणकारी जब महल-के आगन मे पहुंचे तो ऐसा लगा कि वास्तविक प्रतिरोध तो अब शुरू हुआ है। हर एक कमरे के लिए बर्बरता के साथ युद्ध हुआ। परन्तु यह विफल था। कमरे-कमरे से शत्रु को संगीनो के बल पर बाहर निकाल दिया गया। अन्त मे महल तो ले ही लिया गया। परन्तु तब भी विरोध पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ। दो घण्टे बाद यह पता लगा कि भवन से लगे अस्तबल अब भी रानी के अंगरक्षक दल के पचास आदमियो के अधिकार मे थे।"[४२] "उनका एक दल अस्तबल से दूर एक कमरे मे, जिसमे आग लग रही थी, तब तक डटे रहे जब तक वे आधे जल नहीं गए। उनके कपडो मे आग लग गई थी। अपने आक्रमणकारियो के पैरो मे ठोकरें जमाते हुए और अपने सरों को अपनी ढालो से बचाते हुए वे बाहर दौडे।"[४३] गलियो मे दूसरे दिन तक युद्ध चलता रहा और नगर को निर्दयता से लूटा गया। प्रत्येक काला चेहरा शत्रु था और न लड़ने वालो को भी उतना ही भारी नुकसान उठाना पड़ा जितना लड़ने वालो को। "जो अपने को बचा नहीं सके उन्होंने अपनी स्त्रियो और बच्चो को कुओ मे डाल दिया और फिर स्वयं भी उन्हीं मे कूद गए।"[४४]

---

४२. मैलेसन, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द ३, पृ० १७०

४३. फारेस्ट, ए हिस्ट्री आफ दि इण्डियन म्यूटिनी, जिल्द ३, पृ० २१५

४४. लो, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २५९ सस्कृत हस्तलिखित ग्रन्थों का प्रसिद्ध

अंग्रेज सिपाही बदला लेने के लिए प्यासे थे। उनका विश्वास था कि उनके देशवासी पुरुषो और स्त्रियो के वध का उत्तरदायित्व रानी पर ही था। उनकी, भावनाए डा० लो के वर्णन मे बडी ईमानदारी के साथ प्रतिबिम्बित होती हैं, "किसी प्रकार की कमजोर भावुक दयाशीलता का चिन्ह इस नगर के पतन मे नहीं था। भारत की जेजबेल थी रानी—तरुण, शक्तिमती, स्वाभिमानिनी, न झुकने वाली और समझौता न करने वाली। मारे गए लोगो की हत्या का खून उसके सिर पर था और उतनी ही भयकर सजा उसे मिलने वाली थी।"[४५] परन्तु रानी की मौत एक अपराधी की तरह नहीं होनी थी। रातोंरात वह अपने दत्तक पुत्र को लेकर पुरुष के वेश मे चल दी। उसके साथ वफादार अफगानों का एक रक्षक दल था। ओरछा के रक्षक-दलों मे होती हुई उसकी मण्डली निकल गई और कोई उन्हें पहचान नहीं सका। परन्तु जैसे ही उनका आमना-सामना एक दूसरे सैनिक दल के साथ हुआ, वे तितर-बितर हो गए और फिर मिल नहीं सके। रानी और उसके बचे हुए घुडसवार सैनिक कालपी की सडक पर

पुस्तकालय पूरी तरह विनष्ट हो गया और नगर को निर्दयतापूर्वक लूटा गया। "जैसे ही लड़ाई बन्द हुई, सेना के अफसर और जवान अपने इधर उधर जिज्ञासा की उस भावना से देखने लगे, जो किसी को उस समय होती है जब वह वार्डर स्ट्रीट, लीस्टर स्क्वायर की दूकानों को देखने के लिए जाता है। वे प्रत्येक घर में घुसे और उसके अंधेरे कोनों की उन्होने खोज की। जो दीवालें हाल की बनी प्रतीत होती थीं उनको या उनके भागों को उन्होंने गिराया। यह सब उन्होंने सिर्फ अपनी उसी जिज्ञासा की भावना से किया, लूट के लिए नहीं, क्योंकि लूट करना कठोरतम दण्ड के द्वारा निषिद्ध था। फिर भी मुझे लगता था कि कुछ वस्तुओं की लूट सबसे अधिक नैतिक रूप से सावधान व्यक्तियों को भी न्याय्य लगती थी। ये वस्तुए थीं, मन्दिरों में पाई गई देवताओं की मूर्तिया। वे एक बड़ी सख्या में मिली थीं और हर एक अफसर और सिपाही आश्चर्यजनक रूप से उनकी खोज में रहता था। अनगिनती गणपति और विष्णु थे और हर धातु के बने हुए। कुछ मूर्तिया अपने विकृत शरीरों पर सुन्दर चादी के आभूषण और सोने के ककण पहने हुए थीं और इतनी छोटी थीं कि घड़ी की जजीरों में उन्हें बाधा जा सकता था। कुछ मर्तिया पीतल और पत्थर की थीं और उनमें असाधारण कारीगरी थी। "सिल्वेस्टर, रिकलेक्शन्स आफ दि कैम्पेन इन मालवा एण्ड सेन्ट्रल इण्डिया," पृ० १०७-१०८। परन्तु सिपाही केवल क्षुद्राकृति मूर्तियों को उठा कर ही सन्तुष्ट नहीं हुए। लो का कहना है कि आवेश के प्रथम क्षणों मे उन्होने उस सब को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया जो उन्हें मिला। लो कहता है कि "जवाहरात का एक बड़ा भाग उनकी जेबों में चला गया।" परन्तु क्षमा-याचना करते हुए वह आगे कहता है, "प्रलोभन को ध्यान मे रखते हुए यह कहना ही पड़ेगा कि उन कठिन और आवेशमय परिस्थितियों मे सिपाहियों ने चीजों के उठाने और चुराने से अपने हाथ बचाने की आज्ञा का अधिक से अधिक पालन किया।" लो, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २६४

४५ लो, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २३६

अपने घोडो पर वढ चले, परन्तु रानी के पिता मामासाहव मार्ग भूल गए और सबेरा होते होते वे दतिया जा पहुंचे। वे रक्तस्राव के कारण वेहोश थे और कड़ी सवारी के कारण अत्यन्त थक गए थे। उन्हें एकदम गिरफ्तार कर लिया गया और झांसी भेज दिया गया, वहा जोखन वाग मे उन्हे फासी लगा दी गई। रानी घोड़े पर चढ़ी चली गई और रात मे उसने इक्कीस मील का रास्ता तय किया, परन्तु सवेरा होते ही ब्रिटिश शिविर मे उसके वच कर चले जाने की वात विदित हो गई। कैप्टन फोर्व्स और लेफिटनेंट डौकर तीसरी "लाइट कैवेलरी" और १४ वीं "लाइट ड्रेगून" नामक सेना को लेकर आगे वढ़े। रानी के वफादार घुड़सवार अगरक्षकों मे से चालीस लौट पड़े और उन्होंने उनसे युद्ध किया तथा एक-एक कर सब मारे गए। एक बार पीछा करने वाले लोगो को वे दिखाई पड़े परन्तु रानी एक अति श्रेष्ठ घुड़सवार थी। पीछा करने वाले लोगो मे जो सबसे आगे था उसके एक गोली लगी और वह युद्ध के अयोग्यहो गया। पीछा करना छोड़ दिया गया।

झासी का पतन हो गया, परन्तु कालपी का लिया जाना, जो पेशवा के सैन्यदल का मुख्यालय था, अभी शेष था। यह स्थान सब विद्रोही नेताओ का मिलन-स्थल हो गया था। पेशवा परिवार के सबसे अधिक शक्तिशाली सदस्य राव साहब यहीं थे। वादा का नवाव, जो पेशवा का नजदीकी रिश्तेदार था, वाद मे कालपी मे आकर उससे मिल गया था।[४६] और अव उनके साथ झासी की रानी भी थी। वेतवा के युद्ध मे तात्या अपनी अनेक वन्दूको को खो चुका था, परन्तु साधन जुटाने की अपनी विशिष्ट शक्ति से उसने इस नुकसान को पूरा कर लिया। विद्रोही सेना कालपी में नहीं ठहरी, वल्कि झासी की सड़क पर स्थित युद्ध-नीति की दृष्टि से महत्वपूर्ण कस्वे कूंच तक आगे वढ गई। जंगल, वाग और मन्दिर जो शहर की सीमा में स्थित थे, उन्हें छिपने का अच्छा स्थान प्रदान करते थे, परन्तु वे इस स्थान को रख नहीं सके और उन्हें पीछे हट कर फिर कालपी आना पड़ा। २३ मई को अनेक वड़ी लड़ाइयो के वाद, उन्हें अपने अन्तिम गढ़ को भी वाध्य होकर खाली करना पड़ा। दूसरे ही दिन विजयी सेनापति को गर्वनर-जनरल की ओर से एक वधाई-सन्देश मिला, "तुम्हारा झांसी पर अधिकार कर लेना सफलताओं की शानदार एवं अटूट परम्परा की महत्वपूर्ण कड़ी है। मैं हृदय से तुम्हें और तुम्हारे वहादुर सिपाहियो को धन्यवाद देता हूं।"

कालपी के पतन के वाद विद्रोही नेताओ ने एक परिषद बुलाई, जिसमे सिपाहियों के प्रतिनिधि भी उपस्थित थे।[४७] यमुना के दक्षिण मे उनका अन्तिम गढ़ उनके हाथ से निकल चुका था और उन्हें युद्ध-कार्य के लिए एक नये क्षेत्र की खोज करनी थी। सिपाही

---

४६. नवाव वाजीराव प्रथम की अवैध सन्तान-परम्परा मे उनका वशज था। उसने सव अंग्रेज शरणार्थियों के साथ दया का वरताव किया, परन्तु अन्त मे सैन्य दलो के डर से उसे जवर्दस्ती विद्रोह में शामिल होना पडा।

४७. ग्वालियर के मामले का वर्णन मैकफर्सन के प्रतिवेदन पर आधारित है। फ़ारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशन्स, संख्या ४२८३, ३१ दिसम्बर, १८५८

अवध जाना चाहते थे, रानी झासी मे करेरा स्थान को या बुन्देलखण्ड मे अन्य किसी स्थान को अधिक अच्छा समझती थी, परन्तु तात्या का तर्क था कि बुन्देले विरोधी हैं, इसलिए उन्हे उनकी जन्मभूमि मे सामग्री कठिनता से मिलेगी। राव साहब ने दक्षिण का सुझाव दिया। पेशवाओं ने अपनी विजय के दिनों मे दक्षिण पर शासन किया था और महाराष्ट्र के हृदय मे अब भी पेशवा का नाम जादू का काम करता था। बहुत से सरदार उसकी पुकार का अब भी अनुकूल उत्तर देते और यह आशा थी कि यदि पेशवा की सेना उन्हें नेतृत्व प्रदान करने को तत्पर होती तो सब गाववासी विद्रोह कर देते। परन्तु सेना के पास न तो निधि थी और न सामग्री। इसलिए यह सोचा गया कि राव साहब पहले ग्वालियर जाएगे और वहा सिन्धिया का समर्थन प्राप्त करने का प्रयत्न करेंगे। पेशवा एक समय सिन्धिया के ऊपर सर्वोच्च सत्ता था।[४८] उसके पूर्वजों ने नाना साहब के पुरखों की सेवा की थी। यदि पुरानी स्मृतियो को जगा कर सिन्धिया को अपनी ओर कर लिया जाए, तो उसके इस उदाहरण का प्रभाव सम्भवत उत्तर के अन्य राजाओं पर भी पडेगा।

सिन्धिया अपने ब्रिटिश मित्रों के प्रति राजभक्त था, इतना स्वाभाविक सहानुभूति के कारण तो नहीं, बल्कि आवश्यकता के कारण तेरह वर्ष पहले उसके आदमियो ने अग्रेज़ों के साथ अपनी शक्ति की परीक्षा की थी और वे बुरी तरह हरा दिए गए थे। सन् १८५७ के आरम्भ मे उसने कलकत्ता की यात्रा की थी और अग्रेजो की शक्ति के विशाल परिमाण की छाप उसके मन पर बैठ गई थी। राजनीतिक अभिकर्ता मेजर चार्ल्स मैकफर्सन ने यह भी बताया था कि अपनी बहुसख्यक प्रजा के जातिगत भेदो के कारण वह बहुत शक्तिशाली न था। जैसे ही ब्रिटिश अधिकार खत्म होता जाट, बुन्देले और राजपूत एक साथ मिल कर मराठों के विरुद्ध उठ खडे होते। इसलिए आत्मगत स्वार्थ की यह माग भी थी कि वह पूरी तरह अग्रेजो के उद्देश्य के साथ अपने को एकाकार करता। महाराजा के अगरक्षक दल की एक टुकडी अति शीघ्र आगरा भेजी गई। सिन्धिया को ग्वालियर की सेना पर कोई भरोसा नहीं था। उसे डर था कि चाहे वे ग़दर मे भले ही शामिल न हो, परन्तु वे अपने साथी सिपाहियों के विरुद्ध कभी नहीं लडेंगे। जिन अंगरक्षक मराठा सैन्य दलो को उसने अभी हाल मे भर्ती की थी केवल उन्हीं से उसे आशा थी कि वे दृढ़ रूप से राजभक्त बने रहेगे। मूर्खतावश यह आशा की गई थी कि पुरबिया आक्रमण के विरुद्ध वे मराठा शासक का साथ देंगे।

दूसरी ओर ग्वालियर की सेना की भर्ती यद्यपि अग्रेजों के द्वारा की गई थी, उन्होंने ही उसे प्रशिक्षण दिया था और उसके अफसर भी अग्रेज ही थे, परन्तु फिर भी उसका व्यय सिन्धिया देता था और ऊपर से दिखाने के लिए यह उसके हित के लिए ही थी, किन्तु यह सेना उसके अधिकार मे नहीं रखी गई थी। ग्वालियर की सेना मे बिल्कुल वही तत्व विद्यमान थे जो बगाल की सेना मे थे और उसके सिपाही उन्हीं भावनाओं से प्रेरित हो सकते थ जिनसे अग्रेजो की नौकरी मे लगे सिपाही थे। उनके भय और सवाद

---

४८ यह कहा जाता है कि ग्वालियर वश का सस्थापक रानोजी सिन्धिया बाजीराव प्रथम की चप्पलें उठाने वाला था।

बिल्कुल उन लोगों के समान ही थे और वे चर्बी लगे कारतूस और मिलावट वाले भोजन की कहानी से उतने ही क्षुब्ध हो उठे थे, जितने अवध और उत्तर-पश्चिमी प्रान्त के लोग। जून १८५७ मे जब ग़दर दूसरे अनेक स्थानो मे फैला तो ग्वालियर की सेना के सिपाही भी उठ खड़े हुए। उनके पास यह सोचने के प्रभूत कारण थे कि अब उन पर भरोसा नहीं किया जा रहा। मेजर मैकफर्सन छावनी को छोड़कर रेजिडेंसी में चले गए थे जिस पर सिन्धिया के सैन्य-दलों का पहरा लगा था। महिलाएं सिन्धिया के एक महल में भेज दी गई थीं, परन्तु सैनिक स्थान के समादेशक (कमांडर) ब्रिगेडियर रैम्जे के अनुरोध पर वे बाद मे छावनी मे वापस आ गईं। ७ जून को कैप्टन मरे की अधीनता मे पैदल सेना की चौथी कन्टिंजेंट की एक टुकड़ी झांसी मे गदर को शान्त करने के लिए भेजी गयी। परन्तु उन्हें इस खबर के साथ वापस आना पड़ा कि वहां पर प्रत्येक ईसाई तलवार से उड़ा दिया गया है और खजाना लूट लिया गया है। यूरोपीय निवासियों को हमेशा ग़दर होने का भय लगा रहता था। १५ जून की रात को जब गदर शुरू हो गया तो उनका असमंजस समाप्त हो गया। सिपाहियो ने बिल्कुल अविवेकपूर्ण ढंग से ईसाइयो का वध नहीं किया। स्त्रियो को कोई हानि नही पहुंचाई गई और उन्हे जाने की अनुमति दे दी गई परन्तु नियमतः पुरुषो को नहीं छोडा गया। इसमें कुछ अपवाद भी थे। लेफ्टिनेंट पियर्सन को उसके आदमियो ने छोड दिया।[४९] परन्तु उस रात के हत्याकाण्ड से बचने वाला केवल वही अंग्रेज न था। पोलिटिकल एजेंट (राजनीतिक अभिकर्ता) और कुछ थोड़े आदमियों तथा कुछ स्त्रियों को फूलबाग महल में शरण मिली और बाद मे उन्हें मार्ग-रक्षको के साथ आगरा भेज दिया गया।

सिन्धिया विद्रोहियों के साथ कैसा बरताव करता? वह उनके हटाये जाने के लिए मूल्य चुकाने को तैयार था, परन्तु मेजर मैकफर्सन की सलाह दूसरी थी। जब तक सम्भव हो विद्रोहियों को ग्वालियर में ही रखना अंग्रेजों के हित में था। इसलिए सिन्धिया ने उन्हे अपनी सेवा मे लेने का बहाना किया। वह ठीक समय उनका वेतन देता रहा और उसने कभी साफ शब्दों में यह नहीं कहा कि वह अंग्रेजों के विरुद्ध उनका नेतृत्व नहीं करेगा। विभिन्न उपायों से उसने उन्हे सितम्बर १८५७ तक शान्त रखा जब कि तात्या ने स्वयं आकर अपने पक्ष का पोषण किया और उन्हे अपने आलस्य को छोड़ने और कालपी पर अभियान करने के लिए मना लिया। सिन्धिया ने अपने मित्रो की बड़ी सेवा की थी। जब कि अंग्रेज उत्तर मे धीरे-धीरे अपनी सत्ता पुनः प्राप्त करने मे लगे थे, प्रशिक्षित और अच्छी प्रकार हथियारो से युक्त विद्रोहियो का एक भयंकर दल मुरार में अपनी सेना-पंक्तियो मे निश्चित बैठा था जब कि उसका हस्तक्षेप कई बार आगरा, दिल्ली और कानपुर के भाग्य का निर्णय कर सकता था। परन्तु यदि ग्वालियर के सरदार ने निश्चितरूप से अपने भाग्य को विदेशियों के हाथ जोड़ दिया था, तो उसके अनेक अफसरों और सामन्तो तथा उसकी जाति के लोगो की छिपी हुई सहानुभूति अपने देशवासियों के प्रति भी थी जो अपने धर्म के लिए लड़ रहे थे। उनमें से बहुतो का ईमानदारीपूर्वक यह

४६. फारेस्ट, ए हिस्ट्री आफ़ दि इण्डियन म्यूटिनी, जिल्द ३, पृ० ४८-५१

विश्वास था कि अंग्रेज भारत के निवासियो का धर्म-परिवर्तन करना चाहते हैं। इसलिए ग्वालियर नगर मे तात्या को शक्तिशाली समर्थक प्राप्त थे और उसके ऐसे अनेक मित्र थे जिन पर वह विश्वासपूर्वक आश्रित रह सकता था ग्वालियर का नायब कोतवाल बिठूर का आदमी था, यद्यपि इस बात का पता न सिन्धिया को था और न उसके दीवान को। तात्या का जामाता भी इसी नगर का निवासी था।

यह कहा जाता है कि कूच की पराजय के बाद तात्या ने गुप्त रूप से दूसरी बार ग्वालियर की यात्रा की थी। सिन्धिया के सैन्य दलो को अपने स्वामी के विरुद्ध कुछ शिकायतें थीं। उनका बहुसख्यक भाग मराठा वश का नहीं था और जब वे चले गए तो महाराजा ने अपनी सेना मे से पुरबिया तत्वो को निकालना शुरू कर दिया। इसलिए अफसरो और जवानो ने सोचा कि उनका निकाला जाना अब केवल समय का प्रश्न था। जिन मराठा लोगों मे उसका बडा विश्वास था वे भी अपने धार्मिक और जातीय भावनाओं के आकर्षण को रोके नहीं रख सकते थे। उन्हें यह बात अच्छी तरह याद थी कि उनके आदमियों ने उत्तरी भारत पर अपना आधिपत्य स्थापित किया था और यद्यपि दिल्ली के बादशाह की नाममात्र की सत्ता पर उन्होने कभी प्रश्न नहीं उठाया, परन्तु वह वस्तुत उनके हाथो मे वन्दी ही था। उनकी आखों मे सिन्धिया एक सन्देहास्पद खेल खेल रहा था। वे समझते थे कि चूकि सिन्धिया को अपनी अमलदारी पेशवा के अनुग्रह से मिली है, अत उसका यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह ईस्ट इण्डिया कम्पनी का समर्थन करने के बजाय नाना के झडे के नीचे आ जाए। तात्या ने जो थोडे दिन ग्वालियर मे बिताए थे, उन्हीं मे उसने समझ लिया था कि सिंहासन उलट देने के साधन यहा तैयार हैं। उसने समझ लिया कि केवल नगर के सामने आ जाने का तात्पर्य होगा नगर को ले लेना। परन्तु वह यह भी जानता था कि यदि सम्भव हो सके तो सिन्धिया को अपने स्वामी के उद्देश्य की पूर्ति मे मिला लेना उससे भी बहुत बडा कार्य होगा। विद्रोही लोगो की दृष्टि मे सिन्धिया और उसके दीवान दिनकर राव ईसाई ही थे, और कुछ नहीं परन्तु उस क्षेत्र का सबसे अधिक शक्तिशाली राजा यदि पेशवा की ओर हो जाता तो यह ब्रिटिश प्रतिष्ठा पर एक गहरी चोट होती और इस का प्रभाव भारत के दूसरे राजाओं पर भी पडे बिना नहीं रहता।

ग्वालियर बिना किसी आक्रमण के राव साहब के अधिकार मे आ गया। जब विद्रोहियों ने ग्वालियर की सीमा मे प्रवेश किया तो वहा मौजूद सिन्धिया के अफसरों ने विरोध की धमकी अवश्य दी, परन्तु कोई प्रतिरोध नहीं किया गया। सिन्धिया की नीति टाल मटोल के द्वारा समय प्राप्त करने की थी। वह समझता था कि ब्रिटिश सेना अपने शत्रुओ का पीछा करते आने मे देर न लगाएगी और तब तक यदि वह विद्रोहियों को बहलाता रहे तो उसे कोई चिन्ता नहीं होगी। दिनकर राव भी सहसा कोई कार्य करने के विरुद्ध था। राव साहब दिखावटी रूप से सिन्धिया के प्रशासन मे किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करना चाहता था। वह धन, सामग्री और अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुचने के लिए ग्वालियर राज्य-क्षेत्र से होकर एक निर्विरोध मार्ग चाहता था। परन्तु सिन्धिया के एक विश्वस्त अधिकारी ने उससे कह रखा था कि विद्रोही सेना की

बहुत बुरी दशा हो गई है और सिर्फ गोलियों की एक बौछार उसे तितर-बितर करने के लिए काफी होगी। दिनकर राव की सलाह के विरुद्ध सिन्धिया विद्रोहियो से लड़ने गया, परन्तु अपने युद्ध-प्रिय पूर्वजो की प्रतिभा उसने नहीं पाई थी और न उस उद्देश्य के प्रति, जिसका वह प्रतिनिधित्व करता था, उसके अनुगामियों की कोई सहानुभूति ही थी। विद्रोहियों ने दीन का एक ऊंचा नारा लगाया, जिसके उत्तर मे विरोधी सैन्य दलो ने भी उसी प्रकार का नारा लगाया और बिना किसी संकोच के उनके साथ भाई-चारे का बरताव किया और इस प्रकार ग्वालियर का पतन हुआ। महाराजा अपने रनवास की सलामती को देखने के लिए चल दिया। उसका मन्त्री उसे मार्ग मे मिल गया। दूसरे सरदार भी एक-एक करके उसके पीछे हो लिए। बैजाबाई के नेतृत्व में रानियो ने नरवर के गढ मे शरण ली। विद्रोही सब प्रकार के हिंसात्मक कार्यों से अलग रहे। शहर की भी लूट नहीं हुई। वे सब मुख्य सैनिक और असैनिक अधिकारी, जिन्होने वहीं रहने का निश्चय किया अपने पहले के स्थानो पर पक्के कर दिए गए। प्रशासन मे थोड़ा भी उलट-फेर नहीं किया गया, परन्तु सिन्धिया के द्वारा इकट्ठे किए गए खजाने सैन्य दलो का वेतन चुकाने मे प्रयुक्त किए गए। मेजर मैकफ़र्सन कहता है, "राव ने केवल मोहनघर के दीवान और बलवन्त राव के मकानो को जब्त किया और लूटा। उसने सिन्धिया के सैन्य दलो को तीन महीने का वेतन दिया, जो उनका चाहिए था और दो महीने का वेतन उन्हें उपदान के रूप मे भी दिया, इन सब का कुल योग ९ लाख रु० था। अपने सैन्य दलों को उसने करीब ७½ लाख रु० दिया। झासी की रानी को २०,००० रुपये मिले और बांदा के नवाब को ६०,००० रुपये। राव ने स्वयं १५,००० सोने की मुहरें लीं। ली गई सम्पूर्ण धन-राशि का हिसाब १९ लाख से कुछ कम था, जब कि डेढ लाख रुपये का कोई हिसाब ही नहीं था।" शासक वंश के प्रतिनिधियों को प्रसन्न करने की अपनी कोशिश मे राव साहब ने कोई कमी नही की। दुर्भाग्यवश सिन्धिया तो अपने स्थान को ही छोडकर भाग गया था। परन्तु बैजाबाई, जो कभी राज्य की वस्तुतः शासक रह चुकी थी, अब भी उसकी सीमा के अन्दर थी। उसे उसने दो पत्र लिखे। पहला पत्र इस प्रकार था, "हम यहां आज आये हैं। आने पर हमने आपकी और जयाजी राव की खोज की। हमारे आने से पूर्व ही आप चली गई थी। आपने यह अच्छा नहीं किया। जो होना था वह हो गया। अब आप यहां अवश्य आएं और चिमन राजा को अपने साथ लाएं।" इस पत्र का कोई उत्तर नहीं दिया गया। इसके बाद एक दूसरा पत्र भेजा गया जो इसी प्रकार समझौते की भावना से युक्त था। "यहां सब कुशल है। मेरा विचार है कि तुम्हारा यहां से जाना ठीक नहीं था। मैं तुम्हे पहले भी लिख चुका हूं, परन्तु उसका कोई मुझे उत्तर नहीं मिला। ऐसा नहीं होना चाहिए। मै इस पत्र को रामजी चौथे जमादार के द्वारा भेज रहा हूं। अवश्य आओ और अपने शासन के स्थान के भार को संभालो। ग्वालियर को लेने का मेरा इरादा नही है। मै सिर्फ एक बार मिलकर चले जाना चाहता हूं। यही मेरा उद्देश्य है। इसलिए यह आवश्यक है कि तुम आओ और इन्कार मत करो।"[५०]

---

५०. मैकफर्सन की रिपोर्ट मे इन पत्रो को पूरी तरह उद्धृत किया गया है। दूसरा

परन्तु बैजाबाई काफी परिपक्व थी और इतनी आसानी से जाल मे फसने वाली नहीं थी। उसने उचित समय पर दोनो पत्रो को सर राबर्ट हैमिल्टन के पास भेज दिया।

विद्रोहियो की इस प्रगल्भ चाल ने अग्रेज अधिकारियो को आश्चर्य मे डाल दिया। पहले तो सर रावर्ट हैमिल्टन इस बात पर विश्वास ही नहीं कर सका कि विद्रोही ग्वालियर के मार्ग मे थे। होम्स का कहना है कि "यह विचार उतना ही मौलिक और साहसिक था जितना कि वह जिसने अर्काट पर स्मरणीय कब्जे की प्रेरणा दी थी।" परन्तु इस साहसिक त्वराघात की योजना किसने बनाई? मैलेसन इसका श्रेय पूरी तरह रानी को देता है। होम्स के विचार मे यह कार्य तात्या का भी हो सकता है, क्योंकि उसमे साहस और मौलिकता की कमी नहीं थी। परन्तु यदि मैकफर्सन ठीक था, और उसे सर रावर्ट हैमिल्टन का समर्थन प्राप्त था, तो तात्या ने ग्वालियर की यात्रा कर कालपी के खाली करने की पहले से ही कल्पना कर रखी थी। यह तात्या ही था जिसने सिन्धिया के सैन्य दलो और उनके अफसरो से सम्पर्क स्थापित किया था और राव साहब को यह निश्चय दिला दिया था कि ग्वालियर आसानी से उनके हाथ मे आ जाएगा। यदि राव का वास्तविक रूप से गन्तव्य स्थान दक्षिण था तो वह ग्वालियर मे क्यों ठहरा, इसकी कोई व्याख्या नहीं की जा सकती। सिन्धिया के कोषाध्यक्ष अमरचन्द भाटिया के तत्परतापूर्ण सहयोग से उसने ग्वालियर के खजाने से उस सब धन को प्राप्त कर लिया, जो राज्य के प्रशासन के लिए रखा गया था और वहा से मिल सकता था। उसे सिन्धिया या बैजाबाई से समझौता होने की कोई आशा नहीं थी, भले ही वह वहा महीनों ठहरा रहता। देर होने से यह भय और था कि कहीं सर ह्यू रोज से एक बार फिर आमना-सामना न हो जाए। उसने सोचा कि यदि वह एक दम दक्षिण की ओर चल पडे तो सर ह्यू के हस्तक्षेप से पूर्व उसके दक्षिण पहुचने का कुछ न कुछ अवसर था और मराठा देश मे जो छिटपुट विद्रोह हुए थे, उनसे यह सकेत मिलता था कि उस प्रदेश मे एक साहसिक नेता अब भी एक विशाल अनुगामी-दल को आकर्षित कर सकता था।

परन्तु सर ह्यू रोज ने पीछा करने मे एक क्षण की भी देर नहीं की। ग्वालियर विद्रोहियो के हाथ मे पहली जून को आ गया था। उसने कालपी से ६ तारीख को प्रस्थान किया और वह अपने शक्तिशाली अभियानो से १६ तारीख को मुरार के पडोस मे पहुच गया। तत्काल उसने विद्रोहियो से युद्ध किया और आगरा-ग्वालियर सडक को विद्रोहियो से साफ कर दिया। १६ तारीख को ग्वालियर का युद्ध जीत लिया गया, २० ता० को किला ले लिया गया और महाराजा को मार्ग-रक्षको के साथ महल तक पहुचाया गया।

ग्वालियर के पतन के बाद एक ऐसा साहसिक और मृत्यु की भी अवज्ञा करने वाला कार्य किया गया, जो हमे मध्ययुगीन वीरता के सर्वोत्तम दिनो की याद दिलाता है। "तेरह आदमी, जिनमे सेना की टुकडी के चार सिपाही थे और नौ विलायती थे, और

पत्र फारेस्ट की ए हिस्ट्री आफ दि इण्डियन म्यूटिनी, जिल्द ३, पृ० २६५-६६ मे छपा है।

जिनके साथ दो स्त्रियां और एक बच्चा था, खाली किए गए किले से आगरा की ओर चले जा रहे थे। उन्होंने जान-बूझ कर संकल्प किया कि लौट कर वे किले में ही मरेंगे। जो सैन्य दल सिन्धिया का स्वागत करने के लिए बाहर आए थे, उन पर उन्होंने किले के परकोटे से पांच-छः गोलियां चलाईं। सिन्धिया और एजेंट जैसे ही जुलूस के साथ आगे बढ़े एक गोली बिल्कुल उनके सामने आकर गिरी। .... लेफ्टिनेंट रोज २५वीं बम्बई देशी पैदल सेना के सिपाहियो के एक समूह के साथ तथा शहर कोतवाल और पठान पुलिस के २० सिपाहियो की सहायता लेकर इन साहसिक आदमियों का विनाश करने के लिए गया। उन्होंने दीवालो के ऊपर से शहर मे अपने सोने और चादी के सिक्कों को तथा अन्य सम्पत्ति को फेंक दिया था और किले के एक आगे निकले हुए पच भुजाकार स्थान पर स्थिति ले ली, जिसके सामने ही एक तोप लगी हुई थी। तीसरी बार चलाई जाने पर वह तोप फट गई। रोज आगे बढ़ा। उन उन्मत्तो ने अपनी स्त्रियो और बच्चो को मार दिया। रोज के दल ने फिर उनमे से सात को मारा, परन्तु इससे पूर्व कि बाकी सब मारे जाते, उनमे से एक ने उसे गोली से उड़ा दिया।"

१७ जून को जब ब्रिग्रेडियर स्मिथ कोटा की सराय से ग्वालियर के विरुद्ध आगे बढा तो झासी की रानी की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के दो विभिन्न वर्णन हैं। मैकफर्सन लिखता है, "मेरा विचार है कि फूलबाग के समीप जिस ऊंची जगह पर तोपें रखी जाती हैं, वहीं झासी की रानी गिरी।" उसके नौकर का कहना है कि जब घुड़सवारों के आने की सूचना दी गई उस समय रानी बैठ कर शर्बत पी रही थी और ५वीं अनियमित सेना के ४०० सिपाही उसके समीप थे, उनमें से करीब ४० या ५० के वहां पहुंचले हीं लगभग १५ को छोड़कर शेष विद्रोही भाग गये। रानी का घोड़ा नहर को नहीं कूद सका। इसी समय उसके बगल मे गोली लगी और एक वक्र फलक वाली तलवार ने उसके सिर मे घाव किया, परन्तु रानी घोड़े पर चढ़ी चली गई। थोड़ी देर बाद वह गिर कर मर गई और एक समीप के बाग मे उसका दाह संस्कार किया गया।" सर राबर्ट हैमिल्टन, जिसने उस स्थान पर इस मामले की खोजबीन की, इसके सम्बन्ध मे कुछ विभिन्न विवरण देता है। वह लिखता है, "झासी बाई जिस ढंग से मारी गई, उससे एक ऐसा तथ्य सम्बद्ध है जो मेरी उन खोजो के, जो मैंने उस समय और उसी स्थान पर की, अनुकूल नहीं है। इस तथ्य की कि रानी मारी गई है कोई सूचना ब्रिग्रेडियर स्मिथ के शिवर में उस समय तक नहीं थी जब कि मेरे द्वारा उनको लिखे गए एक पत्र से उन्होने इस बात को जाना। जो कुछ मैं निश्चय कर सका हूं उसके अनुसार रानी की मृत्यु उस समय हुई जब वह प्रातः कुछ आदमियो के साथ, जिसमें राव साहब और तात्या भी थे, ऊंचाई से पीछा करने वालों को देख रही थी। रानी घोड़े पर सवार थी और उसके बिलकुल पास एक स्त्री (परिवार मे लम्बे अर्से से रहने वाली एक मुस्लिम स्त्री) थी, जो किसी अवसर पर भी उसका साथ नही छोडती थी। इन दोनो को गोली लगी और वे गिर गईं। रानी करीब २० मिनट तक जीवित रही। उसके बाद उसे फूलबाग ले जाया गया। राव साहब उसकी सेवा मे थे। इस घटना ने सरदारो को बिलकुल बेचैन कर दिया और इससे उन्हे बड़ा भय हुआ। शीघ्रता से शरीर के दाह संस्कार के लिए प्रबन्ध किया गया। फूलबाग और किले

के बीच की नदी के पास उनके मृत शरीर को एक पालकी मे रखकर लाया गया। यहां से उसे पालकी के द्वारा मन्दिर के पास एक बाग के बाडे के ऊपर से ले जाना असभव था, इसलिए सेवक उसे उठाकर उक्त बाडे के ऊपर से एक स्थान मे ले गए, जहा कुछ रमणीय विशाल वृक्षो के नीचे उसका दाह सस्कार किया गया। सस्कार किया ही जा चुका था कि घुडसवारों की ८ वीं सेना बाग और मन्दिर के बिलकुल समीप आ गई। यह कहा जाता है कि जो ६ या ७ आदमी भाग गये थे, काट डाले गए। यह स्पष्ट था कि दाह सस्कार मे विघ्न पडा था, क्योकि जब मै उस स्थान पर गया तो डा० क्रिस्टीसन ने अस्थियो के टुकडो को उठाया, जिससे सिद्ध होता था कि अस्थियो को चुनने की सामान्य विधि का पालन नहीं किया जा सका था।"[५१]

कुछ भी हो, रानी ने युद्ध-क्षेत्र मे एक सिपाही की मृत्यु प्राप्त की। नाना के वाद सम्भवत वही ऐसी थी, जिससे उसके शत्रु सबसे अधिक घृणा करते थे। झासी मे हुए ग़दर के लिए उसे उत्तरदायी ठहराया गया है, क्योंकि उसे अग्रेजों से वास्तविक शिकायत थी। ग़दर से पूर्व वहा के अधिकारी उसमे विश्वास रखते थे और मेजर अर्स्किन ने विद्रोह के आरम्भ के सम्बन्ध मे उसके द्वारा वर्णित स्वरूप को स्वीकार किया था। उन सब जिम्मेदार अधिकारियों को अति विश्वासी ठहराना और बिना नाम के एक बगाली के सुने-सुनाये साक्ष्य को तथा एक अर्ध-वर्ण की स्त्री की असम्भव कहानी को मान्यता देना वेकार ही होगा। परन्तु इन सानुग्रह प्राप्त गवाहो के साक्ष्य को भी पूरी तरह स्वीकार नहीं किया गया था। बगाली का साक्ष्य ग़दर करने वाले लोगो के साथ पूर्व कपट सन्धि के अभियोग का समर्थन नहीं करता, इसलिए उसे उस हद तक उपेक्षित कर दिया गया। श्रीमती मुटलो कहती है कि घेरे की पूर्वावस्था मे रानी ने किले के निवासियो को सहायता पहुचाई थी। किले मे खाद्य-सामग्री की कमी किसी के लिए भी एक रहस्य की वात नहीं हो सकती थी, क्योकि पहले दिन नौकरो को बाहर जाने और अन्दर आने की स्वतन्त्रता थी। रानी जैसी एक बुद्धिमान नारी के लिए (यह मान लिया गया है कि रानी बुद्धिमती थी) इस निष्कर्ष पर पहुचना कठिन न था कि भूल के कारण घेरे मे पडे लोगों को जल्दी या देर से आत्म-समर्पण करना ही पडेगा और उन्हें वाहर लाने के लिए अधिक प्रेरित करना विलकुल अनावश्यक होगा। परन्तु झासी के हत्याकाण्ड का वदला लिया जाना था और उसके लिए एक ऐसे व्यक्ति की खोज थी जिसके सिर पर दूसरों के दोष मढे जा सकें। अग्रेजो के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बनाए रखने के अपने सर्वोत्तम प्रयत्नो के बावजूद रानी को अग्रेजों की पीडाकारी कूटनीति के कारण विरोधी शिविर मे जाना पडा। के ने उसके विरुद्ध कही गई बुरी वातो को मिथ्या कह कर उनकी उपेक्षा की है।[५२] परन्तु रानी की मृत्यु के

---

५१ फारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशन्स, सख्या ४२६३, ३१ दिसम्बर, १८५८

५२. "उसके बारे मे बुरी बाते कही जाती थीं, क्योंकि हमारे यहा यह रिवाज है कि "जिसको तुमने चोट पहुचाई है, उससे घृणा करो"—एक देशी शासक का राज्य ले लेना और फिर गद्दी से उतारे गए शासक या उसके होने वाले उत्तराधिकारी को गालिया देना। यह कहा जाता था कि दूसरों के प्रभाव मे रानी केवल एक वालिका सी हो जाती थी और

काफी समय बाद आयरलैण्ड के निवासी फारेस्ट ने बिना किसी औचित्य के उसके यश को कलंकित करना चाहा है।[५३] रानी के शत्रुओ ने उसकी जो निन्दा की है उसके स्थान पर यदि उसके देशवासियो की उसके प्रति अगाध श्रद्धा को ध्यान में रखा जाए, तो पता चलेगा कि रानी का गौरव अक्षुण्ण है और वह निर्दोष सिद्ध हुई है। हजारों सरल ग्रामीण आज भी उस स्त्री की वीरता और गुणो के गीत गाते हैं, जिसने अपने बुन्देल शत्रुओ से अपनी रक्षा की और जो अंग्रेजो की गोली से मरी।

विजेताओं ने अपनी जीत को भारत के प्रत्येक मुख्य सैनिक-स्थान मे राजकीय सलामी मे तोपें दागकर एक उपयुक्त रूप मे मनाया। परन्तु पराजितो को चैन नहीं था। जनरल नेपियर ने उनका पीछा किया और पहले गोलाबारी के युद्ध से और फिर घुड़सवारो के अभियान से उन्हें २८ जून को जावरा अलीपुर मे हराया। २६ तारीख को सर ह्यू रोज ने अस्वस्थता के कारण कमान छोड़ दी और उनका कार्य-भार जनरल नेपियर ने सभाला। तात्या और राव साहब चम्बल को पार कर राजपूताना भाग गए। उनकी बन्दूकें खो चुकी थीं, उनके अनुगामी भी बहुत थोड़े थे, परन्तु उन्होंने पराजय स्वीकार नहीं की। उनका उत्साह अब भी भग नहीं हुआ था।

वह बहुत असयमी थी। वह बालिका नहीं थी यह उसके वार्तालाप से स्पष्ट था और उसके असयम की बात बिल्कुल मिथ्या मालूम पडती है।" के, ए हिस्ट्री आफ दि सिपाय वार, जिल्द ३, पृ० ३६१-६२

५३. फारेस्ट कहता है, "झासी की रानी उत्साही, साहसिक और अनैतिक चरित्र की स्त्री थी।" ए हिस्ट्री आफ दि इण्डियन म्यूटिनी, जिल्द ३, पृ० २८२। ये विशेषण मैकफर्सन की रिपोर्ट से लिए गए है, परन्तु मैकफर्सन अपने युग के आवेशो और पूर्वाग्रहों का शिकार था। उसकी रिपोर्ट सन् १८५८ में लिखी गई थी और केवल अफसरो की आखो मे ही उसका उपयोग था। फारेस्ट ने रानी की मृत्यु से आधी शताब्दी से भी अधिक बाद लिखा और उसने यह देख लिया कि मेजर माल्कम के अनुसार उसका चरित्र अत्यन्त ऊचा था और झासी मे प्रत्येक व्यक्ति उसका बहुत आदर करता था। अतः फारेस्ट को मैकफर्सन की रिपोर्ट मे एक भूले भटके वाक्य से पथभ्रष्ट नहीं हो जाना चाहिए था। डा० लो भी रानी के सम्बन्ध मे लिखते समय गाली भरे शब्दो का प्रयोग करता है। परन्तु वह इस धारणा मे बह गया था कि झासी के हत्याकाण्ड के लिए रानी ही उत्तरदायी थी।

परिशिष्ट

विदेशी गुप्त परामर्श, सख्या ३५३, ३१ जुनाई, १८५७ सख्या ए, १८५७

प्रेषक,

मेजर डबल्यू० सी० अर्स्किन, कमिश्नर, सागर डिवीजन

सेवा मे,

सी० बीडन एस्क्वायर, सचिव, भारत सरकार

गृह-विभाग, फोर्ट विलियम,

जबलपुर, २ जुलाई, १८५७

गृह विभाग

महोदय,

गत रात दो हरकारे मेरे पास झासी की रानी के पत्र अपनी छडियो मे छिपा कर लाए।

दूसरा—हाशिए मे रानी के द्वारा भेजे गए जिन पत्रों को मैंने निर्दिष्ट किया है उनका स्वतन्त्र अनुवाद और मेरे द्वारा रानी को भेजे गए उत्तर को मैं इस पत्र के साथ सलग्न कर रहा हू।

रानी का पत्र दिनाक १२ जून	ए
रानी का पत्र दिनाक १४ जून	वी
घटनाओ का विवरण	सी
चौकियों से खवरे	डी

तीसरा—इनसे यह विदित होगा की रानी के स्वय के वर्णन के अनुसार रानी ने गदर करने वालो और विद्रोहियो को किसी प्रकार की सहायता नहीं दी, वल्कि इसके विपरीत उसे स्वय लूटा गया और जिले का प्रभार लेने को मजवूर किया गया। यह सव उससे मेल खाता है, जो मैंने दूसरे स्रोतो से सुना है।

चौथा—रानी धन और सैन्य दलो के कारण व्यवस्था वनाए रखने मे असमर्थता प्रकट करती है और सहायता के लिए प्रार्थना करती है।

पाचवा—चूकि इस समय अराजकता की खेदजनक स्थिति को, जो विद्यमान है, दवाने और व्यवस्था स्थापित करने के लिए असैनिक अधिकारी और सैन्यदल भेजने के कोई साधन मेरे पास नहीं हैं अत मैंने रानी से कह दिया है कि वह मालगुजारी वसूल करे, पुलिस की भर्ती करे और जो कुछ भी उसकी शक्ति मे हो पुन व्यवस्था स्थापित करने के लिए करे। इसमे जो व्यय होगा उसका हिसाव

उससे उस समय तय कर लिया जायगा जब अधिकारी झासी पहुंचेंगे और उसके साथ उदारता का बर्ताव किया जायगा। मैंने उसे एक घोषणा भी (जिसका अनुवाद मैं संलग्न कर रहा हूं) निकलवाने के लिए भेजी है, जिसमे जिलो के सब निवासियो से कहा गया है कि वे ब्रिटिश सरकार के रिवाज के अनुसार रानी की आज्ञा का पालन करें, जो कुछ समय तक उचित प्रबन्ध करेगी।

छठा—"डी" अंकित पत्र से मुझे यह जानकर दुःख हुआ है कि रानी ने यह सुना है कि जालौन जिले के उरई सैनिक-स्थान मे वध और लूट हुई है, परन्तु कोई ब्योरा नहीं दिया गया है।

सातवां—जब सरकार के पास भेजने योग्य अतिरिक्त सैन्य दल हो तो कानपुर से जालौन और झासी के जिलो पर दुबारा अधिकार कर लेना चाहिए और मिर्जापुर होते हुए यहां तथा सागर मे यूरोपीय सैन्य दल भेज देने चाहिए।

आठवा—जालौन के मामलो के सम्बन्ध मे मै सम्भवतः कुछ थोड़े दिनो बाद अपना प्रतिवेदन भेज सकूंगा।

नवा—जो हरकारे रानी के पत्रो को लाए हैं, अपनी जान के खतरे पर आए हैं। झासी और सागर के बीच के देश के जंगली भाग मे यात्रा करते हुए उन्होने उसे अराजकता की स्थिति में पाया है, जहां प्रत्येक व्यक्ति अपने पड़ोसी को मारने के लिए तैयार है। उनके कपड़े और जो कुछ थोड़ा माल उनके पास था, वह सब लूट लिया गया था। मैंने उनमे से हर एक को ३० रुपये इनाम मे दिए हैं और रकम का अधिकतर भाग झासी मे हुंडी के रूप मे दिया है। मैंने उन्हे वचन दिया है कि यदि उन्होने मेरा पत्र सुरक्षापूर्वक रानी को दे दिया तो उन्हे २० रुपये और मिलेंगे।

दसवा—पिछले मास की २८ तारीख को दोपहर बाद नागौद मे करीब ६० कैदियो की एक टोली जेल से निकल भागी। अफसरो के बंगलो की तरफ भाग कर उसने उनमे आग लगानी चाही। उसे यह आशा थी कि ५०वी सेना के सिपाही उनकी सहायता करेंगे, परन्तु उनका यह अनुमान गलत था। सिपाही और पुलिस के लोग बाहर निकले और कैदियों मे से १४ को गोलियों से मार डाला और सम्भवतः शेष सब को पकड लिया। सिर्फ ८ बच कर भाग गए और इनमे भी केवल एक ही महत्व का कैदी था। इस बात की जांच की जा रही है कि किस प्रकार कैदी जेल से बाहर निकल गए।

ग्यारहवां—जिन लोगो ने अपराधियो को पकड़ा या गोली से मारा, उनमे से योग्यतम को दिए जाने के लिए मैंने कुल मिलाकर ५०० रु० के पारितोषिको की आज्ञा दे दी है।

बारहवां—ललितपुर के अधिकारियो के सम्बन्ध में मुझे अधिक कोई सूचना नहीं मिली है।

जबलपुर
२ जुलाई, १८५७

आपका, इत्यादि
हस्ताक्षर, डब्ल्यू० सी० अर्स्किन
कमिश्नर

परामर्श संख्या ३५४

ए

सागर डिवीजन के कमिश्नर और एजेंट लेफ्टिनेंट-गवर्नर के पते पर झासी की रानी के एक खरीते, दिनाक (सम्भावित) १२ जून, १८५७, का अनुवाद ।

शिष्टाचार के बाद । रानी कहती है कि झासी-स्थित सरकारी सेनाओ ने अपनी विश्वासहीनता, निर्दयता और हिंसात्मकता के कारण सब यूरोपीय असैनिक और सैनिक अधिकारियो को तथा क्लर्कों और उनके परिवारो को मार दिया है और चूकि रानी के पास बन्दूको की कमी थी, इसलिए वह उनकी सहायना नहीं कर सकी। रानी के पास उस समय केवल १०० या ५० आदमी थे, जो उसके घर की रक्षा करने मे लगे थे । इसलिए रानी उनकी कोई सहायता नहीं कर सकी, जिसका उसको भारी खेद है । विद्रोहियों ने बाद मे उसके और सेवको के साथ भी अत्यन्त हिंसात्मक रूप से व्यवहार किया और उससे जबर्दस्ती एक बडी धन-राशि वसूल की । विद्रोहियों ने उससे कहा कि चूकि रियासत के उत्तराधिकार का उसे अधिकार था इसलिए प्रबन्ध उसे अपने हाथ मे लेना चाहिए क्योंकि सिपाही दिल्ली मे बादशाह के पास जा रहे थे ।

रानी कहती है कि वह पूरी तरह अग्रेज अधिकारियो पर ही आश्रित है, जिन पर इस समय इतनी विपत्ति आ पडी है । सिपाही समझते हैं कि रानी इस समय बिल्कुल असहाय है, इसलिए उन्होने झासी के तहसीलदार, डिप्टी कमिश्नर के न्यायिक सरिश्तेदारो और सुपिरिन्टेंडेंट के न्यायालयो द्वारा उसके पास इस आशय के सन्देश भिजवाए हैं कि यदि उसने उनकी प्रार्थनाओ के अनुसार काम करने मे कुछ भी आनाकानी की तो उसका महल तोपो से उडा दिया जाएगा । अपनी स्थिति को ध्यान मे रखते हुए रानी को बाध्य होकर उनकी सब प्रार्थनाए माननी पडी । इस प्रकार रानी को बडी खीज सहन करनी पडी है । अपने जीवन और सम्मान को बचाने के लिए रानी को सम्पत्ति और नकद रुपयो के रूप में प्रभूत धन-राशि देनी पडी है ।

रानी ने यह जानकर कि सम्पूर्ण जिले मे कोई अग्रेज अधिकारी नही बचा है, और आदमियों और जिले की भलाई और सुरक्षा को ध्यान मे रखते हुए पुलिस इत्यादि के रूप मे सम्पूर्ण छोटे सरकारी अभिकरणों को इस आशय के परवाने भेजे हैं कि वे अपने-अपने स्थानो पर रह कर अपने कर्तव्यो का सदा की भाति पालन करते रहें । रानी को अपने और निवासियो के जीवन का सतत भय बना रहता है । यह उचित था कि इस सबकी सूचना शीघ्र ही भेज दी जाती, परन्तु विद्रोहियो ने इसके लिए रानी को अवसर नहीं दिया । आज चूकि वह दिल्ली की ओर चले गए हैं, इसलिए रानी ने उसे शीघ्रता-पूर्वक लिखा है ।

बी

सागर डिवीजन के कमिश्नर और एजेंट लेफ्टिनेंट-गवर्नर के नाम झासी की रानी के खरीते, दिनाक १४ जून, १८५७ का अनुवाद ।

शिष्टाचार के बाद । रानी कहती है कि १२ जून को उसने झासी मे हुई भयानक घटनाओ के सम्बन्ध मे कमिश्नर को लिखा और खत को गगाधर डागे और भवानी हरकारा

के द्वारा भेजा। रानी को अब भी झांसी के यूरोपीयो के भाग्य पर खेद है और वह यह भली प्रकार जानती है कि इससे अधिक क्रूरता अन्य किसी स्थान पर नहीं हुई होगी। इनका एक विस्तृत विवरण खरीते से संलग्न कर दिया है।

इसके बाद की खबर यह है कि झासी के अधीन सब इलाको मे सरदारों ने गाडियो को अपने अधिकार मे कर लिया है और दूसरे लोग देश को लूट रहे हैं। यह रानी की शक्ति से बिल्कुल परे है कि वह जिले की सुरक्षा के लिए प्रबन्ध कर सके। इसके लिए धन की आवश्यकता है जो उसके पास नहीं है। महाजन भी इस प्रकार के कठिन समय मे उसे कर्ज देने को तैयार नही हैं। इस समय तक रानी ने किसी प्रकार अपनी निजी सम्पत्ति को बेच कर और बडी असुविधापूर्वक शहर को लूटे जाने से बचाया है और भूतपूर्व सरकार के स्वरूप को बनाए रखा है। नगर और मुफस्सिल चौकियों की रक्षा के लिए उसने बहुत-से आदमियो को नियुक्त किया है, परन्तु एक सक्षम सरकारी सेना और निधि के बिना वह आगे डटे रहना अशक्य समझती है। इसलिए उसने जिले की अवस्था के सम्बन्ध मे कुछ टिप्पणिया लिखी हैं कि शीघ्र आदेशों की कृपा की जाएगी, जिनका वह पालन अपनी पूरी शक्ति से करवाएगी।

सी

५ जून सन् १८५७ को दोपहर बाद करीब एक बजे झासी मे हुई घटनाओ के विवरण का अनुवाद। एकदम करीब ५० या ६० सिपाहियो ने विद्रोह कर दिया और उन्होने बारूदखाने और सरकारी खजाने पर अधिकार कर लिया। कैप्टन स्कीन के बंगले की तरफ भी उन्होने अपनी बन्दूको से गोलिया बरसाना शुरू किया। जब कैप्टन स्कीन को इस मामले का पता चला तो वे स्वय उनकी पत्नी और बच्चे, कैप्टन गोर्डन के साथ शहर मे गए और उसकी रक्षा के लिए प्रबन्ध किया और फिर वे किले मे चले गए। इसके थोडी देर बाद दूसरे भद्र पुरुष भी किले मे गए, जिसकी रक्षा उन्होने एक छोटी सेना से की और रानी ने अपने अंग-रक्षक दल मे से कुछ थोड़े सिपाही उनकी सहायता के लिए किले मे भेजे।

६ जून को दोपहर तक हर चीज पहले दिन की तरह ही रही, अर्थात् वे सिपाही जो विद्रोही हो गए थे वैसे ही बने रहे और शेष सिपाही तथा सवार शान्त रहे। बारह बजे के बाद सब विद्रोही हो गए और आपस मे मिल गए। उन्होने अपने सब अफसरो को मार डाला और उनके बगलो को तथा सब सार्वजनिक दफतरो को अभिलेखो सहित जला डाला। सब कुछ नष्ट कर दिया गया और लूट लिया गया। फिर विद्रोही जेल की ओर बढे और सब कैदियों को मुक्त कर दिया। जेल का दरोगा गदर करने वालो से मिल गया और फिर वे सब शहर की ओर गए और किले को घेर लिया, परन्तु चूंकि अंग्रेज भद्र पुरुषो ने किले के दरवाजे बन्द कर दिए थे और किले की दीवारो से वे बड़ी वीरतापूर्वक गोली चला रहे थे, इसलिए गदर करने वाले लोग किले के दरवाजे नहीं खोल सके।

७ जून को विद्रोहियो ने किले की दीवारो पर से गोलाबारी करना शुरू किया और इससे शहर के आदमी बहुत डर गये, विशेषतः तब, जब ४ या ५ छर्रे शहर मे आकर गिरे परन्तु सर्वत्र शान्ति रही।

८ जून को ग़दर करने वाले लोगों ने किले पर आक्रमण करने की योजना बनाई। उन्होंने रानी के १५० आदमियो को भी जबर्दस्ती अपने मे मिला लिया और सबने दोपहर बाद तीन बजे तक चढ़ाई जारी रखी। इस बीच अंग्रेज भद्र पुरुष जो सख्या मे इतने कम थे, सदा की भाति उत्साह से किले की रक्षा करते रहे। उन्होंने अपनी बन्दूकों से अनेक विद्रोहियो को मार दिया और घायल कर दिया। इसके बाद कैप्टन गोर्डन को एक बन्दूक की गोली लगी और वह मर गया। तब कैप्टन स्कीन अपनी पत्नी, बच्चों और दूसरे भद्र पुरुषो के साथ किले से नीचे उतरा और उसने शहर के बाहर बच कर जाने का इरादा किया, परन्तु निर्दय विद्रोहियों ने उसके इस उद्देश्य को पूरा नहीं होने दिया। विद्रोहियो ने उन सबको इस निर्दय ढग से मारा कि सर्वशक्तिमान ईश्वर उन्हें इसके लिए अवश्य दण्ड देगा। उन्होंने नगर मे भी कुछ लोगों को लूटा और जो कुछ उसके मन मे आया वही किया। रानी ने बड़ी मुश्किल से अपने प्राण बचाए, परन्तु उसका धन और सम्पत्ति लूट ली गई। रानी इस सबकी खबर कमिश्नर या एजेंट को पहले नहीं भेज सकी। इसका कारण यह था कि विद्रोहियो ने सब डाक का लाना-ले जाना बन्द करवा रखा था तथा झासी के चारों ओर मार्गो पर रक्षक नियत कर दिए गए थे जो हर किसी को बाहर जाने से रोक देते थे।

११ जून की रात को वे इस स्थान को छोड कर चले गए और यह आशा है कि वे अपने दुष्कृत्यों के लिए नरक मे जाएगे।

डी

सागर डिवीज़न के कमिश्नर की ओर से झासी की रानी को भेजे गये दिनाक २ जुलाई, १८५७ के एक खरीते का अनुवाद।

शिष्टाचार के बाद। आप के हरकारे भवानी और गंगाधर के द्वारा प्रेषित आपके १२ और १४ जून के पत्र मुझे मिल गए हैं और उनके विषय को मैंने समझ लिया है।

मुझे आशा है कि मैं बहुत शीघ्र झासी मे पुन व्यवस्था स्थापित करने के लिए अधिकारी और सैन्य दल भेज सकूगा। शीघ्र ही यूरोपीय सैन्य दल ग्रामीण क्षेत्र मे तथा उपद्रवग्रस्त जिलों में भेजे जा रहे हैं। परन्तु मेरी आप से प्रार्थना है कि जब तक नया सुपरिंटेंडेंट झासी मे न आए, आप ब्रिटिश सरकार की ओर से जिले का प्रबन्ध करें। आप ही मालगुजारी वसूल करें और जितनी आवश्यकता हो पुलिस की भर्ती करें। दूसरे उचित प्रबन्ध भी आप करें जिनके सम्बन्ध मे आप को विश्वास हो कि सरकार उन्हें स्वीकार कर लेगी। जब सुपरिंटेंडेंट आकर आप से भार सभालेगा तो वह न केवल आप को कष्ट नहीं देगा बल्कि आप के सब नुकसान और व्यय के लिए आपको धन देगा और आप के साथ उदारता का बरताव करेगा। मैं अपनी मुद्रा और हस्ताक्षर सहित एक घोषणा फारसी और हिन्दी दोनो मे आप के पास भेज रहा हू, इस सूचना के साथ कि आगे आदेश प्राप्त होने के समय तक, आप ब्रिटिश सरकार के नाम से जिले का शासन करें और सब लोगो से यह कहना है कि वे आप को मालगुजारी दें और आप की आज्ञा का पालन करें।

आप मेरे इस वचन पर निर्भर कर सकती हैं कि शीघ्र ही भारत के सब भागों मे

व्यवस्था स्थापित हो जाएगी, क्योकि ग़दर मे भाग लेने वाले और विद्रोही लोग जो दिल्ली मे इकट्ठे हुए थे, करीब-करीब सब या तो युद्ध मे मार डाले गए हैं, या ग्रामीणो द्वारा लूट लिए गए हैं और मार दिए गए हैं, या विभिन्न स्थानो मे शासनीय अधिकारियो द्वारा फासी पर चढा दिए गए हैं ।

दिल्ली के लेने की खबर सुनकर जो घोषणा मैने निकाली थी, उसकी एक प्रति मै आपके लिए संलग्न कर रहा हूं ।

बादशाह और अन्य बड़े आदमी, जिन्होने ये उपद्रव करवाये, उन्होने अपने लाभ की आशा से ही यह सब किया, न कि आपके या देश के आदमियो के लाभ के लिए । परन्तु अब वे हथकड़ियो मे बन्द हैं और जिन दुष्ट आदमियो को अभी कुछ थोड़े समय और जीने की अनुमति दे दी गई है वे अपने मूर्ख और दुष्ट चाल-चलन के लिए बुरी तरह पश्चाताप कर रहे हैं ।

गत मास की २३ तारीख को मैने आप को जो पत्र लिखा था वह आपको नहीं मिल सका होगा । उसकी एक प्रतिलिपि मे आपको भेज रहा हूं ।

झांसी के लिए घोषणा

झासी के सरकारी जिले के जो लोग हैं या जो वहा निवास करते हैं, उन्हे विदित हो कि सिपाहियों के बुरे चाल-चलन के कारण कुछ मूल्यवान जानें चली गई हैं और सम्पत्ति भी नष्ट हुई है, परन्तु जिन स्थानो पर उपद्रव हुए हैं वहां बलिष्ठ और शक्तिशाली ब्रिटिश सरकार हजारो यूरोपीय सिपाहियों को भेज रही है और झांसी मे व्यवस्था कायम करने के लिए शीघ्र ही प्रबन्ध किया जाएगा ।

जब तक अधिकारी और सैन्य दल झांसी मे नहीं पहुंचते, रानी ही ब्रिटिश सरकार के नाम से तथा ब्रिटिश सरकार के रिवाज के अनुसार शासन करेगी । मेरा हर छोटे-बड़े से कहना है कि वह रानी की आज्ञा का पालन करे और सरकारी मालगुजारी उसे दे । इसके लिए उसे मान्यता दी जाएगी ।

अंग्रेजी सेना ने दिल्ली शहर पर फिर कब्जा कर लिया है और हजारो विद्रोहियो को मार दिया है । उसे जहां कहीं विद्रोही मिलेंगे वे फासी पर चढा दिए जाएंगे या गोली से उड़ा दिए जाएंगे ।

परामर्श संख्या ३५५

संख्या ३०३२, १८५७

प्रेषक, जी० एफ० एडमन्स्टन एस्क्वायर, सचिव, भारतसरकार

सेवा में, डब्ल्यू० सी० अर्स्किन, कमिश्नर, सागर और नर्मदा राज्य-क्षेत्र

विदेश विभाग, दिनांक, फोर्ट विलियम, २३ जुलाई, १८५७

महोदय,

आपके इस मास की २ तारीख के पत्र संख्या ए के उत्तर में, जिसमें, आपने झांसी की रानी के दो पत्रो का अनुवाद भेजा था, मुझे आपको यह अवगत कराने का आदेश दिया गया है कि सपरिषद-गवर्नर-जनरल पाच सौ रुपए के उन इनामो को अनुमोदित और

स्वीकृत करते हैं जिन्हें आपने नागौद जेल से भागने का प्रयत्न करने वाले अपराधियो को मारने या पकडने वाले योग्यतम आदमियो को दिए जाने का अधिकार दिया है।

२ रानी के बारे मे मुझे यह कहना है कि यद्यपि सपरिषद-गवर्नर-जनरल आपको, आपकी परिस्थितियो को देखते हुए, रानी के कार्यो और भावो के सम्बन्ध मे उसके विवरण को स्वीकार करने के लिए और ब्रिटिश सरकार के ओर से झासी राज्य-क्षेत्र के प्रबन्ध को उसे सौंप देने के लिए, दोष नहीं देते, परन्तु यदि उसका उपर्युक्त विवरण झूठा सिद्ध हुआ तो यह परिस्थिति रानी को बचा नहीं सकेगी। सरकार को मेजर एलिस ने जो विवरण दिया है, उससे यह मालूम पडता है कि रानी ने ग़दर करने वालो और विद्रोहियो को अवश्य सहायता दी और यह भी कि उसने उन्हें बन्दूकें और आदमी भी दिए।

फोर्ट विलियम, आपका, इत्यादि

२३ जुलाई, १८५७ हस्ताक्षर जी० एफ० एडमन्स्टन

भारत सरकार के सचिव

परामर्श सख्या १७९

सख्या ३१७

इलेक्ट्रिक टेलीग्राफ द्वारा प्राप्त शासकीय सन्देश की प्रतिलिपि

प्रेषक

मेजर आर० आर० डब्ल्यू० एलिस, बुन्देलखण्ड और रीवा के पोलिटिकल असिस्टेंट

नागौद, २६ जून, मिर्जापुर होकर, २९ जून, सोमवार, रात्रि के ८ बजकर २५ मिनट

सेवा में

भारत सरकार के सचिव, कलकत्ता

(शब्द ६४९ एस० आर०)

एक मुस्लिम सवार और भगवानदास देशी सर्वेक्षण विभाग के दो खलासियों तथा मुहम्मद इस्माइल देशी सर्वेक्षण विभाग के एक खलासी के साक्ष्य पर आधारित झासी हत्याकाण्ड के विवरण। ये चारों व्यक्ति अग्रेज भद्र पुरुषों के साथ एक किले मे बन्द कर दिए गए थे और इसी महीने की १० तारीख को जब वे वहा से मुक्त हुए तो वे महोबा मे मेरे पास आये और उन्होंने मुझे जो कुछ हुआ था, उसका हाल सुनाया। मैंने इन आदमियों को कलक्टर, श्री केन के पास भेज दिया, जिन्होंने इनकी जाच की। कुछ समय पूर्व से भद्र पुरुष रात तो किले मे बिताया करते थे और दिन मे अपने बगलो मे आ जाया करते थे। कैप्टन बर्गेस और उनका विभाग किले के अन्दर अपना तम्बू डाले हुए थे और हर एक चीज इस प्रकार तैयार रखी जा रही थी कि जब भी अवसर आए शीघ्रता से किले मे पीछे हट कर जाया जा सके। ४ तारीख की सन्ध्या को ऐसा अवसर आ गया। कुछ

थोड़े-से लोग उस जगह से बिल्कुल बच कर भाग गए। एक भद्र पुरुष जिसका नाम पता नहीं, बरुआ सागर पहुंचा, जहा नहर विभाग के साहिव राय नामक एक देशी सर्वेक्षक से मिलकर उसने उसे अपनी घड़ी और घोड़ा दिया और उससे एक हिन्दुस्तानी पोशाक लेकर पैदल ही भाग निकला। वह मुश्किल से ही आखो से ओझल हुआ होगा कि दो सवार तेजी से उसका पीछा करते हुए वहां आये और उसके घोड़े को पहचान लिया। उन्होने साहिव राय और थानेदार को वन्दी बनाया और झांसी की ओर वापस चल पडे। इन लोगो के वारे मे अन्तिम खवर जिस समय की है, उस समय वे झासी मे ही थे। लेफ्टिनेंट टर्नबुल इतना भाग्यवान नहीं था कि वह किले मे प्रवेश कर सकता और अपने साथियो से मिल सकता। वह एक वड़े पेड़ पर चढ गया। परन्तु उसे देख लिया गया और पेड़ पर ही उसे गोली से मार दिया गया। ४ तारीख की शाम से लेकर ८ तारीख के प्रातःकाल तक किले मे वन्द भद्र पुरुषो ने अपनी स्थिति को ठीक रखा। महिलाओ ने उनके लिए खाना वनाने मे उनकी सहायता की, उनके लिए अल्पाहार भेजे, उनकी गोलियां निकालीं। उन सब की संख्या कुल मिलाकर ५५ थी, जिनमे महिलाएं और वच्चे भी शामिल थे। खाद्य-सामग्री के अभाव से उनकी अवस्था वहुत बुरी हो गई। सब दरवाजो के पीछे उन्होने पत्थरो के ऊंचे ढेर अपनी शक्ति को वढ़ाने के लिए इकट्ठे कर रखे थे। वे अपनी रक्षा इस प्रकार करते रहे। एक तोप जो दरवाजो के वहुत अधिक समीप ला दी गई थी, छोड़ दी गई। रात मे इसी तोप मे रस्सी वाधकर विद्रोहियों ने इस पर पुनः अधिकार कर दिया। लेफ्टिनेंट पोविस पहला व्यक्ति था जो किले मे मारा गया। उसकी मृत्यु इस प्रकार हुई : कैप्टन वर्गेस की सेवा मे दो आदमी, जो भाई थे, नौकर थे। उनमे से एक ने, जो कैप्टन वर्गेस का जमादार था, घोषणा की कि वे दोनो वाहर जाएंगे। उनसे कहा गया कि यदि वे ऐसा करेंगे तो उन्हे गोली से मार दिया जायगा। परन्तु उन्होने कहा कि किले में वन्द रह कर भूखो मरने से तो यही अच्छा है कि गोली खा कर मर जाएं। इसलिए उन्होने रस्सी के वन्धनो को खोलना शुरू किया। इनमे से एक को तत्काल गोली से मार दिया गया। दूसरा लेफ्टिनेंट पोविस की ओर मुड़ा जो उस समय उसके पास थे और उसने उन्हें तलवार से काट दिया। इस दूसरे व्यक्ति को भी कैप्टन वर्गेस ने सीधे गोली से उड़ा दिया। इनके अतिरिक्त अन्य जो व्यक्ति किले के अन्दर मरा, वह कैप्टन वर्गेस ही थे। मुझसे कहा गया है कि उनके सिर पर गोली लगी और उससे पूर्व वे कम से कम २५ लोगो को मार चुके थे। सव देशी लोग कैप्टन वर्गेस की एक कुशल निशानेवाज के रूप मे वड़ी प्रशंसा करते थे। विद्रोहियो ने रानी को मजबूर करके जवर्दस्ती वन्दूकों और हाथियो की सहायता ली और दो दरवाजो मे होकर प्रवेश करने मे सफल हो गए। उन्होने भद्र-पुरुषो को वचन दिया कि यदि वे अपने हथियार डाल देंगे और चुपचाप आत्मसमर्पण कर देंगे, तो उनके प्राण वच जाएंगे। भद्र पुरुषो ने अभाग्यवश उनके वचनो पर विश्वास किया और वाहर निकल आए। कुछ पेड़ो के वीच मे उन्हे एक लम्वी पक्ति मे वांधा गया और थोड़ी देर के परामर्श के वाद उनके सिर काट डाले गए। जिन स्त्रियो के साथ वच्चे थे, उनकी आंखो के सामने उनके वच्चो को दो भागो मे चीर दिया गया। ऐसा लगता है कि सवारो ने इन नृशंस कृत्यो मे मुख्य भाग लिया। यह ८ तारीख को दोपहर वाद हुआ।

कलकत्ता
इलेक्ट्रिक टेलीग्राफ कार्यालय,
३ जून, १८५७
प्रेषित दोपहर बाद ३ बज कर ५० मिनट पर

(ह०) डी० करशोफ, सार्जेंट
सहायक ओवरसियर
बुन्देलखण्ड सिंचाई विभाग

परामर्श सख्या २६६

विदेशी राजनीतिक परामर्श, सख्या २६६, ३० दिसम्बर, १८५६ (अनुपूरक)

मध्यवर्ती भारत के एजेंट गवर्नर-जनरल को प्रेषित झासी की रानी के एक खरीते, दिनाक १४ जामदि-उल-अव्वल ए० एच० १२७४ तदनुसार १ जनवरी, १८५८ का अनुवाद।

शिष्टाचार के बाद। भारत से आपकी अनुपस्थिति के समय जो आश्चर्यजनक और अप्रत्याशित घटनाए हुई हैं, उनका विवरण देना एक पीडाजनक कार्य है। जो कष्ट और कठिनाइया इस कथन मे मुझे सहन करनी पडी हैं, उनका मैं वर्णन नहीं कर सकती। भारत मे आपके दुबारा लौट आने से मुझे नया जीवन मिला है। मैं इस अवसर पर अपनी कहानी का सक्षिप्त लेखा आपकी सेवा मे भेजती हू। उस समय जब कि अंग्रेजी सेनाओं ने इस स्थान पर गदर किया और मेरी सम्पति की लूट की और जब दतिया और ओरछा के सरदारो ने बल-प्रयोग और लूट-पाट शुरू की तो मैंने झटपट अग्रेज अफसरो को इस सम्बन्ध मे लिखा, जिनके नाम हाशिए मे अकित हैं। मैंने इन अधिकारियो को देश की स्थिति के सम्बन्ध मे विस्तृत सूचना दी। इन पत्रो के कुछ वाहको का कोई पता नहीं चला, कुछ मार्ग मे लूट लिए जाने के कारण अपने गन्तव्य स्थान पर न जा सके और वापस झांसी लौट आए। जो आगरा भेजे गए थे, वे यह कहते हुए वापस आए कि वे पत्रो को किले के अदर एक भिश्ती के द्वारा भिजवा आए थे और वे वहा उत्तर के लिए इसलिए नहीं ठहरे कि उन्हें अपने जीवन का भय था। मेजर एलिस ने मुझे सूचना दी कि मेरे पत्र उस अधिकारी को दे दिए गए थे जो कैप्टन स्कीन की जगह काम कर रहा था। गुरसराय के सरदार के द्वारा मुझे दिनाक २३ जून का कमिश्नर का एक पत्र मिला, जिसमे कहा गया था कि मैं जिले का प्रभार सभालू। मेरे तीन पत्रो के उत्तर मे उक्त अधिकारी का ही दिनाक १० जुलाई का एक अन्य पत्र भी मुझे मिला था। इस पत्र मे उसने मेरा ध्यान उसके पहले के पत्रो की ओर दिलाया था जिसमे एक घोषणा सलग्न बताई गई थी, जिसके अनुसार जिले का प्रभार मुझे सौंपा गया था। २९ जुलाई को मैंने उत्तर मे लिखा कि मुझे कोई घोषणा नहीं मिली है।

जबलपुर के कमिश्नर
मध्यवर्ती भारत के लिए स्थानापन्न एजेंट जी० जी०
भारत के गवर्नर-जनरल
आगरा के लेफ्टिनेंट-गवर्नर
जालौन के डिप्टी कमिश्नर
ग्वालियर के पोलिटिकल एजेंट मेजर एलिस

२ देश की उपद्रवग्रस्त स्थिति का लाभ उठाकर दतिया और ओरछा के सरदारो ने पहले झासी इलाके के जिले को, जो उनके राज्यों के सीमान्त मे क्रमश पूर्व और पश्चिम की ओर था, अपने अधिकार मे ले लिया।

३. तीन सितम्बर को (इन दोनो सरदारो ने मिलकर काम करते हुए) ओरछा की सेनाओ ने, जिनमे ठाकुर लोग और सरदारो के सम्बन्धी थे, और जिनमे कुल ४०,००० आदमी और २८ तोपें थीं, स्वयं झांसी पर धावा बोल दिया और दूसरे सरदारो को अपनी सहायता करने पर विवश किया। यद्यपि कमिश्नर के दो पत्र जो मुझे मिले थे, मैंने नत्थे खां के पास उसके परिशीलन के लिए भेज दिये थे, फिर भी उसने उन पर कोई ध्यान नहीं दिया। इस पर मैंने कमिश्नर को फिर लिखा, जिसने मुझ से उत्तर में (दिनांक १६ अक्तूबर के पत्र के द्वारा) कहा कि अंग्रेजी सेनाएं जबलपुर मे इकट्ठी हो रही है और वह स्वयं झांसी आएगा और प्रत्येक छोटे-बड़े के व्यवहार की जाच करेगा और उनके साथ तदनुकूल वर्ताव करेगा। इसी समय मैंने अपनी सम्पत्ति वेचकर और रुपया व्याज पर कर्ज लेकर—आदमियो की एक टोली को इकट्ठा किया और शहर को बचाने तथा आक्रमणकारी सेना का सामना करने के लिए यथा सम्भव सब उपाय किये। शत्रु ने बन्दूकें, टोपीदार पुरानी चाल की बन्दूकें और बाण चलाकर बहुत शरारत की और हजारो महत्वपूर्ण व्यक्तियो को मारा। अपने साधन असफल सिद्ध होते देख मैंने २० सितम्बर और १६ अक्तूबर को कुमुक भेजने के लिए लिखा। दो महीने बाद घेरा डालने वाली सेना ओरछा से करीब ३ मील दूर स्थित कोमा नामक गांव मे चली गई। वे सभी जिले जो पहले ओरछा के सरदार ने अपने अधिकार मे कर लिए थे, अब भी उसके अधिकार मे हैं। इसी प्रकार दतिया की रानी अब तक उन सब जिलो पर अधिकार रखे हुए है जो उसके हाथ मे पड़ गए थे। ओरछा और दतिया के अधिकारी इन स्थानों को नहीं छोड़ते। जिन सैन्य दलो को वहां इन स्थानों पर पुनः अधिकार प्राप्त करने के लिए भेजा जाता है, उनका मुकावला किया जाता है।

४. पहले की तरह पवार और मवास लोगो को उत्तेजित किया जा रहा है कि वे शेष जिलो को भी लूट-पाट से बरवाद कर दें।

५. इन परिस्थितियों में ब्रिटिश सरकार की सहायता के बिना मै इन शत्रुओ से अपना पिण्ड कभी नहीं छुड़ा सकती और न भारी ऋण को ही चुका सकती हूं।

६. कमिश्नर मेरी सहायता के लिए कार्य करने के लिए प्रस्तुत नहीं जान पड़ता, क्योंकि वह अपने दिनांक ६ नवम्बर के पत्र मे कहता है कि इस समय ब्रिटिश सैन्य दलों की उसे अपने स्थान पर ही आवश्यकता है। चूंकि इन अल्पदर्शी व्यक्तियो को ब्रिटिश सर्वोच्च सत्ता के सम्बन्ध में कोई ध्यान नहीं है और ये मुझे और देश को बरवाद करने के लिए सब कुछ कर रहे हैं, इसलिए मैं आपसे प्रार्थना करती हूं कि आप सर्वोत्तम ढंग से मेरी सहायता करें और मुझे और लोगों को बचाएं जो अन्तिम सीमा तक थक चुके हैं और शत्रु का सामना करने मे असमर्थ हैं।

अध्याय ८

राजपूताना और मध्यवर्ती भारत

राजपूताना नाम मात्र के लिए उत्तर-पश्चिमी प्रान्त के लेफ्टिनेंट गवर्नर के प्रभार मे था, क्योकि उसकी शान्ति और सुव्यवस्था के लिए उत्तरदायी अधिकारी गवर्नर-जनरल का एजेंट (अभिकर्ता) था। सीधे ब्रिटिश प्रशासन के अधीन क्षेत्र अत्यन्त छोटा था, परन्तु उसमे तीन महत्वपूर्ण सैनिक स्थान थे, अजमेर, नसीराबाद और नीमच। मुस्लिम सर्वोच्च सत्ता के समय मे भी अजमेर, राजपूताना की कुजी समझा जाता था और इस नगर के किले मे शाही सेना रहती थी। ब्रिटिश काल मे भारतवर्ष के मानचित्र मे भारतीय रियासतो के पीले विस्तार मे अजमेर ही एक लाल बिन्दु था। सब रियासतें, केवल एक को छोडकर, हिन्दू राजाओ के द्वारा शासित थीं जो अपनी वशावलियो का उद्गम सूर्य और चन्द्र से मानते थे। सीसोदिया वश के मुखिया, मेवाड के महाराणा सरूपसिंह, शक्ति मे तो नहीं, परन्तु पद मे सबसे ऊचे माने जाते थे। जयपुर के महाराजा रामसिंह के पूर्वजो ने मुगल-काल मे अपने राज्य-क्षेत्र मे विस्तृत वृद्धि कर ली थी और महाराजा रामसिह कछवाहा राजपूतों के माने हुए मुखिया थे। इसी वश की एक नवीनतर शाखा ने अपने आप को अलवर मे स्थापित कर लिया था और वहा बन्नीसिह शासन कर रहा था। जोधपुर के महाराजा तख्तसिह[1] राठौर वश के मुखिया थे। परम्परागत आज्ञोल्लघन का असुविधाजनक उत्तराधिकारी उन्हें मिला था, क्योकि उनके पूर्वगामी मानसिह ने जसवन्त राव होलकर, नागपुर के राजा और ऐसे अन्य अल्प प्रसिद्ध सरदारों को जिन्होंने अग्रेजी शासन के प्रति अवज्ञा दिखाने की धृष्टता की थी, सहायता दी थी जिससे उनकी युद्ध-प्रिय प्रजा उनकी प्रशसा करने लगी थी। जोधपुर-परिवार की एक नवीनतर शाखा बीकानेर मे शासन करती थी। हाडा राजपूतों के शासन केन्द्र बूदी और कोटा मे थे।[2] टोंक की छोटी अमलदारी एक मुस्लिम सरदार के द्वारा शासित थी। यह पिडारी नेता अमीर खा का, जिसने होलकर के साथ मिल कर एक बार सम्पूर्ण राजपूताना को भयभीत कर दिया था, वशज था। राजपूताना सामन्ती वीरता और हिन्दू

---

१ जोधपुर के सिहासन को प्राप्त करने से पूर्व तख्तसिंह गुजरात मे ईदर का सरदार था। मारवाड के अभिजात पुरुष उसे पर्याप्त रूप से अच्छा मारवाडी नहीं मानते थे। उसके लोकप्रिय न होने का एक अन्य कारण यह भी था कि अपने प्रजा जनों की बजाय वह अपने पुराने साथियों मे ही अधिक विश्वास रखता था।

२ कोटा के महाराव बूदी के राजवश की एक नवीनतर शाखा के थे।

देशभक्ति का गढ था। प्रत्येक सामन्त अपने परिवार मे एक चारण रखता था जो उसे अपने वीर पूर्वजो के वीरतापूर्ण कृत्यो की याद दिलाया करता था। प्रारम्भिक बाल्यावस्था से ही हथियारो की शिक्षा के साथ राजपूत का लालन-पालन होता था, अतः उससे यह आशा की जाती थी कि अपने परम्परागत अधिकारो के अतिक्रमण का वह प्रतिरोध करेगा और अपने सम्मान की रक्षा के लिए अपने प्राणो की भी आहुति दे देगा। यदि राजपूत राजा धर्म के नारे का अनुकूल उत्तर देते, तो दिल्ली से गुजरात तक फैले सम्पूर्ण रेगिस्तानी क्षेत्र से अंग्रेजी सत्ता विलुप्त हो जाती।

सर हेनरी लारेंस राजपूताना मे एक बार गवर्नर-जनरल का एजेंट रह चुका था। जब उसे अवध मे शान्ति स्थापित करने के लिए बुलाया गया तो उसका बडा भाई जार्ज सेंट पेट्रिक लारेंस उसके स्थान पर नियुक्त किया गया। जार्ज लारेंस ने घुड़सवार सेना के एक अधिकारी के रूप मे अफगानिस्तान और पंजाब मे युद्ध-कार्य मे भाग लिया था। राजपूताना के लिए वह नया नहीं था, क्योकि अपने भाई के रिक्त स्थान पर पदवृद्धि होने से पूर्व वह मेवाड़ का राजनीतिक अभिकर्ता (पोलिटिकल एजेंट) रह चुका था। इस पद पर अब उसका उत्तराधिकारी मेजर शावर्स नियुक्त हुआ था, जो एक उद्यमी और उत्साही अफसर था। अनुभव और योग्यता से सम्पन्न दो अन्य कूटनीतिक अधिकारी भी राजपूताना मे रखे गए, ईडन जयपुर मे और मोक मेसन जोधपुर मे। सामान्य दिनो मे भी उनका काम आसान नहीं था, क्योकि सामन्ती सरदारो और उनके राज्यों के प्रमुखो के बीच सदा ही झगड़ा बना रहता था और सामन्त लोग महाराजा के साथ अपने युद्ध मे अपने काश्तकारों की असंदिग्ध आज्ञाकारिता पर सदा निर्भर रह सकते थे। चूकि महाराजा को साधारणतः सर्वोच्च सत्ता का समर्थन प्राप्त होता था, अतः सामन्त लोग दोनो को प्राय. एक ही समझते थे। इस प्रकार महाराजा के विरुद्ध प्रतिरोध कभी-कभी गड़बड़ी से ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध विद्रोह समझ लिया जाता था। सन् १८५७ मे मेवाड़ मे सलूम्बर के सरदार केसरीसिह को अपने प्रमुख उदयपुर के महाराणा के विरुद्ध कुछ वास्तविक या काल्पनिक शिकायतें थीं[३] और आवा के ठाकुर कुशलसिह अपने राजा जोधपुर के महाराजा के विद्रोह के लिए तैयार खड़े थे।[४]

---

३. केसरीसिह की शिकायते परम्परागत शिष्टाचार के एक प्रश्न पर आधारित थी। रिवाज के अनुसार उदयपुर के युवराज को सलूम्बर के सरदार के अभिषेक के समय उपस्थित होना आवश्यक था। महाराणा सरूपसिह के कोई पुत्र न था, इसलिए केसरीसिह को यह आशा थी कि इन परिस्थितियो में स्वय महाराणा उसके अभिषेक के उत्सव में भाग लेने के लिए सलूम्बर पधारेंगे। परन्तु महाराणा ने उसको सन्तुष्ट करने से इन्कार कर दिया। परिस्थिति आगे चल कर इस बात से और जटिल हो गई कि सलूम्बर के सरदार और महाराणा मेवाड के राजवश की क्रमशः बड़ी और छोटी शाखाओ का प्रतिनिधित्व करते थे।

४. आवा के ठाकुर के विद्रोह का कारण यह था कि उसके सामन्ती अधिकारो मे हस्तक्षेप किया जाता था। किसी कारीगर या आसामी को ठाकुर के राज्य-क्षेत्र को छोड़ कर

गई और वह निराधार नहीं थी। सिपाही विद्रोही हो गए और अधिकारी उदयपुर भाग गए। तब विद्रोही दिल्ली की ओर चल दिए और इसके बाद मेवाड़, कोटा और बूंदी की सैनिक टुकड़ियो ने नीमच को अपने अधिकार मे ले लिया। १२ जून को दीसा से एक सेना, जिसमे महामहिम सम्राज्ञी की ८३ वीं सेना के ४०० आदमी, १२वीं बम्बई पैदल सेना और यूरोपीय घुड़सवार तोपखाने का एक सैन्य-दल सम्मिलित थे, नसीराबाद आई। ग़दर के प्रारम्भ होने के शीघ्र बाद ही नीमच के सिपाहियो की तरह नसीराबाद के विद्रोहियों ने भी अपने सैनिक-स्थान को खाली कर दिया था इसलिए बिना लड़ाई के इस पर दुबारा अधिकार कर लिया गया।

इसके बाद नीमच को एक अत्यन्त योग्यता वाले शाही साहसी व्यक्ति से भय उत्पन्न हुआ। शहज़ादा फीरोज़ शाह निजाम बख्त का पुत्र था जो बहादुर शाह प्रथम का एक सीधा वंशज़ था।[10] सन् १८५५ मे वह दिल्ली से मक्का तथा अन्य स्थानों मे गया और मई सन् १८५७ मे बम्बई वापस उतरा। वह अभी करीब बीस वर्ष का ही था। यदि वह एक शताब्दी पूर्व पैदा हुआ होता तो उसके जैसे सूझ-बूझ वाले नवयुवक ने अपने लिए एक राज्य का निर्माण कर लिया होता और यदि वह एक शताब्दी बाद होता तो एक लोक-प्रिय नेता के रूप मे वह प्रसिद्धि प्राप्त करता। परन्तु वह एक ऐसे युग मे उत्पन्न हुआ जो या तो बहुत देर से आया या बहुत जल्दी, और उसके साहसिक कार्यो का परिणाम केवल असफलता और स्वत आरोपित देश-निकाला हुआ। यह कहा जाता है कि वह बम्बई से दिल्ली गया, परन्तु इस खबर का कोई आधार प्रतीत नहीं होता। जून मे वह सीतामऊ के समीप दिखाई दिया। तदनन्तर हम उसे मन्दसौर के निकट पाते हैं जहा उसने इस्लाम के हरे झण्डे को फहराया और अंग्रेजो के विरुद्ध जिहाद की घोषणा की। मन्दसौर के गवर्नर ने उसे नगर से बाहर निकाल दिया और उसने एक अज्ञात मसजिद मे शरण ली। फकीर के वेश मे एक बादशाह के लड़के का होना उसके किसी सेना के अग्रणी होने से अधिक प्रभावशाली राजनीतिक शक्ति है और फीरोज शाह ने शीघ्र ही पर्याप्त अनुयायियो को आकृष्ट कर लिया, जिसमे अधिकतर सख्या अफगान और मकरानी मुस्लिमों की थी। उन्होंने नगर को अपने अधिकार मे कर लिया और गवर्नर तथा कोतवाल को कैद कर लिया।[11] फीरोज शाह औपचारिक ढग से बाद-

---

अली बेग था, सेना-पंक्तियो में से बाहर निकल कर बाहर आया और समादेशक अधिकारी को उद्दण्डतापूर्वक सम्बोधित करता हुआ बोला, 'हमारे अधिकारियों की शपथें हमारे लिए क्या है? हमारी स्वय की शपथें भी क्या हैं? हम क्यों तुम्हारे प्रति अपनी शपथों को रखें जब कि तुम स्वय अपनी शपथों को तोड चुके हो? क्या तुमने अवध पर कब्जा नहीं लिया?' शावर्स ए मिसिंग चैप्टर आफ दि इण्डियन म्यूटिनी, पृ० २७

१० दिल्ली के शाही परिवार मे सात और मिरज़ा फीरोज़ थे। दिल्ली जिले के कमिश्नर और सुपरिन्टेंडेंट की ओर से अवध के चीफ कमिश्नर के सहायक सचिव को लिखा गया पत्र सख्या २४, दिनाक २८ फरवरी, '१८६०

११ कोतवाल को बलपूर्वक मुस्लिम बनाया गया। शावर्स, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ६०

शाह बनाया गया और मिरज़ाजी नाम का एक आदमी, जिसके पूर्वज मन्दसौर के इजारेदार रहे थे, उसका प्रधान मन्त्री नियुक्त हुआ। उसने फिर प्रतापगढ़, जावरा, सीतामऊ और रतलाम के राजाओ के पास तथा सलूम्बर के सरदार के पास परिपत्र भेजे और उनसे कहा कि वे नई सत्ता को स्वीकार करें,[१२] परन्तु किसी ने अनुकूल उत्तर नहीं दिया सिवाय अब्दुल सत्तार खा के, जो जावरा के शासकीय वंश का तरुण सदस्य था।[१३] सितम्बर तक उसके अनुयायियो की सख्या सत्रह से अठारह हजार तक हो गई। नवम्बर में शहजादे ने अपने अधिकार-क्षेत्र को बढ़ाने के लिए अपने को पर्याप्त शक्तिशाली अनुभव किया और नीमच के विरुद्ध अपने सैन्य दल भेजे। उन्होंने जिरान मे एक सैनिक टुकड़ी को हराया और किले का घेरा डाल दिया। यदि समय पर वहा सर हेनरी ड्यूरेण्ड आ जाते तो उन्होंने किले को जीत लिया होता।

हेनरी मेरियन ड्यूरेण्ड उस समय मध्यवर्ती भारत मे गवर्नर-जनरल के स्थानापन्न एजेंट थे और उनका मुख्यालय इन्दौर मे था। स्थायी पदाधिकारी सर राबर्ट हैमिल्टन इंग्लैण्ड छुट्टी पर गये हुए थे। ड्यूरेण्ड बंगाल इंजीनियर्स मे कमीशन प्राप्त अधिकारी बन कर भारत आये थे और सार्वजनिक निर्माण-कार्य विभाग से सम्बद्ध थे। अनेक ग़दर-नेताओ की तरह उन्होने प्रथम अफ़गान-युद्ध में विशेष ख्याति प्राप्त की थी। सन् १८४२ मे लार्ड एलन बरा ने उनको अपना व्यक्तिगत सचिव बनाया और महाराजपुर के युद्ध मे भी वह उपस्थित थे। इसके बाद उन्होने तनासेरिम के गवर्नर का पद संभाला जहां उन्होने यूरोपीय व्यापारिक स्वार्थो को इस हद तक रुष्ट किया कि उन्हे अपने पद से हटा दिया गया। द्वितीय सिख युद्ध मे उनकी सेवाओ का पुरस्कार उन्हे ग्वालियर मे एक राजनीतिक नियुक्ति के रूप मे मिला। इन्दौर मे सर राबर्ट हैमिल्टन के पद पर स्थानापन्न रूप में नियुक्त होने से पूर्व वह भोपाल मे राजनीतिक अभिकर्ता (पोलिटिकल एजेंट) बनकर भी रहे थे।

मध्यवर्ती भारतीय अभिकरण के निरीक्षण मे छः भारत रियासतें थीं। ग्वालियर इन्दौर, धार और देवास मराठा राजाओ द्वारा शासित थीं और किसी समय ये उस साम्राज्य का अग थी जिस पर पेशवा का आधिपत्य था। धार और देवास छोटी-छोटी अमलदारिया थीं जिन्होंने शक्तिशाली पडोसियो—ग्वालियर और इन्दौर के समान राजनीतिक महत्व का कभी उपभोग नहीं किया। भोपाल और जावरा मुस्लिम रियासतें थीं, जिनमे से प्रथम ने ब्रिटिश सर्वोच्च सत्ता के स्थापित होने से पूर्व मराठो के नेतृत्व को स्वीकार किया था और द्वितीय एक मराठा जागीर थी जो एक मुस्लिम साहसी वीर को दी गई थी।

इन्दौर मे जब ग़दर शुरू हुआ तो तुकोजीराव द्वितीय इक्कीस वर्ष का था। ग्वालियर सैनिक टुकड़ी ने जून के दूसरे सप्ताह मे विद्रोह कर दिया, परन्तु इन्दौर में पहली जुलाई तक कोई उपद्रव नहीं हुआ। मैकफ़र्सन और जयाजी राव सिन्धिया में पूरा मेलजोल था, परन्तु ड्यूरेण्ड और तुकोजी राव के सम्बन्ध अच्छे न थे। सर राबर्ट हैमिल्टन,

---

१२. शावर्स उद्धृत ग्रथ, पृ० ८६-९३

१३. वही, पृ० ९६

जिसके प्रति तरुण होलकर अपनी गद्दी के लिए ऋणी था, स्वतन्त्र मताभिव्यक्ति को न केवल सहन करता था, बल्कि उसे उत्साहित करता था। सर हेनरी ड्यूरेण्ड के दरबार सम्बन्धी शिष्टाचार के विचार भिन्न प्रकार के थे और खुले दरबार मे शासक या उसके परामर्शदाताओ द्वारा सर्वोच्च सरकार की ईमानदार समालोचना को भी वह बुरी आदत और असहनीय धृष्टता समझता था।[१४] इसलिए गवर्नर-जनरल के एजेंट और इन्दौर के भारतीय शासक के बीच उस सहानुभूति और एक दूसरे को समझने की शक्ति का दुखजनक अभाव था, जिसकी उस विषम परिस्थिति मे आवश्यकता थी। इन्दौर से करीब १३ मील दूर महू मे अंग्रेजी सैनिक तैनात थे। दुर्ग-सेना मे देशी तत्वों का विस्तृत रूप से बाहुल्य था, परन्तु यूरोपीय तोपखाने का एक सैनिक समूह भी वहा था, जो भारतीय सैनिकों को अपने नियत्रण मे रख सकता था। होलकर के पास सब प्रकार के हथियारों से युक्त ७५०० सैनिकों की सेना थी, परन्तु न तो यह उसकी राजधानी में केन्द्रित थी और न उसकी दक्षता और वफादारी मे होलकर का विश्वास था। दूसरी ओर ड्यूरेण्ड ऐसा कोई काम करने को तैयार नहीं था जिससे नगर या छावनी मे भय फैले। परन्तु साथ ही वह महू मे स्थित भारतीय सेना की स्वामिभक्ति पर भी पूरी तरह निर्भर नहीं रह सकता था। वह जानता था कि सेना का एक दस्ता कर्नल वुडबर्न की अधीनता मे मध्यवर्ती भारत की ओर जा रहा था। परन्तु भारतीय सैन्य दल यूरोपीयो की ओर भय और सशय की दृष्टि से देखने लगे थे। ड्यूरेण्ड अपनी समस्या के मनोवैज्ञानिक पक्षो के प्रति सजग थे, जैसा कि अक्सर उनके सहयोगी नहीं थे। १३ जून को ड्यूरेण्ड ने लिखा, "मेरा विचार है कि तेइसवीं देशी पैदल सेना पहली घुडसवार सेना की अपेक्षा अधिक शान्ति से रहने को तैयार है। पहली घुडसवार सेना के सिपाहियों के बारे मे कहा जाता हैं कि वे पैदल सेना को उलाहना दे देकर विद्रोह के लिए उत्तेजित कर रहे हैं। फिर भी ये दोनो सैन्य दल यूरोपीय बन्दूकधारियों से भयभीत हैं और यहा जो बन्दूकें और सैन्य दल हैं, उनसे भी। उन्हें बम्बई से आने वाले सेना के दस्ते का भी भय है। और उन्हें सन्देह है कि वह उन्हे सजा देने के उद्देश्य से ही यहा आ रहा है। अधिकारी लोग उन्हें विश्वास दिलाने का प्रयत्न कर रहे हैं कि यदि वे शान्त और सयत बने रहेंगे तो उन्हें किसी चीज का भय करने की आवश्यकता नहीं है। यदि महू के सैन्य-दल उपद्रव कर बैठें हों तो उसका कारण यह भी होगा कि उनमे इस प्रकार की शकाए फैलाई गई हैं कि सदिग्ध सैन्य दलो के विरुद्ध कडी कार्यवाही की जाएगी। दिल्ली पर अधिकार करना हमारे लिए

---

१४. के कहता है कि ड्यूरेण्ड कभी भी "तरुण महाराजा के प्रति वैयक्तिक कृपालुता की कोई भावना नहीं रखता था। महाराजा के प्रति उसका व्यवहार उदासीनता का था जिसके उत्तर मे महाराजा ने भी उसके प्रति उदासीनता दिखाई।" फारेस्ट प्रतिशोधात्मक उत्तर देते हुए कहता है, "ड्यूरेण्ड से कम उग्र स्वभाव का भी कोई ब्रिटिश रेजिडेंट यह सहन नहीं करता कि उसकी सरकार के, जिसका वह प्रतिनिधि है, विरुद्ध शिकायत उसके मुखिया लोगों के सामने किसी देशी शासक के द्वारा की जाय।" फारेस्ट, ए हिस्ट्री आफ दि इण्डियन म्यूटिनी, जिल्द ३, पृ० ८५

एक दु:खभरी आवश्यकता है, क्योंकि इससे सरदार लोग और जनता शांत हो जाएगी और विद्रोह की वह भावना भी जो अन्दर ही अन्दर सुलग रही है, शान्त हो जायगी।"[१५] पर दिल्ली का पतन नहीं हुआ और वुडवर्न नहीं आया। उसे निज़ाम के राज्य मे औरंगाबाद में रुकना पड़ा।

महू के संदिग्ध सैन्य दलो के द्वारा नही, बल्कि होलकर की सेना के द्वारा पहली जुलाई को रेजिडेंट के भवन पर आक्रमण किया गया। होलकर की अश्व-सेना का एक अधिकारी सादत खा[१६] तेज़ी से घोड़ा दौडाता हुआ रेजिडेंट-भवन की रक्षा मे नियुक्त बन्दूकधारी सिपाहियों के पास आया और उसने घोषणा की कि महाराज की आज्ञा है कि साहब लोग मार दिए जाएं। उन्होने एक दम रेजिडेंट-भवन पर गोलाबारी शुरू कर दी। ड्यूरेण्ड ने मालवा भील सैनिक टुकड़ी के करीब ३०० आदमियों और भोपाल सैनिक टुकड़ी के पुलिस-दल के सिपाहियो के दो दलो की मांग की थी। भोपाल सैनिक टुकड़ी ने अपनी बन्दूको की नलियो को अपने अधिकारियों की ओर मोड़ दिया। भील लोगो के ऊंची जाति के सिपाहियो के साथ कोई जातीय या धार्मिक सम्बन्ध नहीं थे, अतः उनसे आशा की जाती थी कि वे मेयरो के समान दृढ़ रह कर अपने स्वामियो की सहायता करेंगे, परन्तु इस विषमावस्था मे वे खरे नहीं उतरे। महिदपुर सैनिक टुकड़ी भी रोष-भरी उदासीनता के साथ अलग खड़ी रही। वास्तव में यूरोपीय तोपखाने के लिए एक सन्देश महू भेज दिया गया था, परन्तु अब होलकर की घुड़सवार सेना बन्दूकधारी सिपाहियो की सहायता के लिए आ रही थी। एक शीघ्र निर्णय की आवश्यकता थी। रेजिडेंट-भवन छोड़ दिया गया। कैप्टन हंगरफोर्ड अपने तोपखाने के साथ यथा शीघ्र महू से रवाना हो चुका था, परन्तु जब वह इन्दौर के आधे मार्ग मे ही था, उसे रेजिडेंट-भवन के खाली किये जाने का पता लगा और वह वापस लौट गया। ड्यूरेण्ड को यह आशा नही थी कि वह दोपहर तक आ जाएगा और तब तक डटे रहने की उसकी शक्ति नही थी, परन्तु उसे स्त्रियो और बच्चों का भी विचार करना था। ट्रैवर्स ने कहा है कि "यद्यपि वह रेजिडेंट-भवन को कुछ घण्टे और सम्हाल सकता था, फिर भी हम बेचारी असहाय स्त्रियो और बच्चो को निकालने मे असमर्थ ही रहते।"[१७] ड्यूरेण्ड महू जा सकता था और हंगरफोर्ड के साथ लौट कर आ सकता था, परन्तु उसे होलकर की स्वामिभक्ति मे सन्देह था क्योकि उनके सैन्य दलो ने आभासित रूप से उसके आदेशों के अनुसार ही रेजिडेंट-भवन पर आक्रमण किया था। यात्रा का प्रथम भाग भय से भरा था और इस खबर को उठाना बुद्धिमानी नहीं समझी गई। सिक्खो ने और भोपाल के सिपाहियो ने शरण-स्थान के लिए सीहोर का सुझाव दिया। इसलिए होलकर के अधिकार-क्षेत्र से बाहर ड्यूरेण्ड सिहोर चला गया।

परन्तु इसमे होलकर का दोष नहीं था। उसने साफ तौर पर ड्यूरेण्ड को चेतावनी

---

१५. फारेस्ट, ए हिस्ट्री आफ दि इण्डियन म्युटिनी, जिल्द ३, पृ० ६२

१६. उसके पिता ने भी इन्दौर सेना मे नौकरी की थी।

१७ फ़ारेस्ट, ए हिस्ट्री आफ दि इण्डियन म्यूटिनी, जिल्द ३, पृ० ६८

दे दी थी कि उसके अपने सिपाही, देशी सैनिक टुकड़ियो से अधिक भरोसा करने योग्य नहीं थे। एक वही ऐसा राजा नहीं था जिसका अपनी सेना पर अधिकार न हो और अपनी रियासत की हथियारबन्द सेनाओ के सम्बन्ध मे वह उतना ही असहाय था जितना गवर्नर-जनरल का एजेंट।[१८] मालवा के मराठा शासक वस्तुत बाहरी आदमी थे जो केवल अपनी जीत के अधिकार के बल पर शासन करते थे। इसलिए वे स्थानीय जनता की स्वामिभक्ति पर सदा निर्भर नहीं रह सकते थे। होलकर के बारे मे इसलिए सन्देह था कि सादत खा रेजिडेंट-भवन पर आक्रमण के बाद अपने खून से लथपथ कपड़ों को पहने हुए सीधे दरबार मे गया था और प्रात काल हुए काण्ड में अपने कार्य की उसने डींग हाकी थी। परन्तु होलकर बिना अपने आप को खतरे मे डाले उसे गिरफ्तार नहीं कर सकता था और फिर उसे अपने महल की स्त्रियों के बारे मे भी सोचना था। वह अपने इरादो को छिपाकर रखने का दोषी था और क्या सिंधिया भी समय के अनुसार नहीं चल रहा था जब कि उसने विद्रोही सैनिक टुकडी को अपनी सेवा मे रख लिया? किन्तु एक मामले मे राजा और राजनीतिक अधिकारी साथ-साथ मिल कर कार्य कर रहे थे तो दूसरे मे राजनीतिक अधिकारी राजा मे विश्वास नहीं कर रहा था। दोनो मे ही विद्रोहियों ने निर्दयता पूर्वक अंग्रेजों का खून बहाया।

इन्दौर मे उपद्रव होने के कुछ थोड़े घटो बाद ही महू मे उपद्रव शुरू हो गये। प्रात'काल पैदल और घुडसवार सेना ने अपने अधिकारियो के आदेश का पालन करते हुए इन्दौर की सडक पर अपनी स्थिति जमा ली ताकि उधर से कोई आक्रमण हो तो सामना कर सकें। उन्होने कुछ बन्दूकधारी सिपाहियो को मार कर होलकर की दो तोपो को अपने अधिकार मे कर लिया, जो शहर की ओर ले जाई जा रही थीं। बाहरी तौर पर इसे ही महू के ग़दर का बहाना बना लिया गया। समादेशक अधिकारी कर्नल प्लाट्स ने अपने आदमियो को युक्तियां देकर समझाना शुरू किया, परन्तु उसे गोली मार दी गई। दो दूसरे अधिकारियो का भी यही हाल हुआ। परन्तु कैप्टन हगरफोर्ड अपने तोपखाने के बल से किले को अपने अधिकार मे रखे रहे। दूसरे दिन विद्रोही महू से इन्दौर चले गये और फिर शीघ्र ग्वालियर के मार्ग पर चल पडे। ग्वालियर से वे धौलपुर गये। यदि सादत खा का विश्वास किया जाय तो ग्वालियर मे शहजादा फीरोज शाह ने, जो वहा धौलपुर से आया था, उससे कमान ले ली।[१९] इन्दौर के विद्रोही ग्वालियर की सैनिक टुकडी को इस बात के मनवाने मे असफल रहे कि वे आगरा के विरुद्ध अभियान मे उनके साथ मिल जाए। मिट्टी के घडो को उल्टा कर बनाये गये अपरिष्कृत वाहनो से उन्होने चम्बल नदी को पार किया और एक काफी लम्बे समय तक वे धौलपुर मे ठहरे। जब वे आगरा पहुचे तो उन्हें पता लगा कि दिल्ली से आये हुए ग्रेटहेड की सेना के दस्ते वहा उनके लिए पहले से ही मौजूद हैं।

---

१८ यह ध्यान म रखना चाहिए कि टोंक, कोटा, ग्वालियर, भोपाल और भरतपुर के सैन्य दलों ने विद्रोह कर दिया था, परन्तु वहा के शासक पक्के स्वामिभक्त बने रहे।

१९ सादत खा के मुकदमे की कार्यवाही, इन्दौर रेजिडेंसी, सख्याए १७७-२३३, १० सितम्बर, १८७४ देखिए।

इसी बीच हंगरफोर्ड ने अपने को उत्तरदायित्व की एक ऐसी स्थिति मे पाया जो उसके पद से सर्वथा ऊंची थी। गवर्नर-जनरल का एजेंट जा चुका था। होलकर की राजभक्ति मे सन्देह किया जा रहा था। उसने राजनीतिक सत्ता अपने हाथ मे ले ली और एक ओर होलकर से और दूसरी ओर बम्बई सरकार से पत्र-व्यवहार शुरू किया। वह होलकर के रुख के सम्बन्ध मे निश्चय कर लेना चाहता था ताकि परिस्थिति की माग के अनुसार वह उचित कार्य कर सके। केन्द्रीय अधिकारियो के निर्देश के बिना उसने जो सत्ता अपने हाथ मे ले ली थी, उसकी कानूनी स्वीकृति बम्बई सरकार दे सकती थी। होलकर से उसने एक सीधी सीधी जांच पडताल की। उसने सुना था कि राजा ने विद्रोहियो को हथियारो, युद्ध-सामग्री और खाद्य-सामग्री से सहायता दी है। उसने लिखा, "ये खबरें सम्भवत. अतिशयोक्तिपूर्ण हैं। मैं इनमे विश्वास नहीं करता। आप पर अंग्रेज लोगों का इतना अधिक ऋण है और उनके प्रति शत्रुता दिखाकर आप इतना अधिक बरबाद हो सकते हैं कि मैं यह विश्वास नहीं करता कि आप अपने स्वार्थों के प्रति इतने अन्धे हो जाएंगे कि अंग्रेज सरकार के शत्रुओ को सहायता दें या उनके साथ मित्रता दिखायें। इसलिए मुझे स्वयं आपसे जानना है कि आपकी इच्छाए क्या हैं।"[२०] होलकर ने अपने प्रधान मन्त्री और कोषाध्यक्ष को अपने उत्तर के साथ भेजा और इन्दौर के विद्रोह का उसका लेखा परिशीलन के योग्य है। "दुनिया मे मुझ से अधिक और कोई उस हृदय-द्रावक विपत्ति के सम्बन्ध मे खेद नहीं कर सकता जो इन्दौर और महू मे पड़ी। इस महीने की पहली तारीख को प्रातः मेरे सैन्य दलों ने, सम्भवतः महू के विद्रोहियो के प्रभाव मे आकर खुला विद्रोह कर दिया और वही बन्दूकें और सेना के वर्ग जो रेजिडेंट-भवन की रक्षा करने के लिए भेजे गये थे, किसी से साधारण झगडा होने पर शीघ्र रेजिडेंट के भवन पर गोलाबारी करने लगे। जो नुकसान हुआ वह बहुत अधिक था और बहुत सी जानें गईं। किसी भी सैनिक टुकड़ी ने अंग्रेज अधिकारियों की सहायता नहीं की, परन्तु यह एक खुशी का समाचार है कि कर्नल ड्यूरेण्ड, मि० शेक्सपियर व उनका परिवार और दूसरे लोग सुरक्षापूर्वक बाहर चले गये। बदमाश लोगों ने फिर सम्पूर्ण रेजिडेंट-भवन को लूटा। दूसरे दिन प्रातः महू के सैन्य दल इसी प्रकार के पाशविक कृत्य करने के बाद यहा आये और सम्पूर्ण नगर भयभीत हो गया। मेरे सैन्य दलो का अधिकतर भाग खुले रूप से विद्रोह कर बैठा और जो बचे हुए आदमी थे, उन पर भी विश्वास नहीं किया जा सकता था। मुसलमानो ने 'दीन' का झण्डा ऊंचा किया और पूर्ण अव्यवस्था फैल गई। इन दु.खपूर्ण परिस्थितियो मे ग़दर करने वालो ने अपनी शर्ते जबर्दस्ती मनवाईं। उन्होने न केवल कुछ यूरोपीय लोगो के सिरो की माग की जिन्हे मैंने अपने महल मे छिपा रखा था बल्कि दरबार के कुछ थोड़े से अधिकारियों की भी, जिन्हें ब्रिटिश स्वार्थो के पक्ष मे समझा जाता था। यदि मैं बाहर न आया तो उन्होने सब को लूटने और नष्ट करने की तैयारी की। मेरे पास इसके सिवा और कोई विकल्प नहीं था कि मैं उन्हें स्वयं अपना शरीर अर्पित कर देता, परन्तु मैने निश्चय किया कि अपने स्वयं के मारे जाने से पूर्व मैं यूरोपीयो को छूने नहीं दूंगा। अंग्रेजी खजाने को लूटने के

---

२० फ़ारेस्ट, ए हिस्ट्री आफ दि इण्डियन म्यूटिनी, जिल्द ३, पृ० १०६

वाद और शहर से गाड़ी को लेकर तथा उन सब बन्दूकों को अपने साथ लेकर जो ग़दर की अवस्था मे उनके हाथ लगी थीं, इस स्थान के तथा महू के सब विद्रोही एक साथ गत रात देवास की ओर अभियान कर गये हैं। कहानी बहुत वेदनापूर्ण है और इस पत्र के वाहक राव रामचन्द्र और बख्शी खुमान सिंह इसे विस्तृत रूप से आपके सामने वर्णन करेंगे। मैं स्वप्न मे भी अंग्रेजी सरकार की मित्रता और अधीनता के मार्ग से भ्रष्ट नहीं हुआ हूं। मैं जानता हू कि संशय करने से पूर्व उनके न्याय और सम्मान की भावना उन्हें एक क्षण के लिए भी एक ऐसे मित्रतापूर्ण सरदार के प्रति संशय करने से रोकेगी जो अपने प्रति किये गए उनके उपकारों से भली प्रकार अवगत हैं और जो उनके लिए कोई भी चीज करने को तैयार हैं। इस ससार मे ऐसी अनेक विपत्तिया आती हैं जिन पर कोई बस नहीं चलता और अभी जो घटना घटी है इसी प्रकार की है।"[२१]

हंगरफोर्ड इस बात से सन्तुष्ट हुआ कि होलकर अपनी स्वामिभक्ति को सिद्ध करने के लिए व्यग्र है और उसने सरकार को प्रतिवेदन दिया, "देश पूर्णत शान्त है। इन्दौर का महाराजा सरकार के प्रति अपनी मित्रता और स्वामिभक्ति को सिद्ध करने के लिए व्यग्र है। महाराजा के सहायको ने समझ लिया है कि उन्होंने पहले होलकर को जो अंग्रेजों का शत्रु समझ लिया था, वह उनकी गलती थी और इसलिए अब उन्होंने अपने जिलो मे सब प्रकार की अव्यवस्था को दबा दिया है और व्यवस्था स्थापित करने मे सहायता देने को तैयार हैं। केवल महाराजा के कुछ सैन्य दल बुरी भावना दिखा रहे हैं और अब भी ग़दर और विद्रोह की प्रवृत्ति के हैं, परन्तु मैं समझता हूं कि उन्हें आगे अत्याचार करने से रोक दिया जायगा और यूरोपीय सैन्य दलों के आने पर महाराजा शीघ्र उनसे हथियार रखवा लेगा और उन्हें सजा देगा।"[२२] हगरफोर्ड ने बिना अधिकार के जो राजनीतिक दायित्व सभाल लिया था, उसे ड्यूरेण्ड ने पसन्द नहीं किया, परन्तु बम्बई के गवर्नर लार्ड एल्फिस्टन का समर्थन उसे प्राप्त था, जिसने यह विश्वास प्रकट किया कि सामान्य समयो के लिए निर्धारित उपचारो मे समय नष्ट न करके हंगरफोर्ड ने न्याय सगत कार्य किया था।

इस अफवाह से कि होलकर ग़दर करने वालों मे शामिल हो गया है, इन्दौर से वाहर अव्यवस्था फैल गई। अमझेरा के राजा ने भोपावर नामक छोटे कस्बे पर आक्रमण कर दिया। इस स्थान पर कुछ थोड़े से अंग्रेज़ थे जिन्हें थोडे से भीलो पर निर्भर रहना पडा। परन्तु इन्दौर की तरह यहा भी भील लडने के लिए तैयार नहीं थे और केवल वीस को छोडकर शेष सव रात के अन्धकार मे वाहर खिसक गए थे। भगोडे लोगो ने झावुआ के नावालिग राजा के यहा शरण ली, परन्तु यहा राजा के अरव सैन्य दलों ने इनकी मृत्यु की माग की। फिर भी राजा ने अपने विश्वस्त राजपूत आश्रितों की रक्षा मे उन्हें रखने की पहले से ही सावधानी वरती। इस असुरक्षित स्थिति से इस दल को अन्त मे होलकर के द्वारा भेजे गए घुडसवारों ने वचाया।

---

२१ फारेस्ट, ए हिस्ट्री आफ दि इण्डियन म्यूटिनी, जिल्द ३, पृ० ११०-११

२२ वही, जिल्द ३, पृ० ११५-१६

इसी समय ड्यूरेण्ड लडाई के लिए बार बार तिलमिला रहा था। उसने वुडबर्न से मालवा पर अभियान करने के लिए अनुरोध किया। उसने भारत सरकार को समझाया कि नर्मदा-पंक्ति को घेरा डालने वाली रेखा के रूप मे रखने की अत्यन्त आवश्यकता है। इससे विद्रोह की बीमारी का संक्रमण दक्षिण मे नहीं फैल सकेगा। नागपुर के कमिश्नर के स्पष्ट आदेश विपरीत होते हुए भी उसने सैनिक अधिकारियों को अपने अपने स्थानो पर बने रहने के लिए अधिकार दे दिया। जनरल वुडबर्न ने अन्त में अस्वस्थता के कारण त्याग-पत्र दे दिया और बम्बई सेना का दस्ता ब्रिगेडियर स्टुअर्ट की अधीनता मे असीरगढ़ होता हुआ महू के लिए चल दिया। अभियान १२ जुलाई को शुरू हुआ और २२ तारीख को सेना ने असीरगढ़ के निकट पडाव डाला और वहीं ड्यूरेण्ड ब्रिगेडियर स्टुअर्ट से आ मिला। महू को २ अगस्त को सहायता दी गई। ड्यूरेण्ड को वर्षा ऋतु मे आगे युद्ध-कार्य बन्द करना पड़ा। जब तक सन्तोषजनक रूप से यह सिद्ध न हो जाए कि होलकर का विद्रोह मे कोई हाथ न था, वह उसके साथ सामान्य सम्बन्ध पुनः स्थापित करने को तैयार नहीं था।

जैसे ही ऋतु अनुकूल हुई, ड्यूरेण्ड सेना के दस्ते को लेकर धार के विरुद्ध लडने पहुंचा। धार एक अत्यन्त प्राचीन नगर था और इसी नाम के एक छोटे मराठा राज्य की राजधानी था। राजा अवयस्क था। उसकी सेवा मे किराये पर रखे हुए अरब और अफगान सिपाहियो ने जैसे ही सुना कि इन्दौर के रेजिडेंट भवन पर आक्रमण कर दिया गया है तो वे अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह कर बैठे। मालवा मे किराये पर रखे गए विदेशी सैनिको ने ग़दर मे मुख्य भाग लिया और लो का कहना है कि अगले वर्ष सर राबर्ट हैमिल्टन ने बुन्देलखण्ड के विद्रोहियों में एक आर्मीनिया के निवासी को पाया।[२३] धार के तरुण राजा की माता और चाचा पर यह सन्देह किया गया कि उन्होंने विद्रोह को भड़काया है।[२४] धार इन्दौर से केवल ३२ मील दूर है और ड्यूरेण्ड २२ अक्तूबर को किले के सामने पहुंच गया। दुर्ग-सेना ने आत्मसमर्पण करने से इन्कार कर दिया और उस स्थान का घेरा डाल दिया गया। इससे पूर्व कि इस पर आक्रमण किया जाता रक्षक चुपचाप किले को छोड़ कर बाहर चले गए। तरुण राजा ने बाहर निकल कर गवर्नर-जनरल के एजेंट का स्वागत किया। किला नष्ट-भ्रष्ट कर धरती में मिला दिया गया और रियासत अंग्रेजी राज्य में मिला ली गई, परन्तु बाद मे नाबालिग राजकुमार को वापस दे दी गई।

---

२३. लो, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २२६। लो का कहना है, "वह देखने मे एक अच्छा और गोरे रंग वाला तरुण व्यक्ति था और बहुत भडकीली पोशाक पहनता था।"

२४. ब्रिगेडियर स्टुअर्ट ने जब बिना शर्त समर्पण की माग की तो दुर्ग सेना ने जो उत्तर दिया उससे यह मालूम नहीं पड़ता कि वे राजा के स्वार्थ में युद्ध कर रहे थे। "आज सन्ध्या समय ब्रिगेडियर को किले से एक पत्र मिला जिसमे यह जानने की प्रार्थना की गई है कि किन शर्तों पर समर्पण स्वीकार किया जायगा। उत्तर मे बिना शर्त समर्पण कहा गया, जिस पर उन्होंने कहा 'बहुत अच्छा, हमें कोई परवाह नहीं। तुम धार के राजा की सम्पत्ति को नष्ट कर रहे हो, हमारी नहीं। हमने अपने कुछ थोडे से ही आदमी खोये हैं, परन्तु तोपों के गोलों से हमारे मवेशी मर रहे है।' इसलिए हमने घेरे को जारी रखा।" वही पृ० ७७

धार के सेना के इस दस्ते ने मन्दसौर के लिए अभियान किया, जो फीरोज शाह का मुख्यालय था। मार्ग मे जावरा के नवाब ने, जिसने अपनी रियासत मे पहले गम्भीर सकट का सामना किया था, ड्यूरेण्ड का हार्दिक स्वागत किया। फीरोज शाह के सैन्य दलों को अपने शत्रुओ का सामना करने के लिए नीमच के घेरे को उठाना था और गरोरिया मे उनकी पराजय हो गई। गरोरिया पर कब्जा हो जाने से मन्दसौर मे उनकी स्थिति प्रतिरक्षा के अयोग्य हो गई। शहजादा पहले ही इन्दौर के विद्रोहियों की कमान ग्रहण करने के लिए ग्वालियर चला गया था। १५ दिसम्बर को ड्यूरेण्ड इन्दौर वापस लौट आया। दूसरे दिन उसने अपना कार्य-प्रभार सर राबर्ट हैमिल्टन को सभाल दिया। सर ह्यू रोज ने उस सेना की कमान सभाली जिसका नाम अब मध्यवर्ती भारत युद्ध-क्षेत्र सेना (सैण्ट्रल इण्डिया फील्ड फोर्स) था।

इसी समय राजपूताना भी शान्त नहीं रहा। शासक बराबर अपने प्रभुओं के साथ थे, परन्तु सैन्य दल धर्म के प्रश्न पर उत्तेजित थे। अगस्त मे अजमेर की जेल मे एक छोटा-सा विद्रोह हुआ, परन्तु उसे आसानी से दबा दिया गया। इसके बाद नजीराबाद मे बम्बई सेना के मालेदार घुडसवार सैनिकों मे हल्का-सा दगा हुआ। बम्बई सैन्य दल बगाल के सिपाहियों से अधिक समाश्रयणीय समझे जाते थे और साधारणत उनके द्वारा आज्ञोल्लघन की आशका नहीं थी। उपद्रव केवल एक सैनिक द्वारा शुरू हुआ और जब उसका पीछा किया गया तो उसने १२वीं बम्बई पैदल सेना की पक्तियो मे शरण ली। इसी महीने के तीसरे सप्ताह मे जोधपुर सेना के कुछ थोडे से आदमी, जो अन्दारा में थे एक दिन जल्दी प्रात काल घने कुहरे के आवरण मे आबू मे आ गए और वहा उन्होंने सोये हुए यूरोपीय लोगों की खिडकियो से उन पर गोली मारना शुरू कर दिया। उनके गोली चलाने से केवल एक मृत्यु हुई। जनरल लारेंस का पुत्र जब जल्दी से कैप्टन हाल के बगले की तरफ जा रहा था तो उसकी जाघ मे गोली का घाव लगा, परन्तु वह शीघ्र अच्छा हो गया। विद्रोही लोग जब आबू के आक्रमण मे विफल होगए तो वे ऐरनपुरा को मुडे, जहा सेना का मुख्य दल छावनी डाले पडा था। लेफ्टिनेंट कोनोली, दो सार्जेंट और उनके परिवार बस यही यूरोपीय लोग उस समय वहा थे। कोनोली ने सिपाहियों को शान्त करने का प्रयत्न किया, परन्तु वह विफल रहा। उसने भीलो को हिन्दुओ और मुस्लिमो के विरुद्ध इकट्ठा करने का प्रयत्न किया, परन्तु भील राजभक्त होते हुए भी इतनी भारी विपरीत परिस्थितियो मे लडने को उद्यत नहीं हुए या उनमे लडने की शक्ति नहीं थी। यदि रिसालदार अब्बास अली ने वीरतापूर्ण हस्तक्षेप न किया होता तो कोनोली और दूसरे यूरोपीय लोग असन्दिग्ध रूप से मार डाले गए होते। अब्बास अली ने वास्तव मे यह भी प्रस्ताव रखा कि सेना के बहुत सारे सिपाहियो सहित वह विद्रोहियों का साथ छोड देगा बशर्ते कि उन्हें क्षमा-दान और लगातार नौकरी मे रहने देने का वचन दिया जाए। परन्तु मोंक मेसन को लगा कि हथियारबन्द विद्रोहियो के साथ शर्तें तय करने का उसे कोई अधिकार नहीं है।[२५] इसलिए अब्बास अली के सामने

२५ सम्भवत. यही एक मात्र कारण न था। प्रिचर्ड का तर्क है कि सभवतः एक

इसके अलावा और कोई विकल्प न था कि वह सेना के अन्य सिपाहियो के साथ अपने भाग्य का गठबन्धन करे। जोधपुर राज्य-क्षेत्र मे होकर विद्रोही अजमेर की ओर वढ़े। आवा का ठाकुर अपने अधिपति जोधपुर के महाराजा के साथ एक युद्ध लड़ रहा था और महाराजा ने एक छोटी सी सेना अपने विश्वस्त अधिकारी आनन्दसिंह की अधीनता में भेजी थी। ठाकुर ने अधीनता स्वीकार करने का प्रस्ताव रखा, यदि पोलिटिकल एजेंट मोक मेसन उसकी शर्तों को स्वीकार कर ले। यह स्वीकार किया जाता है कि जो शर्तें रखी गई थीं उनका भावनात्मक महत्व अधिक था, राजनीतिक महत्व कम और उनके स्वीकार करने से कोई उलझन नहीं पड़ती। परन्तु मोंक मेसन फिर हिचकिचाया। ठाकुर का झगड़ा महाराजा के साथ था, अंग्रेजी सरकार के साथ नहीं। महाराजा तव तक ठाकुर को क्षमा करने के लिए तैयार नहीं था जब तक वह अपनी ओर से स्पष्ट रूप से और विना शर्त के अपनी भूलो को स्वीकार न करे। इसलिए पोलिटिकल एजेंट ने हस्तक्षेप करना बुद्धिमानी का काम नहीं समझा। आवा के ठाकुर ने विद्रोही सेना से समझौता करना शुरू कर दिया जो उस समय उसके पड़ोस मे पहुंच चुकी थीं। ठाकुर ने उन्हे अपने किले मे आने दिया। ८ सितम्बर को उन्होंने पाली मे जोधपुर शिविर पर आक्रमण किया और महाराजा के सैन्य दलो को हरा दिया। आनन्द सिंह मारा गया और उसकी बन्दूकें तथा सैनिक-संग्रहागार विद्रोहियो के हाथ लगे। जनरल लारेंस को अब अनुभव हुआ कि ठाकुर और उसके नये साथियो को यदि वैसे ही छोड़ दिया गया तो प्रतिष्ठा की बडी हानि होगी, क्योंकि अंग्रेज़ लोग जोधपुर के पक्ष का घनिष्ठ रूप से साथ दे रहे थे। परन्तु आवा की शक्ति और परिमाण के किले को पराजित करने के लिए वह पर्याप्त सैन्य दलों को इकट्ठा नहीं कर सकता था। जो कुछ वह कर सका वह केवल किले के सामने विरोध का एक प्रदर्शन था। नकली रूप से पीछे हटकर वह दुर्ग-सेना को वाहर आने का प्रलोभन देना चाहता था, परन्तु वह उसके इस प्रलोभन में नहीं आई। इसलिए उसके सामने पीछे हटने को छोड़कर और कोई विकल्प न था और पीछे हटने का तात्पर्य साधारण लोगो की दृष्टि में पराजय था। आवा के विरुद्ध लारेंस के अभियान से एक बहुमूल्य जीवन की हानि हुई। मोक मेसन जोधपुर से गवर्नर-जनरल के एजेंट से मिलने के उद्देश्य से आया था। वह वस्तुतः शिविर से कुछ गज की दूरी पर ही था जब वह एक विगुल की आवाज से धोखा खाकर विद्रोही सैनिकों की पंक्तियों में चला गया और वहां तुरन्त मार दिया गया। जब इस वात का दूसरे दिन सबेरे पता चला[२६] तो आवा के ठाकुर ने उसके शव को अच्छी प्रकार से दफनाया। परन्तु आवा और विद्रोही सेना का मेल अल्पकालीन सिद्ध हुआ। सेना दिल्ली की ओर

वलिष्ठ हथियारवन्द दल पर विश्वास करना बुद्धिमानी नहीं थी। प्रिचर्ड, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २२६

२६. उस समय यह कहा जाता था कि उसका सिर काट डाला गया था और आवा के दरवाजों पर उसका प्रदर्शन किया गया था। परन्तु मुकदमा चलने के समय इस आरोप का समर्थन नहीं किया गया।

अपने मार्ग पर चल दी और ठाकुर को अकेले लडना पडा। नवम्बर मे जेरार्ड ने उसे नरनूल मे पूरी तरह हरा दिया। आवा के ठाकुर को अपना गढ़ जनवरी सन् १८५८ मे खाली कर देना पडा। उसने अपने मित्रो सहित मेवाड मे शरण ली[२७] और बाद मे अंग्रेज अधिकारियों के प्रति उसने आत्मसमर्पण कर दिया। एक आयोग के द्वारा, जिसके अध्यक्ष मेजर टेलर थे, दो अभियोगों के लिए उस पर मुकदमा चलाया गया (१) कैप्टन मोक मेसन के मारने वालों को उसने शरण दी, और (२) अगस्त सन् १८५७ से लेकर जनवरी सन् १८५८ तक उसने अंग्रेज सरकार के विरुद्ध विद्रोहियों का नेतृत्व किया। चूंकि दिए ए साक्ष्य दण्ड का समर्थन नहीं करते थे, इसलिए उसे छोड दिया गया।

आवा के ठाकुर कुशलसिंह से एक अधिक उच्च पद वाले राजपूत सरदार को एक अधिक गम्भीर अपराध के लिए दोषी ठहराया गया। राजपूताना मे मोक मेसन ही विद्रोह का एक मात्र शिकार नहीं हुआ था। कोटा के पोलिटिकल एजेंट मेजर बर्टन की मृत्यु भी १५ अक्तूबर को कोटा मे विद्रोहियों के हाथ हुई थी। उसके साथ उसके दो लडके भी मारे गए थे और महाराव पर यह सन्देह किया गया था कि वह भी विद्रोहियों के साथ षड्यन्त्र मे था।[२८] जून मे मेजर बर्टन कोटा सैनिक टुकडी के साथ नीमच मे सहायता देने के लिए गया था और जनरल लारेंस ने उसे अपने स्थान पर लौटने की अनुमति देना सुरक्षित नहीं समझा। इसलिए वह अपने परिवार के सहित नीमच मे ठहर गया। मोंक मेसन की मृत्यु और लारेंस के आवा से पीछे हट जाने के बाद वह कोटा लौट जाना चाहता था क्योंकि उसका विचार था कि उसकी वहा उपस्थिति महाराव के लिए शक्ति का एक स्रोत होगी। परन्तु महाराव के अभिकर्ता नन्द किशोर ने वहा जाने के लिए वह समय उपयुक्त नहीं समझा क्योंकि उसने वहा के सैन्य दलों मे यूरोपीय-विरोधी भावनाओं के सम्बन्ध मे सुन रखा था। बर्टन ने यद्यपि यात्रा को स्थगित कर दिया परन्तु उसने कोटा लौटने का विचार नहीं छोडा। इसके बाद नन्द किशोर अधिक अनुकूल खबरें लाया। महाराव ने कुछ अधिक विद्रोही तत्वो को देश के भीतरी भाग मे भेज दिया था और उसने सैन्य दलों के नेता से यह गम्भीर आश्वासन ले लिया कि पोलिटिकल एजेंट वापस आ सकते हैं और उन्हें कोई हानि नहीं होगी। बर्टन अपने दो पुत्रों के साथ, जिनमें से एक की आयु २१ वर्ष की थी और दूसरे की १६ वर्ष की, नीमच से चल दिया। चम्बल नदी पार करने के बाद नन्द किशोर का दिल घबराने लगा और उसने बर्टन को कुछ दिन वहा ठहरने की सलाह दी। बर्टन के पुत्र ने उसके द्वारा की गई आपत्ति को हल्का समझा और मेजर ने कहा कि यदि कोटा मे उसकी आवश्यकता नहीं है तो वह बूंदी जाएगा। जब नन्द किशोर ने देखा कि बर्टन सकल्प कर चुका है तो वह भयभीत हो गया और अधिक आपत्ति नहीं की। वहा पहुचने पर बर्टन ने देखा कि चिन्ता करने योग्य कोई बात नहीं थी। महाराव ने औपचारिक रूप से उससे भेंट की और उसने भी उनसे एक बार

---

२७ कोटारिया का सरदार उसका आतिथेय था।

२८ मेरा वर्णन जाच की कार्यवाही के विवरण पर आधारित है। फारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशन्स, सख्याए ३२४-२७, ५ अगस्त, १८५९

और भेंट की। अपनी भेंट के समय बर्टन ने महाराव से अनुरोध किया कि कुछ विद्रोहियो को सजा देने की आवश्यकता है। मैलेसन का कहना है कि महाराव ने यह रहस्य खोल दिया और यही दुःखान्त घटना का कारण हुआ।[२९] शहर के निवासियो को आगे होने वाले विद्रोह की चेतावनी नहीं थी और वास्तविक रूप मे आक्रमण होने से कुछ थोड़ी देर पहले ही एक व्यापारी अपना सामान लेकर रेजिडेंट-भवन पर गया था। मेहराव खां और लाला जयलाल के नेतृत्व में विद्रोहियो ने मि० साल्डर और मि० सैवियल को मार डाला और फिर रेजिडेंट-भवन पर धावा बोला। रक्षा के लिए तैनात एडजुटेंट ने महाराव को महल से बाहर जाने से रोक दिया और देवीलाल नामक एक आदमी को सैन्य दलो को यह समझाने के लिए भेजा कि वे पोलिटिकल एजेंट से छेड़छाड़ न करें। देवीलाल का उद्देश्य पूरा नहीं हुआ और कुछ विद्रोहियों ने उसे मार डाला। बर्टन और उसके दो पुत्र जब तक हो सका लड़ते रहे। उनकी रक्षा करने वाला कोई नहीं था, अन्त मे वे मार डाले गए। जयलाल ने एक दम कोटा की सत्ता को अनधिकृत रूप से अपने हाथ में ले लिया और महाराव को एक कागज पर हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य किया, जिसमे उसने जो कुछ हुआ था उसका दोष अपने पर लेना स्वीकार किया। लारेंस उस समय विवश था और वह कोटा पर आक्रमण नहीं कर सका। परन्तु मार्च सन् १८५८ मे जब बम्बई से और अधिक फौजें मेजर जनरल एच० जी० राबर्ट्स की अधीनता मे आई तो उसने कोटा के विरुद्ध अभियान किया। इस समय तक महाराव ने अपनी सेना के शेष राजभक्त सैनिको से तथा करौली के राजा के द्वारा भेजी गई एक फौज की सहायता से अपने महल के आसपास के क्षेत्र से तथा अपनी राजधानी के कुछ भाग से विद्रोहियों को साफ कर दिया था। शहर का शेष भाग तब तक विद्रोहियों के हाथ मे रहा जब तक कि ३० मार्च को किले को नहीं ले लिया गया। अंग्रेजी सैन्य दल तब तक नीमच नहीं गए जब तक कि महाराव की सत्ता पूरी तरह पुन. संस्थापित नहीं हो गई।

नीमच हमे ३ जून के विद्रोह की स्मृति दिलाता है। अपने अधिकारियो के जाने के बाद विद्रोही लोग देर तक नहीं ठहरे। दिल्ली उन्हें बुला रही थी, परन्तु राजधानी के मार्ग मे उन्होंने आगरा जाने का निश्चय किया। आगरा उत्तर-पश्चिमी प्रान्त के लेफ्टिनेंट-गवर्नर का मुख्यालय था। लेफ्टिनेंट-गवर्नर मि० कालविन एक लम्बे अनुभव का असैनिक अधिकारी था। वह लार्ड आकलैण्ड का विश्वस्त परामर्शदाता था, अतः कुछ समालोचको ने उसे अफगान-युद्ध और उससे सम्बद्ध दुर्घटना के लिए उत्तरदायी ठहराया है। मेरठ की खबर उसके लिए एक आश्चर्य थी, परन्तु उसने एक युद्ध-परिषद बुलाई। लेफ्टिनेंट गवर्नर ने स्वयं प्रस्ताव रखा कि ईसाई जनता को किले में भेज दिया जाए, परन्तु आगरा मे तीव्र मतभेद था और शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि लेफ्टिनेंट गवर्नर मे वह दृढ़ संकल्प और स्फूर्ति नहीं है, जिससे वह अपने तीव्र मतभेद रखने वाले सहयोगियो को अपने अधिकार मे रख सके। उसने पहला निश्चय मि० डरमण्ड से प्रभावित होकर किया। उसका

---

२९. मैलेसन, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द २, पृ० ५६९। परन्तु इसे प्रमाणित नहीं किया जा सका।

मत था कि शान्ति और सुव्यवस्था पुलिस-दल द्वारा बनाई रखी जा सकती है। इसके अनुसार पुलिस की शक्ति नए रंगरूटों की भर्ती कर बढाई गई, परन्तु दूसरे लोगों का इनकी राजभक्ति मे बिलकुल विश्वास नहीं था। ग़दर को एक विशुद्ध मुस्लिम आन्दोलन समझा गया और कालविन ने दिल्ली के मुस्लिम वश के परम्परागत शत्रु ग्वालियर रियासत के मराठा सैन्य दलों और भरतपुर रियासत के जाटों को सेना मे रखकर हिन्दू-मुस्लिम मतभेद का लाभ उठाने का निश्चय किया। दोनो रियासतो के राजाओ ने अपनी इच्छा से लेफ्टिनेंट-गवर्नर की इस माग का अनुकूल उत्तर दिया, परन्तु भरतपुर के सैन्य दलो के पास अच्छे हथियार नहीं थे और वे एक अनुशासनहीन भीड जैसे लगते थे।[३०] सिंधिया के आदमियो की राजभक्ति स्वय उसके कथन के अनुसार सशय से परे नहीं थी। लेफ्टिनेंट गवर्नर ने इसके बाद यूरोपीय और भारतीय सैन्य दलो की एक बडी परेड की। यह काफी आश्चर्यजनक है कि यूरोपीय लोगों को भारतीय सैन्य दलो पर अविश्वास न करने की सलाह देते हुए उसने दिल्ली मे कुमारी जेनिंग्स की हत्या का उल्लेख किया।[३१] उसने एक हिन्दुस्तानी भाषण मे सिपाहियो को आश्वासन दिया कि उसे उनकी स्वामिभक्ति मे पूर्णतम विश्वास है। परन्तु जब उसने कहा कि यदि किसी को कोई शिकायत हो या कोई सेना को छोडना चाहता हो तो आगे आए, तो सिपाहियो ने एक जोर की चिल्लाहट दी परन्तु सामने कोई नहीं आया। कुछ थोडे दिन तक कुछ भी असामान्य या असाधारण घटना नहीं घटी। कचहरिया मुकदमेबाजों से भरी हुई थीं, स्कूलों मे उपस्थिति सामान्य थी और सदा की भाति दैनिक चर्चा चल रही थी।

भय का प्रथम स्वर समीप के अलीगढ से आया। मेरठ मे सैपर्स और माइनर्स पर किस प्रकार आक्रमण किया गया था, इसकी कहानी अलीगढ़ मे पहुची, परन्तु सिपाहियो ने अशान्ति के कोई लक्षण नहीं दिखाए। एक ब्राह्मण ने दो सिपाहियों के सामने राजद्रोह के प्रस्ताव रखे। उसे गिरफ्तार कर लिया गया और सैनिक न्यायालय ने उसे मृत्यु की सजा दी, परन्तु उसके फासी होने से विद्रोह की छिपी हुई भावनाए फूट पडीं और बाहर आ गईं। "देखो हमारे धर्म के एक शहीद को", ऐसा कह कर एक सिपाही अपने साथियों का आह्वान करने लगा और खान मे विस्फोट हो गया। एक भी ईसाई की जान नहीं ली गई

---

३० भरतपुर के जो सैन्य दल मथुरा मे छोड़े गए, उनके सम्बन्ध में मार्क थार्नहिल कहता है, "मैंने इसे केवल शर्मीले ग्रामीणों का एक झुण्ड-सा पाया। किसी आदमी पर गण-वेश नहीं था, केवल थोडे से लोगों के पास गोली मारने वाले हथियार थे और यह गोली मारने वाले हथियार भी अत्यन्त साधारण प्रकार की पुरानी चाल की टोपीदार बारूदी बन्दूकें थीं। उनकी बारूद में नमी थी और वह फटती नहीं थी। उनकी गोलिया हमारी ही बन्दूकों के पुराने टूटे हुए छर्रे थे, जो उनके लक्ष्य स्थानों से खोदकर निकाल लिए गए थे। थार्नहिल उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ८१

३१ उसने कहा, "दिल्ली के धूर्तों ने एक पादरी की पुत्री को मार दिया है। यदि तुम्हें उनका सामना युद्ध-क्षेत्र मे करना पडे तो तुम इस बात को नहीं भूलोगे।" मैलेसन उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द १, पृ० १५०

परन्तु अंग्रेजी सत्ता एक दम धराशायी हो गई। पुरुष, स्त्री और बच्चो ने भाग कर जान बचानी चाही और आगरा पहुंचने वाले भगोडो मे लेडी ऊटरम भी थीं। अलीगढ मे उपद्रव प्रारम्भ होने के बाद मैनपुरी और इटावा मे भी उपद्रव हुए। मैनपुरी के राजा तेजसिंह[३२] की बन्दोबस्त के अधिकारियो ने बड़ी हानि की थी, परन्तु उसकी सम्पत्ति के एक प्रतिद्वन्द्वी दावेदार उसके चाचा राव भवानीसिंह ने अंग्रेजो के पक्ष का समर्थन किया।

इन उपद्रवो की खबरो से आगरा मे भय फैल गया और मतभेदो के कारण और भी गड़बड घोटाला हुआ। इस विषमावस्था मे बरेली के कर्नल ट्रूप ने कालविन से यह अनुरोध किया कि भय को कम करने की बडी आवश्यकता है क्योकि उसके अनुसार भय ही "उस सबका मुख्य कारण है जो इस समय देशी सेना के आदमियो मे हो रहा है।" उसने बिना किसी सकोच के इसे अपना निर्विशिष्ट मत बताया कि "इस वर्तमान उत्तेजना के समय देशी सिपाही से जो कुछ भी कहा जाय या उसके लिए जो कुछ भी किया जाय उसमे उस बदले या दण्ड का कोई संकेत न किया जाय जो उन लोगो की बाट जोह रहा है, जिन्होने सिपाही का नाम बदनाम किया है।" उसने आगे कहा, "जब तक कि यह सीधे आपकी ओर से या सरकार की ओर से (किसी बीच के अधिकारी के शब्द का कोई उपयोग न होगा) नहीं आता, तब तक इससे कोई लाभ न होगा।" ट्रूप के सुझाव के अनुसार २५ मई को कालविन ने एक घोषणा निकलवाई, "वे सिपाही जो गत उपद्रवो मे सम्मिलित रहे हैं, यदि इस समय अपने घरो को जाना चाहते हैं तो अपने हथियारो को सबसे पास के सरकारी असैनिक या सैनिक स्थान मे रख कर शान्तिपूर्वक जा सकते हैं। उन्हे इस प्रकार जाने की अनुमति दी जायगी और उनके साथ किसी प्रकार की छेडछाड़ नहीं की जायगी। बहुत से स्वामिभक्त सिपाहियो ने केवल इसीलिए सरकार का प्रतिरोध किया कि वे सिपाहियो की पक्तियो मे थे और उनसे नहीं बच सकते थे और इसलिए भी कि वे वास्तविक रूप मे समझते थे कि सरकार के कार्यो ने उनके धर्म और सम्मान की भावना को चोट पहुंचाई है। यह भावना पूर्णत: एक गलती थी, परन्तु फिर भी इसने मनुष्यो के मन पर प्रभाव डाला। गवर्नर-जनरल के द्वारा निकाली गई घोषणा बिलकुल स्पष्ट है और इन बातों पर सब सन्देहो को दूर कर देगी। उपद्रव मे जिस भी शैतानी दिमाग के आदमी ने उत्तेजना दी होगी या जो साधारण व्यक्तियों के विरुद्ध नृशंस अत्याचारो के अपराधी माने जाएंगे, उन सब को दण्ड दिया जाएगा। इस घोषणा के बाद जो लोग सरकार के विरुद्ध हथियार उठाएगे, वे सब खुले रूप मे शत्रु समझे जाएगे।"[३३] इस घोषणा का बड़ा विरोध हुआ और कटु समालोचना भी हुई और स्वय गवर्नर-जनरल ने इसका खण्डन किया। इसके स्थान पर एक नई घोषणा निकाली गई, जिसने स्पष्ट किया कि "जिन सेनाओ ने अपने अधिकारियो या अन्य व्यक्तियो को मारा है या उन्हे घायल किया है, उन्हें बिना शर्त क्षमा प्रदान नहीं की जा सकती और इसी प्रकार उन लोगो

---

३२ वह चौहान राजपूतों का मुखिया था। सन् १८४० के बन्दोबस्त मे उसके परिवार की करीब तीन-चौथाई सम्पत्ति चली गई।

३३ के, ए हिस्ट्री आफ दि सिपाय वार, जिल्द ३, पृ० २३०-३३

को भी जिनका सम्बन्ध निर्दय अत्याचारो से रहा है।"[३४] मथुरा और होडल से नए उपद्रवों की खबरें आईं। कालविन के परामर्शदाताओ में तीव्र मतभेद था और उसका स्वास्थ्य अत्यधिक परिश्रम के कारण गिर गया। ३१ मई को आगरा की दो देशी सेनाओं से हथियार रखवा लिए गए और अधिकतर आदमी छुट्टी लेकर घर चले गए।

लेफ्टिनेंट-गवर्नर को, जिसका शारीरिक स्वास्थ्य बिलकुल गिर चुका था, रुहेलखण्ड, मालवा और बुन्देलखण्ड मे ताजा हुई दुर्घटनाओं के समाचार से और अधिक बेचैनी हुई और उसके पद सम्बन्धी दायित्वो को एक प्रशासन-परिषद् को सौंप दिया गया, तो उसी समय नीमच के सैन्य दलो के समीप आने की खबर मिली। कोटा की सैनिक टुकडी के विद्रोह से उन्हें नई शक्ति मिली थी। यह सैनिक टुकडी आगरा की दुर्ग-सेना को और अधिक बल देने के लिए आई थी। परन्तु उनकी ईमानदारी पर सन्देह किया गया और उनकी जाच करने का निश्चय किया गया। यह आदेश दिया गया कि उनकी पैदल सेना और घोडे तो सेना के साथ विद्रोहियो के विरुद्ध अभियान में जाएगे, परन्तु उनकी बन्दूकें सुरक्षित यूरोपीय लोगों के पास छावनी की रक्षा के लिए रहेंगी।[३५] उन्होने अपने तोपखाने को अपने से अलग करना ठीक नहीं समझा और वे विद्रोहियो के शिविर मे जा मिले। ब्रिगेडियर पोलव्हील ने पहले यह निश्चय किया था कि वह नीमच के विद्रोहियों का इन्तजार आगरा मे करेगा, परन्तु बाद मे उसने अपने विचार को बदल दिया और उनसे लडने चल दिया। शाहगंज के युद्ध का परिणाम एक पूरी पराजय हुआ परन्तु अंग्रेज लोगो का यह सौभाग्य था विजेताओं ने इस विजय से कोई लाभ नहीं उठाया। नीमच के आदमी आगरा मे नहीं घुसे, परन्तु शहर की भीड ने उपद्रव किया और ईसाई जनता ने, जिसकी सख्या करीब ६ हजार थी, किले मे शरण ली। एक निवासी ने कहा है कि यह एक अनेक रगों की भीड थी, "जिसमे केवल ब्रिटिश द्वीपों के ही प्रत्येक भाग का प्रतिनिधित्व नहीं था, बल्कि इसमे यूरोप और अमेरिका के बहुत से भागो से अपनी इच्छा के बिना आए हुए प्रतिनिधि भी थे। गेरोन और लोयर नदियों के किनारे की ईसाई भिक्षुणिया, सिसली और रोम के पुजारी, ओहियो और बैसिल के धर्मोपदेशक, पेरिस के रस्सी पर नाच दिखाने वाले और आरमीनिया के घूम-घूम कर माल बेचने वाले छोटे सौदागर भी वहा थे। इनके अलावा

---

३४ वही जिल्द ३, पृ० २३५

३५ के, ए हिस्ट्री आफ दि सिपाय वार, जिल्द ३ पृ० ३८०-८१। इस सैनिक टुकड़ी पर शुरू से ही अविश्वास किया जाता था और यह मथुरा भेज दी गई। "मि० कालविन के कुछ परामर्शदाताओं ने इस सेना में गदर की प्रवृत्ति को समझ कर इसे दूर रखना ही अच्छा समझा। परन्तु कुछ दूसरों का इसकी राजभक्ति मे विश्वास था और इसे भग की हुई सेना के स्थान पर वहीं रखना चाहते थे।" थार्नहिल, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ११०। पुन "उन्हें भय था कि वे आदमी गदर करना चाहते थे। उन्होंने एक ऐसी सावधानी बरती जिसने उनका गदर करना प्राय बिलकुल निश्चित कर दिया। उन्होंने सेना को अलग होने का आदेश भेजा। तोपखाने को किसी एक स्थान पर जाने का आदेश दिया गया, घुडसवार सेना को किसी दूसरे पर और पैदल सेना को किसी तीसरे पर।" पृ० १८५

कलकत्ता के बाबू और पारसी सौदागर थे।" पहले भारतीयो को किले से अलग रखा गया था, परन्तु बाद मे जल्दी ही यह पता चला कि यूरोप और यूरेशिया के निवासी अपनी दैनिक आवश्यकताओ की पूर्ति स्वयं नहीं कर सकते और उनकी सेवा के लिए पर्याप्त संख्या मे ईसाई सेवक नही हैं। दो या तीन दिन के बाद नौकर वापस आए और अपने साथ धोबियो, कहारो, दर्जियो, गड़रियों, रसोइयो और मेहतरो के एक गिरोह को लाए। आगरे के किले का जीवन लखनऊ के रेजिडेंट-भवन के जीवन से बिल्कुल विभिन्न प्रकार था।

आगरे का घेरा नही डाला गया, परन्तु दुर्ग-सेना को पहले इसका पता नहीं था। एक बार गोली चलाने की आवाज से खतरे की चेतावनी दी गई। जब कुछ निवासी अपनी बन्दूकें लेकर उस स्थान पर पहुचे तो उन्हे पता लगा कि कुछ अंग्रेज सिपाही तथा गए वेश पहने अन्य लोग बाड़े मे होकर गोली चला रहे हैं। उनकी गोलियो का कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया जा रहा था, क्योकि कही भी कोई शत्रु था ही नही और वे लोग केवल अपने मनोरंजन के लिए एक गधे और गिद्धो के एक समूह की ओर निशाना लगा रहे थे। "गधा घास चरता रहा और पास मे मरी पड़ी एक भेड़ के गोश्त से अपना पेट भरते हुए गिद्ध शान्ति से बैठे थे।"[३६] "सफाई का कोई प्रबन्ध नहीं था और किला सब प्रकार की गन्दगियों से भरा पड़ा था।" थार्नहिल लिखता है कि "पहले दो दिन सब कुछ विस्मयकारी था। तीसरे दिन जब कि वस्तुस्थिति का भान हुआ, तो अधिकारियो के विरुद्ध कानाफूसी होने लगी। बाद मे इस अफवाह से असन्तोष और बढ़ा कि वास्तव मे वहां कोई अधिकारी है ही नहीं। पहले ये अफवाहे कानाफूसी के रूप मे चलती रही और फिर बाद मे स्पष्ट रूप से कह कर प्रकट की जाने लगीं। यह कहा जाता था कि कालविन का दिमाग जवाब दे गया है और जनरल मानसिक रूप से निर्बल हो गया है। इनमे से पहला कथन एक अतिशयोक्ति था और दूसरा बिलकुल असत्य था, परन्तु उस समय इन दोनो कथनो पर साधारणतः विश्वास किया जाता था।"[३७] नौकरों के लौट आने से खिचावट की अवस्था शान्त हुई और सिपाहियो तथा असैनिक लोगो को पता लगा कि कहीं कोई शत्रु नहीं है और वे बाहर जाने को स्वतन्त्र हैं।

शाहगज की पराजय का मूल्य ब्रिगेडियर पोलव्हील को अपनी कमान छोड़ देने के रूप मे चुकाना पडा और कर्नल काटन उसका उत्तराधिकारी नियुक्त हुआ। कुछ शरणार्थियो ने मुगलो के छिपे हुए खजानो के बारे मे सुन रखा था और खजानो की खोज उनका मनोरंजन का मुख्य साधन बन गया। परन्तु उनका सब परिश्रम हास्यास्पद सिद्ध हुआ। तब बहुमूल्य वस्तुओ को रखने के कक्षो की खोज गुप्त मार्गो का पता लगाने के लिए हुई, परन्तु केवल मनुष्यो की हड्डियो का ढेर हाथ लगा। महल मे प्रेतात्माए भी बताई जाती थीं, परन्तु प्रेतो की खोज इतनी मनोरजक नहीं होती जितनी उनकी कहानियां होती हैं। कुल मिलाकर किले के निवासियो का समय अच्छा गुजरा। परन्तु असैनिक और सैनिक

---

३६. थार्नहिल, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १६७

३७ थार्नहिल, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १७४-७५

लोगो मे सहयोग नहीं था। असैनिक लोगो के विरोध करने पर भी सेना ने एक मस्जिद गिराने मे अपनी मनमानी की। उन्हे एक बात का फिर भी आश्वासन था कि यदि मस्जिद जायगी तो उसके साथ सेना के अनुग्रह प्राप्त कमिसरियत के ठेकेदार, जोती प्रसाद का नया बनवाया हुआ सुन्दर भवन भी जायगा। "परन्तु अपनी इस आशा मे भी उन्हें निराशा हुई। प्रारम्भिक कठिनाइयो का प्रबन्ध करने के बाद, कारीगरों का एक दल आस-पास छोड दिया गया। कुछ दिनो तक वे एक धूल के बादल मे छिपे रहे, जिससे कभी-कभी फटने की आवाज सुनाई दे जाती थी। जब धूल हटी तो मस्जिद गायब थी, पास का स्थान भी नष्ट हो चुका था, परन्तु असैनिक अधिकारियो में रोष को उत्पन्न करने वाला जोती प्रसाद का मकान पहले जैसा ही दिखाई पड रहा था, ताजे रग से चमकता हुआ, सफेद और विजयी।"[३८] परन्तु छोटी चीजो के लिए झगडे चलते ही रहे। "असैनिक अधिकारी सेना के अधिकारियों से झगडते थे, जानपद सैनिक नियमित सैनिकों से और सब आपस मे एक दूसरे के साथ। जैसे यह सब पर्याप्त न हो, कुछ असैनिक अधिकारियो ने विना किसी उत्तेजना के रोमन कैथोलिक बिशप और पादरियो पर आक्रमण किया।"[३९]

अन्त मे आगरा के अधिकारियो का ध्यान अधिक गम्भीर चीजों की ओर गया और उन्होने अपनी शक्ति के प्रदर्शन का निश्चय किया। परन्तु इस अभियान ने कुछ कार्य सम्पन्न नहीं किया। यह दल हाथरस तक गया, कुछ धर्मान्ध गाजियो से लडा और वापस चला आया। जैसे ही सेना का दस्ता वापस आया, विद्रोहियो ने किले पर अपना अधिकार कर लिया।

९ सितम्बर को कालविन की मृत्यु हो गई। साधारण समय मे उसने अपने विस्तृत अनुभव, न्याय-प्रेम और व्यक्ति के अधिकार के प्रति सम्मान की भावना से शासित लोगो का आदर प्राप्त किया होता। परन्तु ग़दर की माग एक दृढतर भावना के पुरुष के लिए थी, जो वह नहीं था। कुछ हद तक उसके निर्णय न ले सकने का कारण उसकी अस्वस्थता हो सकती है। उसके पास आगरा मे काफी सख्या मे योग्य पुरुष थे, परन्तु वह उन्हें सहयोग पूर्वक कार्य करने मे प्रवृत्त नहीं कर सका। उसकी मृत्यु के बाद दिल्ली का पतन हुआ, और यह खबर यद्यपि बडी प्रसन्नता भरी थी, परन्तु फिर भी उसका एक अन्धकार पूर्ण पक्ष भी था। दिल्ली से बाहर निकाले जाने पर विद्रोही मथुरा आ गए और यह निश्चित नहीं था कि वे किधर जाएगे। इन्दौर के विद्रोही भी धौलपुर बताए जाते थे। यदि ये दोनों मिल कर आगरा पर दो ओर से आक्रमण करते तो कितनी देर तक किला रखा जा सकता था? कुछ भी हो, दिल्ली के विद्रोहियो ने यमुना को पार किया और इन्दौर के विद्रोही चलने की जल्दी मे नहीं थे। परन्तु विद्रोहियो के एक दूसरे के आसपास होने से आगरे मे बडा आतक और गडबडी फैल गई। यह मालूम हुआ था कि दिल्ली से कर्नल ग्रेटहेड की अधीनता मे सेना का एक दस्ता दोआब से विद्रोहियो को साफ कर देने के लिए भेजा गया था और यह आगरा से करीब ४० मील दूर एक स्थान पर पहुच चुका था। ग्रेटहेड के

---

३८ आर्नल्ड, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २६१

३९ वही, पृ० २६२

पास एक अत्यावश्यक प्रार्थना सहायता के लिए की गई थी और १० अक्तूबर को ग्रेटहेड ने यमुना को पार किया। आगरा की सहायता के लिए ग्रेटहेड जिन आदमियो को लाया था वे जंगली जैसे दिखाई देने वाले आदमियो का एक गिरोह मात्र थे, जो फटे-पुराने गण-वेश पहने हुए थे। जब ये लोग पंक्तिबद्ध होकर गुजरे तो उनमे कोई भी खास बात नजर नहीं आई। "बल और शक्ति का परिचय देने के कारण तो यह दृश्य प्रभावशाली जान पड़ता था, परन्तु वैसे इसमे कोई दिखावट या चमक दमक नही थी। भालेवाले घुड़सवार सैनिक सादे नीले कपड़े का गणवेश पहने हुए थे और शेष, सिख और अंग्रेज दोनो, मट-मैले रंग के सूती कपड़े पहने हुए थे। भालो की लाठियां सादे प्रभूर्ज वृक्ष की बनी हुई थीं जिन पर न रंग हो रहा था, न जिनमे झंडियां लगी हुई थी और न कोई दूसरा अलंकरण ही था। संक्षेप मे, यह युद्ध की वास्तविकता थी, उनकी पोशाक का पूर्वाभ्यास नहीं।"[४०] ग्रेटहेड को वताया गया कि इन्दौर के आदमियो से तत्काल कोई खतरा नही था क्योकि गुप्त वार्ता-विभाग की सूचना के अनुसार वे खारा नदी के दूसरे किनारे पर थे, परन्तु मुश्किल से तम्बू गाडे ही गए थे कि एक तोप की आवाज ने शत्रु के आने की सूचना दे दी। विद्रोहियों ने ग्रेटहेड को आश्चर्य मे डाल दिया था और ग्रेटहेड ने भी बिना जाने उन्हें आश्चर्य मे डाला था, क्योंकि उनमें से कोई भी दल दूसरे की उपस्थिति से अवगत नहीं था। जब कि आगरा के आदमी यह सोचते थे कि विद्रोही मीलो दूर हैं, इन्दौर के विद्रोहियों को ग्रेटहेड के आने की कोई सूचना नहीं थी। युद्ध के परिणाम स्वरूप अंग्रेजो की जीत हुई परन्तु पराजित सिपाहियों का पीछा करने मे कुछ देर हो गई क्योकि वरिष्ठ अधिकारी कर्नल काटन अपने अधिकार का प्रयोग करना और कमान को लेना चाहता था। इसके वाद आगरा सुरक्षित हो गया और ग्रेटहेड कानपुर जाने के लिए स्वतन्त्र था। शहर का जीवन फिर धीरे-धीरे सामान्य स्थिति पर आ गया।

---

४०. थार्नहिल, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २६५

अध्याय ६

पंजाब

पजाव एक ऐसा प्रान्त था जो एक समस्या बना हुआ था। इसे सन् १८४६ मे अंग्रेजी राज्य मे मिलाया गया था और वह एक युद्ध-प्रिय लोगों का घर था। परन्तु लोग आपस मे बटे हुए थे और उनकी "ईर्ष्याभरी प्रतिद्वन्द्विता" के कारण शासको ने अपने को सुरक्षित समझा। अंग्रेजी प्रशासन का उद्देश्य था, "दो वर्गों को एक दूसरे के द्वारा नियत्रण मे रखना, एक जाति को दूसरी जाति के साथ और एक मत को दूसरे मत के विपरीत सन्तुलित करते रहना।"

प्रशासन का कार्य बहुत योग्य आदमियों के द्वारा किया जाता था। वस्तुतः असैनिक सेवा के चुने हुए लोग पुराने और पूर्व के प्रान्तों से लाकर पजाब मे लगा दिए गए थे। पजाब मे पुरविया सिपाहियों की सख्या बहुत अधिक नहीं थी। अम्बाला से लेकर मरदान तक विभिन्न सैनिक स्थानो पर ६० हजार आदमी छावनी डाले पडे थे, जिनमे हिन्दुस्तानियों की सख्या ३६,००० थी जबकि २४,००० यूरोपीय और पजाबी थे।[1] सिख और पुरबियों के बीच प्रेम-भाव बिलकुल नहीं था और केव-ब्राउन का कहना है कि "पुरबिया" शब्द को जान-बूझ कर फिर प्रचलित किया गया था, "क्योंकि यह उस अपमान और घृणा को पुनर्जीवित करता था, जिसे इस वर्ग के प्रति सदा दिखाया जाता था। इसने पजाबी और हिन्दुस्तानी के बीच की खाई को और चौडा कर दिया और दोनो के बीच मेल-जोल को अधिक कठिन बना दिया।"[2] गुडगांव, रेवाडी और हिसार के सीमान्त के जिलो की बात यदि हम छोड दें तो पुरबिया सिपाही पजाब मे अपने को एक परदेश मे ही नहीं बल्कि एक प्रतिपक्षी देश में अनुभव करता था। उस अनुश्रुति को भी पुनर्जीवित किया गया, जिसमे गुरु के अनुयायियो को दिल्ली की लूट का वचन दिया गया था और सिखो को यह आश्वासन दिया गया कि यह भविष्यवाणी अंग्रेजों के नेतृत्व मे ही सच्ची सिद्ध होगी।

मेरठ और दिल्ली की खबरें लाहौर मे १२ मई को प्रात पहुची। चीफ कमिश्नर (मुख्यायुक्त) सर जान लारेंस रावलपिण्डी मे था और मरी जा रहा था। उसकी अनुपस्थिति मे उसका कार्य जुडीशियल कमिश्नर (न्यायायुक्त) राबर्ट मोटगमरी पर था। उस स्थान के मुख्य असैनिक और सैनिक अधिकारियो को अपने विश्वास मे लेकर ब्रिगेडियर कोरबेट की सहमति से उसने देशी सैन्य दलो से मिया-मीर मे हथियार डलवाने का निश्चय किया।

---

१ केव-ब्राउन, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द, १, पृ० ४१

२. वही, प्रस्तावना, पृ० १५-१६

प्रारम्भिक योजना यह थी कि पहले उनसे गोला-बारूद का सामान और उनकी अभिलाडन टोपियों को ले लिया जाय, किन्तु पुलिस के एक गैर कमिशन प्राप्त एक सिख अफसर ने एक व्यापक षड्यन्त्र की सूचना दी।[3] सूचना के स्रोतो की जांच का समय नहीं था और यही निश्चित किया गया कि भारतीय सेना से पूरी तरह हथियार डलवाकर सब खतरों को हटाया जाए। मोटगमरी और उसके मित्रो ने अपने इस निश्चय को अत्यन्त गुप्त रखा। १२ तारीख की रात को मियां-मीर छावनी में एक नृत्य का आयोजन था, जिसे स्थगित नहीं किया गया, परन्तु प्रातः जल्दी एक परेड की गई जिसका उद्देश्य उस सामान्य आदेश को पढना था, जिसके अनुसार बारकपुर की ३४वीं देशी पैदल सेना भंग कर दी गई थी। परेड की समाप्ति पर १६वीं, २६वीं और ४६वीं देशी पैदल सेना तथा आठवीं देशी घुड़सवार सेना ने अपने सामने भरी हुई बन्दूकें देखीं। उनसे यह बताया गया कि उनसे इसलिए हथियार रखवा लिए जा रहे हैं क्योकि ब्रिगेडियर उन्हे अपने यश को बरबाद कर देने का अवसर नहीं देना चाहता। यद्यपि पहले कुछ थोड़ी झिझक अवश्य हुई, परन्तु भारतीय सैन्य दलों ने आज्ञाकारिता के साथ अपने हथियारो का ढेर लगा दिया और हथियार डालने का काम बिना किसी दुर्घटना के पूरा हो गया। केव-ब्राउन का कहना है कि "इस प्रकार केवल ६०० यूरोपीय लोगो के सामने २५०० देशी सिपाही निहत्थे कर दिए गए और वे आपेक्षिक रूप से बिना हानि के अपनी पंक्तियो मे चले गए।"[4] राइस होम्स विस्मय करता हुआ कहता है, "इससे अधिक निर्णयात्मक विजय कभी प्राप्त नहीं हुई थी।"[5]

दूसरा कार्य गोविन्दगढ़ मे किया गया जिसकी कमान मे अमृतसर था और जो सिखो का पवित्र नगर है। यहां भी कार्य उतनी ही आसानी और निर्णयात्मक रूप से हुआ। महामहिम सम्राज्ञी की ८१वीं सेना कैप्टन शिचेस्टर की अधीनता मे लाहौर से इक्को में १२ ता० की रात को चली और दूसरे दिन प्रातः गोविन्दगढ़ पहुंची। सूर्योदय से पूर्व उन्हें शान्तिपूर्वक किले के अन्दर जाने दिया गया और अधिकारियो को नगर के सिखों के पवित्र स्थान होने के कारण अधिक चिन्ता नहीं उठानी पड़ी।

फीरोजपुर की स्थिति इतनी आसान नहीं थी। १०वी देशी घुड़सवार सेना के अलावा देशी पैदल सेना की दो रेजीमेंटें ४५वीं और ५७वीं भी वहा पड़ाव डाले हुए थीं। घुड़सवार सेना की राजभक्ति के सम्बन्ध मे तो कोई सन्देह नहीं था और पैदल सेना की रेजीमेंटो मे ५७वीं सबसे अधिक विद्रोही समझी जाती थी। ब्रिगेड मे अंग्रेज़ों की पैदल तोपखाने की दो कम्पनिया एक लाइट फील्ड बैटरी और दूसरी महामहिम सम्राज्ञी की ६१वीं रेजीमेंट थीं। मोटगमरी ने फीरोजपुर के अधिकारियो को मेरठ और दिल्ली के संकट के सम्बन्ध मे तथा पंजाब में हिन्दुस्तानियों के द्वारा संभाव्य विद्रोह के सम्बन्ध मे चेतावनी दे दी थी। ब्रिगेडियर इनस को भी, जिसने सिर्फ दो दिन पूर्व इस सैनिक-स्थान का कार्य-भार संभाला था, संकट का निश्चय था, परन्तु सेना के समादेशक अधिकारियो को इसका कोई भान

३. केव-ब्राउन, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द १, पृ० ९३-९६
४. वही, जिल्द १, पृ० ९६
५. होम्स, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ३१५

न था। इनस ने देशी पैदल सेना की दोनो रेजीमेटों को अलग-अलग रखने और फिर अलग-अलग उनसे हथियार डलवाने का निश्चय किया था। ५७वीं रेजीमेट तो आज्ञानुसार शिविर-मैदान मे चली गई, परन्तु ४५वीं रेजीमेट ने अपने लिए निश्चित मैदान के लिए एक सीधा रास्ता लिया और उन्होंने यूरोपीय सिपाहियों और तोपखाने की नई हलचल को देखा, जिसके सम्बन्ध मे कुछ भी जानने की उनसे आशा नहीं की जाती थी। "दग़ा है" की पुकार उठी और करीब २०० सिपाही प्राचीरों की ओर दौडे और शेष आगे चले गए।[६] गैर-कमिशन प्राप्त सिख अफसरों ने मोटगमरी को सूचना दी थी कि १५ तारीख को लाहौर, गोबिन्दगढ़, फीरोज़पुर, जालधर, और कागडा मे एक साथ विद्रोह होगा। परन्तु फीरोजपुर मे, जहा सिपाहियो को ब्रिगेडियर के इरादे का मूर्त साक्ष्य भी मिल गया था, केवल २०० आदमियो ने गदर किया। ५७वीं रेजीमेट उस रात पूर्णत शान्त रही। दूसरे दिन प्रात· लाइट कम्पनी ने बिना किसी विरोध के अपने हथियार डाल दिए और अपनी पक्तियों मे लौट गई। इसके थोडी देर बाद यूरोपीय सैन्य दलो के एक वर्ग की पक्तियों को साफ करने का आदेश दिया गया, जिससे ५७वीं रेजीमेट के शेष सिपाहियो ने सोचा कि लाइट कम्पनी को निहत्था करने के बाद उसे बन्दी बना लिया गया है और वे मैदान मे भाग गए। सन्ध्या के समय समादेशक अधिकारी ने उनसे अनुरोध किया कि वे यूरोपीय पक्तियो मे चले जाए और वहा अपने हथियार डाल दें। ४५वीं रेजीमेट ने, १३० आदमियों को छोडकर, सैनिक स्थान को छोड दिया। उनका पीछा किया गया और वे तितर-बितर कर दिए गए और वहा बन्दी बना लिए गए। कुछ को गाव वालों ने पकड लिया और फिर उन्हें वे सैनिक-स्थान मे लाए। शेष दिल्ली चले गए जहा उन्होंने विद्रोहियों की सख्या को वढाया। १०वीं देशी घुडसवार सेना राजभक्त बनी रही।

जालधर मे ३६वीं और ६१वीं देशी पैदल सेना पर उनके क्रमश मेरठ और लखनऊ के साथ पहले के सम्बन्ध के कारण सन्देह किया गया। जब करीब एक वर्ष पूर्व ६१वीं रेजीमेंट लखनऊ छोड कर चली आई थी तो वह सैनिक-स्थान विद्रोह के सक्रामण से मुक्त हो गया था, परन्तु यह भय था कि उनका सम्पर्क अब भी उनके भूतपूर्व मित्रों, बरहमपुर और वारकपुर मे प्रसिद्धि प्राप्त १९वीं और ३४वीं रेजीमेटों से बना हुआ था। परन्तु एकदम उनके विरुद्ध किसी खुले उपाय का अवलम्बन लेना बुद्धिमानी नहीं समझा गया, क्योंकि अधिकतर बाहरी सैनिक स्थानो मे यूरोपीय सैन्य दल बिलकुल नहीं थे और वे बिलकुल सिपाहियो की कृपा पर आश्रित थे। परन्तु युद्ध नीति की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान फिल्लौर मे यूरोपीय सैन्य दलो को रख दिया गया था और कपूरथला के राजा ने जालंधर की रक्षा के लिए अपने सैन्य दलो को भेज दिया था। ब्रिगेडियर और कमिश्नर ने दो सिपाही रेजीमेटो से हथियार डलवाने का निश्चय कर लिया था और वे केवल एक अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे। दो वार तारीख वदली गई और यह असम्भव था कि सिपाही अपने अफसरो के इरादो से बिलकुल अनभिज्ञ रहते। ७ जून को उन्होने अपने मालिकों का पूर्वानुमान कर विद्रोह कर दिया। फिल्लौर दुर्ग-सेना का भारतीय भाग भी

६ केव-ब्राउन, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द १, पृ० १०७-८

उनसे मिल गया और उन्होंने लुधियाना की ओर अभियान किया, जहा उनका कुछ प्रतिरोध हथियारो से किया गया। वे वहां अधिक देर नहीं ठहरे और दिल्ली के अपने मार्ग पर चल दिए। परन्तु शहर मे उनका थोड़ी देर के लिए दिखाई पड़ना इस बात का द्योतक था कि अंग्रेज शासक पंजाबी ग्रामीणो के स्नेह पर कितना कम निर्भर रह सकते थे। "आग लगाना, हत्या, मार्ग में लूट-पाट करना, मवेशियों को उठा ले जाना और डकैती एक दम फिर शुरु हो गई। कुछ अपराधी जब पकड़ लिए जाते थे तो बड़े सीधेपन से अपने बुरे चाल-चलन का कारण बताते और अपराध स्वीकार करते हुए कहते थे कि उन्होने तो यह समझ लिया था कि अंग्रेजी शासन समाप्त हो गया है।"[७] मैजिस्ट्रेट ने कानून तोड़ने वालो के विरुद्ध कड़ी कार्रवाई की। शहर पर एक दण्ड-कर लगा दिया गया और उसकी आबादी को निहत्था कर दिया गया क्योंकि उन्होने अपने हथियार कानून की रक्षा मे प्रयुक्त नहीं किए थे।

चौथी देशी पैदल सेना ने, जो कांगड़ा के किले मे दुर्ग-सेना के रूप में थी, मांग किए जाने पर हथियारो को डाल दिया। "उनका चाल-चलन आदि से अन्त तक बहुत नियमपूर्ण था और ऊपर से वे राजभक्त दिखाई देते थे।" १५ ता० को एक साथ विद्रोह करने की कोई सामान्य अभिसन्धि सिपाहियो मे हुई भी हो तो भी स्पष्टतः उसमें दृढ नेतृत्व का अभाव था। ये लोग उदासीन षड्यन्त्रकारी थे, जिन्होंने विद्रोह के लिए निश्चित दिन से केवल दो दिन पूर्व किसी प्रकार का सम्मिलित प्रतिरोध किए बिना अपने हथियार वापस कर दिये।

मुल्तान के कारण पर्याप्त बेचैनी थी, क्योकि मुल्तान, सिन्ध और बम्बई को जाने वाले मार्ग का समादेशन करता था। ६० यूरोपीयो और अनियमित सेना के १००० सिपाहियों के साथ, जिनकी स्वामिभक्ति संदिग्ध थी, २००० पुरबियो से हथियार डलवाना असम्भव समझा गया। इसलिए मेजर क्राफोर्ड चैम्बरलेन ने देशी अफसरो से घुल मिल कर बातें कीं और उस समय के लिए तो खतरा टल गया। परन्तु जालंधर मे ७ ता० को दुबारा उपद्रव हुआ, जिसने संशय को फिर पैदा कर दिया। इसी समय विश्वसनीय पंजाबी सैन्य दलो के आने से राजभक्त तत्वो की शक्ति बढ गई थी और हथियार वापस ले लेने का आदेश ९ जून को आया। दो संदिग्ध रेजीमेंटो को परेडमैदान से बाहर लाया गया और उन्होंने अपने आपको एक ओर राजभक्त घुडसवारों और दूसरी ओर यूरोपीय तोपखाने के बीच फंसे देखा। "भाग जाने का प्रयत्न करना पागलपन होता, हिचकने का अर्थ मृत्यु था।" हथियार दे देने के आदेश का पालन किया गया और इस प्रकार मुल्तान "बच गया"।

भारत-अफगान सीमान्त की दृष्टि से पेशावर का बड़ा सामरिक महत्व था। यह भाग किसी समय अफगान राज्य का एक अंग था। दोस्त मुहम्मद के हाथ से निकल कर यह रणजीत सिंह के अधिकार मे आ गया था और बाद मे लार्ड डलहौजी ने इसे शेष सिख राज्य के साथ अंग्रेजी राज्य मे मिला लिया। कर्नल हर्बर्ट एडवर्ड्स अभियान-दल का प्ररक्षी था और वह एक प्रमाणित योग्यता और परिपक्व निर्णय का व्यक्ति था। उसका उत्तर-दायित्व अत्यन्त कठिन था। दोस्त मुहम्मद को कूटनीति से और धन का लालच देकर अंग्रेजो ने अपनी ओर कर लिया था, परन्तु यह निश्चित नहीं था कि उसने अपनी हानि के साथ

---

७. होम्स, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ३३२

अन्तिम रूप से समझौता कर लिया है। ये आशका के प्रभूत कारण थे कि अपने पुराने दावों को फिर उपस्थित कर वह अपने नए साथियों की मुसीबतों से लाभ उठाना चाहेगा। घाटी और पास की पहाडिया एक ऐसे युद्धप्रिय लोगो का घर थी जो जाति, भाषा और संस्कृति मे अफगान लोगो के समान थे। परन्तु उनके कबीले सम्बन्वी मतभेद उनके जाति और धर्म सम्बन्धी बन्धनों से अधिक दृढ़ थे और प्रत्येक खेल या कबीला अकेला ही उन्नति या अवनति करता था। कानून और जीवन की पवित्रता का उन्हें कोई ध्यान नहीं था और सम्पत्ति उनके लिए एक अर्थहीन काल्पनिकता थी। वीरान पहाडिया उनके परिश्रम का कुछ फल न देती थीं और इसलिए एक स्मरणातीत काल से उन्होने अपनी रोजी तलवार से ही कमाई हैं। वे लूट के, लोभ के आसानी से शिकार हो जाते थे, इसलिए सिपाही-विद्रोह को एक ईश्वर के द्वारा प्रेषित वरदान समझ कर वे उसका स्वागत कर सकते थे। उनके पूर्वजों ने सिकन्दर महान की बहादुर पैदल सेना को तंग किया था और महान मुगल सम्राट की शक्ति की अवज्ञा की थी। अवितविल के फांसी के तख्ते भी उन्हें झुका नहीं सके थे और जब कि चारों ओर संकट उत्पन्न हो रहे थे अग्रेजी सेना से यह आशा नहीं की जा सकती थी कि वे इन लोगों के हृदय मे कुछ अधिक भय पैदा कर सकेंगे।

एडवर्ड्स के पास करीब १३,००० सैनिक थे, जिनमे सिर्फ ३००० यूरोपीय थे।[८] शेष में से अधिकतर संख्या पुरविया लोगों की थी परन्तु एक पुरबिया रेजीमेंट, जिसका नाम खिलात-ए-गिलजई था, पूरी तरह से विश्वसनीय थी। इसी प्रकार रक्षा-सेना-निकाय (गार्ड कोर) और सेना के पंजाबी लोगों पर भी भरोसा किया जा सकता था। परन्तु परिस्थिति खतरे से भरी हुई थी और एडवर्ड्स को वडी सतर्कता से चलना पड़ा। वह बेचैनी या भय नहीं दिखा सकता था, परन्तु वह किसी प्रतिकूल लक्षण को भी भुला नहीं सकता था। उसकी एक निगाह सिपाहियों पर रहती थी तो दूसरी उपद्रवी कबीलों पर। उनकी तटस्थता का निश्चय ही पर्याप्त न था, यदि सम्भव हो तो अंग्रेजों के पक्ष में उनका सैनिक सहयोग भी प्राप्त करना था। घाटी की सुरक्षा के लिए प्रवन्ध करना उसकी पहली चिन्ता थी। इसलिए एडवर्ड्स ने अपने सहयोगियों की परिषद बुलवाई, जिसमें ये लोग सम्मिलित थे, पेशावर के डिप्टी कमिश्नर कर्नल निकल्सन, पेशावर के समादेशक अधिकारी ब्रिगेडियर सिडनी काटन और पंजाव के वरिष्ठतम सैनिक अधिकारी जनरल रीड। कर्नल नेविले चैम्वरलेन को भी तत्काल कोहाट से बुलाया गया। यह निश्चय किया गया कि जनरल रीड को पजाव सैन्य दलों की कमान संभालनी चाहिए और रावलपिण्डी मे चीफ कमिश्नर से मिलना चाहिए। कर्नल चैम्वरलेन की अधीनता मे सेना का एक चलता-फिरता दस्ता सगठित किया गया और यह निश्चय किया गया कि जिन दो रेजीमेंटों पर सवसे अधिक असतुष्ट होने का सन्देह था, उन्हें विभिन्न स्थानों पर तितर-बितर कर देना चाहिए ताकि वे कोई सयुक्त कार्य न कर सकें। इसलिए ६४वीं देशी पैदल सेना तीन भागो मे विभक्त कर दी गई और तीन विभिन्न किलों की रक्षा के लिए भेज दी गई। ५५वीं सेना की दो कम्पनियां नौशेरा मे छोड दी गईं और शेष सैनिक मार्गदर्शक सेना-

---

८ केव-ब्राउन, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द १, पृ० १४१

निकाय (गाइड कोर) को सहायता पहुचाने के लिए, जिसे चलते-फिरते सेना के दस्ते से मिलने का आदेश दिया गया था, होती मर्दान चले गए। १६ मई को चीफ कमिश्नर के निमन्त्रण पर एडवर्ड्स रावलपिण्डी चले गए। २१ ता० को वह वापस लौटे और उन्हें पता लगा कि पेशावर के भारतीय सैन्य दल भी भरोसा करने योग्य नहीं समझे जाते। उसने एक दम २४वी और ३१वीं, देशी पैदल सेना तथा ५वीं लघु घुड़सवार सेना से हथियार डलवाने का निश्चय कर लिया। उनके विरुद्ध क्या साक्ष्य पाया गया था यह स्पष्टत. ज्ञात नहीं है, परन्तु अधिकतर अधिकारियों को अपनी-अपनी रेजीमेंटो की राज-भक्ति मे पूरा विश्वास था। २२ मई को जब सिपाही परेड मैदान मे इकट्ठे हुए तो उन्हे कुछ भी पता न था कि उन पर क्या होने वाला है। उन्होंने अपने को सेना के दो दस्तों के बीच मे पाया जो प्रतिरोध का अल्पतम लक्षण प्रकट होने पर गोली चलाने को तैयार थे। इसलिए सिपाहियों को जब आदेश दिया गया तो उन्होने अपने हथियारों को रख कर उन्हें इकट्ठा कर दिया। कुछ अफसरो ने इसे अपने सेना-निकायों का अनुचित अपमान समझा और उसके विरोधस्वरूप उन्होने अपनी तलवारें हथियारो के ढेर के ऊपर फेंक दीं।[९] इस प्रकार बिना एक गोली चलाए हुए तीन हजार सिपाहियो और पांच सौ सवारों को निहत्था कर दिया गया, परन्तु ५१ वीं सेना की एक कम्पनी ने रात के अन्धकार मे भाग गई। यह राजद्रोहात्मक सेना छोड़ कर भागना, जो कानून के शब्दो मे असंदिग्ध रूप से सेना छोड़ कर भागना था, जिसके लिए दण्ड अवश्य दिया जाना था। भगोडो को पकड़ने के लिए इनाम घोषित किए गए और कबाइलियो ने उनकी खोज करने मे बड़ा आनन्द लिया और इस प्रकार उन्होने ईमानदारी से कुछ चांदी के टुकड़े कमाए। बन्दियो को कड़ा दण्ड दिया गया। के कहता है, "यह समय कोमलता या दया के लिए नहीं था, यहां तक कि न्याय के लिए भी नहीं।"[१०]

५५वीं देशी पैदल सेना की कहानी कुछ भिन्न है। इस रेजीमेट के कुछ थोडे से आदमी सिन्ध नदी के दायें किनारे पर खैराबाद में पहरे के काम पर नियुक्त थे। फतेह खां खाटक नामक एक राजभक्त कबाइली भी अपने नए भरती किए हुए लोगों के साथ वहां नियुक्त था। २१ मई को खाटक सरदार ने मेजर वान को, जो नदी के उस पार अटक की कमान संभाले हुए था, सूचना दी कि ५५वीं देशी पैदल सेना के एक सिपाही ने उसके कुछ आदमियो को फुसलाने की चेष्टा की थी। अपराधी को सजा देने के लिए लेफ्टिनेंट लिंड को भेजा गया। इसके बाद क्या हुआ, इसका ठीक पता हमे नहीं है, परन्तु सूबेदार और उसके आदमियों ने उसकी आज्ञा का उल्लंघन किया और वे नौशेरा की ओर चले गए। मार्ग मे उन्हें २४वीं देशी पैदल सेना की एक टुकड़ी मिली जो कुछ सामान को सुरक्षापूर्वक पेशावर पहुंचाने जा रही थी। स्पष्टतः वे उस समय वहां नहीं थे जब उनकी रेजीमेंट के हथियार रखवाए गए थे और वे ५५वीं सेना आदमियो में शामिल हो गए। जैसे ही यह दल नौशेरा पहुंचा उसे १४वीं अनियमित सेना के द्वारा गिरफ्तार कर

९. होम्स, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ३२५-२६

१०. के, ए हिस्ट्री आफ़ दि सिपाय वार, जिल्द २, पृ० ४८१

लिया गया और उसके हथियार डलवा लिए गए। परन्तु ५५वीं सेना के आदमियो ने उन्हें फिर बचा लिया जबकि वे यूरोपीय रक्षकों (यूरोपियन गार्डस) के पास जा रहे थे। फिर उन्होने नदी को पार करने तथा होती मर्दान मे जाने का प्रयत्न किया जहा रेजीमेंट का मुख्य दल ठहरा हुआ था। परन्तु नावों का पुल टूट गया और केवल एक या दो सिपाही दूसरे किनारे पर पहुंच सके और उन्होने होती मर्दान मे अपने मित्रो को जो कुछ हुआ था उसके सम्बन्ध मे चेतावनी दी। उनके समादेशक कर्नल स्पोटिसवुड ने नौशेरा में बची हुई सेना को बुलवाया। २२ ता० को उन्होंने कैप्टन कैमरन की अधीनता मे अभियान किया और दूसरे दिन प्रात वे मुख्यालय मे पहुचे। "एक-दो अपवादों को छोडकर, अपने अधिकारियों के प्रति उनका व्यवहार पूर्णत सम्मानपूर्ण था। सचमुच ५८वीं सेना के अधिकारियो ने यह घोषणा कर दी थी कि उन्हें अपने आदमियों की अपेक्षा दसवीं अनियमित घुडसवार सेना के सवारो से खतरे की अधिक आशका थी, जबकि दसवीं सेना के अफसर पूरी वफादारी बरत रहे थे।" अब तक होती मर्दान की ५५वीं देशी पैदल सेना ने ग़दर का कोई खुला कार्य नहीं किया था। स्पोटिसवुड की लगातार प्रार्थनाओं के बावजूद, सैन्य दल पेशावर से कर्नल श्यूट की अधीनता मे मर्दान भेज दिए गए और कर्नल निकल्सन उसके साथ राजनीतिक अफसर के रूप मे गया। २४ ता० की रात को ५५वीं सेना के देशी अफसर मिलकर अपने कर्नल के पास गए और उससे स्पष्टीकरण मागा। वह उन्हें कोई स्पष्टीकरण नहीं दे सका और जब वे चले गए तो उसने आत्महत्या कर ली। ५५वीं सेना ने तब मर्दान छोड दिया और उसके सैनिक स्वात की दिशा मे भाग गए। पहले उन्होंने काफी लम्बी यात्रा की परन्तु निकल्सन ने उनका पीछा किया और उनमे से दो सौ से अधिक को मार डाला और एक सौ बीस को बन्दी बनाया, जिनको एक भयानक उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत किया जाना था।[११] निकल्सन ने सिखों तथा तरुण रंगरूटों के पक्ष का समर्थन किया। यह कहा जाता है कि सिखों ने अधिकारियों को पुरबिया सिपाहियों के ग़दर करने के इरादे के बारे मे सामयिक सूचना दे दी थी, परन्तु जब ५५वीं सेना होती मर्दान से भाग गई तो वे और सैनिको के साथ क्यों मिल गए, इसे कहीं स्पष्ट नहीं किया गया। सर जान लारेंस भी सब बन्दियो को फासी लगवाने के पक्ष मे नहीं था। "फासी की सजा देने के लिए १२० आदमियो की संख्या बहुत बडी है। हमारा उद्देश्य एक उदाहरण प्रस्तुत करके दूसरो को डराना है। मैं समझता हूं कि हमारा यह उद्देश्य इनमे से केवल 'एक चौथाई से लेकर एक तिहाई आदमियों के मार देने से भी प्रभावशाली रूप मे पूरा हो जाएगा।"[१२]

पुरबियो की ६ रेजीमेंट इस प्रकार प्रभावशाली रूप से विनष्ट कर दी गईं और अब पजाब सरकार अपनी सारी शक्ति प्रधान सेनापति को और अधिक कुमुक भेजने के महत्वपूर्ण कार्य मे लगा सकती थी। परन्तु सर जान लारेंस को इस नीति के अन्तिम परिणाम

---

११ केव-ब्राउन, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द १, पृ० १६४-७०, के, ए हिस्ट्री आफ दि सिपाय वार, जिल्द २, पृ० ४८२-८६

१२ के, ए हिस्ट्री आफ दि सिपाय वार, जिल्द २, पृ० ४८६

के बारे मे सन्देह थे जिसके अनुसार सब सिपाहियो के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी गई थी चाहे उन्होंने कोई विद्रोह के कार्य किए हो या नहीं। एडवर्ड्स को अपने एक पत्र मे उसने लिखा, "वर्तमान वस्तुस्थिति का दुर्भाग्य यह है कि प्रत्येक कार्य जो हम अपनी सुरक्षा के लिए करते हैं वह नियमित सिपाही पर एक आघात सिद्ध होता है। वह ऐसा अनुभव करता है और अपनी ओर से वह आगे का कदम उठाता है-और ऐसा ही हम भी करते हैं और इस प्रकार यह सिलसिला चलता जाता है जब तक कि या तो हम उन्हें विसर्जित न कर दें या मार न दें, या वे विद्रोह न कर बैठें और अपने अफसरो को न मार दें।"[१३]

६४वीं सेना के तीन भागो को बाद मे निपटाया जाना था। उन्हें अबूजाई, शाब कादर और मिचनी के किलो मे भेजा गया था। श्यूट और निकलसन ने इनमे से प्रत्येक स्थान के लिए अभियान किया और सेना-भागो को पूरी तरह से निहत्था कर दिया तथा उनका कोई विरोध नहीं किया गया। एड्वर्ड्स अब पुरानी सेना से लड़ने के लिए एक नई सेना की भर्ती करने के लिए स्वतन्त्र था और उसने कबाइलियों को अंग्रेजी झण्डे के नीचे इकट्ठे होने का निमन्त्रण दिया। यह एक साहसिक प्रयोग था परन्तु यह सफल हुआ। कबाइलियो को अंग्रेजो से कोई प्रेम न था, जो उनकी पहाड़ियो मे अनधिकृत रूप से घुस बैठे थे। परन्तु कुछ समय के लिए उनके लूट के प्रेम ने उनकी विदेशियों के प्रति घृणा पर विजय प्राप्त कर ली। कबाइलियों ने भारत की काल्पनिक सम्पत्ति के बारे मे सुन रखा था और अब उनकी कल्पना दिल्ली और लखनऊ मे मिलने वाले लूट के माल की सम्भावना से चकाचौंध हो गई। उन्हें विश्वास हो गया कि ये सफेद रंग के ईसाई ही उन्हें उस स्वर्गीय सोने के स्थान मे पहुंचायेंगे। अफरीदी, खाटक और मोमन्द कबीलों के लोग जब एक बार अपनी पहाड़ी मांदो से बाहर निकले तो उन्होंने अनुभव किया कि सलामती इसी में है कि अपने नए मालिकों के प्रति वफादार रहें। पुराने झगड़ो की स्मृतियां और कबीलो की आपसी प्रतिद्वन्द्विताओ के कारण वे घर पर अलग-अलग रहते थे। हिन्दुस्तान के मैदानो मे भी इनका भुलाया जाना सम्भव न था। इन उपद्रवी लोगो को भर्ती करना और उन्हें अपने देशी जिलो से हटाकर, जहां वे सतत रूप से चिन्ता और बेचैनी के कारण हो सकते थे, पांच नदियो के पार ले जाना जहां उनकी सैनिक प्रवृत्तियों और लूट-मार के लोभ को पूरा अवसर मिले, एक बहुत अच्छी चाल थी। अंग्रेजी साम्राज्य की नीति के साधन के रूप में सिपाही लाहौर, मुल्तान, पेशावर और बन्नू तक गए थे। अब परिस्थिति उनके लिए ठीक विपरीत हो गई और पंजाबी मुस्लिम और सिख, कोहाट के कबीले वाले और यूसुफजाई प्रदेश मिल कर हिन्दुस्तानी, मुस्लिम और गैर-मुस्लिम, इन सबके विरुद्ध हो गए, क्योंकि इन सबसे ही उन्हें घृणा थी। सिखो के पास ऐसा कोई नेता नहीं था जिसके चारो ओर वे इकट्ठे हो सकते। रणजीत सिंह का पुत्र अपने पूर्वजों के प्रदेश मे नहीं था। बहुत से सिख सरदार अपने विजेताओ के प्रति सहेतुक रूप से कृतज्ञ थे, क्योंकि यदि अंग्रेजी कूटनीति ने शासक-वंश को हटा दिया था तो उसने व्यक्तिगत रूप से सरदारो के स्वार्थो की रक्षा करने का पूरा प्रयत्न किया था। पुरानी व्यवस्था का फिर

१३. वही, जिल्द २, पृ० ४७२

लौट कर आना उनके लिए लाभप्रद सिद्ध नहीं होता। जिन सरदारों के विरुद्ध विद्रोह का सशय था उन्हें भी अग्रेज़ों के प्रति अपनी वफादारी सिद्ध करने का बहुत अच्छा अवसर मिला और उन्होंने इस सकट की स्थिति मे अपनी सेनाओं का प्रस्ताव रखा। परन्तु यह समझना गलत होगा कि पजाब मे ब्रिटिश प्रशासन को जो भी छोटी-मोटी परेशानी उठानी पडती थी, उसका एक मात्र कारण असतुष्ट सिपाही ही थे। दिल्ली के पास की रागड और अन्य जातियां सशस्त्र विद्रोह कर बैठीं, परतु उनकी लूट-मार की प्रवृत्ति थी और वे अराजकता और अव्यवस्था की हालत मे किसी भी अवसर से लाभ उठाने को तैयार न थे। हिसार, रेवाड़ी और गुडगाव के सीमान्त के जिलों मे पजाबी लोगों ने भी विद्रोहियो का साथ दिया और कुछ सिख सरदार उनमें पूरी तरह से शामिल हो गए।

१३ जून को सर जान लारेंस ने बगाल सेना के हिन्दुस्तानी सिपाहियों के नाम एक घोषणा निकलवाई," वे रेजीमेट जो इस समय स्वामिभक्त रहेंगी, अपनी अविचल राजभक्ति के कारण पुरस्कार प्राप्त करेंगी। जो सिपाही इस समय डिग जाएगे वे सदा के लिए अपनी नौकरी खो देंगे। समय निकल जाने के बाद फिर पछताने से कुछ नहीं होगा। अपनी स्वामिभक्ति और ईमानदारी सिद्ध करने का यही समय है। अग्रेज़ी सरकार को देशी सिपाहियों की कभी कमी नहीं रहेगी। एक महीने मे ही यह केवल पजाव मे ५०,००० की भर्ती कर सकती है। यदि पुरबिया सिपाही आज के दिन पर ध्यान नहीं देगा, तो यह कभी लौट कर नहीं आएगा। पजाब मे हमारे पास काफी फौज है जो सब विद्रोहियों को नष्ट कर सकती है। सरकार और साधारण आदमी दोनों राजभक्त और आज्ञाकारी हैं और साधारण आदमी है सेना मे तुम्हारा स्थान लेना चाहते हैं। वे सब लोग तुम्हें कुचलने के लिए मिल जाएंगे। फिर, किसी सिपाही को तो इग्लैण्ड की शक्ति का अदाज़ा भी नहीं हो सकता है? पहले से ही प्रत्येक स्थान से अग्रेज़ सिपाही हिन्दुस्तान आ रहे हैं।"[१४] परन्तु इसके बाद जो हुआ उससे पता चलता है कि चुनाव सिपाहियों के हाथ मे नहीं छोडा गया था। यह उन्हें निश्चय नहीं करना था कि उन्हें किस ओर जाना था, यह तो रावलपिण्डी, लाहौर और पेशावर के अधिकारियों को ही निश्चय करना था कि उन्हें किसी प्रकार का चुनाव करने का अवसर ही न दिया जाए। उन्होंने यह निश्चय कर लिया था कि हथियारबन्द सिपाहियों का बिश्वास नहीं किया जा सकता और उन्हें इस निश्चय को कार्यान्वित भी करना था।

पेशावर डिवीज़न की जिस दूसरी रेजीमेट को फसाया गया वह नौशेरा और पेशावर स्थित १०वीं अनियमित रेजीमेंट थी उसने कोई अनुचित कार्य नहीं किया था। परन्तु उन्होने ५५वीं सेना के कैदियों को बचाए जाने और भाग जाने दिया था और होती मर्दान से भागे हुए लोगो का पीछा करने मे उन्होने पर्याप्त उत्साह नहीं दिखाया। अत उनका भाग्य निश्चित हो चुका था परन्तु वे अपने आने वाले दुर्भाग्य के बारे मे अनभिज्ञ थे। २९ जून के दिन दोनों स्थानों पर बिना किसी कठिनाई के कार्य चलता रहा और १०वीं अनियमित सेना ने सुरक्षापूर्वक हथियार डाल दिए। परन्तु उन्हें वेतन, पेंशन और चरित्र की हानि

१४ केव-ब्राउन, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द १, पृ० २१६-१७

का ही दण्ड नहीं भोगना था। बल्कि उनकी सारी सम्पत्ति जब्त की जानी थी और यह जब्ती उनके घोड़ो तक ही सीमित नहीं थी। उनकी बैरकों की तलाशी ली गई और पहने हुए कपड़ो को छोड कर उनका सब सामान उनसे ले लिया गया। उनके स्त्री और वच्चे जो थोड़े बहुत गहने और आभूषण पहने हुए थे वे भी नहीं छोड़े गए।" उन्हे नावों पर बैठा कर सिन्धु नदी के पार उतारा गया और उसमे से हर एक को चार रुपये दिए गए। उनसे कहा गया कि वे जैसे चाहे अपने घर का रास्ता पकड़ें और साथ ही उन्हें यह चेतावनी भी दी गई कि उन पर नजर रखी जाएगी और यदि उन्होंने उपद्रव का कोई प्रयत्न किया तो उनको विनष्ट कर दिया जाएगा।"[१५]

इसी समय सेना का चलता-फिरता दस्ता आगे बढ़ रहा था। २१ जून को वह जालंधर पहुंचा। उसका प्रथम समादेशक अधिकारी ब्रिगेडियर नेविले चैम्बरलेन कर्नल चेस्टर की मृत्यु के बाद सेना का एडजुटेंट जनरल नियुक्त हुआ था और उसके रिक्त स्थान पर ब्रिगेडियर के पद पर निकलसन की नियुक्ति हुई थी। उसने ५५वीं लघु पैदल सेना तथा ३३वीं देशी पैदल सेना की जिम्मेवारी लेने से इन्कार कर दिया। अब तक ये रेजीमेंट शान्त रहीं थीं, परन्तु ३५वीं पर कड़ी निगाह रखी जा रही थी और ३३वीं अभी दस्ते में शामिल नहीं हुई थी। दोनों मिलकर खतरे का स्रोत बन सकती थीं, इसलिए निकलसन ने एकदम निश्चय कर लिया। सेना के दस्ते ने फिल्लौर के लिए अभियान किया और वहां किले की तोपों की हद में ३५वीं लाइट इन्फंट्री से हथियार डलवा लिए गए। जब ३३वीं सेना वहां आई तो उसने भी आज्ञानुसार अपने हथियार डाल दिए।" इस कुशल प्रबन्ध से करीब १,५०० विद्रोही सिपाहियों से केवल ८०० यूरोपीयों तथा एक दर्जन तोपों के सामने हथियार डलवा लिए गए और बन्दूक की एक भी गोली नहीं चलाई गई और न रक्त की एक बूंद ही बहाई गई।"[१६]

परन्तु आधे रास्ते में ठहरा नहीं जा सकता था। पंजाब पुरबियों से बिल्कुल खाली नहीं हुआ था। कम से कम ६ हथियारबन्द रेजीमेंट वहां और थीं।" ५८वीं देशी पैदल सेना रावलपिण्डी में थी, १४वीं झेलम में, ४६वीं सियालकोट मे, जिसके साथ नवीं लघु घुड़सवार सेना का एक स्कन्ध भी था और जिसका दूसरा स्कन्ध चलते-फिरते दस्ते में था, ५९वीं देशी पैदल सेना अमृतसर में, चौथी कांगड़ा और नूरपुर में और दूसरी

---

१५. केव-ब्राउन, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द १, पृ० २८४-९० जब्ती के काम को केव-ब्राउन ने इस प्रकार वर्णन किया है, "हर झोंपड़ी, हर दीवाल और हर छत की जांच की गई, हर दरार और छिद्र की खोज की गई। पंजाबी प्रसन्न हो रहे थे कि उन्हें पुरबियों को कुचलने का अवसर मिला है और निःसदेह साथ ही साथ उनके धन से अपने को धनवान भी बना रहे थे। सवारों से उनका गणवेश ले लिया गया। उनके कमरबन्द, पगड़ियां सब की तलाशी हुई। पैसा, जवाहरात, सब चीजें ले ली गई। "इसके बाद सिर्फ उनकी पगड़ी, चपकन और पतलूनों के साथ उन्हे वहा से उस रात लिंड के मुलतानी सिपाहियों की अधीनता में बाहर ले जाया गया।" पृ० २८८-८९

१६. वही, जिल्द १, पृ० ३०३

अनियमित घुडसवार सेना गुरदासपुर मे थी, ये सब हथियारबन्द थीं।" [१७] झेलम, सियालकोट, कागडा या गुरदासपुर मे कोई अंग्रेज सैन्य दल नहीं थे। इसलिए यह निश्चय किया गया था कि शेष पुरबिया रेजीमेंटो से हथियार डलवा लिए जाए ताकि वे कोई हानि न पहुंचा सकें। रावलपिण्डी और झेलम के सिपाहियों को एक साथ नि:शस्त्र किया जाना था। इस कार्य को सुगम बनाने के लिए १४वीं देशी पैदल सेना की दो कम्पनियों को झेलम से रावलपिण्डी स्थानान्तरित कर दिया गया था। इसी समय निकल्सन को आदेश दिया गया कि वह पीछे हटकर आगे बढ़े। जालधर से वह फिल्लौर गया और वहा से अमृतसर। ७ जुलाई को, जैसा सदा ऐसे अवसरों पर होता था, रावलपिण्डी मे परेड का आदेश दिया गया। परन्तु यूरोपीय सैन्य दलो और तोपखाने को देखकर सिपाही भयभीत हो गए और वे भागकर अपनी बैरको मे चले गए। वहा ५८वीं सेना के आदमियों ने शान्तिपूर्वक अपने हथियार डाल दिए, परन्तु १४वीं की दो कम्पनिया नगर की ओर भाग गईं। घुडसवार पुलिस ने उनका पीछा किया और जो बच गए उन्हें गाव वालों ने मार दिया क्योंकि प्रत्येक विद्रोही के सिर के लिए इनाम की घोषणा कर दी गई थी।

झेलम मे कार्य सुगमता से नहीं हुआ। कभी-कभी बहुत अच्छी तरह से बनाई हुई योजनाए भी विफल हो जाती हैं और कर्नल एलिस झेलम मे अपनी दाण्डिक सेना के साथ दिन निकलने के पूर्व नहीं वल्कि पीछे पहुचा। उसका उद्देश्य उसके सहयोगियों से भी अत्यन्त गोपनीय रखा गया था और उन्हें गुप्त आदेश दिए गए थे जिन्हें वे झेलम के पास पहुच कर ही खोल सकते थे। परन्तु यह नाटक इतनी बार खेला जा चुका था कि सिपाहियों को यूरोपीयों और मुल्तानियों के उद्देश्य के बारे मे कोई सन्देह नहीं था, क्योंकि उन्होंने परेड मैदान से ही उन्हें देख लिया था। सिपाही एक दम अपने हथियारों की ओर दौड़े और जोरदार मुकावला हुआ। पुराने ढग की बन्दूकें नए ढग की बन्दूकों और राइफलों के सामने कहीं ठहर सकती थीं, परन्तु सिपाही जान हथेली पर रख कर पूरे दिन लड़ते रहे क्योंकि उन्हें अपने बचने की कोई आशा नहीं थी। नावों का पुल नष्ट हो चुका था और झेलम को पार करना असम्भव था। एक या दो टोलियो ने इधर-उधर की नावों को पकडा परन्तु दूसरे किनारे पर पहुच कर वे शत्रु के हाथ में पड़ गए। उन ५०० आदमियों मे से जो कर्नल एलिस से ७ ता० के प्रात काल लडे थे, अन्त तक ५० भी बच कर नहीं भाग सके। १५० मुठभेड मे मर गए और १८० बाद मे पकड लिए गए। १२० कश्मीर राज्य-क्षेत्र मे चले गए जहा उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और बाद मे अंग्रेज अधिकारियों के हवाले कर दिया गया। इस प्रकार १४वीं देशी पैदल सेना विलुप्त हुई। [१८]

सियालकोट की ९वीं लघु घुडसवार सेना के सैनिक पुलिस दल के सिपाहियों को पहले से ही चेतावनी दे दी गई थी। उन्होंने झेलम के युद्ध के बारे मे सुन रखा था परन्तु सम्भवत उनको यह मालूम नहीं हो पाया था कि उसका अन्त किस प्रकार हुआ। फिल्लौर मे निकल्सन की कार्यवाहियो के बारे मे भी उन्हें निश्चित सूचना थी। अमृतसर

---

१७ केव-ब्राउन, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द २, पृ० ४८

१८ वही, जिल्द २, पृ० ५७

के कूपर के अनुसार यह अन्दाज का ही मामला था कि सियालकोट और झेलम में कोई गठबन्धन हुआ था या सियालकोट के आदमियो ने वहा की हताश मुठभेड़ के बारे मे सुना था। "परन्तु यह निश्चित है कि अमृतसर के चलते-फिरते दस्ते के अंग-स्वरूप ९वीं सेना के एक पक्ष से सम्बन्धित एक आदमी, जिसने अबुद्धिमत्तापूर्वक छुट्टी ली थी, विद्रोह का तात्कालिक कारण था। वह ३३वीं और ३५वीं देशी पैदल सेना के निहत्थे किए जाने की कहानिया लाया। तरह-तरह की झूठी बातो से उसने घुड़सवार सेना की भावनाओ को उभाडा होगा, क्योंकि उसी रात ४६वीं देशी पैदल सेना के प्रतिनिधियो की एक दूसरी गुप्त बैठक हुई थी।"[१९] अमृतसर के आदमी ने झूठ बोला था या नहीं यह केवल अनुमान का ही विषय है क्योकि प्रत्यक्ष सत्य भी काफी बुरा था। निकल्सन ने दो रेजीमेंटो से बिना किसी चेतावनी के और बिना किसी स्पष्टीकरण के हथियार छीन लिए थे। अपने सिपाही बन्धुओं की निगाह में इस अत्याचार के शिकार बेकसूर लोग थे, क्योंकि उन्होने कोई अपराध नहीं किया था। निकल्सन उत्तर की ओर बढता आ रहा था। ऐसी हालत मे दो ही रास्ते थे—वार करना या चोट खाना और सिपाहियो ने फैसला किया कि पहले वार करने का मौका दूसरे पक्ष को क्यो दिया जाय। घुड़सवार सेना ने नेतृत्व किया, पर ४६वीं देशी पैदल सेना उदासीन रही।

झेलम की खबर सियालकोट के डिप्टी कमिश्नर के पास ८ ता० को पहुंची। उसने एक दम इस खबर को सैनिक स्थान के समादेशक अधिकारी ब्रिगेडियर ब्रिंड के पास भेज दिया। जिस समय सियालकोट से यूरोपीय सैन्य दल हटाए गए तभी सर जान लारेंस ने सलाह दी थी कि स्त्रियो और बच्चों को लाहौर ले जाना चाहिए। परन्तु पहले खतरे के समाप्त हो जाने के बाद विश्वास पूरी तरह पुनः स्थापित हो गया था और कुछ थोड़े से लोगो को छोडकर शेष सबने वहीं ठहरे रहने का निश्चय किया। सियालकोट मे पुराना सिखों का एक किला था जो अच्छा खासा मजबूत हालत मे था। जब ९ ता० को सवेरे गदर हुआ तो यहीं पर यूरोपीय लोगो ने शरण ली। कुछ थोडे से लोग किले की ओर भागते हुए मारे गए या घायल कर दिए गए, परन्तु अधिकतर लोगो की जानें उनके नौकरो की या सिपाहियो की वफादारी के कारण बच गईं। केवल एक घटना मे श्रीमती हन्टर नामक एक स्त्री और उसका बच्चा मारे गए, परन्तु अपराधी कोई सिपाही नहीं बल्कि सियालकोट की जिला जेल का एक कोड़े लगाने वाला था जिसे अपने पद से अवनत कर दिया गया था।[२०] अन्यत्र स्त्रियो पर कहीं वार नहीं किया गया। हां पुरुषो पर गोलियां जरूर चलाई गईं।

गदर की शुरुआत घुड़सवार सेना ने की। डा० बटलर का कहना है, "सवेरे के सवा चार बजे मुझे सवारो को देखने के लिए बुलाया गया जिन्होने खुले रूप में गदर कर रखा था और जो छावनी में चारों ओर घोड़ो पर चढ़े हुए यूरोपीयन पोशाक मे दिखाई देने वाले हरेक मर्द को गोली का निशाना बना रहे थे।"[२१] कुछ थोड़े भारतीयो का भी

---

१९. कूपर, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १३७
२०. रिच, दि म्यूटिनी इन सियालकोट, पृ० २५
२१. वही, पृ० ३२

अनियमित घुडसवार सेना गुरदासपुर मे थी, ये सब हथियारबन्द थीं।" [१७] झेलम, सियालकोट, कागडा या गुरदासपुर मे कोई अंग्रेज सैन्य दल नहीं थे। इसलिए यह निश्चय किया गया था कि शेष पुरबिया रेजीमेटो से हथियार डलवा लिए जाए ताकि वे कोई हानि न पहुचा सकें। रावलपिण्डी और झेलम के सिपाहियों को एक साथ नि.शस्त्र किया जाना था। इस कार्य को सुगम बनाने के लिए १४वीं देशी पैदल सेना की दो कम्पनियों को झेलम से रावलपिण्डी स्थानान्तरित कर दिया गया था। इसी समय निकल्सन को आदेश दिया गया कि वह पीछे हटकर आगे बढ़े। जालधर से वह फिल्लौर गया और वहा से अमृतसर। ७ जुलाई को, जैसा सदा ऐसे अवसरों पर होता था, रावलपिण्डी में परेड का आदेश दिया गया। परन्तु यूरोपीय सैन्य दलों और तोपखाने को देखकर सिपाही भयभीत हो गए और वे भागकर अपनी बैरकों मे चले गए। वहा ५८वीं सेना के आदमियों ने शान्तिपूर्वक अपने हथियार डाल दिए, परन्तु १४वीं की दो कम्पनियां नगर की ओर भाग गईं। घुडसवार पुलिस ने उनका पीछा किया और जो बच गए उन्हें गाव वालों ने मार दिया क्योंकि प्रत्येक विद्रोही के सिर के लिए इनाम की घोषणा कर दी गई थी।

झेलम मे कार्य सुगमता से नहीं हुआ। कभी-कभी बहुत अच्छी तरह से बनाई हुई योजनाए भी विफल हो जाती हैं और कर्नल एलिस झेलम मे अपनी दाण्डिक सेना के साथ दिन निकलने के पूर्व नहीं बल्कि पीछे पहुचा। उसका उद्देश्य उसके सहयोगियों से भी अत्यन्त गोपनीय रखा गया था और उन्हें गुप्त आदेश दिए गए थे जिन्हें वे झेलम के पास पहुच कर ही खोल सकते थे। परन्तु यह नाटक इतनी बार खेला जा चुका था कि सिपाहियों को यूरोपीयों और मुल्तानियों के उद्देश्य के बारे में कोई सन्देह नहीं था, क्योंकि उन्होंने परेड मैदान से ही उन्हें देख लिया था। सिपाही एक दम अपने हथियारो की ओर दौड़े और जोरदार मुकाबला हुआ। पुराने ढंग की बन्दूकें नए ढग की बन्दूकों और राइफलों के सामने कहीं ठहर सकती थीं, परन्तु सिपाही जान हथेली पर रख कर पूरे दिन लड़ते रहे क्योंकि उन्हें अपने बचने की कोई आशा नहीं थी। नावों का पुल नष्ट हो चुका था और झेलम को पार करना असम्भव था। एक या दो टोलियो ने इधर-उधर की नावों को पकडा परन्तु दूसरे किनारे पर पहुच कर वे शत्रु के हाथ मे पड गए। उन ५०० आदमियों मे से जो कर्नल एलिस से ७ ता० के प्रात काल लडे थे, अन्त तक ५० भी बच कर नहीं भाग सके। १५० मुठभेड मे मर गए और १८० बाद मे पकड़ लिए गए। १२० कश्मीर राज्य-क्षेत्र मे चले गए जहा उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और बाद मे अंग्रेज अधिकारियों के हवाले कर दिया गया। इस प्रकार १४वीं देशी पैदल सेना विलुप्त हुई। [१८]

सियालकोट की ६वीं लघु घुडसवार सेना के सैनिक पुलिस दल के सिपाहियों को पहले से ही चेतावनी दे दी गई थी। उन्होंने झेलम के युद्ध के बारे मे सुन रखा था परन्तु सम्भवत उनको यह मालूम नहीं हो पाया था कि उसका अन्त किस प्रकार हुआ। फिल्लौर मे निकल्सन की कार्यवाहियो के बारे मे भी उन्हें निश्चित सूचना थी। अमृतसर

---

१७ केव-ब्राउन, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द २, पृ० ४८

१८ वही, जिल्द २, पृ० ५७

के कूपर के अनुसार यह अन्दाज का ही मामला था कि सियालकोट और झेलम में कोई गठबन्धन हुआ था या सियालकोट के आदमियों ने वहां की हताश मुठभेड़ के बारे मे सुना था। "परन्तु यह निश्चित है कि अमृतसर के चलते-फिरते दस्ते के अंग-स्वरूप ६वीं सेना के एक पक्ष से सम्बन्धित एक आदमी, जिसने अबुद्धिमत्तापूर्वक छुटी ली थी, विद्रोह का तात्कालिक कारण था। वह ३३वीं और ३५वीं देशी पैदल सेना के निहत्थे किए जाने की कहानिया लाया। तरह-तरह की झूठी बातो से उसने घुडसवार सेना की भावनाओं को उभाड़ा होगा, क्योकि उसी रात ४६वीं देशी पैदल सेना के प्रतिनिधियो की एक दूसरी गुप्त बैठक हुई थी।"[१९] अमृतसर के आदमी ने झूठ बोला था या नहीं यह केवल अनुमान का ही विषय है क्योकि प्रत्यक्ष सत्य भी काफी बुरा था। निकलसन ने दो रेजीमेटो से बिना किसी चेतावनी के और बिना किसी स्पष्टीकरण के हथियार छीन लिए थे। अपने सिपाही बन्धुओं की निगाह मे इस अत्याचार के शिकार बेकसूर लोग थे, क्योकि उन्होने कोई अपराध नहीं किया था। निकलसन उत्तर की ओर बढता आ रहा था। ऐसी हालत में दो ही रास्ते थे—वार करना या चोट खाना और सिपाहियो ने फैसला किया कि पहले वार करने का मौका दूसरे पक्ष को क्यो दिया जाय। घुडसवार सेना ने नेतृत्व किया, पर ४६वीं देशी पैदल सेना उदासीन रही।

झेलम की खबर सियालकोट के डिप्टी कमिश्नर के पास ८ ता० को पहुंची। उसने एक दम इस खबर को सैनिक स्थान के समादेशक अधिकारी ब्रिगेडियर ब्रिड के पास भेज दिया। जिस समय सियालकोट से यूरोपीय सैन्य दल हटाए गए तभी सर जान लारेंस ने सलाह दी थी कि स्त्रियो और बच्चो को लाहौर ले जाना चाहिए। परन्तु पहले खतरे के समाप्त हो जाने के बाद विश्वास पूरी तरह पुनः स्थापित हो गया था और कुछ थोड़े से लोगो को छोडकर शेष सबने वहीं ठहरे रहने का निश्चय किया। सियालकोट में पुराना सिखो का एक किला था जो अच्छा खासा मजबूत हालत मे था। जब ६ ता० को सवेरे गदर हुआ तो यहीं पर यूरोपीय लोगो ने शरण ली। कुछ थोड़े से लोग किले की ओर भागते हुए मारे गए या घायल कर दिए गए, परन्तु अधिकतर लोगो की जानें उनके नौकरो की या सिपाहियों की वफादारी के कारण बच गईं। केवल एक घटना मे श्रीमती हन्टर नामक एक स्त्री और उसका बच्चा मारे गए, परन्तु अपराधी कोई सिपाही नहीं बल्कि सियालकोट की जिला जेल का एक कोड़े लगाने वाला था जिसे अपने पद से अवनत कर दिया गया था।[२०] अन्यत्र स्त्रियों पर कहीं वार नहीं किया गया। हां पुरुषों पर गोलियां जरूर चलाई गईं।

गदर की शुरुआत घुड़सवार सेना ने की। डा० बटलर का कहना है, "सवेरे के सवा चार बजे मुझे सवारो को देखने के लिए बुलाया गया जिन्होने खुले रूप में गदर कर रखा था और जो छावनी मे चारों ओर घोड़ो पर चढ़े हुए यूरोपीयन पोशाक मे दिखाई देने वाले हरेक मर्द को गोली का निशाना बना रहे थे।"[२१] कुछ थोड़े भारतीयो का भी

---

१९. कूपर, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १३७

२०. रिच, दि म्यूटिनी इन सियालकोट, पृ० २५

२१. वही, पृ० ३२

जो अपने अंग्रेज स्वामियों के विश्वासपात्र समझे जाते थे, यही भाग्य हुआ। परन्तु ४६वीं देशी पैदल सेना अपने अधिकारियो के प्रति स्वामिभक्त रहना चाहती थी। उसके सिपाहियो ने अपने अधिकारियो को उनकी सुरक्षा के लिए अपने रेजीमेंट के क्वार्टर-गार्ड मे बन्द कर दिया और रात होते ही उन्हें उनके परिवारों सहित न केवल किले तक सुरक्षापूर्वक पहुंचा दिया बल्कि उन्हें सियालकोट छोड़ने से पूर्व पैसा भी दिया। एक कहानी यह भी है कि उन्होने बड़ा खतरा उठाकर अपनी रक्षा मे ली हुई एक महिला को अपने बगले मे छोडी हुई सम्पत्ति को प्राप्त करने में सहायता दी। "दिन मे जब उन्हें क्वार्टर गार्ड में बन्द कर दिया गया तो क्वार्टर मास्टर सार्जेंट की पत्नी रोती देखी गई थी। पहरे के अधिकारी हवलदार ने जब सामने आकर उससे रोने का कारण पूछा तो उसने कहा कि यद्यपि उन्होंने उसकी जान बचाई थी परन्तु वह बिना पैसे के थी क्योंकि वह अपना सब कुछ बगले मे रखा छोड़ आई थी। हवलदार ने कुछ आदमियों को इकट्ठा किया और तनी हुई सगीनों के साथ वे उसे छावनी से उसके घर तक ले गए, जहां उसे अपने नकद रुपया और दूसरी बहु-मूल्य वस्तुओं को इकट्ठा करने का समय दिया गया।" यहा तक कि ४६वीं सेना अपने समादेशक अधिकारी कर्नल फार्हर्सन और कैप्टन कालफील्ड को अपने साथ ठहराना चाहती थी। कर्नल को २,००० रु० प्रति मास का वेतन प्रस्तावित किया गया था और उसे पहाड़ियों में रहने की छुट्टी दे दी गई थी। इसी प्रकार कैप्टन कालफील्ड से कहा गया कि यदि वह अपनी पुरानी रेजीमेंट मे सेवा करना स्वीकार करले तो उसे १,००० रु० प्रति मास दिए जाएगे।[२२] पादरी पाल ने गिर्जे की दो ईसाई भिक्षुणियो और बच्चों सहित एक धोबी की झोंपड़ी मे शरण ली। यद्यपि वे भारतीय पोशाक में थे, परन्तु उनके हाथ और पाव उनके भेद को खोल रहे थे। सिपाहियों ने यद्यपि उन्हें मारने की धमकी दी, परन्तु ऐसा किया नहीं गया।

दोपहर बाद चार बजे विद्रोही होशियारपुर चले गए। वे अपने साथ एक पुरानी संकेत-बन्दूक ले गए थे जो उनके लिए बाद मे उस समय बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई जब उन्हें निकल्सन ने जा पकड़ा था।

सियालकोट मे विद्रोह शुरू होने से पूर्व निकल्सन ने ५९वीं देशी पैदल सेना से अमृतसर मे परेड करवाई थी और उसने उनको "उन सब के अच्छे चाल-चलन के लिए प्रशसा की और उन्हें निश्चय दिलाया कि उनके हथियार डलवाने का कोई कारण न होने के लिए उसे प्रसन्नता है।" परन्तु झेलम की सूचना ने उनके भाग्य का निर्णय कर दिया। दूसरे दिन सवेरे (९ जुलाई) उनसे परेड करवाई गई। जाहिर सिर्फ इतना किया गया कि उन्हें फासी लगती हुई दिखाई जा रही है। पर जब फांसी समाप्त हुई तो ५९वीं सेना को एकदम "हथियार इकट्ठे करने" का आदेश दिया गया। उन्होंने एक क्षण भी झिझक न करते हुए हथियार डाल दिए, क्योंकि उनके सामने और दोनों तरफ यूरोपीय थे और बन्दूकें थीं।"[२३]

---

२२ रिच, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ५३-५४

२३ केव-ब्राउन, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द-२, पृ० ७०-७१

परन्तु उन्होने अपना संकल्प कर लिया था। यदि बिना शर्त अधीनता राजभक्ति का प्रमाण थी तो वे राजभक्त थे, क्योकि अपनी पंक्तियो मे वापस आने पर उन्होंने पुराने ढंग की ७०० और बन्दूकें अपने अधिकारियों को लौटा दीं। दूसरे दिन सवेरे ६वीं घुड़सवार सेना के उस पक्ष की बारी आयी जिसका सम्बन्ध इतने लम्बे समय तक चलते-फिरते दस्ते के साथ रहा था। बिना वर्दी और हथियारो के हाजिरी लेने का आदेश दिया गया और सैनिक पुलिस के आदमियो को बताया गया कि उनके साथियो ने सियालकोट मे क्या किया है। फिर उनके हथियार इकट्ठे करके यूरोपीय पहरेदारो की देख रेख मे गोविन्दगढ़ पहुंचा दिये गये। उनके घोड़े भी सेना के उपयोग के लिए ले लिए गए।[२४]

इसके बाद निकल्सन ने सियालकोट के जवानो का पीछा किया। मुश्किलों का सामना करते हुए भी वह किसी न किसी तरह ११ ता० को गुरदासपुर जा पहुंचा। दूसरे दिन सवेरे उसे पता चला कि विद्रोही वहां से १० मील दूर त्रिम्मू घाट मे हैं, इसलिए वह फिर चल दिया। एक तेज लड़ाई के बाद विद्रोही नदी की ओर पीछे हट गए और निकल्सन के आदमी इतने थक गए थे कि वे पीछा करने के लिए नहीं बढ़ सके। परन्तु प्रकृति भाग्यवान जनरल के अनुकूल थी। सहसा नदी में बाढ़ आ गई जिससे भगोड़े जमीन के एक छोटे से टुकड़े मे, जो एक रात के अन्दर ही एक टापू बन गया था, फंस गए। यहां वे सब मारे गए। उधर उनका ध्यान किनारे पर स्थित तोपो की तरफ लगा रहा और इधर निकल्सन चुपके से नदी पार कर टापू पर जा पहुंचा। इस प्रकार सियालकोट ब्रिगेड नष्ट कर दिया गया।

१०वीं लघु घुड़सवार सेना अब तक राजभक्त रही थी। नाभा के राजा के राज्य-क्षेत्र मे एक विद्रोह को दबाने मे उन्होने क्रियात्मक सेवा की थी। परन्तु झेलम और सियालकोट के बाद किसी हथियारबन्द हिन्दुस्तानी में विश्वास नहीं किया जा सकता था, चाहे उसका पहले का लेखा कितना ही अच्छा क्यों न रहा हो। इसलिए राजभक्ति अब अपमान के विरुद्ध एक रक्षात्मक विधान के रूप मे बिलकुल नहीं रही थी। पुरबिया लोगो के लिए यह असम्भव था कि पंजाब सरकार के सामने अपनी स्वामिभक्ति सिद्ध कर सकें या उसके विश्वास-पात्र बन कर रह सकें। १०वीं सेना के हथियार छीन लिए गए थे, परन्तु अभी कुछ समय के लिए उनके घोड़े नहीं लिए गए थे।

कांगड़ा और नूरपुर की चौथी देशी पैदल सेना का अपना एक अलग ही दर्शन था। जब कांगडा मे हथियार मांगे गए तो वे तुरन्त दे दिए गए। सिपाहियो को यह विश्वास दिलाया गया कि उनकी ईमानदारी के बारे मे तो कोई सन्देह न था परन्तु उनसे हथियार ले लेने से वे दूसरे विद्रोही सेना की संक्रामकता से बच जाएंगे।" उनका उत्तर था कि "उनके हथियार सरकार की सम्पत्ति हैं और अपने अधिकारियो की प्रार्थना पर वे उन्हें छोड़ने को तैयार हैं परन्तु खेद यही है कि शक्ति का प्रदर्शन किया गया है।"[२५] नूरपुर का सेना-भाग, सम्भवतः अधिक कृतार्थ करने वाला था। ये

---

२४. केव ब्राउन, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द २, पृ० ७२-७३

२५. वही, जिल्द २, पृ० ८२

लोग हथियारो को अपने समादेशक अधिकारी मेजर विल्की के बंगले पर ले गए जो किले से करीब एक मील पर था। इस प्रकार वृत्त पूरा हुआ। खिलात-ए-गिलजई के अपवाद को छोडकर पजाब मे सब पुरबिया रेजीमेंटें, चाहे उनका पहले का लेखा और इस समय की प्रवृत्ति कैसी ही हो, इस प्रकार नि शस्त्र कर दी गई थीं कि वे हानि न पहुंचा सकें। परन्तु मनुष्य गणित शास्त्र की इकाइयो की तरह नहीं होते। यह पहले से नहीं बताया जा सका कि समान भावना से प्रेरित दो व्यक्तियो की प्रतिक्रियाएं क्या होगी। चौथी देशी पैदल सेना ने स्पष्टत हथियारो का छीना जाना अपने लिए अपमानजनक नहीं समझा। १४वीं और ४६वीं उसके केवल विचार मात्र से विद्रोह कर बैठीं।

हथियारवन्द हिन्दुस्तानी सिपाही एक खतरे की चीज था, हथियार से रहित होने पर वह एक समस्या बन गया। वह अपने आप पर नहीं छोडा जा सकता था। उसे घर भी नहीं जाने दिया जा सकता था।[२६] परन्तु पिंजडे में पडी हुई एक चिडिया सदा सींकचों से बाहर निकलने का मार्ग चाहती है। ३० जुलाई को २६वीं देशी पैदल सेना के सारे सिपाही जिनसे हथियार डलवा लिए गए थे एक साथ मिलकर मिया-मीर शिविर से भाग खडे हुए। हथियार के नाम पर उनके पास छोटी कुल्हाडिया और चाकू ही थे, परन्तु सख्या मे तो वे अधिक थे ही। वे मेजर स्पेंसर पर जिसने उन्हें रोकने की कोशिश की थी, टूट पडे और उसे मार डाला। उसकी मदद के लिए जो सार्जेंट मेजर आया वह भी मारा गया। यदि कोई झिझक या अनिश्चितता थी तो वह सिख सैनिको की अन्धाधुन्ध गोली वर्षा ने "हत्याओ को और शीघ्रता से किया और अच्छे, बुरे और उदासीन प्रवृत्ति वाले सबको भयभीत कर भगा दिया।"[२७] एक अप्रत्याशित बवण्डर ने उन्हें आच्छादन प्रदान किया जिसकी उन्हें बडी आवश्यकता थी। और पहले यह पता ही नहीं चला कि वे किस दिशा में भाग रहे हैं। दूसरे दिन उनकी उपस्थिति के सम्बन्ध में अमित्रतापूर्ण ग्रामीणो मे अजनाला के तहसीलदार को सूचना दी, जिसने तत्काल एक पुलिस-दल को लेकर उन पर आक्रमण किया। निहत्थे और भूख से मरते हुए भगोडे अपनी रक्षा नहीं कर सके और उनमे से १५० मारे जा चुके थे जब कि अमृतसर के डिप्टी कमिश्नर मेजर कूपर घुडसवारो के एक दल को लेकर उस स्थान पर जा पहुचे। उसने उन्हे "जगली कुक्कटो के एक झुण्ड की तरह लुढकते" और एक टापू मे मृत्यु की प्रतीक्षा करते देखा। नावें लाई गईं और उत्साही ग्रामीण उनके हाथ जोर से बाध कर उन्हें किनारे पर लाए। उनमे से कुछ थोड़े से फासी से बच गए क्योंकि वे हताश होकर नदी मे गिर गए थे। शेष जिनकी सख्या २८२ थी, अजनाला लाए गए। डिप्टी कमिश्नर ने अपराधियो को फासी लगवाने के लिए बहुत-सी रस्सिया मंगवाईं। कूपर की दृष्टि मे सब बन्दी हत्यारे थे, अतः उसने निश्चय किया कि उन सबको मरना चाहिए। परन्तु इतने लोगो को फासी देने के लिए पर्याप्त रस्सिया नहीं थीं, इसलिए यह निश्चय किया गया कि छोटे-छोटे खण्डों मे उन्हें गोली से

२६ आगरा मे जिन सिपाहियो के हथियार डलवाए गए थे उन्हे घर जाने की अनुमति दे दी गई थी।

२७ कूपर, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १५३

उड़ा देना चाहिए। शेष कहानी को अजनाला के वीर के शब्दों मे ही सुनिए, "जब करीब १५० आदमी मारे जा चुके थे तो एक मारने वाले को गश आ गया (गोली मारने वालो की टोली मे वह सबसे बडी आयु का था) और उसे थोड़े विश्राम की अनुमति दी गई। उसके बाद बढ कर संख्या २३७ तक पहुंच गई। तब जिला अधिकारी को सूचना दी गई कि शेष किले के अग्र भाग से, जहां वे अस्थायी रूप से कुछ घंटे पूर्व बन्दी के रूप मे रखे गए थे, आने के लिए इन्कार कर रहे हैं। यह सोच कर कि वे भागना और प्रतिरोध करना चाहेंगे, उनके भाग जाने के विरुद्ध तैयारियां की गई, परन्तु उस वास्तविक और भयानक भाग्य की सम्भावना के बारे मे कुछ नही सोचा गया जो उन शेष विद्रोहियो पर पड़ चुका था। उन्होने अपनी मृत्यु का कुछ घंटे पूर्व अनुमान कर लिया था। जब दरवाजे खोले गए तो उन सबको लगभग मृत पाया गया। अज्ञात रूप से हालवेल की काल कोठरी की दु:खान्त घटना दुबारा घटित हो गयी थी। रात भर कोई चिल्लाहट सुनाई नहीं पडी। ४५ लाशें उन लोगो की, जो भय, थकावट, गर्मी और घुटन से मर चुके थे, लाई गईं और ग्रामीण भंगियों द्वारा एक गड्ढे मे दबा दी गईं।[२८]

कूपर कहता है कि उसका न्यायपूर्ण कृत्य इकट्ठे हुए देशी आदमियों की राय मे, जिनके प्रति अपराध की पूरी व्याख्या कर दी गई थी, अधूरा था, क्योंकि "मैजिस्ट्रेट ने पुरुषो, स्त्रियों और बच्चो को भी सीधे गड्ढे मे नहीं डाल दिया था, जो विद्रोहियो के साथ बुरी तरह भागे थे" और वे लोग, "ब्रिटिश लोगो की दया और उनके न्याय पर विस्मय प्रकट कर रहे थे।"[२९]

पजाब की ग्रामीण जनता के अनुमोदन से ही सन्तुष्ट न होकर कूपर ने अपने देशवासियो को भी, जिनके स्नायु इतने बलवान नहीं थे, एक प्रवचन का उपदेश करना आवश्यक समझा। "कुछ ढोंगी मानवोपकारी व्यक्ति चिल्ला सकते हैं परन्तु अपने सम्पूर्ण सकल्पो और अभिभाषणो से वे उन लोगो को पुनर्जीवित नही कर सकेंगे, जिनका बलिदान उन जीवित लोगो के दोष से हुआ जिन्होने अहेतुक रूप से अपने स्पष्ट और सादे कर्तव्यो को करने से मुंह मोड़ा, जिनके करने से महत्ता की अवस्थाएं प्राप्त होतीं या ऐसे दृश्य उपस्थित होते जिनसे कमजोर स्नायुओ पर जोर पड़ता। ऐसे लोग सजा की सख्ती की तरफ तो देखते हैं परन्तु न्याय की तरफ नहीं। वे उस भयानक और विस्तृत दुर्घटना के दृश्य और स्मृति को भुला देते हैं जो हिन्दुस्तान से निर्बल परामर्श और हिचकपूर्ण कार्य पर सदा पड़ी है और सदा पड़ती रहेगी।"[३०]

---

२८ कूपर, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १६२-६३। केव-ब्राउन दम घुट कर मृत्यु होने के सम्बन्ध मे मौन है। वह कहता है, "यहा दूसरे दिन प्रातः एक आम मृत्यु दण्ड दिया गया और मिया मीर में विद्रोह शुरू होने के ४८ घंटे के भीतर, २६वीं देशी पैदल सेना का अस्तित्व समाप्त हो गया और पजाब की शान्ति अब तक प्राप्त कर ली गई है।" केव-ब्राउन उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द २, पृ० १००-१०१

२९. कूपर, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १६३

३०. वही, पृ० १६६

कूपर के कार्य को तत्काल सरकारी स्वीकृति मिली। सर जान लारेंस ने उसे लिखा, "२६वीं देशी पैदल सेना के विरुद्ध तुम्हारी सफलता के लिए मैं तुम्हे बधाई देता हू। तुमने और तुम्हारी पुलिस ने बडे उत्साह और भावना से काम किया और तुम सब राज्य से सम्मान पाने के अधिकारी हो।" कूपर के कार्यों की इससे भी अधिक उत्साहपूर्ण और हार्दिक प्रशसा रावर्ट मोंगटमरी ने की, "जो कुछ तुमने किया उसके लिए तुम्हें सम्पूर्ण सम्मान प्राप्त है। तुमने बहुत ही अच्छी तरह यह काम किया। जब तक तुम जीवित रहोगे यह सेहरा तुम्हारे सिर पर रहेगा।" इस पत्र के अन्त मे उसने यह पुनश्चलेख और लिखा जो उद्धरण के योग्य है, "शेष तीन रेजीमेट यहा कल बडी दुविधा में थीं, परन्तु अब मैं सोचता हूं कि वे मुश्किल से ही जाएगी। मैं तो चाहता हू कि वे चली जाए क्योकि वे मुश्किलें पैदा करती हैं। यदि उन्होंने गडबडी मचा दी तो एक भी आदमी नहीं बचेगा।"[३१]

परन्तु जो रेजीमेट यह सोचती थीं कि उन पर अत्याचार किया गया है वे २६वीं देशी पैदल सेना के भयानक अन्त से डरने वाले नहीं थे। दसवीं घुडसवार सेना के कमाण्डर-इन-चीफ से अपनी स्वामिभक्ति और अच्छी सेवा के लिए धन्यवाद प्राप्त कर लिए थे। फिर भी उनके हथियार इसलिए डलवा लिए गए कि दूसरे आदमियो पर झूठा होने का सशय था। जब उनके हथियार ले लिए गए तो ब्रिगेडियर ने उन्हें आश्वासन दिलाया कि जब उपयुक्त अवसर आएगा तो उनके अच्छे चाल-चलन को ध्यान मे रखते हुए उनको सर्व प्रथम अपने हथियार वापस दिए जाएगे। घोडे, सैनिको की व्यक्तिगत सम्पत्ति थे, वे सरकार के नहीं थे। परन्तु सरकार को नए भर्ती किए गए रगरूटो के लिए घोडो की आवश्यकता थी और यह निश्चय किया गया कि जो घोडे इस समय बेकार हैं और कुछ काम नहीं दे रहे हैं उन्हीं का प्रयोग किया जाए। दसवीं घुडसवार सेना के सिपाहियों के पहले सौ और फिर पचास घोडे सरकार ने ले लिए और अगस्त मे आदेश आया कि शेष घोडे भी सरकार के अश्वालय मे दुबारा जाने चाहिए। ब्रिगेडियर इनस ने लाहौर के अधिकारियों से अनुरोध किया कि वे अपने निर्णय मे परिवर्तन करें क्योंकि घोडों की हानि सिपाहियो के लिए एक अतिरिक्त अपमान था। १८ ता० को सरकार का अन्तिम आदेश फीरोजपुर पहुचा और १९ ता० को दसवीं घुडसवार सेना ने, जिसके हथियार डलवा लिए गए थे, विद्रोह कर दिया। उन्होने बन्दूकों को लेने का प्रयत्न किया परन्तु इसमे वे सफल नहीं हुए। सैनिक पुलिस के करीब १०० आदमियों को छोड कर पूरी रेजीमेट अपने घोडो के साथ बाहर निकल गयी और मार्ग का ठीक चुनाव करके सुरक्षापूर्वक बच निकली।

फीरोजपुर के दगे के बाद निहत्थी ५१वीं देशी पैदल सेना ने पेशावर मे विद्रोह कर दिया। वहा के अधिकारियो ने सिपाहियों की पक्तियों मे छिपे हुए हथियारों की तलाश के लिए जाच करवाई। २७वीं देशी पैदल सेना ने, जिनकी पक्तियों की पहले जाच हुई कोई प्रतिरोध नहीं किया, परन्तु ५१वी मिल कर विद्रोह कर बैठी। खतरे की सूचना दे दी गई और अफगान सिपाहियों पर टूट पड़े। इस मुठभेड मे सफलता का तो सवाल ही न था। सिपाही अच्छी तरह लडे परन्तु वे कुछ थोडी तलवारें और पुराने ढग की बन्दूकें ही इकट्ठी

---

३१ कूपर, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १६७-६९

कर सके थे जबकि उनके आक्रमणकारियों के पास राइफलें और बन्दूकें थी। उन्हे पूरी तरह विनष्ट कर दिया गया। "उन ८७० आदमियो मे से, जो २८ ता० को सवेरे १५वीं देशी पैदल सेना में थे, ४८ घंटो के अन्दर लगभग ७० भी जीवित नहीं रहे और कुछ दिन बाद विश्वसनीय प्रमाणो के आधार पर यह सूचना दी गई कि केवल १९ भूख-पीड़ित भगोड़े आस-पास की पहाड़ियो मे कहीं-कहीं घूम रहे हैं।"[३२]

पंजाब मे सिपाही अब खतरे का कारण नहीं थे। एडवर्ड्स ने प्रकट रूप से पेशावर को शान्त कर दिया था। परन्तु अधिकारी लोग अपनी बेचैनी को नहीं हटा सकते थे। वे अपने नए मित्रो मे विश्वास नहीं कर सकते थे। वे जानते थे कि उनकी राजभक्ति अत्यन्त निर्बल आधारों पर आश्रित थी। उन्हें भय था कि निर्बलता के अल्पतम लक्षण को देखकर ही पंजाबी मुस्लिम और सिख तथा मुल्तानी और कबीले वाले लोग अपने ईसाई स्वामियों के विरुद्ध मिल कर एक हो जाएगे।[३३] व्यापारियों का वर्ग भी जिसने अंग्रेजो के दृढ़ शासन से बहुत लाभ उठाया था सरकार को ऋण देने मे हिचकता था। पेशावर के महाजन व्यापारियो ने केवल १५००० रु० देने का प्रस्ताव किया, परन्तु एडवर्ड्स ने उन पर जोर डाल कर उनसे ५ लाख रुपए दिलवाए।

पहले से ही यद्यपि अधिकारियों ने दृढ़ उपाय किए थे, परन्तु पंजाब के संकटो का अभी अन्त नहीं हुआ था। पहली सितम्बर को पहाड़ी आदमियो के एक गिरोह ने मरी पर आक्रमण कर दिया, परन्तु पुलिस को इस होने वाले आक्रमण की पहले से सूचना मिल चुकी थी और लुटेरो ने उन्हें पहले से ही तैयार पाया। कोई हानि होने से पूर्व वे पीछे हट गए। इससे अधिक गम्भीर विद्रोह मुल्तान जिले मे हुआ। इस नए विद्रोह का नेता खुर्रल कबीले का मुखिया अहमद खा था। उसके साथ अन्य युद्ध-प्रिय जातियां भी सम्मिलित हो गईं थीं और कुछ दिन के लिए मुल्तान और लाहौर के बीच का संचार मार्ग रुक गया था। मुल्तान की दुर्ग-सेना बहुत निर्बल थी और इस अप्रत्याशित खतरे का सामना करने के लिए काफी सैन्य दल नहीं भेज सकती थी। विद्रोहियों ने गोगेरा के जंगलों पर अपना अधिकार कर लिया और अपने अंग्रेज शत्रुओ के विरुद्ध उन्हे कुछ प्रारम्भिक सफलता भी मिली। मेजर चैम्बरलेन ने अपने आपको एक सराय मे घिरा पाया और मुल्तान से किसी सहायता को आशा नहीं थी। फिर भी सर जान लारेंस ने हाल में भर्ती की गई पंजाब घुड़सवार सेना का एक दल तत्काल भेजा। २८ सितम्बर को मुल्तान से भेजी गई एक टुकड़ी उनसे मिली और चिचवतनी सराय मे चैम्बरलेन को सहायता पहुंचाई। पहल अब अंग्रेजों के हाथ मे आ गई, परन्तु युद्ध-प्रिय कबीले के लोग जंगलो की शरण से बराबर लड़ते रहे। अहमद खां की मृत्यु ने युद्ध को समाप्त नहीं किया। विद्रोहियों ने मीर बहावल फत्याना के रूप मे एक नया नेता पाया। परन्तु चारो ओर से दबाव पड़ने पर विद्रोही धीरे-धीरे अपने देश के जंगल के अन्दर घुस गए जहा ब्रिटिश सैन्य दलो ने कुछ गड़रियो के मार्ग-निर्देशन मे उन पर

---

३२. केव-ब्राउन, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द २, पृ० ११३

३३. ब्रिगेडियर चैम्बरलेन अपने दिनाक १ सितम्बर, १८५८ के एक पत्र में कहता है कि सिखो ने अब यह सोचना शुरू कर दिया है कि विद्रोह सम्भव है।

आक्रमण किया और उन्हें पराजित कर दिया। इस प्रकार गोगेरा का विद्रोह समाप्त हुआ।[३४]

लारेंस और उसके सहयोगियो ने पूर्ण विजय प्राप्त करने के लिए सब कुछ की बाजी लगा दी थी। उन्होने दिल्ली की सकरी पहाडी की क्षीण पक्ति को शक्तिशाली करने के लिए पजाव के यूरोपीय सैन्य दलो को हटाया। वे जानते थे कि कोई भारतीय तत्व वास्तविक रूप मे ब्रिटिश स्वार्थो के लिए अनुकूल नहीं हो सकता था, फिर उन्होने सेना मे सिख शक्ति को करीव परिपूर्ण अवस्था तक बढ़ाया। वे कबायली नेताओ से दृढ़ता से खेलते रहे क्योकि वे जानते थे कि किसी भी क्षण वे फिरगियों से विरुद्ध हो जाएगे। परन्तु हिन्दुस्तान को बचाना था, इसलिए पजाब और पेशावर के साधनो पर अत्यधिक सीमा तक जोर डालने मे उन्हे हिचक नहीं थी। जब कि साम्राज्य लगभग जाता दिखाई देता था लारेंस इसे रखने के लिए उच्चतम मूल्य देने को तैयार था। उसने गम्भीरता पूर्वक प्रस्ताव किया कि पेशावर को छोड देना चाहिए। सीमान्त-प्रदेश मे लगे सैन्य दलों को भारत भेज देना चाहिए और दोस्त मुहम्मद को निमन्त्रण देना चाहिए कि वह उसका भार सभाले जो पहले उसका था। परन्तु एडवर्ड्स ने दृढ़ता पूर्वक इस प्रस्ताव का विरोध किया और लारेंस को यह सर्वोच्च वलिदान नहीं करना पडा। जो आदमी उसने भेजे, जो रसद उसने दी, उसने तराजू के पलडे को अपने देश के पक्ष मे कर दिया।

---

३४ केव-ब्राउन, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द २, पृ० २००-२३

अध्याय १०

आखिरी दौर

जब लखनऊ अंग्रेजों के हाथ में आ चुका था और उत्तर-पश्चिमी प्रान्त भी करीब-करीब पराजित हो चुका था तो सर कोलिन कैम्पबेल इस स्थिति मे हो गया कि वह रुहेलखण्ड की ओर बढ सके। वहां जून सन् १८५७ से एक विद्रोही सरकार काम कर रही थी। बहुत पहले से ही रुहेलखण्ड युद्ध प्रिय जातियो का निवास स्थान था। यहां कठेरिया राजपूत, जिनके नाम पर इस क्षेत्र का पूर्वतम नाम कठेर पड़ा, पूर्व से आकर बस गए थे। रुहेला लोग उनसे कहीं बाद में आए थे। उन्होने सत्रहवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में कठेर को अपना निवास-स्थान बनाया। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ मे वीर पठानो का निवास प्रदेश एक ब्रिटिश प्रान्त बन गया। सन् १७७४ मे वारेन हेस्टिंग्स ने ४० लाख रुपये लेकर नवाब को सैनिक सहायता दी थी और ब्रिटिश सैन्य दलो ने नवाब के लिए रुहेलखण्ड को जीता था। परन्तु सन् १८०१ मे नवाब ने ईस्ट इन्डिया कम्पनी को रुहेलखण्ड दे दिया और कालान्तर मे यह एक कमिश्नर का डिवीजन हो गया और बरेली इसका सदर मुकाम बना। इस डिवीजन मे पाच प्रशासनिक जिले थे: बरेली, मुरादाबाद, शाहजहांपुर, बदायूं और बिजनौर।

मई १८५७ में तीन देशी रेजीमेंट, ८वीं अनियमित घुडसवार सेना, १८वीं और ६८वीं देशी पैदल सेना तथा तोपखाने का एक भारतीय दल, ये सब बरेली मे छावनी डाले पड़े थे।[1] ब्रिगेडियर सिबाल्ड इस सैनिक स्थान का सामादेशिक अधिकारी था और उसके बाद दूसरे नम्बर का अधिकारी कर्नल कोलिन ट्रूप था, जिसने लेफ्टिनेंट-गवर्नर कालविन को घोषणा की प्रेरणा दी, जिसकी बहुत समालोचना की गई थी। बरेली मे मई के अन्तिम सप्ताह तक किसी संकट की आशंका नहीं हुई। नगर के मुख्य नागरिकों ने शान्ति के उद्देश्य के लिए अपनी सेवाएं स्वेच्छा से अर्पित कर दीं और खान बहादुर खां, जो मुस्लिम रईसो के मुखिया थे, प्रतिदिन कमिश्नर मि० अलेक्जेंडर से भेंट करने जाते थे।[2] स्वाभाविक रूप से यह आशा की जाती थी कि राजपूत ठाकुर और रुहेला सरदार एक दूसरे के विरुद्ध सन्तुलन का काम करेंगे और उनकी युगो पुरानी प्रतिद्वन्द्विता किसी अन्य चीज की अपेक्षा शान्ति और सुव्यवस्था के उद्देश्य को अधिक अच्छी तरह से पूरी करेगी। मई के शुरू मे घुडसवार सेना के रिसालदार मेजर मुहम्मद शफी ने ब्रिगेडियर को आश्वासन दिलाया था

---

१. फारेस्ट, ए हिस्ट्री आफ दि इण्डियन म्यूटिनी, जिल्द ३, पृ० ३०२

२. अलेक्जेंडर्स रिपोर्ट, अनुच्छेद २२

कि घुडसवार सेना हर हालत मे पूरी तरह से वफादार रहेगी और यदि पैदल सेना ने कोई उपद्रव किया तो वह उसे दबा भी देगी।[3] महिलाए अप्रैल मे ही नैनीताल के पहाड़ी स्थान पर भेज दी गई थीं।

निगाहबाज़ लोगों ने मार्च मे ही सिपाहियों मे एक गूढ परिवर्तन देख लिया था। घुडसवार सेना के एक दुर्गादास बन्द्योपाध्याय ने उनकी आदतों और सम्भाषण मे एक विचित्र परिवर्तन देखा, जिसने अप्रैल मे एक निश्चित अक्खडता का रूप ग्रहण कर लिया। उसका कहना है कि अप्रैल में ही चर्बी लगे हुए कारतूस की बात छावनी मे फैली और उसने इसकी सूचना अधिकारियों को दे दी थी।[4]

सक्रिय असन्तोष के प्रकट होने का प्रथम लक्षण १६ मई को मुरादाबाद मे दिखाई पडा जब २६वीं पैदल सेना के एक दल ने जेल के दरवाजों को तोड दिया। २१ मई को ब्रिगेडियर सिबाल्ड और कमिश्नर अलेक्ज़ेंडर ने क्रमशः सैन्य दलो और उनके अफसरों के सामने बरेली मे भाषण दिए और उनसे अनुरोध किया कि वे अपने धर्म के बारे में सब भय और सशय तज दें। उसने उन्हें विश्वास दिलाया कि उनके प्रति सरकार के रुख मे कोई अन्तर नहीं आया है। प्रकट रूप से वे उनके अभिभाषणों के परिणाम से सन्तुष्ट हुए और ब्रिगेडियर सिबाल्ड ने उत्तर-पश्चिमी प्रान्त की सरकार को लिखा, "इस समय सैन्य दलो ने प्रसन्नता और आज्ञाकारिता की जो भावना दिखाई है, उससे मुझे भविष्य मे अत्यन्त सुखद परिणामों की आशा है। मुझे विश्वास हो गया है कि यदि उनकी सेवाओं की आवश्यकता हुई तो वे अच्छे और राजभक्त सिपाहियो के रूप मे कार्य करेंगे।"[5] २६ ता० को कर्नल ट्रूप से कहा गया कि पैदल सेना की रेजीमेंटें अगले दिन दो बजे विद्रोह करेंगी और अपने यूरोपीय अफसरों की हत्या करेंगी। उसे अब भी आठवीं अनियमित घुडसवार सेना की स्वामिभक्ति के सम्बन्ध मे कोई सशय नहीं था। ३० ता० को कुछ नहीं हुआ और ३१ ता० को सवेरे भी बिलकुल शान्ति रही। परन्तु जैसे ही रेजीमेट की घडियों ने ११ बजाए, बन्दूकें गडगडाने लगीं और सिपाहियों की पक्तियो और अफसरों के निवास-स्थानों में आग लग गई। ब्रिगेडियर एक दम घुडसवार सेना की पक्तियों की ओर दौडा, परन्तु उसकी छाती मे गोली लगी, यद्यपि जब तक वह घटनास्थल पर नहीं पहुच गया उसकी मृत्यु नहीं हुई। कर्नल ट्रूप को घुडसवार सेना की सद्भावना मे कोई विश्वास नहीं था और उसने घोडे पर चढ़ कर नैनीताल जाने का निश्चय किया। घुडसवार सेना के समादेशक अधिकारी कैप्टन मैकेन्ज़ी मेजीज़ ने अभी अपनी सेना मे विश्वास नहीं छोडा था। उसने अपनी रेजीमेट के एक स्कन्ध को पैदल सेना के साथ एक पंक्ति मे खडे देखा और वह उन्हें समझाने लगा जब कि हरा झण्डा फहरा दिया गया और दोनों स्कन्धों पर उसका अधिकार समाप्त हो गया। इसलिए मैकेन्ज़ी भी ट्रूप और दूसरे अफसरों के साथ भाग गया।

दुर्गादास बन्द्योपाध्याय का वर्णन कुछ भिन्न प्रकार का है, परन्तु उसका यह दावा

---

३ दुर्गादास बन्द्योपाध्याय, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ८३

४ वही, पृ० ८०-८१

५ फारेस्ट, ए हिस्ट्री आफ दि इण्डियन म्यूटिनी, जिल्द ३, पृ० ३०४

नहीं है कि उसे घटनाओं का वैयक्तिक ज्ञान था। जब ग़दर हुआ तो उसे इसका कोई भान न था। यद्यपि उस दिन रविवार था, फिर भी वह मासिक हिसाब-किताब लेकर एडजुटेंट (सेना-सहायक) के बंगले पर साढ़े दस बजे सबेरे गया था।[६] और उसने लेफ्टिनेंट बीचर को अनुपस्थित पाया। इसके थोड़ी देर बाद चारो ओर से गोलियो की आवाज ने उसे विश्वास दिला दिया कि बहुत दिनों से जिस क्षण की आशंका थी वह आ गया है। उसने सुन रखा था कि यूरोपीय अधिकारियों को इस आने वाले विद्रोह की सूचना दे दी गई थी और अब वे विद्रोह के लिए नियत समय साढ़े दस बजे से पूर्व बीस विश्वस्त देशी अधिकारियो के साथ घुडसवार सेना की पंक्तियो के पास आमो के एक बाग मे जमा थे। घुड़सवार सेना यूरोपीय लोगो से मिलने के उद्देश्य से उनके पास आमो के बाग में गई। परन्तु वे जैसे ही उनके पास पहुंचे यूरोपीय लोग भयभीत हो गए और उन्होंने अपने घोड़े नैनीताल की ओर मोड़ दिए। जब रिसालदार मेजर मुहम्मद शफी वहां आया तब वे आधा मील दूर जा चुके थे। जब उसने उनके पास पहुंचने का प्रबन्ध किया तो भगोड़ो ने अपने घोड़ो की चाल और तेज कर दी। शफी ने अनुभव किया कि वे उसके इरादो को गलत समझ रहे हैं, इसलिए उसने एक लाल रूमाल से संकेत करना आरम्भ किया परन्तु अंग्रेज अफसरो ने पीछे मुड कर देखा तक नहीं और इसलिए वे उसके मैत्रीपूर्ण संकेत नहीं देख सके। शफी बड़ी उलझन मे पड़ गया। यदि यह अफसरो के पीछे घोड़े पर जाता तो यह सम्भव था कि अधिकारी उस पर गोली चलाते और स्वामिभक्त सैनिक-पुलिस के आदमी उन पर तत्काल टूट पड़ते और उन्हें मार डालते। इसलिए वह वापस आया और ग़दर करने वालो से मिल गया, क्योंकि उसके पास अपने आदमियों को वेतन देने और उनके लिए सामग्री जुटाने के कोई साधन न थे। दुर्गादास ने इस कहानी को स्वयं मुहम्मद शफी से सुना। कुछ भी हो, घुड़सवार सेना ने भगोड़ों का पीछा नहीं किया।[७]

विद्रोही सेना की कमान तोपखाने के सूबेदार बख्त खां ने संभाली और उसने अपने को ब्रिगेडियर घोषित कर दिया। खान बहादुर खां प्रशासन का प्रमुख हो गया, स्वतन्त्र शासक के रूप मे नहीं बल्कि दिल्ली के सम्राट की ओर से कठेर के वायसराय के रूप मे। वह रुहेला लोगो का स्वाभाविक मुखिया था, यद्यपि उसकी अवस्था ७० और ८० के बीच थी। वह रुहेलखण्ड के अन्तिम स्वतन्त्र शासक हाफिज रहमत खां का पौत्र था और इसलिए उसके अधिकारों और दावो का वैध उत्तराधिकारी था। अपने परिवार के मुखिया के रूप में उसे अंग्रेजी सरकार से प्रति मास एक सौ रुपये वजीफे के रूप मे मिलते थे। उसे एक और पेंशन अंग्रेजी सेवा मे एक न्यायिक अधिकारी के रूप में भी मिलती थी। उसमे न तो शारीरिक शक्ति थी और न मानसिक उत्साह, जिन दोनो की उस समय की परिस्थिति मे जरूरत थी। गदर के शुरू होने से पूर्व वह सम्भवतः कानून और व्यवस्था का एक सच्चा समर्थक था। ३० ता० को उसने कमिश्नर को चेतावनी

६. क्योंकि उसके कथनानुसार वह महीने का अन्तिम दिन था।

७. दुर्गादास बन्द्योपाध्याय, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ६१-६२

दी, "मामला निराशाजनक है और रेजीमेट अवश्य विद्रोह करेगी।" अलेक्जेंडर कहता है, "उससे मेरी यह अतिम मुलाकात थी। उसने मेरे साथ हाथ मिलाया और उसके अन्तिम शब्द अर्थपूर्ण थे—अपनी जान बचाओ।"[८] यह कहा जाता था कि एक दिन पहले रेजीमेट के आदमी खान बहादुर खा से भेंट करने गए थे।[९]

क्या विद्रोहियो और इस बुड्ढे आदमी के बीच पहले से कोई समझौता था? क्या वह कमिश्नर से एक दुहरा खेल खेल रहा था? अलेक्जेंडर का विचार है कि ऐसा नहीं था। "न तो किसी तथ्य से, न लेख और न मौखिक साक्ष्य या जाच से यह कभी माना जा सकता है या निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ३१ मई से ठीक पहले के दो सप्ताहो से पूर्व रेजीमेटो की पक्तियो के बाहर किसी प्रकार का सगठित षड्यन्त्र वर्तमान सरकार को उलटने के लिए या उसके स्थान पर किसी दूसरी प्रबंध सरकार को स्थापित करने के लिए हुआ।" "ग़दर के ठीक बाद जिस प्रकार की सरकार कायम हुई उससे मेरी राय मे यह सिद्ध हो जाता है कि पहले से किए गए षड्यन्त्र का विचार अनुपयुक्त है।"[१०]

यह सम्भव है कि वह वृद्ध व्यक्ति विद्रोह के उठते हुए ज्वार मे बह गया हो। वायसराय पद के लिए दूसरे उम्मीदवार थे और यदि उसने इसे अस्वीकार कर दिया होता तो उसके प्रतिद्वन्द्वी उस सम्मान और सत्ता को नहीं छोडते जो निजामत के साथ सयुक्त थी।[११] रुहेलखण्ड का शासन एक समय उसके परिवार के हाथो मे था और ब्रिटिश अधिकारी उसके अधिकारो के बदले मे उसे एक सौ रुपये की एक तुच्छ पेंशन देते थे। वह सरकार भी अब हटा दी गई थी और एक मुस्लिम बादशाह फिर से दिल्ली की गद्दी पर बैठा दिया गया था। क्या उसके लिए यह ठीक था कि वह उस शासन-सत्ता से अपने को तथा अपने पुत्रो को नियुक्त कर ले जो ग़दर के कारण सुलभ हो गई थीं? वृद्ध पुरुष ने सकल्प तो कर लिया, परन्तु वह नगर मे शान्ति और सुव्यवस्था बनाये रखने मे अशक्त था। सिपाहियों ने मनमाने ढग से बरेली के धनवान लोगों को लूटा और चार अग्रेज अफसर यदि उसके आदेश से नहीं तो कम से कम उसके नाम से मार डाले गए। कम से कम एक अग्रेज उसकी उपस्थिति मे मार डाला गया। उसने एक घोषणा निकलवाई थी जिसमे यूरोपियो को शरण देने वाले हर व्यक्ति को मृत्यु की धमकी दी गई थी। दूसरे स्थानो की तरह शहर के गुण्डे भी सेना के साथ उठ खडे हुए और उन्होने

---

८ अलेक्जेंडर्स रिपोर्ट आन बरेली, अनुच्छेद ५६

९ अलेक्ज़ेंडर्स रिपोर्ट, अनुच्छेद ५५

१० अलेक्जेंडर का पत्र उत्तर-पश्चिमी प्रान्त की सरकार के सचिव के नाम, दिनाक ३० नवम्बर, १८५८, सख्या ३३१, १८५८, अनुच्छेद ७ और ८

११ पठान जाति का मुखिया मुबारक शाह इस पद के लिए उम्मीदवार था। वास्तव मे वह कोतवाली जा रहा था जब उसे पता लगा कि खान बहादुर खा भी वहीं जा रहा है। वह एक चालाक आदमी था। उसने एकदम खान बहादुर खा के दावों को स्वीकार कर लिया और उसे बदायू का नाजिम नियुक्त कर दिया गया। इगलिस रिपोर्ट आन बरेली, पृ० २ तथा १३ दुर्गादास बन्द्योपाध्याय, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १४०-१४२

दूकानो और व्यापारिक स्थानो को लूटा। जो लोग सन्देह मे गिरफ्तार किए गए उनमे बंगाली क्लर्क भी थे जो ब्रिटिश सरकार के असैनिक और सैनिक विभागो से सम्बद्ध थे।

खान बहादुर खा ने, जो अब रुहेलखण्ड का नवाब-नाज़िम था, हिन्दुओ को और विशेषतः राजपूत ठाकुरो को प्रसन्न करने के लिए शीघ्र ही कदम उठाये और उसने यह भी प्रयत्न किया जिस पद को उसने अपने आप प्राप्त कर लिया था उसके लिए उसे औपचारिक नियुक्ति दिल्ली से मिल जाए। इसलिए उसने नजर और बहुमूल्य भेंटें सम्राट के पास भेजीं और उचित समय पर उसे आवश्यक फरमान मिल गया। ठाकुरो के एक मुखिया जयमल सिंह ने सर्व प्रथम खान बहादुर खां को अपना स्वामी स्वीकार किया,[१२] और दूसरों ने उसका अनुगमन किया। सोभाराम नामक एक बनिये को दीवान नियुक्त किया गया और केवल एक को छोड़कर उसके सारे कर्मचारी हिन्दू थे। बख्त खां के दिल्ली प्रस्थान कर जाने के बाद खान बहादुर खां ने पुनः व्यवस्था स्थापित करने का प्रयत्न किया और आठ सदस्यों की एक समिलि प्रशासन का कार्य चलाने के लिए बनाई, जिसमें दो सदस्य हिन्दू और छः मुसलमान थे। ठाकुर जयमल सिंह इस समिति का सदस्य था और यह समिति तब तक कार्य करती रही जब तक खान बहादुर खा के पास सत्ता रही।[१३] निःसन्देह हिन्दू भावनाओ का आदर करते हुए उसने शहर में गो-वध का निषेध कर दिया, परन्तु वह नाऊ मुहल्ला के सैयदों को अपने वश में नहीं रख सका और व्यक्तिगत झगड़े अक्सर साम्प्रदायिक रंग ले लेते थे। सोभाराम को मुसलमान अच्छी निगाह से नहीं देखते थे और वैसे भी जिसका काम कर इकट्ठा करना होता है उसके बहुत से शत्रु हो जाते हैं। सोभाराम एक ऐसे नए स्थापित शासन के माल विभाग का प्रमुख था जिसे धन की सदा ही आवश्यकता रहती थी, इसलिए अनेक शक्तिशाली और प्रभावशाली व्यक्तियों को उसने रुष्ट कर दिया था। एक दिन जब वह अपने कार्यालय में था तो एक उपद्रवी मुस्लिम भीड़ जबरदस्ती उसके घर मे घुस गई और यह बहाना करके कि वह उन अंग्रेजो को खोजना चाहती है जिनके वहां छिपे हुए होने का सन्देह है, उसका घर लूटा।[१४] इससे भी अधिक बुरा मामला बल्देव गिर गोसाईं का था। खान बहादुर खां के एक सम्बन्धी मीर आलम खा ने स्वयं गोसाईं पर उसके घर मे जाकर आक्रमण किया और उसे और उसकी पत्नी को हिंसा की धमकी दी। गोसाईं ने आत्म रक्षा करते हुए मीर को मार डाला। एक मुफ्ती ने उसका न्याय किया और उसे छोड़ दिया, परन्तु मीर आलम के भाई ने कानून को अपने हाथ मे लेकर गोसाईं की हत्या कर दी। खान बहादुर खा अपराधी को सजा नहीं दिलवा सका और हिन्दुओ को इससे स्वाभाविक रूप से शिकायत हुई।[१५] नया प्रशासन विशेषतः व्यापारी वर्ग मे लोकप्रिय नहीं था, क्योंकि उन्हें बहुत अधिक बार राज्य कोष मे धन देना पड़ता था। जो समिति कर का निर्धारण करती थी उसमे सब हिन्दू ही

---

१२. इगलिस की रिपोर्ट, पृ० ७, अलेक्जेंडर्स रिपोर्ट, अनुच्छेद ४६

१३. इगलिस की रिपोर्ट, पृ० ६

१४ दुर्गादास बन्द्योपाध्याय, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २२०

१५. इंगलिस की रिपोर्ट, पृ० १३-१४

थे और खान बहादुर खां ने बडी सावधानीपूर्वक कर लगाने के सम्बन्ध मे मुस्लिम मुल्लाओं से फतवा और ब्राह्मण पण्डितो के हस्ताक्षरों सहित व्यवस्था ले ली थी और इस प्रकार अपनी स्थिति को मजबूत कर लिया था, परन्तु फिर भी जिन पर करों का भार पडता था वे उसके प्रति रोष दिखाते थे। सोभाराम विशेषत ऐसे व्यापारी वर्ग से कर वसूल करता था जो अंग्रेज लोगों के साथ सहानुभूति दिखाने वाले माने जाते थे या उन लोगों से जो नए शासन के प्रति अच्छी भावना नहीं रखते थे। मिश्र बैजनाथ और "सरकारी कोषाध्यक्ष कुजेत लाल" को एक बार ५४,००० रु० देना पडा।[१६] लेकिन केवल यही एक अवसर नहीं था जबकि बैजनाथ को अपना धन देना पडा था। एक अर्थ मे तो वह सस्ता ही छूटा, क्योंकि वह न केवल अपने गुप्तचरों द्वारा नैनीताल के भगोडे अफसरो के साथ अपना सम्पर्क बनाए हुए था बल्कि उसके अभिकर्ताओं ने बदायूं के एडवर्ड्स को हरदेव बख्श के एक गाव मे खोज निकाला था और उसे धन दिया था, जिसकी उसे बडी आवश्यकता थी।[१७] चूंकि विद्रोही शासन को बैजनाथ की कार्यवाहियो का पूरा पता नहीं था इसलिए वह केवल धन की हानि उठाकर ही छुटकारा पा गया। परन्तु ब्रिटिश सत्ता के पुन स्थापित होने पर उसकी जो क्षति हुई थी उससे कहीं अधिक आर्थिक लाभ उसे हो गया। उसे न केवल राजा का खिताब दिया गया बल्कि उसके साथ विशाल जागीर भी मिली।

बदायू और बिजनौर मे जो घटनाएं हुई उनकी कहानी सक्षेप से कही जा सकता है। बदायू एक सैनिक स्थान नहीं था और मैजिस्ट्रेट विलियम एडवर्ड्स ही वहा एक मात्र यूरोपीय अफसर था। जब कुछ थोडे से सिपाहियों ने, जो वहां नियत किए गए थे, विद्रोह किया तो वह वहा से फतेहगढ़ चला गया। यह उसका सौभाग्य था कि वह उन अभागे लोगों मे नहीं था, जिन्होंने वहा ठहरने का निश्चय किया। एक मित्र जमींदार हरदेव बख्श के सुरक्षित निवास-स्थान धर्मपुर मे वह प्रोबिन से जाकर मिला और एक सुरक्षित गांव में वह तब तक घूमता रहा जब तक कि उसे सुरक्षापूर्वक कानपुर जाना सम्भव नहीं जान पडा।

बिजनौर की कहानी बडी मनोरंजक थी। लगभग मई के अन्त मे पडोस के गुण्डों ने जेल पर आक्रमण कर दिया। जेल के पहरेदारों ने आक्रमणकारियों पर गोली चलाई और उन्हें तितर-बितर कर दिया। कोई गम्भीर घटना नहीं हुई, यद्यपि कुछ अपराधी भाग निकले। बाद मे रुडकी के विद्रोही बिजनौर मे आए। इसी समय एक मुस्लिम अफसर को, जो बाद मे एक महान राजनीतिज्ञ और शिक्षाशास्त्री के रूप मे प्रसिद्ध हुआ, अपनी कूटनीतिक प्रतिभा दिखाने का अवसर मिला। बिजनौर के सदर अमीन सैयद अहमद ने विद्रोहियों से वार्ताएं कीं और उनसे अनुरोध किया कि वे अंग्रेजों को बिना हानि पहुंचाए छोड दें। परन्तु विद्रोही सैन्य दलों के चले जाने से बिजनौर के यूरोपीय अफसरो को केवल अस्थायी विश्रान्ति मिली। बदनाम गुलाम कादिर के भतीजे नवाब महमूद खा ने उस घर पर आक्रमण कर दिया, जिसमे यूरोपीय लोगों ने शरण ले रखी थी। सैयद अहमद

१६. इगलिस की रिपोर्ट, पृ० ५, और अलेक्जेंडर्स लेटर, सख्या ३३१, १८५८
१७ एडवर्ड्स उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २६ और पृ० १५६

फिर उनकी सहायता के लिए आए,और एक मैत्रीपूर्ण समझौता हो गया, जिसके अनुसार यूरोपीय लोगों को मेरठ जाने की अनुमति दे दी गई और जिला तब तक के वास्ते नवाब के लिए छोड़ दिया गया, "जब तक कि अंग्रेज लौटकर उसे वापस न ले लें।" इसके बाद तीन हिन्दू जमींदार, जिनमें तेजपुर के चौधरी (बाद में राजा) प्रताप सिंह मुख्य थे, पठान नवाब के विरुद्ध मिल गए और उसे पीछे हटने को बाध्य किया। उन्होंने यूरोपीय अफसरों से लौटने और जिले का भार संभालने की प्रार्थना की, परन्तु स्पेशल कमिश्नर क्रोफ्ट विल्सन ने सैयद अहमद से मुहम्मद रहमत खां, डिप्टी मैजिस्ट्रेट और तहसीलदार मीर तुराब अली के सहयोग से प्रशासन को चलाने के लिए कहा। यदि एक हिन्दू सहयोगी ने अविवेक न दिखाया होता तो सैयद अहमद अपने अंग्रेज स्वामियों के लिए बिजनौर की तब तक सुरक्षा किये रहता जब तक अंग्रेजों की सत्ता पुनः स्थापित न हो जाती। परन्तु चौधरी ने एक मुस्लिम गांव को लूटा जिसके परिणामस्वरूप मुस्लिमों ने विद्रोही नवाब का साथ दिया और उसकी सत्ता को पुनः स्थापित कर दिया।[१८]

३ जून को मुरादाबाद में एक अप्रत्याशित दंगा हुआ। २९वीं देशी पैदल सेना, जिसके ऊपर मि० क्रोफ्ट विल्सन का असाधारण प्रभाव रखने का दावा था, न केवल अविचल रही बल्कि उसने उपद्रवो को दबाने मे भी भाग लिया। गूजर, मेवाती और कुछ हालतो मे जाटों ने भी वैधानिक सत्ता के पतन का लाभ उठाया था और अपनी लूट-मार की प्रवृत्ति पर वे उतर आए थे। मैजिस्ट्रेट का प्रतिवेदन है कि "असैनिक अधिकारियों द्वारा २९वीं देशी पैदल सेना तथा अनियमित घुड़सवार सेना की टुकड़ियो की सहायता से अमरोहा में तथा चुगलुत और हसनपुर के पड़ोस में, इन हत्याकारियों के विरुद्ध अनेक अभियान सफलतापूर्वक किए गए थे और मई के अन्त तक जिले मे पूर्ण शान्ति स्थापित हो चुकी थी और हम अपनी जगहो को बनाए रखने के लिए और सुरक्षापूर्वक कठिनाई को पार कर जाने के लिए बड़े आशावादी थे। सफर मैना पलटन का एक बड़ा दल जो मेरठ से सेना को छोड़कर आ रहा था, जब जिले में से होकर अपने घर जा रहा था तो उस पर आक्रमण किया गया और साठ से अधिक लोगों से हथियार डलवा लिए गए। मुजफ्फरनगर से सरकारी खजाने के लूट के माल को लेकर अपने घरो को लौटते हुए २०वीं देशी पैदल सेना के २० सिपाहियों की टोली पर भी आक्रमण किया गया और उनका लूट का धन छीन लिया गया। उनकी टोली के दो आदमी मारे गए और करीब बारह या तेरह पकड़ लिए गए।"[१९] अनुशासन और आज्ञा का सदा पालन करने वाले २९वीं सेना के आदमियों ने अन्त मे अपने अधिकारियों की अवज्ञा करने का क्यो निश्चय किया, इसकी व्याख्या करना कठिन है। मैजिस्ट्रेट का कहना था कि विद्रोह के प्रारम्भ का कारण बरेली का निंदनीय उदाहरण था क्योंकि वहां के विद्रोह के समाचार ने ही सिपाहियो की भावनाओ को भड़का दिया। परन्तु अफसरों को कोई हानि नहीं पहुंचाई गई। जब कुछ सिपाहियों ने अपनी बन्दूकों की नलियां मैजिस्ट्रेट और जज की ओर कीं तो उनके अफसरों ने उन्हें

---

१८. ग्राहम, दि लाइफ एण्ड वर्क आफ सर सैयद अहमद खा, पृ० १५-२०

१९. एनल्स आफ़ दि इण्डियन रिबेलियन, पृ० ३५१

अपनी शपथ के बारे मे याद दिलायी और फिर उनके जीवन लेने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया। अनियमित घुडसवार सेना के कुछ भारतीय अफसर उस समय मुरादाबाद मे छुट्टी पर थे और उनकी सेवाए असैनिक अधिकारियों को सौंप दी गई थी। उन्होंने सुरक्षापूर्वक पहरे मे भगोडों को मेरठ पहुचाया।[२०] रामपुर का नवाब ब्रिटिश सरकार का घनिष्ठ मित्र था और यूरोपीय अधिकारियो की अनुपस्थिति मे जिला अधिकतर उसके ही अधिकार मे रहा। यह बात नहीं थी कि उसकी सत्ता को चुनौती दी गई हो, क्योंकि उसकी प्रजा में धर्म के ऐसे समर्थक थे जो यह देखना चाहते थे कि वह धर्म के शत्रुओं के विरुद्ध उनका नेतृत्व करें।

शाहजहापुर के गोरे आदमी कम भाग्यवान थे। बरेली की घटनाओ का वहा के ग़दर मे कोई हाथ न था, क्योकि यदि उसी घडी नहीं तो कम-से-कम उसी दिन शुरू हुआ। मृतको की सख्या बहुत अधिक थी, क्योकि सिपाहियो ने तलवारो और लाठियों से सुसज्जित होकर उस समय गिर्जे पर आक्रमण किया जब प्रार्थना हो रही थी। बचे हुए लोग पोवाइन भाग गए जो एक शक्तिशाली जमींदार का निवास स्थान था और अवघ के सीमान्त पर स्थित था। परन्तु जमींदार ने अपने स्थान को भगोडो के लिए सुरक्षित नहीं समझा। पोवाइन से मोहमदी को, जो अवघ मे था, और जहा एक और दल सुरक्षित रूप से ले जाए जाने के लिए प्रतीक्षा कर रही थी, एक पत्र भेजा गया। मोहमदी से ये अभागे लोग औरंगाबाद के लिए चले परन्त जब वे अपने गन्तव्य स्थान से एक मील दूर थे तो उन्हें सिपाहियो के एक दल ने निर्दयतापूर्वक मार डाला। परन्तु कैप्टन ओर के जीवन को, जो मोहमदी से उनके साथ जा रहा था, लछमन नामक एक जमादार ने बचाया। वह कैप्टन को सुरक्षापूर्वक मिठौली मे पहुचाने ले गया जहा उसकी पत्नी पहले से ही विद्यमान थी। शाहजहापुर से विद्रोहियों के आने के कारण मोहमदी मे ग़दर और जल्दी शुरू हुआ।[२१]

रुहेलखण्ड से लगभग ग्यारह महीने के लिए अग्रेजी सत्ता विलुप्त हो गई और खान बहादुर ने निर्विघ्न होकर बरेली मे शासन किया। सन् १८५७ के अन्तिम महीनो मे रुहेलखण्ड मे हिन्दू विद्रोह के लिए धन जुटाने का प्रयत्न किया गया और कैप्टन गोवन को इस उद्देश्य के लिए ५०,००० रु० व्यय करने का अधिकार दे दिया गया। परन्तु उसके प्रयत्नो का कुछ परिणाम नहीं हुआ और उसने १४ नवम्बर (सन् १८५७) को लिखा, "आसपास के ठाकुरो को किसी भी सख्या में आदमी भरती करने की प्रेरणा देने के प्रयत्न मे बिल्कुल असफल रहा हू। मुझे यह बताया गया था कि वे सरकार को सक्रिय सहायता देने को तैयार हैं परन्तु जब मुझे पता लगा है कि यह सहायता केवल सद्भावना रखने और एक अच्छी यूरोपीय सेना की नियुक्ति के पश्चात वे क्या कर दिखाएगे, यहीं तक सीमित है।"[२२] मुट्ठी भर यूरोपीय भगोडो को नैनीताल से निकालने का खान बहादुर खा

---

२० एनल्स आफ दि इण्डियन रिबेलियन, पृ० ३५२

२१ वही, पृ० ३५५-६५

२२ फारेन सीक्रेट कन्सल्टेशन्स, सख्या २५, २७ अगस्त, १८५८

का प्रयत्न बिलकुल असफल रहा। उसकी सेना मे कोई प्रशिक्षित सिपाही नहीं था। उसकी लडने वाली सेना का अनुमान साधारणतः ३० से ४० हजार तक लगाया जाता था, परन्तु उसमे सनिक अनुभव[२३] का अभाव था, और उनका नेतृत्व करने के लिए कोई योग्य अफसर भी नहीं था।

सर कोलिन ने फिर प्राथमिकता के प्रश्न को उठा दिया। क्या पहले अवध को अधीन किया जाए या आगे के युद्ध के कार्यक्रम में बरेली को प्रथम स्थान मिले? सर कोलिन की इच्छा थी कि वह रुहेलखण्ड को वाद के युद्ध के लिए छोड़कर पहले अवध को पराजित करे। अपने २४ मार्च, १६५८ के पत्र मे उसने लार्ड कैनिंग को इसके कारणो का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा, "यह मालूम पड़ता है कि इन सैन्य दलो के उपयोग के दो तरीके हैं। एक तो यह है कि इन्हे अवध के प्रान्त से लखनऊ की सहायता के लिए लगा दिया जाए और दूसरा यह है कि इस प्रान्त की सीमाओ के बाहर रुहेलखण्ड मे युद्ध किया जाए। दूसरे तरीके के बारे मे यह कहा जा सकता है कि रुहेलखण्ड को ले लेने के सम्वन्ध मे बडी व्यग्रता विद्यमान है। जो लोग इसकी परिस्थिति से परिचित हैं उनका कहना है कि बिना किसी खतरे के रुहेलखण्ड को लिया जा सकता है, परन्तु वे यह स्वीकार करते हैं कि इसके लिए विभिन्न दिशाओ से सम्मिलित युद्ध करने की आवश्यकता है और एक पर्याप्त सैन्य दल की भी।"। अवध का प्रान्त अब भी एक सक्रिय विद्रोह की अवस्था में है, इसलिए केवल दुर्ग-सेना से ही उसकी रक्षा हो सकेगी यह सन्देहास्पद है। इसका तात्पर्य यह है कि सम्भवतः दुर्ग-सेना भी घेरी जा सकती है और रसद-सामग्री भी रोक दी जा सकती है, इसलिए इस प्रदेश का कुछ निश्चित भाग पूर्णतः जीत लेना और अपने अधिकार मे रखना जरूरी है। इस कार्य की सिद्धि के लिए हमे लखनऊ को ध्यान मे रखते हुए युद्ध-नीति की दृष्टि से कुछ महत्वपूर्ण नाको पर अपना अधिकार करना होगा।" "जब कभी हमारे सैनिक दस्तो ने अभियान किया है, वे वस्तुत. विद्रोहियो को रौंदते हुए आगे बढ़े है, परन्तु जैसे ही वे आगे निकले हैं कि विद्रोही फिर उनके पीछे जमा हो गए हैं और उनके संचार साधनो को काट दिया है तथा उनकी रसद पहुंचने मे विघ्न पहुंचाया है।" "यह अधिक आवश्यक है कि इस प्रान्त मे बिना विलम्ब के वास्तविक सत्ता स्थापित की जाए बजाय इसके कि रुहेलखण्ड मे एक और युद्ध छेड़ा जाए। इसलिए मै यह अधिक पसन्द करता हूं कि अगले पाच-छ महीने रुहेलखण्ड मे ही रहा जाए ताकि अवध को संगठन करने का समय मिल जाए।" परन्तु लार्ड कैनिंग ने दूसरा निर्णय किया। गवर्नर-जनरल ने उत्तर दिया, "तुम्हे सम्भवतः याद होगा कि सवसे पहले अवध के मामले को हाथ मे लेने के सम्वन्ध मे मैंने जो मत प्रकट किया था उसका आधार यह था विद्रोहियों के हाथ से अवध का पूरा प्रान्त नहीं वल्कि केवल उसकी राजधानी लखनऊ को ले लेना एक राजनीतिक आवश्यकता थी।" युद्ध की योजना तैयार करना प्रधान सेनापति का काम था, गवर्नर-जनरल ने केवल नीति निर्दिष्ट की।[२४]

---

२३. दुर्गादास बन्द्योपाध्याय के अनुसार वहुल रूप से निर्धन पठान।

२४. फारेस्ट, ए हिस्ट्री आफ दि इण्डियन म्यूटिनी, जिल्द ३, पृ० ३३३-३६

रुहेलखण्ड मे विभिन्न स्थानो से प्रवेश करना था। ब्रिगेडियर-जनरल वालपोल को गगा का बाया किनारा साफ करना था। प्रधान सेनापति स्वयं फतेहगढ़ से आगे बढ़ कर रुहेलखण्ड के सीमान्त पर वालपोल से मिलना चाहता था। मेजर जनरल पेनी को मेरठ से अभियान करना था और शाहजहापुर और बरेली के बीच पीरन कटरा पर प्रधान सेनापति से मिलना था। एक चौथे दस्ते को ब्रिगेडियर-जनरल जोन्स की अधीनता मे रुडकी से रुहेलखण्ड मे प्रवेश करना था। सब सैनिक दस्तों को बरेली मे मिलना था और वहा मुख्य विद्रोही सेना पर जोरदार हमला करना था, मेजर-जनरल सीटन को फतेहगढ़ के अपने मुख्यालय से गंगा नदी के किनारे विद्रोहियों की गतिविधि पर निगाह रखनी थी। निश्चित कार्यक्रम के अनुसार योजना क्रियान्वित की गई, परन्तु इसमे मुझे हानि भी हुई। वालपोल नरपतसिंह के गढ़ गया पर अपने आक्रमण मे भारी हानि उठाई। इस किले को दो पार्श्व बासों के एक दुर्गम वन के द्वारा सुरक्षित थे और शेष दो आपेक्षिक रूप से पहुचने के लिए सुगम थे। एक जनप्रिय अफसर कर्नल एड्रियन होप की मृत्यु के कारण भारी पराजय का सामना करना पड़ा, परन्तु दूसरे दिन सवेरे किले को खाली पाया गया। सर कोलिन अपने सैन्य दलो के आगे घोडे पर चढ़कर फतेहगढ़ मे जनरल पेनी से मिलने गया। इसी समय वालपोल ने योजना के अपने भाग को पूरा किया और रामगगा नदी के पास प्रधान सेनापति से मिला। पेनी पर ककरौली कस्बे के पास छिपकर हमला किया गया, जिससे यद्यपि सामान्य कार्यक्रम मे तो कोई गडबडी नहीं हुई परन्तु अपने प्रमाद के कारण उसे अपने जीवन से हाथ धोना पडा। ब्रिगेडियर जनरल जोन्स ने हरद्वार के समीप गगा नदी को पार किया और भगनीवाला जगल मे उसका विद्रोहियों की सेना से आमना-सामना हुआ। उसके एक भारतीय अफसर इमाम बख्श ने अपनी ओर से पहल करके एक छोटे किले को जीत लिया जिसमे एक नवाब ने शरण ले रखी थी। सैनिक दस्ता फिर मुरादाबाद की ओर बढा, वहा ब्रिगेडियर रुक गया क्योंकि उसे प्रधान सेनापति की गतिविधि के बारे मे कोई सूचना नहीं थी। उसे बरेली मे मुख्य सेना से मिलना था ताकि ठीक समय पर आक्रमण मे सम्मिलित हो सके। जोन्स ने ३ मई को अपना अभियान फिर शुरू किया और ५ मई को वह मीरगज पहुचा, जो बरेली से १४ मील था। मीरगज मे मन्दसौर की प्रसिद्धि का शाहजादा फीरोज शाह ठहरा हुआ था, जो बिना प्रतिरोध किए पीछे हट गया। परन्तु सर कोलिन के बारे मे कोई खबर नहीं थी।

सर कोलिन ने ३० अप्रैल को शाहजहापुर के बाहर शिविर डाला। उसने एक छोटा-सा सैन्य दल वहा छोड दिया, जिसे जेल की रक्षा करनी थी। ३ मई को वह रुहेलखण्ड के नगर फतेहगढ पहुचा। इसका यह नाम इसलिए पडा था कि अस्सी से कुछ अधिक वर्ष पूर्व यहा अवध के नवाब और उसके अग्रेज सहायको ने हाफिज रहमत खा के रुहेलों पर फतह हासिल की थी। पूर्व योजना के अनुसार कर्नल जोन्स मीरनपुर कटरा मे पेनी के सैनिक दस्ते सहित मुख्य सेना से मिला। ५ मई के प्रात सयुक्त सेनाए फरीदपुर पहुचीं और घुडसवार चौकीदारो ने सूचना दी कि रुहेला घुडसवार सेना आ गई है। एक दम युद्ध के लिए तैयारिया होने लगीं। युद्ध भारी गोलाबारी से शुरू हुआ और फिर गाजियो ने भयकर वार किए। हाइलैण्डर्स जी-जान से लडे और गाजी घुड़सवार तोपो की

गोलाबारी के सामने न टिक सके। गाज़ी लोग धर्म के लिए मरने आए थे और उन्होने न किसी का समर्थन चाहा और न वह उन्हें मिला। बरेली के युद्ध में रुहेला लोग हार गए और दूसरे दिन ब्रिगेडियर जोन्स की अधीनता में रुड़की-क्षेत्र-सेना बरेली के पास से बहने वाली एक छोटी नदी के ऊपर पत्थर के एक पुल पर अधिकार जमाए हुए विद्रोहियों के एक छोटे से सैन्य दल को पीछे हटाकर शहर की सीमा पर पहुंची। खान बहादुर खां पीलीभीत भाग गया और उसकी राजधानी पर पूरी तरह अंग्रेजों ने अधिकार जमा लिया।

बरेली की विजय के बाद सर कोलिन को चैन नहीं मिला। फैजाबाद के मौलवी को सैनिक शिक्षा तो नहीं मिली थी, परन्तु उसमें एक जन्म-जात नेता की स्वाभाविक खूबिया थीं। शत्रु के निर्बल स्थान पर एकदम उसकी निगाह पहुंचती थी और उस पर चोट करने से वह कभी नहीं चूकता था। लखनऊ के समीप सर होप ग्रांट द्वारा पराजित हो जाने के बाद अब उसने रुहेलखण्ड की ओर अपना ध्यान दिया। सम्भवतः वह बरेली के प्रतिरक्षको की सहायता के लिए शत्रु सेना को विभक्त करना चाहता था। यह सम्भव न होने पर रक्षक-दलो को बीच मे रोक कर और कमजोर चौकियों को काट कर वह आक्रमणकारी सेना को तंग करना चाहता था। शाहजहांपुर की थोड़ी सी दुर्ग-सेना पर उसका ध्यान गया और चूंकि इस समय सर कोलिन दूसरी जगह व्यस्त था इसलिए मौलवी ने इस कमजोर चौकी को नष्ट करने की आशा से हमला किया। परन्तु वह अचानक शहर पर कब्जा नहीं कर सकता था। एक गुप्तचर ने मौलवी के आने के बारे में अंग्रेजों को खबर दे दी और उन्होंने अपने तम्बू उखाड़े, जिन्हे उन्होंने जेल के समीप एक बाग में लगा लिया था और फिर शीघ्रता से खाई मे प्रतिरक्षा के लिए तैयार हो गए। मौलवी ने पुराने किले, शहर के आसपास के स्थानों और कस्बे पर अपना अधिकार कर लिया और फिर जेल की तरफ अभियान किया। वह ब्रिटिश पक्षपाती नागरिको को फांसी लगाना भी नहीं भूला, क्योंकि वह उन्हे देशद्रोही ही समझता था। आठ दिन और रात तक यह थोड़ी सी दुर्ग-सेना अपनी स्थिति की रक्षा करती रही और इस बीच ब्रिगेडियर जोन्स रुड़की क्षेत्र सेना के साथ, जिसका नाम अब शाहजहांपुर क्षेत्र सेना था, इसकी सहायता के लिए आया। फिर भी मौलवी विना युद्ध किए नहीं हटा। इसी बीच उसे शाहज़ादा फीरोज़ शाह और बेगम हज़रत महल से भी अधिक सेनाओ की सहायता मिल चुकी थी। परन्तु जोन्स ने उनके आक्रमण को पीछे हटा दिया और शाहजहापुर बचा लिया गया। सर कोलिन ने रुहेलखण्ड को वालपोल की रक्षा मे छोड़ा और जोन्स को अधिक सेना भेजकर वह स्वयं फतेहगढ़ लौट गया। अवध का युद्ध यह निश्चय हुआ कि जाड़ो मे लड़ा जाए। परन्तु सर कोलिन से फिर लड़ने के लिए मौलवी जीवित नहीं रहा। शाहजहापुर से पराजित होकर उसने आपको मोहमदी सड़क पर स्थापित कर लिया था जहां से जोन्स उसे नहीं हटा सका। मोहमदी को छोड़ने से पूर्व उसने सावधानीपूर्वक उस स्थान की समस्त प्रतिरक्षा को नष्ट कर दिया। ५ जून को वह पोवाइन के सामने दिखाई पड़ा, जो अवध-रुहेलखण्ड सीमान्त पर एक छोटा सा किला था और शाहजहांपुर से कुछ मील की दूरी पर था। परन्तु राजा ने मौलवी को अन्दर न आने देने के लिए किले के दरवाजो को बन्द करवा दिया। मौलवी ने अपने हाथी से किले के दरवाजो पर चोट करवाई परन्तु दुर्ग-सेना ने उसे गोली से मार दिया, क्योकि हौदे

पर बैठा हुआ वह आसानी से गोली का निशाना बन सकता था। तदनन्तर उसके कटे हुए सिर को शाहजहापुर के मैजिस्ट्रेट के पास भेजा गया और शहर की कोतवाली मे उसे खुला रख दिया गया। शव जला दिया गया और उसकी राख नदी मे फेंक दी गई। मौलवी के सिर की कीमत ५०,००० रु० राजा को मिली।[२५]

सर थामस सीटन के मतानुसार मौलवी "महान योग्यता वाला पुरुष था। उसमे निर्भीक साहस था, दृढ सकल्प था और वह विद्रोहियो मे निश्चित रूप से सर्वोत्तम सिपाही था।"[२६] मैलेसेन ने मौलवी की एक मनुष्य और देशभक्त के रूप मे सबसे अधिक प्रशसा की है। "यदि एक ऐसा पुरुष देशभक्त कहलाता है जो अपनी जन्म-भूमि की स्वतन्त्रता के लिए, जिसे अन्यायपूर्वक नष्ट कर दिया गया है, षड्यन्त्र करता है और लडता है तो निश्चय रूप से मौलवी एक सच्चा देशभक्त था। उसने हत्याओ से अपनी तलवार को कलकित नहीं किया, उसने हत्याओ की योजना नहीं बनाई, विदेशियो के विरुद्ध, जिन्होने उसके देश को छीन लिया था, उसने वीरता, सम्मान और भीषणता से युद्ध किया और उसकी स्मृति सब राष्ट्रो के वीर और सच्चे हृदय वाले पुरुषों के आदर की अधिकारिणी है।"[२७]

ग्रीष्म ऋतु के गर्म महीनो मे सैनिक-कार्य बिलकुल बन्द नहीं किए गए। सर होप ग्राट ने अवध मे युद्ध किया और सुल्तानपुर को वापस ले लिया। परन्तु गवर्नर-जनरल और प्रधान सेनापति दोनों ने यह अनुभव कर लिया कि केवल सैनिक बल-प्रयोग से इतने व्यापक विद्रोह का ठीक-ठीक इलाज नहीं किया जा सकता, क्योंकि गावो को अविवेकपूर्ण ढग से जलाने की नीति का कुप्रभाव अन्त मे वैधानिक सरकार पर ही पडता है क्योंकि उससे मालगुजारी की अदायगी नहीं हो पाती। इसलिए यह आवश्यक समझा गया कि बल-प्रयोग और तुष्टीकरण, प्रहार एव प्यार इन दोनो का प्रयोग साथ-साथ करना चाहिए और यह भी प्रयत्न करना चाहिए कि अधिकाश विद्रोहियो से अनुरोध कर के उनके हथियार डलवा लिए जाए और वे शान्ति से अपने घर वापस लौट जाए। अधिक महत्वपूर्ण नेताओ को तो अपनी ओर मिलाना सम्भव नहीं था। वास्तव मे नाना, तात्या टोपे, खान बहादुर खा और फर्रुखाबाद के नवाब तफज्जुल हुसैन जैसे आदमियो के लिए तो उपयुक्त सजा निर्धारित कर दी गई थी। परन्तु अब समय आ गया था जब कि विद्रोह के समय और उसके बाद अन्य साधारण लोगों द्वारा किए गए कार्यो की उपेक्षा की जानी चाहिए थी। भारत सरकार के कम्पनी की अधीनता से निकलकर सम्राज्ञी के आधीन हो जाने से इस प्रकार के प्रयोग के लिए अवसर मिला। पार्लियामेट के दोनों सदनो के द्वारा पारित विधेयक, जिसके द्वारा ईस्ट इडिया कम्पनी का शासन भारत मे समाप्त कर दिया गया, अगस्त १८५८ मे कार्यान्वित हुआ और पहली नवम्बर को रानी की घोषणा इलाहाबाद के एक विशाल दरबार मे पढी गई। इसमे भारतीय राजाओ के अधिकार, सम्मान और प्रतिष्ठा की सुरक्षा का

---

२५ जी० पी० मनी की ओर से आर० अलेक्जेडर को लिखा दिनाक १७ जून, १८५७ का पत्र। फारेन सीक्रेट कन्सल्टेशन्स, सख्या १३८, २७ अगस्त १८५८

२६. मैलेसन, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द २, पृ० ५४१

२७ वही, जिल्द २, पृ० ५४४

वचन दिया गया और घोषणा की कि धर्म के कारण न तो किसी पर कोई विशेष अनुग्रह किया जाएगा और न किसी को हानि पहुंचाई जायगी और "सबको समान और निष्पक्ष रूप से कानून का सरक्षण मिलेगा।" इसने रानी का अधीन समस्त अधिकारियो को आदेश दिया कि "वे हमारे किसी भी प्रजा-जन के धार्मिक विश्वास या पूजा मे हस्तक्षेप न करें। यदि वे ऐसा करेंगे तो उन्हें हमारी अप्रसन्नता के कारण दण्ड भोगना पड़ेगा। और हमारी यह इच्छा है कि जहा सम्भव हो हमारे प्रजा-जन, चाहे वह किसी जाति या धर्म के हो, स्वतन्त्रता और निष्पक्षता के साथ सेवा के सभी पदो को प्राप्त करें किन्तु अपनी शिक्षा, योग्यता और चारित्रिक निष्ठा के आधार पर उनमे इन पदों के कर्तव्यो को पूरा करने की क्षमता होनी चाहिए।"

इस घोषणा को विशेष सफलता नही मिली। एक दूसरी रानी, अवध की बेगम हज़रत महल ने, इसकी सचाई मे सदेह प्रकट किया। उसने फौरन अपने पुत्र के नाम से एक प्रति-घोषणा निकलवाई। इसमे सम्बद्ध आदमियों से अनुरोध किया गया कि वे क्षमा के प्रस्ताव मे विश्वास न करें, "क्योंकि अंग्रेजो का यह एक अपरिवर्तनीय रिवाज है कि वे किसी दोष को क्षमा नहीं करते चाहे वह छोटा हो या बडा," जबकि हिन्दुस्तानी शासको की कृपा सर्वविदित है। "घोषणा मे यह कहा गया है कि हिन्दुस्तान का शासन जो पहले कम्पनी के हाथ मे था, अब रानी ने अपने अधिकार मे ले लिया है।" परन्तु बेगम ने यह प्रश्न किया कि कम्पनी और रानी के शासन मे अन्तर ही क्या रहा जबकि कम्पनी का प्रबंध पहले की तरह ही कायम है और कम्पनी के नौकर, गवर्नर-जनरल और कम्पनी का न्यायिक प्रशासन सब कुछ अपरिवर्तित रूप मे बना हुआ है। इंग्लैंड की रानी ने कहा कि कम्पनी ने जो वायदे और समझौते किए हैं उनका वह आदर करेगी। अवध के शासक ने कई मामलो के उद्धरण दिए जिनमें भारतीय राजाओं के साथ घोर अन्याय किए गए थे और उनके साथ जिन सन्धियो पर हस्ताक्षर किए गए थे उन्हे प्रत्यक्ष रूप मे तोडा गया था। उसने बताया कि किस प्रकार खुद उसके पूर्वगामियो से धीरे-धीरे शाहजहांपुर, बरेली, आजमगढ, जौनपुर, गोरखपुर, इटावा और इलाहाबाद के जिले ले लिए गए थे। "ये तो पुराने मामले हैं," परन्तु अभी हाल मे सन्धियो और शपथो की अवज्ञा कर और इसके बावजूद कि उन पर हमारे लाखो रुपये के ऋण थे, उन्होने बिना किसी कारण के और बुरे शासन तथा हमारी प्रजा के असन्तोष का बहाना बनाकर, हमारे देश और लाखो के मूल्य की सम्पत्ति को ले लिया है। यदि हमारी जनता हमारे शाही पूर्वज वाजिद अलीशाह से असन्तुष्ट थी तो वह हमसे किस प्रकार सन्तुष्ट हो सकती है? हमारे समान किसी अन्य शासक ने अपनी जनता से इतनी स्वामिभक्ति और अपने जीवन और सम्पत्ति के लिए इतना प्रेम नहीं पाया है। फिर हम मे क्या कमी है जिससे वे हमे हमारा देश वापस नहीं देते। "इस आश्वासन के बारे मे कि रानी अपने राज्य-क्षेत्र को बढ़ाना नहीं चाहती, यह प्रश्न किया गया" कि महामहिम रानी फिर हमे हमारे देश को क्यो नहीं लौटा देती जबकि जनता की ऐसी ही इच्छा है? "शहजादे ने आगे कहा", "घोषणा में यह लिखा हुआ है कि ईसाई धर्म सच्चा है।" "शहजादे ने सवाल किया कि न्याय के प्रशासन को किसी धर्म की सच्चाई या झूठ से क्या करना है?" "ग़दर धर्म के लिए शुरू हुआ और इसी के लिए लाखो आदमी मारे गए

हैं। हमारी प्रजा को चाहिए कि वह इस प्रकार न ठगी जाए।" "घोषणा मे यह लिखा हुआ है कि जिन लोगों ने बागियो को शरण दी या जिन्होने लोगो को गदर करने के लिए उत्तेजित किया, उनकी जानें नहीं ली जाएगी, परन्तु दण्ड बडे सोच विचार के बाद दिया जाएगा और हत्यारों और हत्या मे सहायता करने वालो के साथ कोई दया नहीं दिखाई जाएगी।" शहजादे ने अपने आदमियों को चेतावनी दी कि इस आश्वासन का कोई अर्थ नहीं है। "सब कुछ लिखा हुआ है, परन्तु कुछ नहीं लिखा हुआ है।" जिस भी गाव या जमींदारी में सेना (स्पष्टत सिपाही सेना) गई होगी वहा के निवासी गदर मे शामिल समझे जाएगे। जिन गावों के मुखिया मूर्खतावश अग्रेजो के सामने हाजिर हुए थे, उन्हें पहली जनवरी से पूर्व शहजादे के दरबार मे आने की आज्ञा दी गई। उसने इस बात को फिर दोहराया, "किसी ने स्वप्न मे भी यह कभी नहीं देखा है कि अग्रेजों ने किसी अपराध को क्षमा किया हो।" इस घोषणा के अन्त मे यह कहा गया कि अग्रेजो ने "हिन्दुस्तानियों के लिए सडक बनाने और नहर खोदने से अच्छे किसी काम का वचन नहीं दिया है। यदि अब भी लोग यह साफ-साफ न समझ सकें कि इसका क्या अर्थ है, तो फिर उन्हें कोई नहीं बचा सकता। किसी भी प्रजा-जन को इस घोषणा से धोखा नहीं खाना चाहिए।"[२८] इतना समय बीत जाने के बाद हमारे लिए आज इस बात का निर्धारण करना कठिन होगा कि अवध की जनता पर बेगम हज़रत महल की इस घोषणा का क्या प्रभाव पडा, परन्तु गवर्नर-जनरल को निश्चयत यह आशा नहीं थी कि उसकी सम्राज्ञी द्वारा शासन को अपने हाथ मे ले लेने से या जिन उदार शब्दो मे उसने घोषणा जारी की थी, उनसे युद्ध समाप्त हो जाएगा। कई दृष्टियों से उसने अपनी सम्राज्ञी का पूर्वानुमान कर लिया था। ७ जुलाई १८५८ को उत्तर-पश्चिमी प्रान्त की सरकार के सचिव विलियम म्योर ने रुहेलखण्ड के कमिश्नर को लिखा कि दण्ड देते समय "जब भी किसी अफसर को कोई सन्देह हो और अपने वरिष्ठ अधिकारी के निर्णय के लिए वह इसको पेश करने में असमर्थ हो तो सरकार की इच्छा है कि ऐसे मामलों मे दया दिखाई जाए। विद्रोहियों के नीचे सिर्फ कोई पद स्वीकार करना दण्ड के लिए पर्याप्त कारण नहीं है।" परन्तु अवध को अन्तिम रूप से पराजित करना सेना का उत्तरदायित्व था। जब यह घोषणा पढ़ी गई तो प्रधान सेनापति दूसरे युद्ध की तैयारी कर रहा था।

२ नवम्बर को सर कोलिन कैम्पबेल, अब क्लाइड्सडेल के लार्ड क्लाइड, अवध से इलाहाबाद के लिए चल दिया। उसकी योजना यह थी कि विद्रोही सैन्य दलो को घेर कर धीरे-धीरे नेपाल के सीमान्त तक धकेल दिया जाए और वहा उन सबको कुचल दिया जाए या तराई के ज्वर-ग्रस्त जगलों मे उन्हें अभावों और बीमारियों से मरने के लिए छोड दिया जाए। सिपाही नेताओ ने यह समझ रखा था कि नेपाल सरकार का रुख उसके अनुकूल है।[२९] जगबहादुर के अवध मे आने से पूर्व हुकुम सिंह

---

२८ फारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशन्स, सख्या ३०२२, ३१ दिसम्बर, १८५८

२९ "डाग और देवगढ के विद्रोह नेताओ को नैपाली सरकार द्वारा जारी की गई एक घोषणा के अनुसार बुलाया गया और उनसे कहा गया कि वे उन घाटियो को छोड दें

नामक एक सिख दूत एक दुहरे उद्देश्य से गुरखा दरबार मे भेजा गया था। उसे रणजीत सिंह की विधवा रानी जिन्दन को वापस लाना था ताकि पंजाब मे सिख विद्रोह का संगठन किया जा सके। उसने गुलाब सिंह के बारे में एक मनगढ़ंत कहानी सुनाई कि वह अपने प्रभु की ओर से पंजाब को अपने अधिकार मे रख रहा है और एक फ्रांसीसी दलीप सिंह को भगा कर ले गया और वह भारत की ओर आते हुए समय अदन तक पहुंच चुका था। इन झूठी बातों पर स्वभावतः किसी ने विश्वास नहीं किया और हुकुम सिंह नेपाल सीमान्त को भी पार करने मे असफल रहा।[30] जंगबहादुर के खुले तौर पर अंग्रेजो की ओर हो जाने, और लखनऊ की पराजय मे प्रधान सेनापति के साथ क्रियात्मक सहयोग करने पर भी, अवध के वली, उसके एजेंट और नाना साहब उसके साथ पत्र-व्यवहार करते रहे। १६ मई १८५८ में वली ने नेपाल के प्रधान मन्त्री को लिखा, "यह सुविदित है कि मेरे पूर्वज अंग्रेजो को हिन्दुस्तान मे लाए। . . . . अंग्रेज लोगो ने कुछ समय पूर्व हिन्दू और मुसलमान दोनों के धर्म मे हस्तक्षेप करने का प्रयत्न किया और यह उन्होंने ऐसे कारतूस तैयार करवा कर किया जिनमे हिन्दुओ के लिए गाय की चरबी और मुसलमानो के लिए सूअर की चरबी लगी हुई थी, जिसे उन्हें दांतो से काटने का आदेश दिया गया था। सिपाहियो ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप अंग्रेजो ने आदेश दिया कि उन्हें परेड-मैदान में गोली से उड़ा दिया जाए। युद्ध के शुरू होने का यही कारण है। "दो दिन बाद जंग बहादुर को सूचना दी गई" कि मन्दिर और इमामबाड़े तोड़ दिए गए हैं। आपको यह भी पता है कि अंग्रेज लोग हिन्दुओ या मुसलमानो के धर्म या जीवन की परवाह नहीं करते। उनकी चालाकी और दगाबाजी तथा उपकारो को भूल जाना यह सब भी आपको ज्ञात है। "अली मुहम्मद खा ने शिकायत की," ब्रिटिश राष्ट्र इस देश के निवासियो को उनके धर्म, विश्वास, राज्य और जीवन से भ्रष्ट करने के लिए तुला हुआ है और इस अभिशप्त राष्ट्र मे किसी राजा की कोई आशा नहीं रह गई है। "जंगबहादुर बड़ा कुशल राजनीतिज्ञ था और वह धर्म के संरक्षण के रूप मे कार्य करने के लिए तैयार नहीं हो सकता था। उसने उत्तर दिया, "चूंकि हिन्दू और मुसलमान कृतघ्नता और विश्वासघात के अपराधी रहे हैं, इसलिए न तो नेपाल सरकार और न मैं ही उनका पक्ष ले सकता हूं।"[31]

और तराई-नाले के पूर्व और गोरखपुर के सीमान्त के उत्तर में चले जाए। विद्रोही नेता इस आदेश को मानने के लिए तैयार हो गए, इस दृढ और पूर्ण आशा के साथ कि गुरखा लोग हृदय से उनके मित्र हैं और वे निश्चयतः उनका पक्ष लेंगे और अंग्रेजों के विरुद्ध उनकी सहायता करेंगे, यदि इन पहाड़ियों को छोड़ने के बाद अंग्रेजों ने उन्हें हानि पहुंचाने का प्रयत्न किया। इस विश्वास के साथ वे उस दिशा में बढ गए जो उन्हे बताई गई थी।" लेफ्टिनेंट यूस्टेस हिल का संक्षिप्त प्रतिवेदन। एक दूसरे कागज-पत्र मे यह लिखा हुआ है कि बेगम हजरत महल ने उन्हे यह विश्वास दिलाया था।

३०. फारेन सीक्रेट कन्सल्टेशन्स, संख्या ४४८-५३, २७ नवम्बर, १८५७। हुकुमसिंह पहले घुड़सवार सेना की एक रेजीमेंट मे जमादार था।

३१. फ़ारेन सीक्रेट कन्सल्टेशन्स, संख्या १००-१०३ तथा ३२, २७ अगस्त, १८५८

वह स्वय कृतज्ञता या ईमानदारी को अधिक महत्व नहीं देता था, परन्तु इस लताड के बाद भी विद्रोही लोग नेपाली सहानुभूति और मित्रता के प्रति अपने विश्वास मे अविचल बने रहे। लार्ड क्लाइड की सैनिक नीति को विद्रोहियो की मनोदशा से पर्याप्त सहायता मिली।

उसकी योजना सीधी-सादी थी। एक दस्ते को उसके पुराने मुख्यालय फतेहगढ़ से अवध मे प्रवेश करना था, दूसरे को शाहजहापुर से, और तीसरे को आमजगढ़ से जबकि उसे स्वय इलाहाबाद के समीप सोराव से आगे बढ़ना था। उसका इरादा नवम्बर मे युद्ध शुरू करने का था, परन्तु विद्रोहियो ने उसके इरादो का पूर्वानुमान कर एक महीने पहले ही सडीला की छोटी चौकी पर आक्रमण कर दिया। लार्ड क्लाइड अवध मे राजपूत सरदारों के गढों को, एक के बाद एक को पराजित करना चाहता था। शक्तिशाली खानपुरिया जाति के सदर मुकाम रामपुर कसिया पर सर्वप्रथम आक्रमण किया जाना था। यह एक मजबूत स्थान था, परन्तु वेवराल और होप ग्रांट ने इसे कुछ थोड़े ही दिनों मे जीत लिया। क्लाइड ने फिर अमेठी के राजा के विरुद्ध अभियान किया। राजा लाल माधो सिंह ने उपद्रव प्रारम्भ होने पर अग्रेज भगोडो को आश्रय दिया था और उन्हें सुरक्षापूर्वक इलाहाबाद भिजवाया था। बाद मे वह सक्रिय रूप से विद्रोहियो से मिल गया था। लार्ड क्लाइड ने उसे अपना किला, सैन्य दल, अस्त्र-शस्त्र और गोला-बारूद समर्पण करने का आदेश दिया, परन्तु राजा का उस शक्तिशाली विद्रोही दल पर कुछ वश न था, जिसने किले मे शरण ले रखी थी। और कुछ न कर सकने के कारण राजा चुपके से अपने महल से बाहर निकल गया और उसने प्रधान सेनापति के शिविर मे अपने को उपस्थित कर दिया। विद्रोहियों ने उसका अनुसरण किया और दूसरे दिन अमेठी का गढ़ खाली पाया गया, जिसमे केवल राजा के व्यक्तिगत अनुचरों को छोडकर और कोई नहीं था।

दूसरा लक्ष्य शकरपुर था जो बैसवाडा राजपूतो के वीर शिरोमणि वेणी माधव का स्थान था। ग्राम-चारणो ने उसके शौर्य को अमर कर दिया है और उनके गीत आज भी होली के अवसर पर ग्रामीण जनता द्वारा गाए जाते हैं।[३२] अप्रैल मे उसने दक्षिण-पूर्वी अवध मे वन्दोवस्त सम्वन्धी कार्यो मे हस्तक्षेप किया था और उन सब जमींदारो को उसने दण्ड दिया था, जिन्होंने अग्रेज लोगो के साथ समझौता किया था। सर होप ग्राट २८ अप्रैल को एक सैनिक दस्ता लेकर उससे लडने गया परन्तु वेणी माधव और उसके सैन्य दलों को नष्ट किए विना उसे लखनऊ लौटना पडा। लार्ड क्लाइड ने उसे आश्वासन दिलाया कि उसकी सम्पत्ति को उसके पास ही रहने देने के उसके दावो पर विचार किया जाएगा, यदि वह आगे विना प्रतिरोध किए अग्रेजो की अधीनता स्वीकार कर लें। वेणी माधव ने उत्तर दिया कि वह अपने शरीर का तो समर्पण नहीं कर सकता क्योकि वह उसके प्रभु का है जिसके लिए उसका लडना अनिवार्य है, परन्तु वह किला देने के लिए तैयार है क्योकि

---

३२ नागपुर विश्वविद्यालय के भूतपूर्व उप कुलपति पडित के एल दुबे ने कृपापूर्वक इनमें से एक गीत मुझे भेजा। शकरपुर के वेणी माधव और अतरौली के इसी नाम के सरदार को एक ही नहीं समझना चाहिए। ये दोनों व्यक्ति अलग-अलग है।

वह उसकी अपनी सम्पत्ति है।[33] रात्रि के अन्धकार में उसने शंकरपुर छोड दिया और उत्तर या पूर्व जाने की बजाय वह डुंडिया खेडा गया जहा बाबू रामबख्श सिंह, जिसके आदमियो ने मौब्रे थामसन के दल पर गोली चलाई थी, रह रहे थे। ब्रिगेडियर ईवले को उसका पीछा करने का आदेश दिया गया परन्तु उसका कुछ पता न लगा और सब दिशाओ से उसके बारे मे खबरें मिलती रहीं।[34] अन्त मे यह मालूम हुआ कि वह रामबख्श के गांव को चला गया था। वहां के किले को मई मे सर होप ग्रांट ने अशतः विनष्ट कर दिया था। २४ नवम्बर को एक मुठभेड हुई। विद्रोही पराजित हुए परन्तु वेणी माधव छिप कर भाग गया और पकड़ा न जा सका। उसका लग कर पीछा किया गया, परन्तु उसने पहले गोमती को पार किया और फिर घाघरा की ओर से अवध मे प्रवेश किया। वह फिर वापस लौटकर बैसवाड़ा नहीं आया जो उसके पूर्वजों का घर था और जो उसके जीवन के प्रारम्भिक दिनो के वीरतापूर्ण कृत्यो का स्थल था। लखनऊ के एक प्रतिवेदन मे, जो दिनांक ४ दिसम्बर का है, हम यह पढते है कि वेणी माधव की सेना भंग कर दी गई और उसे तितर-बितर कर दिया गया। उसके सैन्य दल शान्तिपूर्वक अपने गांवो में बस गए। "उनमें से लगभग ५,००० अपने मुखिया का अनुसरण कर छोटे-छोटे दल बनाकर बहराइच डिवीजन मे चले गए हैं।" कुछ थोड़े दिनो बाद सूचना मिली कि वह बैराम घाट के पास मिठौली मे है। परन्तु प्रधान सेनापति की पूरी कोशिश के बाद भी वह उत्तर की ओर पीछे हटता चला गया। फिर भी लार्ड क्लाइड की योजनाओ के अनुसार ही युद्ध होता रहा था। वेणी माधव, देवी बख्श, मुहम्मद हसन, मेहदी हसन, अमर सिंह, खान बहादुर खां, बेगम हजरत महल, मम्मू खा, नाना साहब, बाला साहब, ज्वाला प्रसाद, और दूसरे मुख्य विद्रोही नेता अपने अपने जिलों से बाहर खदेड दिए गए और नेपाल के सीमान्त पर उन्हें एक संकरे प्रदेश में धकेल दिया गया। अब यही शेष था कि उन्हें और उत्तर की ओर धकेल कर जंग बहादुर के प्रदेश मे भेज दिया जाए, जहां उनको कोई पूछने वाला न था।

एक विद्रोही सरदार इस जाल मे नहीं फंसा। फीरोज शाह दो हजार अनुयायियों को लेकर पीछे की ओर हटा और गंगा नदी को पार कर इटावा के समीप दिखाई दिया। ब्रिगेडियर ट्रूप और ब्रिगेडियर बार्कर उसे रोक नही सके। फीरोज शाह बाद मे राव साहब और तात्या टोपे से जाकर मिला। उसने उनके साहसिक कृत्यो मे भाग लिया, परन्तु उसका भाग्य उनसे अलग था।

इसी समय लार्ड क्लाइड अपना जाल बिछाने मे व्यस्त था। बाला साहब के बारे मे यह सूचना मिली थी कि वह तराई क्षेत्र के समीप तुलसीपुर मे है। विधवा रानी के

---

३३. फारेस्ट, ए हिस्ट्री आफ दि इण्डियन म्यूटिनी, जिल्द ३, पृ० ५१७

३४ वेणी माधव की खोज करनी है। हमारे पास "निश्चित" सूचना है कि वह उसी दिन के उसी समय वह दिग्घटी के सब बिन्दुओं पर विद्यमान रहता है और हमारे पास ३१ अतिरिक्त सैनिक दस्ते नहीं हैं कि हम इन सूचनाओं की पुष्टि कर सकें। रसेल, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द २, पृ० ३२०

बारे में यह विश्वास किया जाता था कि वह विद्रोहियों से मिली हुई है। इसलिए सर होप ग्रांट को उसके किले को जीतने के लिए भेजा गया। १६ ता० को वह बलरामपुर आया, जहा मित्रतापूर्ण राजा उससे मिला। २३ ता० को ब्रिगेडियर रोक्राफ्ट ने तुलसीपुर पर अपना अधिकार कर लिया। लार्ड क्लाइड १७ ता० को बहराइच पहुचा। उसके गुप्तचरों की सूचना के अनुसार नाना साहब और बेगम हजरत महल दोनों उसी पुराने नगर मे थे। परन्तु जैसे ही प्रधान सेनापति वहां पहुंचा वे वहा से चल दिए। लार्ड क्लाइड वहा पांच दिन तक ठहरा। रसेल ने कहा, "बहराइच मे हमारे देर करने के राजनीतिक कारण थे। पहली बात यह है कि दो बेगमे समर्पण करने को तैयार हैं। दूसरी बात यह है कि मम्मू खां मिलने के लिए बात चला रहा है। इतना ही नहीं, स्वय बेगम और बिरजिस कादर सिविल कमिश्नर मेजर बैरो को पत्र और दूत भेजते हैं। बुड्ढा हनुमन्त सिह अपने जिद्दी और बहादुर रिश्तेदार वेणी माधव को समझा-बुझा रहा है और उसे आशा है कि वेणी माधव समर्पण कर देगा। मेजर बैरो का विश्वास है कि यदि सरदारों पर जोर नहीं डाला गया और यदि प्रधान सेनापति, इस समय जबकि छल युद्ध और गहरी कूटनीति से काम लया जा रहा है, कुछ देर तक रुक जाता है, तो यह सम्भावना है कि वे हमारे अधिकार मे आ जाएगे और अपने हथियार डाल देंगे। यदि उन्हें हमारे प्रस्तावों पर विचार करने के लिए समय नहीं दिया गया तो वे ऐसी जगह भाग जाएंगे जहां हम उनका पीछा नहीं कर सकेंगे और वे हमारे लिए कष्ट, खोज और खर्च के कारण पैदा कर देंगे।"[३५] परन्तु मेजर बैरो की कूटनीति अपने मुख्य उद्देश्य मे विफल हो गई। बेगम को अंग्रेजों की ईमानदारी मे बिल्कुल विश्वास नहीं था। वेणी माधव तब तक समर्पण नहीं करना चाहता था जब तक बेगम की सहमति न हो। मम्मू खां भी स्वतन्त्र मार्ग का अवलम्बन नहीं करना चाहता था। जैसा हम आगे देखेंगे, नाना तब तक अधीन होने को तैयार न था जब तक रानी या वायसराय स्वयं उसके जीवन का वचन न दें और उनके वचन का किसी दूसरी सत्ता द्वारा अनुमोदन न कर दिया जाए। इसलिए लार्ड क्लाइड ने नानपारा के लिए अभियान कर दिया, जहा उस समय विद्रोही नेता बताए जाते थे, परन्तु २६ ता० को गुप्तचर सूचना लाए कि वे वहा से चल दिए हैं। घने जंगल के बीच मे स्थित नानपारा का वह किला अभी हाल मे अधिक मजबूत कर दिया गया था और वेणी माधव अपने शत्रुओं की प्रगति को यहीं रोकना चाहता था। परन्तु बरोडदिया मे जो युद्ध हुआ उसमे उसकी पराजय हुई और झुकना न जानने वाला राजपूत और पीछे हट गया। इसके बाद चर्दा के राजा का एक किला, जहां नाना छिपा हुआ बताया जाता था, अधिकार मे कर लिया गया और नष्ट कर दिया गया। २९ ता० को लार्ड क्लाइड नानपारा लौट कर आया तो उसे मालूम हुआ कि नाना और वेणी माधव वहां से करीब २० मील दूर राप्ती नदी के किनारे बाकी नामक स्थान पर थे। लार्ड क्लाइड ने ३० ता० की रात को ही अभियान करने का आदेश दिया ताकि उन्हें असावधान रूप मे पकड लिया जाए। परन्तु पहरा देने वाले आदमी सचेत थे और यह रहस्य छिपा नहीं रह सका। नाना ने, जो दो

---

३५ रसेल उद्धृत, ग्रन्थ, जिल्द २, पृ० ३५९

मील पीछे था नदी पार की, परन्तु विद्रोही सेना ने उसका अनुगमन नहीं किया जब तक कि उन्होंने लड़ना शुरू नहीं किया। जब विद्रोही नेपाल राज्य-क्षेत्र मे चले गए तो क्लाइड का काम पूरा हो गया और १८ जनवरी १८५६ को वह लखनऊ लौट गया।

बाकी के युद्ध के बाद कुछ अधिक प्रमुख विद्रोही नेताओ ने अधीनता स्वीकार की। रसेल लिखता है, "७ ता० की प्रात:, हमारे जाने से पूर्व, फर्रुखाबाद के नवाब ने अपने अनुयायियो सहित राप्ती नदी को पार किया और मेजर बैरो के सामने समर्पण किया। मेंहदी हसन और दूसरे प्रसिद्ध विद्रोही नेताओ ने भी समर्पण किया। यह दृश्य बड़ा मनोरंजक था और विशेषत: इन लोगो की गम्भीरता और संयम बहुत ही दर्शनीय थे क्योंकि कुछ घंटो पूर्व ही तो ये लोग हमसे लड़े थे और अब स्पेशल कमिश्नर के तम्बू में पूर्ण शान्ति से बैठे थे।"[३६] फर्रुखाबाद के नवाब तफज्जल हुसेन और मेंहदी हुसेन ने भी उसी दिन समर्पण किया, परन्तु उनके साथ जो व्यवहार किया जाना था वह बिलकुल भिन्न था। मेहदी हुसेन, अपनी रियासत के अंग्रेजी राज्य मे मिलने से पूर्व, अवध के राज्य की सेना में एक चकलदार था। जब तक उससे बना वह अपने राजा और देश के लिए लड़ा, परन्तु जब उसने देखा कि उसका और आगे लडना व्यर्थ है तो उसने हथियार डाल दिए। प्रधान सेनापति की सिफारिश पर उसे २०० रु० प्रति मास की पेंशन दी गई परन्तु उसे फैजाबाद जिले मे अपने पुराने घर में जाने की इजाजत नहीं मिली।[३७] फर्रुखाबाद के नबाब पर मुकदमा चला और उसे मृत्यु-दण्ड दिया गया क्योंकि उसे कुछ यूरोपीय लोगों की हत्या के लिए उत्तरदायी ठहराया गया था, परन्तु उसके समर्पण के समय मेजर बैरो ने उसे जो वचन दे रखा था उसके अनुसार उसकी जान बख्श दी गई। उसे अरब भेज दिया गया जहां उसे अपना गुजारा खुद करना था।

मैनपुरी के राजा तेजसिंह ने काफी पहले ११ जून, १८५८ को ही समर्पण कर दिया था। जब अक्तूबर १८५७ में सर होप ग्रांट का सैनिक दस्ता मैनपुरी होता हुआ कानपुर जा रहा था तो उसने इस राजा को अपने पूर्वजो के गढ से निकलने को विवश कर दिया। अंग्रेज जनरल ने इस किले को राव भवानी सिंह के सुपुर्द कर दिया जो चौहान सरदार का चाचा और उसकी सम्पत्ति का दावेदार था। जैसे ही होप ग्रांट गया, तेजसिंह फिर वापस आ गया और भवानी सिंह को आगरा मे शरण खोजनी पड़ी। अप्रैल, १८५७ में तेजसिंह मैनपुरी रवाना हुआ और उसने एटा को खतरे मे डाल दिया। परन्तु उसके अनुयायी धीरे-धीरे कम हो रहे थे और ११ ता० को उसके पास केवल १०० व्यक्तिगत अनुचर रह गए थे। उसके बाद उसने परतावनेर के कुंवर जोरसिंह का आतिथ्य प्राप्त करना चाहा, परन्तु उसने उससे समर्पण कर देने का अनुरोध किया। तेजसिंह को उसके प्राणो की रक्षा का वचन दिया गया और आगे उसे यह भी विश्वास दिलाया गया कि उसके साथ कोई अपमान का व्यवहार नहीं किया जाएगा और यदि उसे जेल मे रखने की आवश्यकता भी होगी तो उसे साधारण कैदियो के साथ नहीं रखा जाएगा। राजा

३६. रसेल, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द २, पृ० ३६५

३७. फ़ारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशन्स, सख्या ३७२-७३, ३० दिसम्बर १८५६

को इसके बाद बनारस ले जाया गया जहा उसे २५० रु० मासिक की जीवन-वृत्ति दी गई। उसकी जायदाद राव भवानी सिंह को दे दी गई।[३८]

जब लार्ड क्लाइड ने अवध मे अपना अन्तिम युद्ध शुरू किया तो गोरखपुर के डिप्टी मैजिस्ट्रेट शेख खैरुद्दीन और सैयद मुहम्मद हसन खा के बीच बराबर पत्र-व्यवहार चल रहा था। सैयद मुहम्मद हसन खा गोरखपुर के अंग्रेजी राज्य मे मिलने से पूर्व वहा ग़दर के दौरान में थोड़े समय के लिए नाज़िम था। खैरुद्दीन ने अपने दिनाक १३ नवम्बर, १८५८ के पत्र मे भूतपूर्व नाज़िम को लिखा कि "विद्रोहियों को अपना वर्तमान व्यवहार छोड देना चाहिए क्योंकि इससे उनका विनाश हो जाएगा।" आगे उसने इस पत्र मे उसे बताया कि "महामहिम सम्राज्ञी की घोषणा मे जो इस महीने मे जारी की गई है, सबको क्षमा-दान देने की बात कही गई है। इससे तुम्हें पता चलेगा कि केवल वही व्यक्ति, जो अग्रेज अधिकारियों या उनकी प्रजा की हत्या के अपराधी हैं, दण्ड के योग्य माने जाएगे।" "इन परिस्थितियो मे तुम्हें सोचना चाहिए कि विद्रोहियों के साथ रहने से तुम्हें किसी प्रकार के लाभ की आशा नहीं हो सकती। यदि तुम उनके साथ रहोगे तो या पकडे जाओगे या मार दिए जाओगे।" मुहम्मद हसन को न केवल यह सलाह दी गई कि इस समय जो क्षमा-दान दिया जा रहा है, उसका वह लाभ उठाए, बल्कि उससे यह भी कहा गया कि वह गोंडा के राजा जैसे दूसरे सरदारों को भी इसी प्रकार की सलाह दे और सिपाहियो को सूचित कर दे कि यदि उन्होंने घोषणा के अधीन शर्तों पर समर्पण कर दिया तो उन्हें घर चले जाने दिया जाएगा। मुहम्मद हसन ने ग़दर के प्रारम्भिक दिनो मे अग्रेज भगोड़ों का केवल आतिथ्य ही नहीं किया था, बल्कि उनके गोरखपुर भाग जाने का भी प्रबन्ध किया था। ईसाइयों की हत्या से उसका किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं था और वह बडी आसानी से घोषणा की शर्तों से लाभ उठा सकता था। परन्तु वह प्रकट रूप से तब तक समझौता करने को अनिच्छुक था, जब तक उसके स्वामी पर किए गए अन्याय का प्रतिकार न हो जाए। और फिर बेगम की तरह उसे भी घोषणा के वास्तविक मन्तव्य के बारे मे सन्देह था। इसलिए उसने जो लम्बा उत्तर भेजा था, उसमे राज-वश और विद्रोहियों के पक्ष का समर्थन किया गया था, न कि अपने लिए पेंशन और क्षमा की याचना, क्योंकि उसे पेंशन देने और क्षमा करने के लिए सरकार तैयार थी। मुहम्मद हसन ने प्रारम्भ मे अपनी सफाई देते हुए कहा कि वह यूरोपीय लोगो का खून बहाने का अपराधी नहीं है। "मैंने किसी अफसर या प्रजा-जन को नहीं मारा है, यद्यपि यूरोपीय अफसरों और उनके सिपाहियो ने हजारो निरपराध और निरीह आदमियों को मारा है, जिनमें स्त्रिया, बुड्ढे और भिखारी भी थे। उन्होने उनके मकानों को जलाया है और उनकी सम्पत्ति को लूटा है।" उसने स्वीकार किया कि उसे डराने के लिए अग्रेजों की शक्ति के बारे मे जो कुछ खैरुद्दीन ने लिखा था, वह बिलकुल ठीक था।

---

३८ फारेन सीक्रेट कन्सल्टेशन्स, सख्या १२२ और २७०, २५ जून, १८५८, फारेन डिपार्टमेंट प्रोसीडिंग्स, जन-री मार्च १८६२, सख्याए २३८-२३६, सख्याए ६७-६८, नवम्बर, सख्याए ६७-६८ और दिसम्बर, सख्याए १८१ १८४

मोहम्मद हसन का पत्र

को इसके बाद बनारस ले जाया गया जहा उसे २५० रु० मासिक की जीवन-वृत्ति दी गई। उसकी जायदाद राव भवानी सिंह को दे दी गई।[३८]

जब लार्ड क्लाइड ने अवध मे अपना अन्तिम युद्ध शुरू किया तो गोरखपुर के डिप्टी मैजिस्ट्रेट शेख खैरुद्दीन और सैयद मुहम्मद हसन खा के बीच बराबर पत्र-व्यवहार चल रहा था। सैयद मुहम्मद हसन खा गोरखपुर के अग्रेजी राज्य मे मिलने से पूर्व वहा गदर के दौरान मे थोडे समय के लिए नाजिम था। खैरुद्दीन ने अपने दिनाक १३ नवम्बर, १८५८ के पत्र मे भूतपूर्व नाजिम को लिखा कि "विद्रोहियों को अपना वर्तमान व्यवहार छोड देना चाहिए क्योंकि इससे उनका विनाश हो जाएगा।" आगे उसने इस पत्र मे उसे बताया कि "महामहिम सम्राज्ञी की घोषणा मे जो इस महीने मे जारी की गई है, सबको क्षमा-दान देने की बात कही गई है। इससे तुम्हें पता चलेगा कि केवल वही व्यक्ति, जो अग्रेज अधिकारियों या उनकी प्रजा की हत्या के अपराधी हैं, दण्ड के योग्य माने जाएगे।" "इन परिस्थितियो मे तुम्हें सोचना चाहिए कि विद्रोहियों के साथ रहने से तुम्हें किसी प्रकार के लाभ की आशा नहीं हो सकती। यदि तुम उनके साथ रहोगे तो या पकडे जाओगे या मार दिए जाओगे।" मुहम्मद हसन को न केवल यह सलाह दी गई कि इस समय जो क्षमा-दान दिया जा रहा है, उसका वह लाभ उठाए, बल्कि उससे यह भी कहा गया कि वह गोडा के राजा जैसे दूसरे सरदारों को भी इसी प्रकार की सलाह दे और सिपाहियो को सूचित कर दे कि यदि उन्होंने घोषणा के अधीन शर्तो पर समर्पण कर दिया तो उन्हें घर चले जाने दिया जाएगा। मुहम्मद हसन ने ग़दर के प्रारम्भिक दिनों मे अग्रेज भगोडो का केवल आतिथ्य ही नहीं किया था, बल्कि उनके गोरखपुर भाग जाने का भी प्रबन्ध किया था। ईसाइयो की हत्या से उसका किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं था और वह बडी आसानी से घोषणा की शर्तो से लाभ उठा सकता था। परन्तु वह प्रकट रूप से तब तक समझौता करने को अनिच्छुक था, जब तक उसके स्वामी पर किए गए अन्याय का प्रतिकार न हो जाए। और फिर बेगम की तरह उसे भी घोषणा के वास्तविक मन्तव्य के बारे मे सन्देह था। इसलिए उसने जो लम्बा उत्तर भेजा था, उसमे राज-वश और विद्रोहियों के पक्ष का समर्थन किया गया था, न कि अपने लिए पेंशन और क्षमा की याचना, क्योंकि उसे पेंशन देने और क्षमा करने के लिए सरकार तैयार थी। मुहम्मद हसन ने प्रारम्भ मे अपनी सफाई देते हुए कहा कि वह यूरोपीय लोगों का खून बहाने का अपराधी नहीं है। "मैंने किसी अफसर या प्रजा-जन को नहीं मारा है, यद्यपि यूरोपीय अफसरों और उनके सिपाहियों ने हजारों निरपराध और निरीह आदमियों को मारा है, जिनमे स्त्रिया, बुड्ढे और भिखारी भी थे। उन्होंने उनके मकानों को जलाया है और उनकी सम्पत्ति को लूटा है।" उसने स्वीकार किया कि उसे डराने के लिए अग्रेजों की शक्ति के बारे मे जो कुछ खैरुद्दीन ने लिखा था, वह बिलकुल ठीक था।

---

३८ फारेन सीक्रेट कन्सलटेशन्स, सख्या १२२ और २७०, २५ जून, १८५८, फारेन डिपार्टमेंट प्रोसीडिंग्स, जन-बी मार्च १८६२, सख्याए २३८-२३६, सख्याए ६७-६८, नवम्बर, सख्याए ६७-६८ और दिसम्बर, सख्याए १८१ १८४

मोहम्मद हसन का पत्र

उसने यह भी स्वीकार किया कि विद्रोहियो के साथ रहने से उसे कोई लाभ नहीं हो सकता। "खुदा, जो शक्तिशाली है और सबका रक्षक है, सर्वशक्तिमान है। यदि शत्रु शक्तिशाली है तो खुदा उससे भी अधिक शक्तिशाली है। वह चाहे तो बलवान को कमजोर बना दे और कमजोर को बलवान बना दे। जिसको वह चाहता है, ऊपर चढ़ाता है, जिसको चाहता है, नीचे गिराता है।" "मुझे न पकड़े जाने का भय है और न मारे जाने का।" उसने कहा कि यदि दुर्भाग्यवश मैं पकड़ा गया तो मेरे लिए डरने की कोई बात नहीं क्योंकि घोषणा के अनुसार मुझे किसी प्रकार दण्ड नहीं दिया जा सकता। "यदि दूसरी ओर मैं युद्ध करते हुए अपने मजहब और अपने बादशाह के लिए मारा गया, तो मुझे दोनो लोकों का सुख मिलेगी।" नाज़िम ने इसके बाद घोषणा के शब्दो की जांच शुरू की, "घोषणा की वाक्य-रचना, जहां वह अपराधों की क्षमा का वचन देती है, कुछ-कुछ अस्पष्ट और अनिश्चित है।" अपने विचार का स्पष्टीकरण करते हुए उसने आगे कहा, "हिन्दुस्तान के अंग्रेज-शासक ने उन समझौतो का पालन नहीं किया है जो उन्होने देशी राजाओ के साथ किए थे और उन्होने उन शर्तो के विरुद्ध कार्य किया है जिन्हें किसी प्रकार तोड़ा नहीं जाना चाहिए था।" तब फिर ऐसे आश्वासनों पर कौन विश्वास करेगा जिनका बिल्कुल दूसरा अर्थ निकाला जा सकता है? अवध के नवाब के साथ जो अन्याय का व्यवहार किया गया था, वह सबको ज्ञात ही है। "एक ऐसे राज-वंश से उसका राज्य छीन लिया गया है, जिसने अंग्रेजी सरकार का कभी विरोध नहीं किया बल्कि सदा उसे सन्तुष्ट ही किया।" "हिंदुस्तान के राजाओं और जनता ने सेना द्वारा किए गए विद्रोह का लाभ उठाया, ग़दर शुरू हुआ जिनमें खुदा के हजारो मासूम बन्दो की हत्याएं हुई और उन्हें लूटा गया।" उसने जोर देकर कहा कि अवध को अंग्रेजी राज्य में मिलाने के परिणामस्वरूप ही गदर हुआ। यदि यह अन्यायपूर्ण कार्य न किया जाता तो इतना रक्तपात न होता, क्योंकि सरदार लोग असन्दिग्ध रूप से विद्रोहियो के विरुद्ध लड़ते। इसलिए मुहम्मद हसन ने महामहिम सम्राज्ञी से यह आशा की कि वह अवध को उसके वैध शासको को लौटा दे क्योंकि उसने ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा किए गए सब समझौतो और सन्धियो को मानने का वचन दिया है और राजाओं को आश्वासन दिया है कि उसे अपने राज्य-क्षेत्र को अब और अधिक बढाने की इच्छा नहीं है। उसने कहा कि "इस समय अधिकार में" ये शब्द घोषणा के लिखे जाने के समय लागू होने चाहिए, क्योंकि उस समय अवध का अधिकतर भाग अंग्रेजों के अधिकार मे नहीं था। अन्त मे उसने लिखा, "अवध के राजा के हम सेवक और आश्रित दोनो लोकों मे अपनी समृद्धि के लिए इसे आवश्यक समझते हैं कि इस राज्य की रक्षा में हम अपनी भक्ति प्रदर्शित करें और आक्रमणकारियो के प्रयत्नो का विरोध करें जो इसमें पैर जमाना चाहते हैं। यदि हम ऐसा न कर सकें तो हम देशद्रोही हैं और दोनों लोकों मे हमारे मुंह पर कालिख लगेगी।"

अंग्रेजी सरकार के एक राजभक्त नौकर के रूप मे खं रक्षाहीन स्त्रियो और अंधे लोगों की हत्याओ के इन अभियोगो को तथा बेईमानी और अनाधिकारपूर्वक राज्य छीनने के अभियोगों को बिना निराकृत किए नहीं छोड़ सकता था। इस अभियोग का कि अंग्रेज सिपाही स्त्रियों, अपाहिजों और बच्चो की हत्या के अपराधी थे, उसने रोषपूर्वक निराकरण

किया और स्वयं नाजिम पर यह अभियोग लगाया कि वह बाला राव के साथ रहा था, जो स्वय और जिसका भाई इस प्रकार के अपराधों के दोषी थे। "अवध के राज्य के लौटाने के बारे मे जो प्रस्ताव तुमने रखा है और कहा है कि उसके बाद ही तुम अधीनता स्वीकार कर सकते हो, यह सब बेहूदा है। सरकार एक बीघा जमीन भी नहीं देगी, जिसे वह एक बार ले चुकी है। फिर तुम्हें इन सब वाद-विवादों से क्या लेना है? तुम अपने बारे मे जो चाहो, लिख सकते हो, परन्तु राज्य के सम्बन्ध मे नहीं। सक्षेप मे मैं तुम्हें लिख कर देता हू कि यदि तुम अपने जीवन को बचाना चाहते हो तो एकदम समर्पण कर दो।" खैरुद्दीन ने मुहम्मद हसन को याद दिलाया कि दया दिखाने का समय चालीस दिन मे समाप्त हो जाएगा और उसके बाद यूरोपीय अफसरों के लिए की गई उसकी सेवाए किसी काम न आएगी।

इन धमकियों का तत्काल कोई प्रभाव नहीं हुआ। नाजिम अब भी अपने सकल्प पर दृढ़ था और उसका उत्तर एकदम शान्त और गौरवपूर्ण था, उसने फिर यह कहा कि अपने जीवन के लिए वह विद्रोहियों पर आश्रित नहीं है। "मुझे सर्वशक्तिमान ईश्वर पर मेरा भरोसा है। यदि वह मुझे बचाएगा, तो कोई शत्रु मुझे हानि नहीं पहुचा सकता, और यदि वह बचाना नहीं चाहता तो कोई शक्ति काम न आएगी।" "सरकार ने हर तरह का अत्याचार किया है, इसलिए मेरे लिए यह मूर्खता ही होगी यदि मैं अपने द्वारा कर्नल लेक (लेनोक्स) और उसकी दो महिलाओं को बचाए जाने के बदले कुछ आशा करूं।" "यदि मैं अपने जीवन और सांसारिक सम्पत्ति को अपने धर्म से अधिक मूल्यवान समझता तो मैं अवश्य तुम्हारे पास आता।" "मैं बाला राव या नाना राव का नौकर नहीं हूं और न मैं कानपुर मे उनके शिविर मे आता हूं। इसलिए उसने जो अपराध अंग्रेज स्त्रियों और बच्चों पर किए हैं, उनका मुझ से बदला नहीं लिया जा सकता।" "मैं नहीं समझता कि मेरा समर्पण वैध होगा, बल्कि वह एक अपराध ही होगा। आपने शेष जो भी कुछ लिखा है, उसका उत्तर देना एक व्यर्थ का और कटु वाद-विवाद करना ही होगा, इसलिए इतना ही पर्याप्त समझा जाए।"[३९]

नाजिम मुहम्मद हसन के ये दो पत्र सर्वोत्तम रूप में अवध के नेताओं की विचार धारा को स्पष्ट कर देते हैं। उन्होंने अपने राजा और धर्म के लिए युद्ध किया और उनका धर्म उन्हें अपने राजा की वफादारी से सहायता करने का आदेश देता था। मुहम्मद हसन को बाद मे अधीनता स्वीकार करने के लिए तैयार कर लिया गया, परन्तु बहुत से दूसरे नेता, जैसे कि शकरपुर का बेणी माधव, गोंडा का देवी बख्श और बिसवाह का गुलाबसिंह, ये सब नेपाल के मलेरिया-ग्रस्त जगलों में मर गए, परन्तु उन्होंने अपने बादशाह को नहीं छोड़ा और न उस शक्ति का निषेध किया जो स्वर्ग से शासन करती है।

विद्रोही नाजिम के पत्र-व्यवहार से गवर्नर-जनरल अवश्य ही प्रभावित हुआ होगा क्योंकि उसने इस पर जो टिप्पणिया लिखीं, उनसे यही विदित होता है। "इन पत्रों की प्रतिलिपिया प्रधान सेनापति के पास भेजो। उससे यह भी कहो कि उसने कर्नल

३९ फारेन पोलिटिकल कन्सलटेशन्स, सख्या ७-९, १८ मार्च, १८५९

लेनोक्स और उसके परिवार को जो शरण दी और उनके साथ दयालुता का व्यवहार किया, उसको ध्यान में रखते हुए उसके बहुत से अपराधो को क्षमा किया जा सकता है। यदि मुहम्मद हसन प्रधान सेनापति के हाथों मे पड़ जाए या वह समझौते की शर्ते चाहे तो उसे न केवल जीवन और स्वतन्त्रता का ही आश्वासन दिया जाए बल्कि एक उदार जीवन-वृति का भी, यद्यपि उसे उसके लिए यह आवश्यक होगा कि वह सरकार का विरोध करने और सरकार के प्रति शत्रुता प्रदर्शित करने के अपने व्यवहार को छोड़ दे।"[४०] परन्तु गोरखपुर के कमिश्नर विंगफील्ड का रवैया इतना नरम न था। उसके अनुरोध पर ही खैरुद्दीन अहमद ने मुहम्मद हसन के साथ समझौते की बात चलाई थी और जो लताड़ उसे मिली थी, उसका प्रभाव कमिश्नर पर भी पड़ा था। उसने दिनांक २६ दिसम्बर, १८५८ के अपने पत्र मे विदेश-विभाग के सचिव जी० एफ० एडमन्स्टन को लिखा, "यद्यपि यह एक ऐसा मामला है जिससे हमारी सरकार का कोई सम्बन्ध नहीं है फिर भी इस उद्देश्य से कि केवल एक कृत्य से ही मुहम्मद हसन के चरित्र के सम्बन्ध मे कोई अनुचित रूप से अच्छा अन्दाज न लगा लिया जाए, मैं उसके द्वारा महाजन रामदत्त की खुले न्यायालय मे की गई जघन्य हत्या की ओर ध्यान दिलाना चाहता हूं, जिसकी परिस्थितियों का विस्तृत विवरण अवध को मिलाए जाने सम्बन्धी सरकारी कागज पत्रों मे हैं। यदि वह उस समय पकड़ा जाता तो अवध सरकार, कर्नल स्लीमैन के अनुरोध पर, अवश्य ही उसे मरवा देती।"[४१] मुहम्मद हसन ने जब सैनिक अधिकारियो को समर्पण कर दिया तो विंगफील्ड ने शिकायत की कि सर होप ग्रांट ने विद्रोही सरदार के प्रति विशेष सम्मान दिखाया। मुहम्मद हसन पर मि० पेप्प नामक एक यूरोपीय व्यक्ति को मरवा देने का भी अभियोग लगाया गया था। [४२] होप ग्रांट ने साफ तौर पर इस बात का निराकरण कर दिया कि उसके शिविर में मुहम्मद हसन के प्रति कोई विशेष व्यवहार किया गया था,[४३] और नाजिम का यह सौभाग्य था कि मि० पेप्प जीवित ही मिल गया।[४४]

---

४०. फारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशन्स, सख्या ७, १८ मार्च, १८५९

४१. फारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशन्स, संख्या १२, १८ मार्च, १८५९

४२. जी० ई० डब्ल्यू० कूपर का भारत सरकार के विदेश विभाग के सचिव को दिनाक १६ मई १८५९ का पत्र। फारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशन्स सं० ७९, २७ मई १८५९

४३. होप ग्राट ने लिखा, "मैंने उसको जरा सी भी शह नहीं दी ताकि वह यह न समझ ले कि मेरे द्वारा अस्थायी रूप से उसकी सैनिक सत्ता बनाए रखने के कारण वह उन परिणामों से बच जाएगा जो उसे भुगतने हों।" "मैंने सुना कि जब उसने समर्पण करने की सोची तो उसके अधिकार में पाच हाथी थे जिनमें से एक पर वह अभियान करते समय चढ़ा करता था।" यह विंगफील्ड की शिकायत का विषय था। फारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशन्स, सख्या १००, ५ अगस्त, १८५९। पत्र सख्या २५६, दिनाक लखनऊ, ९ जून, १८५९

४४. कपूर का बीडन को दिनाक १२ अगस्त, १८५९ का पत्र। फारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशन्स, संख्या २९, २६ अगस्त, १८५९

नाजिम अवध के उन रईसो में से नहीं था जिनके पास जमीन थी। राज्य के सेवक के रूप मे उसे जो वेतन मिलता था, उसके अतिरिक्त इसकी और कोई आमदनी नहीं थी। इसलिए २०० रु० का मासिक भत्ता उसके लिए पर्याप्त समझा गया और उसे सीतापुर जिले मे रहने का आदेश दिया गया।

मुख्य विद्रोही नेता नेपाल चले गए। उनके अनुयायियों की सख्या के बारे मे चार हजार से लेकर पच्चीस हजार तक के विभिन्न अनुमान लगाए गए हैं। उनके पत्र-व्यवहार से यह प्रकट होता है कि भगोडों ने जिस देश मे शरण ली थी, वहा से भी सहानुभूति मिलने की आशा नहीं थी और जंगबहादुर की सद्‌भावना को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न किया जा रहा था। परन्तु जगबहादुर ने जनवरी १८५६ मे ही यह स्पष्ट कर दिया था कि उसे अपने अंग्रेज सहायकों के शत्रुओं के साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखना है। १५ जनवरी को उसने अवध की बेगम को लिखा, "आपको यह विदित हो कि ब्रिटिश सरकार और नेपाल राज्य मे गहरी मित्रता है और दोनों सन्धि के द्वारा इस बात से बधे हैं कि जिस किसी के राज्य में एक दूसरे के शत्रु मिलें तो वह उन्हें पकड कर उस राज्य को समर्पित कर दे जिसके वे शत्रु हों। इसलिए मैं तुम्हें यह लिख रहा हू कि यदि तुम मेरे राज्य-क्षेत्र के अन्दर या उसके सीमान्त पर रहोगी या उसमे शरण लोगी तो निश्चित रूप से गुरखा सैन्य दल उस सन्धि के अनुसार, जो दोनो महान राज्यो के बीच हुई है, तुम पर आक्रमण करेंगे और तुम से युद्ध करेगे। और यह भी विदित हो कि ऐसे आदमियों को, जो इतने बेईमान और कृतघ्न हैं कि उपद्रव करने से भी नहीं चूके और जिन्होने अपने उन स्वामियो के विरुद्ध विद्रोह किया है, जिनका उन्होंने नमक खाया और जिनके कारण ही उनकी स्थिति मे इतना अच्छा परिवर्तन हुआ और जिन्होंने उन्हें पाला-पोसा, नेपाल राज्य कभी सहायता न देगा, न उनके प्रति दयालुता दिखलाएगा और न उन्हें अपने राज्य-क्षेत्र मे या सीमान्त पर रहने की अनुमति देगा।"[४५] जंग बहादुर अपनी सीमा के अन्दर विद्रोहियों को सहन नहीं कर सकता था, क्योंकि उसकी अपनी सत्ता पाशविक बल पर अवस्थित थी, उसकी जनता की स्वतन्त्र सहमति पर नहीं। इसके साथ ही वह अपने देश के परम्परागत रिवाज को भग किए बिना राज-वश के भगोडों को आश्रय देने से भी इन्कार नहीं कर सकता था। परन्तु ऐसा लगता है कि वह कुछ नरम पड गया क्योंकि हमे बिरजिस कादर के १ फरवरी के पत्र से पता चलता है कि उसे जग बहादुर से एक पत्र दिनाक ८ माघ, सवत् १६१५ (२६ जनवरी, १८५६) को मिला था जिसमे यह इच्छा प्रकट की गई थी कि वह (सरकार) अपनी सेना, राजा और ताल्लुकेदारों सहित चितवान चला जाए।[४६] १८ फरवरी के एक पत्र से यह मालूम पडता है कि मम्मू खा ने जग बहादुर के भाई जनरल बद्री नरसिंह को १५,००० रु० देने का प्रस्ताव किया था और विद्रोही शिविर के राजा भी उसे जवाहरात भेंट करने के लिए

---

४५ फारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशन्स, सख्या ४१३ एल, १५ जुलाई, १८५६

४६ फारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशन्स, सख्या ५४१, ३० दिसम्बर, १८५६ (अनुपूरक)

तैयार थे यदि उन्हें मिलने की अनुमति मिल जाए, परन्तु ये सब प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिए गए। ऐसा लगता है कि नेपाल सरकार ने यह निश्चय कर लिया था कि विद्रोही सरदारों को यदि सम्भव हो तो अनुरोध से नहीं तो शक्ति से समर्पण करने के लिए विवश किया जाय।

भगोडे चितवान, बुटवल और नयाकोट के बीच एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकते फिरे और उन्हे भयंकर यातनाएं सहन करनी पडीं। कुछ सिपाहियों को अपना भोजन खरीदने के लिए अपनी बन्दूकें भी बेचनी पडीं। गुरखा लोग उन्हे चावल बेचने को तैयार थे परन्तु वे जो कीमत मागते थे, वह अत्यधिक थी। भुखमरी के समान ज्वर और पेचिश के कारण भी बहुत से लोग मर गए। अपने इन अनिमन्त्रित अतिथियों को पकड़ने और बाहर निकालने के लिए नेपाल सरकार ने अपने सैन्य दलों को लगाया। इसी प्रकार की एक मुठभेड मे शंकरपुर का लोक प्रिय नेता बेणी माधव दबीर जग बहादुर मर गया। वह समर्पण के लिए तैयार न था, इसलिए वह डांग घाटी मे गुरखा सैन्य दलो से लड़ा और अपने सैन्य दल के अनेक आदमियो के साथ मारा गया। उसका भाई जोगराज सिंह भी इसी अवसर पर मारा गया।[४७] उसका दूसरा भाई, विधवा पत्नी और पुत्र दिसम्बर १८५९ तक नेपाल मे रहे। अपने पिता की मृत्यु के समय बालक की आयु करीब १३ या १४ वर्ष की थी। उसे एक जागीर दे दी गई जिसकी आय ६,००० रु० प्रति वर्ष थी और उसे शिक्षा के लिए सीतापुर भेज दिया गया।[४८] नवाब मम्मू खा, खान बहादुर खा, और ब्रिगेडियर ज्वाला प्रसाद तथा दूसरे कम प्रसिद्ध लोगो को अंग्रेज अधिकारियो को सौंप दिया गया। गोडा के राजा देवी बख्श, हरप्रसाद, खैराबाद के चकलदार, और बिसवा के गुलाब सिंह नेपाल मे ही मर गये। किन परिस्थितियो मे वे मरे, यह हम नहीं जानते। बूंदी के हरदत्त सिंह को मार दिया गया। नाना का मित्र अजीमुल्ला बुटवल मे अक्तूबर मे किसी समय मर गया। तराई के मलेरिया के कारण बाला साहब और सम्भवतः उनके भाई नानासाहब की मृत्यु हुई।

अप्रैल १८५९ मे नाना और बाला दोनो ने समर्पण की शर्तो के सम्बन्ध मे अंग्रेज अधिकारियो से समझौता करने का प्रयत्न किया। परन्तु उनके पत्रो का आशय एक दूसरे से भिन्न था। बाला ने अंग्रेजों को एक "याचिका" भेजी।[४९] नाना ने अन्य बातों के अलावा रानी को एक इश्तहार भी भेजा। बाला ने विद्रोह के लिए सारा दोष अपने भाई पर डाला। "सिपाही मुझे उनका साथ नहीं छोड़ने देते थे, मेरा भाई मुझे अलग नहीं होने देता था। इसलिए मेरे लिए यह आवश्यक हो गया कि मै अपने भाई के आदेशो के अनुसार कार्य करू। मैंने फतेहपुर के जज की ९ या १० साल की एक बच्ची की जान बचाई है जो मेरी पत्नी के साथ छिप कर रही है और जिसे मैंने जनरल बद्री नरसिंह को दिखा दिया है।"[५०] "यह आपके हाथ मे है कि आप मेरे साथ जैसा चाहे वैसा व्यवहार करें।

---

४७. फारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशन्स, संख्या १८४-८८, २४ फरवरी, १८६०

४८ फारेन डिपार्टमट प्रोमीडिंग्स, संख्या २१४-१५; ९ मार्च १८६०

४९. फारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशन्स, संख्या ६८, २७ मई, १८५९

५०. इस बालिका के बारे म कुछ भी ज्ञात नहीं है।

आप मुझे जेल मे डाल सकते हैं, मार सकते हैं या फासी लगवा सकते हैं ।" परन्तु नाना अब भी अवज्ञा कर रहा था। उसके सिर पर एक लाख रुपये का इनाम बोल लिया गया था और उसे पकडने वाले उन लोगों को भी, जो यूरोपीयों लोगो की हत्या अपराधी थे, पूर्ण और बिना शर्त क्षमा-दान का वचन दिया गया था।"[५१] परन्तु नाना ने दृढ़तापूर्वक इस बात का निषेध किया कि अग्रेज पुरुषो और स्त्रियों की हत्या मे उसका कोई हाथ रहा है और उसने दया के लिए याचना नहीं की। "तुमने सबके अपराधो को क्षमा कर दिया है और नेपाल का सरदार तुम्हारा मित्र है। इस सबके होते हुए भी तुम कुछ नहीं कर सके। तुमने सब को अपनी ओर कर लिया है और केवल मै ही बचा हू, परन्तु तुम देखोगे कि दो साल से मैं जिन सिपाहियों को रख रहा हू, वे क्या कर सकते हैं। हम मिलेंगे और मैं तुम्हारा खून बहाऊंगा जो घुटनों तक आ जाएगा। मैं मरने के लिए तैयार हू।"[५२] यह निर्धारित करना शक्य नहीं है कि यह निराशा की अन्तिम आवाज थी या अपराजित भावना का अविजित विरोध।

मेजर रिचर्डसन ने, जिसे एक ब्राह्मण के द्वारा उपर्युक्त इश्तहारनामा दिया गया था, उत्तर मे लिखा कि "इग्लैंड की महामहिम सम्राज्ञी ने जो घोषणा जारी की थी वह किसी दल या व्यक्ति के लिए नहीं थी, बल्कि वह सबके लिए थी। अत जिन शर्तों पर फर्रुखाबाद और बादा के नवाबो तथा अवध के सरदारों और राजाओं ने अपने हथियार डाले हैं और अपने आप को सरकार के हाथो समर्पित कर दिया है, वही शर्तें आपके लिए भी प्रस्तुत हैं और उन सबके लिए भी जो समर्पण करने के इच्छुक हैं। आपने लिखा है कि आपने स्त्रियो और बच्चों (मेम और लडके) को नहीं मारा है, तो फिर आपको बिना किसी भय के समर्पण कर देना चाहिए।" इस उत्तर को सपरिषद्-गवर्नर-जनरल का अनुमोदन प्राप्त नहीं था और यह निश्चय किया गया कि भविष्य मे "सरकार ने जिन विद्रोहियों को अवैध घोषित कर दिया है या जिन पर हत्याओं मे भाग लेने का सन्देह है, उनकी ओर से आए हुए समझौते के प्रस्तावो का उत्तर रानी की घोषणा भेजकर या उसका उल्लेख करके दिया जाए तथा उस पर और कोई टिप्पणी न की जाए।"[५३] परन्तु नानासाहब ने इस प्रकार की शर्तो पर समर्पण करने से इन्कार कर दिया। उसने उत्तर मे लिखा, "मैं इस प्रकार समर्पण नहीं कर सकता। यदि महामहिम सम्राज्ञी के द्वारा लिखा हुआ और उसकी मुहर लगा पत्र फ्रासीसी सेना के समादेशक अधिकारी के द्वारा या उसके बाद दूसरे अधिकारी के द्वारा मेरे पास लाया जाए तो मैं इन अधिकारियो पर विश्वास करके बिना सकोच के शर्तो को स्वीकार कर लूगा। हिन्दुस्तान मे की हुई आपकी सब दगाबाजी का मुझे पता है, फिर मैं आपसे क्यो मिलू?" "किसी न किसी दिन तो मरना है ही। फिर अपमानित होकर क्यो मरू? जब तक मैं जीवित हू, आपके और मेरे बीच युद्ध जारी रहेगा, चाहे मैं मारा जाऊ या कैद किया जाऊ या मुझे फासी

५१ फारेन सीक्रेट कन्सलटेशन्स, सख्या ४५६, २८ मई, १८५८

५२ फारेन पोलिटिकल कन्सलटेशन्स, सख्या ६६, २७ मई, १८५९

५३ फारेन पोलिटिकल कन्सलटेशन्स, सख्या ६७, २७ मई, १८५९
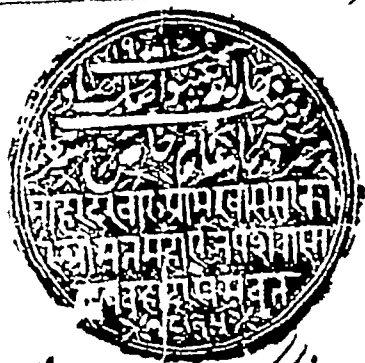
میجر جیر دس صاحب بہادر کمان افسر کا لکھا ہوا تاریخ ۲۳ ماہ اپریل سنہ ۱۸۵۹ عیسوی کو پہونچا حال معلوم ہوا

ہماری طرف سے اشتہار جو لکھا گیا اوسمین بہت سی باتین تہی لیکن اونہی یک بات مین

جواب دیا سو ہمکو منظور ہی لیکن اسطرح ہم نہین اسکتے ہین جو ملکہ شاہ کوین بادشاہزادی کے

طرف سے مہر دستخط وخط فرانسیس کے کمان افسر پاس کمان افسر کے ہمراہ ہماری پاس اوی

تو ہم اوسکی اوپر خاطرداری رکہکر بیشک یہہ بات کو منظور کرینگی ہم ملکی کیا کرین جب کہ اپنی اجتک

ہندوستان مین دغابازی کری سو ہم خوب جانتی ہین سو جو اوسکی دلمین فساد ملک سے نکالنا ہو تو بادشاہ

زادی کا خود لکھا ہوا مہر دستخط خط ہمراہ فرانسیس کی کمان افسر کی ہاتہہ اوی تو ہم منظور کرینگی ہماری

پاس کوین بادشاہزادی کا لکھا ہوا مہر دستخط ہم ایلچی ولایت لندن کو بہیجا تہا او سو عنقریب اوسکی ...

नाना साहब का पत्र

लगा दी जाए। जो कुछ मुझे करना है वह केवल तलवार से किया जाएगा।"[५४] एक लम्बे अर्से से नाना का व्यक्तित्व आकर्षक एवं रहस्यात्मक बना हुआ था। कानपुर के प्रारम्भिक दिनो मे भी वह पृष्ठभूमि मे रहा। फिर वह चुपचाप बिठूर से फर्रुखाबाद, फर्रुखाबाद से बरेली, बरेली से बहराइच और वहा से तराई के जंगलों में चला गया। परन्तु वह रंगमच पर अपनी तलवार की शानदार चमक दिखाकर गया। उसमे एक असाधारण अभिनयात्मक बुद्धि थी। बाद मे क्या उसका हुआ, यह हम नहीं जानते। नेपाल सरकार का यह पक्का विश्वास था कि वह मर गया है। किन्तु भारत सरकार इस बारे में पूरी तरह से आश्वस्त नहीं थी। नाना का एक ऐसा खौफ छा गया था, जिसे आसानी से दूर नहीं किया जा सकता था।

पेशवा परिवार की महिलाओ, बाजीराव द्वितीय की दो विधवा पत्नियों, नाना की विधवा पत्नी और बाला की विधवा पत्नी, इन सबको नेपाल मे अपना अन्तिम जीवन बिताने की अनुमति दे दी गई। उनके साथ बाजीराव द्वितीय की एक पुत्री थी, जो भट्ट परिवार की अन्तिम निशानी थी। जब शान्ति पुनः स्थापित हो गई तो वह अपनी विमाताओं को छोडकर ग्वालियर मे अपने पति के साथ रहने लगी।

बेगम हजरत महल ने भी अपने पुत्र और एक छोटे से अनुचर-वृन्द के सहित गुरखाओ के देश मे रहना पसन्द किया। उसे वचन दिया गया कि उसके पति अवध के भतपूर्व नवाब को दिए जाने वाले भत्ते के अतिरिक्त उसे एक उचित पेंशन दी जाएगी। उसे उन सब सम्मानो का भी आश्वासन दिलाया गया जो उसके पद के अनुकूल थे। परन्तु उसे भारत वापस आने के लिए प्रेरित नहीं किया जा सका। रसेल कहता है कि वह एक महान शक्ति और योग्यता वाली स्त्री थी। "उसने सम्पूर्ण अवध को अपने पुत्र का साथ देने के लिए उत्तेजित कर दिया है और सरदारों ने उसके प्रति वफादार रहने के लिए शपथ ली है।" "बेगम ने हमारे विरुद्ध कभी न खत्म होने वाली लड़ाई की घोषणा की है और उसके राज्य को मिलाने की परिस्थितियो, सन्धि की शर्तो का पालन न करना, उधार दिए गए धन के बदले में उसके परिवार के साथ किया गया कृतघ्नता का व्यवहार और अत्यन्त विषम परिस्थितियों मे उसके परिवारो ने जो सहायता दी, इन सब कई बातो के आधार पर बेगम ने अपना रोष प्रकट किया है।"[५५] युद्ध मे हार कर, बेगम ने अंग्रेजो की पेंशन लेने से इन्कार कर दिया, क्योंकि इसका अर्थ यह होता कि वह अपने पुत्र के अधिकारो को छोड देना चाहती है। वैयक्तिक रूप से वह अपने पति और स्वामी से बहुत अधिक अच्छी थी।

खान बहादुर खां को अपनी महत्वाकाक्षा का मूल्य अपनी जान देकर चुकाना पड़ा। उस पर मुकदमा चलाया गया, उसे दोषी ठहराया गया और उसे फासी पर लटका दिया गया। उसकी यह दलील बेकार रही कि यदि वह अपराधी होता तो समर्पण न करता। उसके विरुद्ध साक्ष्य काफी प्रबल था। दिल्ली के बादशाह झासी की रानी और अवध के

---

५४. फारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशन्स, सख्या ६८, २७ मई, १८५६

५५ रसेल, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द १, पृ० २७४-७५

बेगम के विरुद्ध वह एक ब्रिटिश प्रजा-जन था और यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति को अपने देश की राजनीतिक स्वतन्त्रता के लिए लड़ने का अधिकार है, परन्तु असफलता की सजा मृत्यु है। उसके वित्त मत्री सोभाराम को केवल आजीवन कारावास की सजा दी गयी, परन्तु एक अपाहिज के लिए यह मृत्यु से अधिक बुरा दण्ड है। उसे मोलमीन भेज दिया गया।[५६]

दिल्ली के पतन के बाद बख्त खा लखनऊ चला गया था। उसने लखनऊ की प्रतिरक्षा मे या बाद के युद्धों मे क्या भाग लिया, यह हम ठीक प्रकार से नहीं जानते। ऐसा पता चला कि १३ मई, १८५९ को हुए एक युद्ध मे वह मारा गया।[५७]

ज्वाला प्रसाद को कानपुर मे सती चौराघाट के पास ३ मई १८६० को फासी लगा दी गई।

अपने नेताओं के लुप्त हो जाने के बाद साधारण सिपाहियो के पास यदि कुछ हथियार बचे थे, तो उन्होने उन्हें डाल दिया। वे प्रसन्नतापूर्वक मृत्यु का भय छोड़कर अपनी अन्तिम पराजय के समाचार की पुष्टि करने के लिए अपने गावों के घरो में लौट आए। बिहार के नेताओं को वैसे ही छोड देने का निश्चय किया गया यदि वे मानव-हत्या के अपराधी न हो। नेपाल की सरकार ने अपने ब्रिटिश मित्रों को कुल दो हजार सशस्त्र विद्रोही वापस दिए।

हमने तात्या और राव साहब को जावरा अलीपुर की पराजय के बाद राजपूताना जाते छोडा था। तात्या ने ठीक ही अनुभव किया कि उसकी सलामती अब जनता के समर्थन मे थी। वह नागरिक आबादी से क्रियात्मक सहयोग की तो आशा नहीं कर सकता था, परन्तु उनकी सद्भावना की हानि उठाने के लिए वह किसी प्रकार तैयार नहीं था। इसलिए राव साहब ने घोषणा की कि उसके सैन्य दलों को जिस किसी चीज की आवश्यकता होगी, वह उचित मूल्य पर खरीदी जाएगी। ग्रामीणों को उनके आने पर भागना नहीं चाहिए, क्योंकि उन्हें उनसे किसी प्रकार की हानि की शका नहीं करनी चाहिए, बल्कि इसके विपरीत वह जो कुछ खरीदेगा उसके लिए बाजार भाव से भी अधिक मूल्य देगा।[५८] किसानों और व्यवसायियों को इस प्रकार सन्तुष्ट करने के बाद तात्या ने भारतीय राज्यो के सैन्य दलो की ओर अपना ध्यान उन पर ही उसकी आशाए आधारित थीं और सदा

---

५६ उत्तर-पश्चिमी प्रान्त के सचिव को भेजा गया पत्र, सख्या ४४०७, १५ जुलाई, १८५९

५७ फारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशन्स, सख्या १८७, १७ जून, १८५९

५८ जयपुर से गुजरते हुए तात्या के आदमियो ने ग्रामीणों से अपना सामान खरीदा। उनकी कार्य-प्रणाली यह थी कि वे पहले से ही अपने कुछ आदमी गाव मे भेज देते थे जो ग्रामीणों को यह स्पष्ट कर देते थे कि उनका इरादा गाव या उसके निवासियों को कोई हानि पहुचाने का नहीं है। जिस सामान की उन्हें आवश्यकता होती थी, उसका दुगुना मूल्य वे दे देते थे और यदि कोई इन्कार करता था तो फिर वे धमकी देते थे कि वे बलपूर्वक आवश्यक वस्तु प्राप्त कर लेंगे। कई बार उन्होंने ऐसा किया भी। जयपुर के पोलिटिकल एजेंट ईडन का ए० जी० जी० को लिखा दिनाक २४ जुलाई, १८५८ का पत्र।

उसे निराश भी नहीं होना पडा। वह चम्बल नदी को पार कर जयपुर की ओर गया परन्तु उस दिशा मे उसके आगे बढ़ने का पूर्वानुमान जनरल राबर्ट्स ने कर लिया था और तात्या टोंक की ओर चल दिया। नवाब ने अपने कुछ स्वामिभक्त अनुयायियो के साथ अपने आप को किले मे बन्द कर लिया परन्तु उसके सैन्य दल सामूहिक रूप से विद्रोहियों से मिल गए।

कर्नल होम्स द्वारा पीछा किए जाने पर तात्या ने बूंदी के कठिन पहाड़ी प्रदेश मे से गुजरते हुए मेवाड़ मे प्रवेश किया। अगस्त में तात्या को राबर्ट्स ने भीलवाड़ा मे पराजित कर दिया और वह ककरौली की ओर भाग गया। राबर्ट्स पीछा करता ही गया और उसने तात्या को बनास नदी के किनारे पर दुबारा हराया। परन्तु ऐसी असफलताओ और प्रतिकूल परिस्थितियो ने तात्या को हतोत्साहित नहीं किया। जब हर कोई यह सोचता था कि नदी को पार नहीं किया जा सकता, तब उसने चम्बल को पार किया और वह झालरपाटन पहुंचा जो झालवाड़ की छोटी-सी रियासत की राजधानी थी। राजा के सैन्य दलों ने अपनी इच्छा से विद्रोही सैन्य दलो के साथ भाई-चारे का बरताव किया और तात्या ने एक बड़ी राशि की माग की। पाच लाख रुपये चुका देने के बाद राजा का बचाव हो सका। तात्या और राव साहब अब इन्दौर से पचास मील दूर थे और यदि वे अपने ग्वालियर के कार्य की पुनरावृत्ति करने मे और सैन्य दलो को उनके स्वामी के विरुद्ध खड़ा करने मे सफल हो जाते, तो एक अधिक गम्भीर और विषम परिस्थिति उत्पन्न हो जाती। परन्तु जनरल माइकेल ने पहले से ही थोड़ी सी सेना उज्जैन भेज कर इन्दौर की रक्षा करने की सावधानी बरत ली थी। १५ सितम्बर को उसने ब्यावर के समीप तात्या पर आक्रमण किया।

माइकेल से पराजित होकर तात्या ने अपने सैन्य दलों को विभक्त कर दिया और बुन्देलखण्ड मे अगला युद्ध करने का निश्चय किया। उसने निश्चय किया कि वह स्वयं चन्देरी के प्रसिद्ध किले के विरुद्ध अभियान करेगा और राव साहब को अपनी सेना के साथ झांसी की दिशा मे जाना था। तात्या जब उस सैनिक महत्व के किले पर अधिकार नहीं कर सका तो वह नदी के पश्चिमी किनारे की ओर बढ़ा। यहा माइकेल ने उसका पीछा किया और १० अक्तूबर को उसने तात्या को मगरौली मे हराया। किसी भी बात से भयभीत न होकर तात्या ने नर्मदा नदी को पार किया और उसने आज के मध्य-प्रदेश मे प्रवेश किया। यदि उसने पहले के मराठा राज्य मे जनता के समर्थन की आशा की, तो इसमे उसे दु.खपूर्ण निराशा ही हुई। सहायता प्राप्त करने की बजाय उसने अपने शत्रुओ को ही यहां अधिक सचेत पाया और वह असीरगढ़ की ओर चल दिया। उसने इस क्षेत्र को सुरक्षित पाया और वह कुड़गाव की ओर चल दिया जहां होलकर के कुछ विद्रोही सैन्य दलों ने उसकी शक्ति को बढ़ाया। अपने शत्रुओ के सब प्रयत्नो के बावजूद तात्या ने नर्मदा को पार किया और वह बडौदा की ओर चल दिया जो एक मराठा राज्य था और जहा उसे सम्भवतः पेशवा के लिए कुछ सहायता प्राप्त होने की आशा थी, परन्तु गायकवाड़ की राजधानी मे पहुंचना उसके भाग्य मे नहीं बदा था, क्योंकि पार्क ने उसे बड़ौदा से ५० मील दूर छोटा उदयपुर मे रोक लिया।

गुजरात से आगे बढकर राव साहब और तात्या ने बंसवाड़ा की छोटी राजपूत

रियासत मे प्रवेश किया। बसवाडा से दोनों विद्रोही नेताओ ने मेवाड मे दुबारा प्रवेश किया। सलूम्बर के सरदार केसरीसिंह के अपने अधीश्वर से अच्छे सम्बन्ध नहीं थे और कूटनीतिज्ञ तात्या ने सम्भवत मेवाड के शासक और सलूम्बर के सामन्त के आपसी मत-भेदो से लाभ उठाने की आशा की। सामन्त ने उसे कुछ रसद दी और तात्या अपने पहले के कार्य-क्षेत्र भीलवाडा मे से होता हुआ प्रतापगढ़ पहुचा जो एक दूसरी राजपूत रियासत थी। परन्तु पीछा न छोडने वाले शत्रुओं ने उसे यहा भी चैन नहीं लेने दिया। हर तरफ उसे शत्रुओं के सैन्य दलों ने घेर लिया और प्रतापगढ़ के पडोस मे उनके एक दल का सामना करना पडा। प्रतापगढ़ से वह मन्दसौर को भागा और वहा से जीरापुर को।

नए वर्ष (१८५९) मे वह कोटा के राज्य-क्षेत्र मे था। नाहरगढ़ मे वह अपने नए सहायक और मित्र मानसिंह से मिला। केवल विपत्ति ने इन अपरिचित व्यक्तियों को एक दूसरे से मिला दिया था। मानसिंह को अग्रेज़ों से कोई शिकायत नहीं थी। नरवर का यह सरदार अपने अधीश्वर ग्वालियर के मराठा शासक के विरुद्ध अपने चाचा की जागीर पर अपने न्यायपूर्ण दावे के रक्षार्थ विद्रोह कर बैठा था। उसने पावडी के किले पर अधिकार कर लिया जिससे वह अग्रेज अधिकारियो के सीधे सघर्ष मे आ गया। जनरल नेपियर ने जब मानसिंह को पावडी के किले से हटा दिया तो वह अपनी जन्म-भूमि के जगलों मे चला गया। परन्तु तात्या इन्दरगढ मे शहज़ादा फीरोज़ शाह से मिलने के लिए उससे अलग हो गया।

फीरोज़ शाह की अधिकाश सेना बडे दयनीय ढग से विनष्ट कर दी गई थी क्योंकि उसने भी नेपियर के हाथों सजा पाई थी। गगा नदी को पार कर फीरोज़ शाह कूच और कालपी के प्रदेश की ओर बढ़ा था जिससे उसके सिपाही अच्छी तरह परिचित थे। नेपियर ने एकदम उन्हें बीच में रोकने का निश्चय किया। दोनों नेताओं का अप्रत्याशित ढग से रानौद मे आमना-सामना हो गया, क्योंकि उनमे से कोई भी दूसरे की गतिविधि से परिचित नहीं था। इसके बाद फीरोज शाह ने अपनी छिन्न-भिन्न सेना के साथ आरोनी के जगलो मे शरण ली जहा से उसे गुना से कैप्टन राइस ने आकर भगा दिया। जब वह इन्दरगढ़ मे आकर तात्या से मिला तो उन दोनों की सयुक्त सेना में दो हजार से अधिक सिपाही न थे। तात्या और फीरोज़ शाह इन्दरगढ़ को, ब्रिगेडियर होनर के वहा आने से ठीक एक दिन पूर्व छोड कर चले गए। परन्तु ब्रिगेडियर शावर्स जयपुर और भरतपुर के बीच देवसा मे १४ जनवरी, १८५९ को उन पर टूट पडा। उस दिन उनके पूरे अनुगामी-दल का दसवा भाग मारा गया परन्तु तात्या और फीरोज शाह ने पीछा करने वालो को एक बार और छका दिया। वे जयपुर के राज्य-क्षेत्र मे मडराते रहे और सीकर नामक एक छोटे कस्बे मे, जो एक छोटे से सरदार का ठिकाना था, उन्होंने अपना शिविर डाला। परन्तु कर्नल होम्स नसीराबाद से चल कर उनका पीछा कर रहा था। उसने चौबीस घण्टो मे पचास मील से अधिक की यात्रा की और २१ जनवरी को विद्रोही शिविर मे पहुच कर उसे आश्चर्य मे डाल दिया। तात्या की सेना फिर पराजित हो गई परन्तु सदा की तरह नेता बचकर भाग निकले। तात्या के पीछे अग्रेज़ जनरल काफी देर तक अपने घोडे दौडाते रहे।

उनमे से हर एक को यह लोभ था कि वह महान विद्रोही को अपने जाल मे फंसाने का श्रेय प्राप्त करे। इसलिए विभिन्न सैनिक दलो मे सूचना के स्वतंत्र विनिमय का सम्भवतः अभाव था।[५९] परन्तु तात्या ने अब देखा कि वह उनसे अधिक देर तक बचा नहीं रह सकता। मध्यवर्ती-भारत से वह जुलाई १८५८ मे राजपूताना को भागा था, राजपूताना से वह बुन्देलखण्ड भाग गया, बुन्देलखण्ड से वह मध्य-प्रदेश गया और वहां से वह बड़ौदा गया जहां से फिर उसे पीछे राजपूताना मे धकेल दिया गया। चम्बल, बेतवा और नर्मदा जैसी नदियां उसके शत्रुओं के आगे बढने मे बाधा पहुंचाती थी, परन्तु उसे कोई कठिनाई नहीं होती थी। वह छोटे से छोटे मार्गो से पहाड़ियो और जंगलों मे होकर चला जाता था। उसे किसानो में ही नहीं, बल्कि आदिम जातियो मे भी मित्र मिल जाते थे। वह दक्षिण की ओर क्यो नहीं बढ़ा ? क्या वह नाना की प्रतीक्षा कर रहा था ? इस प्रश्न का कभी उत्तर नहीं दिया जा सकेगा क्योकि इस बारे मे वह मौन था।

सीकर की दुर्घटना के बाद तात्या टोपे, राव साहब और फीरोज शाह, इन तीनो नेताओ ने अलग-अलग होने का निश्चय किया। छोटे-छोटे गिरोहो मे वे अब भी अपने शत्रु को धोखा देकर बच सकते थे और एकान्त पहाड़ियो या दूरस्थ जंगलो में शरण प्राप्त कर सकते थे। परन्तु साथ-साथ रहकर उनका पूरा पता लग जाना और उनका पकड़ा जाना अनिवार्य था। ऐसा सुना जाता है कि तात्या ने अपने अनुयायियों से कहा कि वे खुद अपनी रक्षा करें, क्योंकि वह इतनी बड़ी सेना के विरुद्ध अधिक समय तक युद्ध जारी नहीं रख सकता। तीन सेवक, तीन घोड़े, और एक टट्टू लेकर वह राव साहब के शिविर से रवाना हुआ और मानसिंह की रक्षा मे वह पैरो के जंगल मे शरण लेने गया। राव साहब और फीरोज शाह को मार्ग मे रोकने के प्रयत्न किए गए परन्तु वे सफल नहीं हुए। उन्होने चतुर्भज दर्रे को पार किया और सिरोज के जंगल मे उन्होने अपने लिए छिपने का एक सुरक्षित स्थान प्राप्त कर लिया। परन्तु वहा भी उन्हे शान्ति से नहीं रहने दिया गया। अपने श्रेष्ठ साधनो से अंग्रेज जनरलो ने जंगल का घेरा डालना चाहा और उसकी इंच-इंच जमीन की खोज करनी चाही। अन्त मे चार सैनिक दस्तो ने मिलकर जंगल की छान-बीन की और वे विद्रोही शिविर मे पहुच गए। परन्तु अंग्रेज अफसरो के भाग्य मे निराशा ही बदी थी। राव साहब और फीरोज शाह वहा से विलुप्त हो गए थे।

परन्तु सीकर की पराजय के बाद विद्रोहियो का दिल टूट गया था और न केवल दो राजाओ की ओर से बल्कि कम महत्वपूर्ण अन्य सरदारो की ओर से भी समझौते के लिये शर्तो के प्रस्ताव रखे जा रहे थे। बादा के नवाब ने रानी की घोषणा से लाभ उठाया और नवम्बर १८५८ में इसके प्रकाशन के शीघ्र बाद उसने समर्पण कर दिया। उसे ४०० रु०

---

५९. "सभी दस्ते उत्साही और अनुभवी अफसरो की कमान मे थे और उनमे से प्रत्येक तात्या टोपे को पकड़ना चाहता था और चूंकि हर अफसर यह चाहता था कि उसका दस्ता बिना किसी दूसरे के हस्तक्षेप के यह कार्य करे, इसलिए विद्रोहियों का पीछा करने के साथ-साथ ये सैनिक दस्ते एक दूसरे से भी दूर-दूर भागते थे।" मिसेज पैजेट, कैम्प एण्ड कैण्टोनमेट, पृ० ४४१-४२

रियासत मे प्रवेश किया। बसवाडा से दोनों विद्रोही नेताओं ने मेवाड मे दुबारा प्रवेश किया। सलूम्बर के सरदार केसरीसिंह के अपने अधीश्वर से अच्छे सम्बन्ध नहीं थे और कूटनीतिज्ञ तात्या ने सम्भवत मेवाड के शासक और सलूम्बर के सामन्त के आपसी मत-भेदों से लाभ उठाने की आशा की। सामन्त ने उसे कुछ रसद दी और तात्या अपने पहले के कार्य-क्षेत्र भीलवाडा मे से होता हुआ प्रतापगढ़ पहुंचा जो एक दूसरी राजपूत रियासत थी। परन्तु पीछा न छोडने वाले शत्रुओं ने उसे यहा भी चैन नहीं लेने दिया। हर तरफ उसे शत्रुओं के सैन्य दलों ने घेर लिया और प्रतापगढ़ के पडोस मे उनके एक दल का सामना करना पडा। प्रतापगढ से वह मन्दसौर को भागा और वहा से जीरापुर को।

नए वर्ष (१८५९) मे वह कोटा के राज्य-क्षेत्र मे था। नाहरगढ़ मे वह अपने नए सहायक और मित्र मानसिंह से मिला। केवल विपत्ति ने इन अपरिचित व्यक्तियो-को एक दूसरे से मिला दिया था। मानसिंह को अंग्रेजों से कोई शिकायत नहीं थी। नरवर का यह सरदार अपने अधीश्वर ग्वालियर के मराठा शासक के विरुद्ध अपने चाचा की जागीर पर अपने न्यायपूर्ण दावे के रक्षार्थ विद्रोह कर बैठा था। उसने पावडी के किले पर अधिकार कर लिया जिससे वह अंग्रेज अधिकारियों के सीधे सघर्ष मे आ गया। जनरल नेपियर ने जब मानसिंह को पावडी के किले से हटा दिया तो वह अपनी जन्म-भूमि के जगलों मे चला गया। परन्तु तात्या इन्दरगढ़ मे शहजादा फीरोज़ शाह से मिलने के लिए उससे अलग हो गया।

फीरोज़ शाह की अधिकाश सेना बडे दयनीय ढग से विनष्ट कर दी गई थी क्योंकि उसने भी नेपियर के हाथों सजा पाई थी। गगा नदी को पार कर फीरोज़ शाह कूच और कालपी के प्रदेश की ओर बढ़ा था जिससे उसके सिपाही अच्छी तरह परिचित थे। नेपियर ने एकदम उन्हे बीच मे रोकने का निश्चय किया। दोनों नेताओं का अप्रत्याशित ढग से रानौद मे आमना-सामना हो गया, क्योंकि उनमे से कोई भी दूसरे की गतिविधि से परिचित नहीं था। इसके बाद फीरोज़ शाह ने अपनी छिन्न-भिन्न सेना के साथ आरोनी के जगलों मे शरण ली जहा से उसे गुना से कैप्टन राइस ने आकर भगा दिया। जब वह इन्दरगढ़ मे आकर तात्या से मिला तो उन दोनों की सयुक्त सेना मे दो हजार से अधिक सिपाही न थे। तात्या और फीरोज़ शाह इन्दरगढ को, ब्रिगेडियर होनर के वहा आने से ठीक एक दिन पूर्व छोड कर चले गए। परन्तु ब्रिगेडियर शावर्स जयपुर और भरतपुर के बीच देवसा मे १४ जनवरी, १८५९ को उन पर टूट पडा। उस दिन उनके पूरे अनुगामी-दल का दसवा भाग मारा गया परन्तु तात्या और फीरोज़ शाह ने पीछा करने वालों को एक बार और छका दिया। वे जयपुर के राज्य-क्षेत्र मे मडराते रहे और सीकर नामक एक छोटे कस्बे मे, जो एक छोटे से सरदार का ठिकाना था, उन्होंने अपना शिविर डाला। परन्तु कर्नल होम्स नसीराबाद से चल कर उनका पीछा कर रहा था। उसने चौबीस घण्टो मे पचास मील से अधिक की यात्रा की और २१ जनवरी को विद्रोही शिविर मे पहुच कर उसे आश्चर्य मे डाल दिया। तात्या की सेना फिर पराजित हो गई परन्तु सदा की तरह नेता बचकर भाग निकले। तात्या के पीछे अंग्रेज जनरल काफी देर तक अपने घोडे दौडाते रहे।

उनमे से हर एक को यह लोभ था कि वह महान विद्रोही को अपने जाल मे फंसाने का श्रेय प्राप्त करे। इसलिए विभिन्न सैनिक दलो मे सूचना के स्वतंत्र विनिमय का सम्भवतः अभाव था।[५९] परन्तु तात्या ने अब देखा कि वह उनसे अधिक देर तक बचा नहीं रह सकता। मध्यवर्ती-भारत से वह जुलाई १८५८ मे राजपूताना को भागा था, राजपूताना से वह बुन्देलखण्ड भाग गया, बुन्देलखण्ड से वह मध्य-प्रदेश गया और वहा से वह बड़ौदा गया जहां से फिर उसे पीछे राजपूताना मे धकेल दिया गया। चम्बल, बेतवा और नर्मदा जैसी नदियां उसके शत्रुओ के आगे बढने मे बाधा पहुंचाती थी, परन्तु उसे कोई कठिनाई नहीं होती थी। वह छोटे से छोटे मार्गों से पहाड़ियो और जंगलो मे होकर चला जाता था। उसे किसानो मे ही नहीं, बल्कि आदिम जातियो मे भी मित्र मिल जाते थे। वह दक्षिण की ओर क्यों नहीं बढा ? क्या वह नाना की प्रतीक्षा कर रहा था ? इस प्रश्न का कभी उत्तर नहीं दिया जा सकेगा क्योंकि इस बारे में वह मौन था।

सीकर की दुर्घटना के बाद तात्या टोपे, राव साहब और फीरोज़ शाह, इन तीनो नेताओ ने अलग-अलग होने का निश्चय किया। छोटे-छोटे गिरोहो मे वे अब भी अपने शत्रु को धोखा देकर बच सकते थे और एकान्त पहाड़ियो या दूरस्थ जंगलो मे शरण प्राप्त कर सकते थे। परन्तु साथ-साथ रहकर उनका पूरा पता लग जाना और उनका पकड़ा जाना अनिवार्य था। ऐसा सुना जाता है कि तात्या ने अपने अनुयायियो से कहा कि वे खुद अपनी रक्षा करें, क्योंकि वह इतनी बड़ी सेना के विरुद्ध अधिक समय तक युद्ध जारी नहीं रख सकता। तीन सेवक, तीन घोडे, और एक टट्टू लेकर वह राव साहब के शिविर से रवाना हुआ और मानसिंह की रक्षा मे वह पैरो के जंगल मे शरण लेने गया। राव साहब और फीरोज़ शाह को मार्ग मे रोकने के प्रयत्न किए गए परन्तु वे सफल नहीं हुए। उन्होने चतुर्भज दर्रे को पार किया और सिरोज के जंगल मे उन्होंने अपने लिए छिपने का एक सुरक्षित स्थान प्राप्त कर लिया। परन्तु वहां भी उन्हें शान्ति से नहीं रहने दिया गया। अपने श्रेष्ठ साधनों से अंग्रेज़ जनरलो ने जंगल का घेरा डालना चाहा और उसकी इंच-इंच जमीन की खोज करनी चाही। अन्त मे चार सैनिक दस्तों ने मिलकर जंगल की छान-बीन की और वे विद्रोही शिविर मे पहुंच गए। परन्तु अंग्रेज़ अफसरो के भाग्य मे निराशा ही बदी थी। राव साहब और फीरोज़ शाह वहां से विलुप्त हो गए थे।

परन्तु सीकर की पराजय के बाद विद्रोहियो का दिल टूट गया था और न केवल दो राजाओं की ओर से बल्कि कम महत्वपूर्ण अन्य सरदारो की ओर से भी समझौते के लिये शर्तो के प्रस्ताव रखे जा रहे थे। बादा के नवाब ने रानी की घोषणा से लाभ उठाया और नवम्बर १८५८ मे इसके प्रकाशन के शीघ्र बाद उसने समर्पण कर दिया। उसे ४०० रु०

---

५९. "सभी दस्ते उत्साही और अनुभवी अफसरो की कमान मे थे और उनमे से प्रत्येक तात्या टोपे को पकड़ना चाहता था और चूकि हर अफसर यह चाहता था कि उसका दस्ता बिना किसी दूसरे के हस्तक्षेप के यह कार्य करे, इसलिए विद्रोहियो का पीछा करने के साथ-साथ ये सैनिक दस्ते एक दूसरे से भी दूर-दूर भागते थे।" मिसेज पैजेट, कैम्प एण्ड कैण्टोनमेंट, पृ० ४४१-४२

प्रतिमास पेंशन दी गई। १६ फरवरी को नीमच के समीप दो आदमी पकडे गये जिनका दावा था कि वे विद्रोही शिविर के दूत हैं। उनके पास दो पत्र पाए गए, जिनमे से एक अंग्रेजी मे था और आगरा के भूतपूर्व सब-असिस्टेंट सर्जन वजीर खा की ओर से नीमच के समादेशक अधिकारी को लिखा गया था। दूसरा पत्र फारसी मे था जिस पर न पता था और न तारीख। इस पर सैयद जहूर अली ने अपने और अपने साथी अफसरों की तरफ से हस्ताक्षर किए थे। वजीर खा ने यह कहते हुए पत्र का प्रारम्भ किया था कि वह "न तो एक विद्रोही था और न ग़दर करने वाला" और विशिष्ट अवस्थाओं मे उसे आगरा में अपना स्थान छोडने के लिये बाध्य किया गया था। उसका दावा था कि उसने विद्रोहियों से समर्पण करने के लिये अनुरोध किया था और ऐसा ही उसने बीकानेर जिले के सैनिक दस्ते कें समादेशक अधिकारी को भी लिखा था। परन्तु उसे कोई उत्तर नहीं मिला। अब उसने घोषणा की शर्तो की स्पष्ट व्याख्या के लिए प्रार्थना की और अन्त मे फीरोज शाह और राव साहब की ओर से क्षमा की प्रार्थना की। उसने लिखा, "मेरा विश्वास है कि शहजादा फीरोज शाह और राव साहब दोनो को सुरक्षा के सम्बन्ध मे आश्वस्त कर दिया जाए तो एक भी आदमी ऐसा नहीं बचेगा जो अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध लडता रहे। यदि सरकार राव को क्षमा के योग्य न समझे तो मैं समझता हू कि अकेला शहजादा ही प्राय सब ग़दर करने वालो से समर्पण करवा देगा' बशर्ते कि उसे विद्रोहियो से मिल जाने के लिए क्षमा कर दिया जाय।" जहूर अली ने लिखा, "हमे सीकर से महामहिम सम्राज्ञी की घोषणा की एक प्रति मिली। उसमे समर्पण करने की अवधि १ जनवरी, १८५६ रखी गई है, परन्तु हाशिये मे ६ महीने की और अवधि दे दी गई है, जिससे कि कुछ बातो का स्पष्टीकरण किया जा सके। हमने अपने वकील सिरमुश्त खा और अब्दुल करीम खा को आपके पास भेजा है। उनके कथनानुसार यदि हमे सुरक्षा का आश्वासन मिल जाय, तो जब भी आप कहें, हम समर्पण कर देंगे। "नीमच के सुपरिंटेंडेंट कैप्टन डेनिस ने शीघ्रतापूर्वक उत्तर दिया कि हर किसी के प्रति, जो रानी की घोषणा के अनुसार समर्पण करेगा, उस घोषणा मे दिए गए हर वचन का पूरी तरह से पालन किया जायगा। यह समान रूप से राव साहव, फीरोज शाह और साधारण सिपाहियो पर लागू होता है।"[६०] पर राबर्ट हैमिल्टन की ओर से १४ मार्च को दिए गए एक तार-सन्देश से हमे ज्ञात होता है कि राव साहव का एक एजेंट शान्ति के प्रस्तावों को लेकर सर राबर्ट नेपियर से मिला था। "वकील ने एक साथ राव साहव के लिये कई अनुग्रहो की सूची प्रस्तुत की, परन्तु उसे सूचित किया गया कि उन्हें घोषणा मे सम्मिलित नहीं किया जा सकता। मैं अपने पहले उत्तर मे उसे उसकी जीवन-रक्षा का वचन दे चुका था और साथ ही यह भी कि उसके साथ व्यक्तिगत असम्मान का वर्ताव नहीं किया जायगा, इन्हीं सब वातों से उसे सूचित किया जा सकता है। वकील का कहना है कि फीरोज शाह समर्पण करने को व्यग्र है, परन्तु वह डरता है।"[६१] राव साहव को वाजी राव के दामाद वावा साहव आप्टे के रूप मे अपना एक प्रभावशाली

६० फारेन पोलिटिकल कन्सलटेशन्स, सख्या ६१८, १५ अप्रैल, १८५६

६१ फारेन पोलिटिकल कन्सलटेशन्स, सख्या १६६, २५ मार्च, १८५६

समर्थक मिल गया था। आप्टे मालवा मे सिन्धिया का सर-सूबेदार था और इसलिए वह अंग्रेजो की दृष्टि मे वहुत अच्छा था। जवकि उसके दो साले अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध लड रहे थे, वह सिन्धिया के प्रति वफादार रहा। सर रावर्ट हैमिल्टन के द्वारा उसको लिखे गये एक पत्र से साधारणत. यह माना जा सकता है कि उसने न केवल राव साहव की ओर से वल्कि वाला साहव और नाना साहव की ओर से भी मध्यस्थता की थी, क्योंकि सर रावर्ट का यह कहना था कि उसे वाला साहव और नाना साहव से कुछ नहीं लेना-देना और वह केवल राव साहव से सरोकार रख सकता है जब तक कि वह उसके अधिकार-क्षेत्र की सीमा मे रहे। "यदि राव साहव समर्पण कर देता है तो उसके जीवन रक्षा की जाएगी। उसे बेड़िया नहीं पहननी पड़ेंगी और जेल में नहीं रहना पड़ेगा, न उसे कोई अपमान सहन करना पडेगा। उसकी जीवन-वृत्ति के लिये साधन जुटा दिए जाएंगे। उसे भारत के ऐसे भाग मे रहना पड़ेगा जो सरकार उसके लिये निश्चित करेगी। ये वचन उसे इस शर्त पर दिए जाते हैं कि यदि उसने अपने हाथ से या वाणी से अंग्रेज प्रजा-जनो का वध न करवाया हो और न उसके लिए उत्तेजना दी हो।"[६२] राव साहव ने फिर भी इन शर्तो से लाभ नहीं उठाया। क्या वह यह चाहता था कि उसके चाचा भी क्षमा कर दिए जाएं? जब वह तीन वर्ष वाद जम्मू राज्य-क्षेत्र मे गिरफ्तार किया गया, तो उसने उन दोनो पर अभियोग लगाते हुए एक वक्तव्य दिया। परन्तु १८६२ मे वाला और नाना किसी भी पार्थिव शक्ति की पहुंच के वाहर थे या ऐसे समझे जाते थे और राव साहव को अपनी जान बचाने की पड़ी थी।

फीरोज शाह ने और अधिक अच्छी शर्तो की मांग की। अपनी गतिविधि पर किसी प्रकार के प्रतिबन्धो का लगाया जाना वह स्वीकार न कर सका और न वह यह चाहता था कि उन थोड़े से अनुयायियो से जो उसके साथ अव भी वच गए थे, हथियार डलवाए जाएं। उसके पत्र की शैली और ध्वनि ने मध्यवर्ती-भारत में सर रावर्ट हैमिल्टन के उत्तराधिकारी सर रिचर्ड शेक्सपियर को क्रुद्ध कर दिया। यदि उसका पत्र अधिक विनम्र शब्दों मे लिखा गया होता तो शेक्सपियर एक ऐसे आदमी के लिए कुछ साधन जुटाने की सिफारिश करता, "जो अपनी रोजी कमाने के लिए पूर्णतः असमर्थ था।" परन्तु भयंकर विपत्ति मे भी गर्वीला शहजादा यह नहीं भूला था कि वह तैमूर और वावर का वंशज है। अपने पूर्वज सम्राटो के खिताव को भी वह नहीं छोड़ना चाहता था और वजीर खां के पद या स्थिति के आदमी को वह एक परवाना ही लिख सकता था, पत्र नहीं। सर रिचर्ड शेक्सपियर ने यह देख लिया कि परवाना फीरोज शाह के एक अधीनस्थ को सम्वोधित किया गया था, भारत के वायसराय के प्रतिनिधि को नहीं, परन्तु शाही खितावो के इस्तेमाल से वह क्रुद्ध हुआ। परवाना इस प्रकार था, "जगत और मानव जाति के प्रभु की ओर से, विश्व और उसके विश्वासियो के पवित्र उपदेष्टा का पुत्र, मिर्जा मुहम्मद फीरोज शाह वहादुर, अपने विश्वस्त सेवक मौलवी मुहम्मद वजीर खां को, दिनांक ३ जिल्कव, १२७५ (४ जून, १८५९) को लिखता है। चूंकि तुम्हारी याचना मिल चुकी है और उसकी वातों

---

६२ फारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशन्स, सख्या २८८, १७ जून, १८५६

को समझ लिया है, इसलिए मैं कुछ शर्तें लिखता हू । यदि ये स्वीकार कर ली जाएं और पूरा आश्वासन प्राप्त कर लिया जाए तो मुझे समझौता करने मे कोई आपत्ति नहीं है । पहली शर्त—मेरी जीवन-वृत्ति के सम्बन्ध मे क्या प्रबन्ध किया गया है । दूसरी शर्त—मुझे पूरी स्वतन्त्रा मिलनी चाहिए, अर्थात् मुझे यह अनुमति मिलनी चाहिए कि जहां भी मैं चाहू बिना किसी रोक-टोक के आ-जा सकू । तीसरी शर्त—मेरे अनुचरों से, जो संख्या में करीब दस या बीस है, हथियार नहीं डलवाये जाएगे । उपयुक्त शर्तो पर उत्तर प्राप्त करने के पश्चात मुझे सूचना दो । एक बार पहले मैंने एक आदमी को इन्दौर भेजा था जिससे मुझे अब तक कोई सूचना नहीं मिली । उसके बारे मे जाच करो और अपनी जाच के परिणाम मुझे भेजो ।"[63] किसी भी हालत मे सरकार फीरोज शाह को आने-जाने की स्वतन्त्रता नहीं दे सकती थी और उसकी जैसी साहसिक भावना का तरुण व्यक्ति एक निश्चित निवास-स्थान पर रहने को तैयार नहीं हो सकता था । राव साहब के समान, परन्तु एक विभिन्न कारण से, फीरोज शाह ने क्षमा-दान की शर्तो को स्वीकार नहीं किया था या वह कर नहीं सका ।

अप्रैल मे मार्नासिह ने तात्या टोपे को धोखा दिया । मेजर मीड ने, जिसे जनरल नेपियर ने पारों के जगलों को साफ करने और उनमे से सडक निकालने के लिए नियुक्त किया था, ८ अप्रैल को मार्नासिह के पकडे जाने की खबर दी । मार्नासिह मे मराठा ब्राह्मण की शक्ति नहीं थी और लगातार युद्ध और जगल के जीवन ने उसके सैनिक उत्साह को ठडा कर दिया था । २ अप्रैल को उसने मीड के शिविर मे प्रवेश किया और औपचारिक रूप से उसके सामने समर्पण कर दिया । जब वह अपने नए मित्रों को प्रसन्न करने के लिए व्यग्र था और उसने ऐसे भी सकेत किए कि वह तात्या को भी बलिदान करने के लिए इच्छुक था । मीड लिखता है, "मार्नासिह ने अपने समर्पण के वाद कई बार ऐसे संकेत दिए हैं जिससे मुझे यह विश्वास होता है कि वह तात्या टोपे को पकड़वा सकता है । इसलिए कृपापूर्ण और उत्साहपूर्ण सलाह देकर मुझसे जो कुछ हो सकता था मैंने सब किया है और मार्नासिह से मैंने अनुरोध किया है कि सेवा के इस विशिष्ट कार्य के द्वारा वह सरकार की नजरो मे अपने लिए एक उत्कृष्ट स्थान प्राप्त करे ।" मार्नासिह को अधिक अनुरोध की आवश्यकता नहीं थी । उसने पहले ही सकल्प कर लिया था । उसे सिर्फ यही भय था कि अतिम क्षण तात्या कहीं उसके चगुल से निकल न जाए । तात्या जानता था कि मार्नासिह मीड के शिविर मे गया है, फिर भी वह यह निर्णय नहीं कर सका कि वह ठहरे या चला जाए । वह केवल दो सेवको के साथ जगल के बीच मे रह रहा था और बाहरी ससार के साथ उसका सम्पर्क टूट गया था । फिर भी वह जगल के एक गुप्त कोने से दूसरे गुप्त कोने को जा सकता था और यह सम्भव था नियत दिन पर मार्नासिह उसका कोई चिन्ह न पा सके । इसलिए मार्नासिह ने झूठा बयान करके तात्या से मिलने का प्रबन्ध किया । मीड इस उत्साहपूर्ण कार्य मे भाग लेने के लिए इच्छुक था परन्तु मार्नासिह ने इच्छा प्रकट की कि यह सारा प्रबन्ध पूरी तरह से उसी के हाथ मे रहे । इसलिए देशी पैदल सेना का

---

६३ फारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशन्स, सख्या १७२, १ जुलाई, १८५६

एक छोटा-सा दल उसके अधीन रख दिया गया। मानसिंह इस बारे मे सावधान था कि कोई घुड़सवार उसके साथ न चले, क्योंकि थोड़ा-सा भी शोर उसकी योजना को नष्ट कर सकता था। पैदल सिपाहियों को भी यह बिलकुल भान नहीं था कि वे किस काम पर जा रहे हैं। किसी प्रतिरोध की आशंका नहीं थी क्योंकि मानसिंह अपने मित्र को सोता हुआ पकड़ना चाहता था। "मानसिंह के आदेश से सिपाही एक छोटे से गड्ढे में छिप गए, जहां वह और तात्या टोपे अक्सर जाया करते थे। वह तात्या को वहा ले आया और उसके साथ आधी रात तक बातचीत करता रहा। उसके बाद तात्या सो गया। इसके बाद मानसिंह सिपाहियों को ले आया और तात्या टोपे पकड़ लिया गया और बांध लिया गया। उसके हाथ स्वयं मानसिंह ने पकड़ रखे थे।" दो रसोइए, जो तात्या के साथ थे घबडाकर भाग गए। तात्या के पास एक तलवार और एक कुकरी, बस ये दो ही हथियार थे। उसके शरीर पर सोने के तीन बाजूबन्द थे और उसके पास सोने के ११८ सिक्के थे। दूसरे दिन सवेरे वह ब्राह्मण, जिसकी बहुत दिनो से मांग थी, मीड के शिविर में लाया गया जहा से उसे सिप्री भेज दिया गया।[६४] १५ अप्रैल को उस पर सैनिक न्यायालय में मुकदमा चलाया गया। उस पर अभियोग था कि उसने "विद्रोह किया और अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध जनवरी १८५७ और दिसम्बर १८५८ के बीच विशेषतः झांसी और ग्वालियर में युद्ध किया।" परिणाम पहले से निश्चित था ही। फारेस्ट लिखता है, "उस पर जो नृशंस अपराध लगाया गया था उसका उसे दोषी पाया गया और कानून के अनुसार उसे मृत्यु-दण्ड दिया गया।" एक विदेशी सरकार के विरुद्ध लड़ना नृशंस अपराध नहीं है, हां, देश के वैध अधिकारियों के विरुद्ध लड़ना कानून की दृष्टि में अपराध अवश्य है। यह ध्यान मे रखने योग्य है कि हत्या का कोई अभियोग तात्या पर नहीं लगाया गया था। तात्या जन्म से ब्रिटिश प्रजा-जन नहीं था। बाजी राव द्वितीय की मृत्यु तक उसके किसी आदमी से यह आशा नहीं की जा सकती थी कि वह भारत मे अंग्रेजी सरकार की अधीनता स्वीकार करेगा। तात्या अपने स्वामी के घराने के प्रति वफादारी दिखाने मे कभी नहीं चूका।[६५]

राव साहब को भी धोखा दिया गया, परन्तु एक राजपूत के द्वारा नहीं बल्कि महाराष्ट्र के ही एक आदमी के द्वारा। यह मालूम हुआ था कि राव साहब अपनी पत्नी और बच्चों के साथ जम्मू राज्य-क्षेत्र के चेनानी नामक स्थान मे निवास कर रहा है।

---

६४. फ़ारेन पोलिटिकल प्रोसीडिंग्स, संख्या, २२ अप्रैल, १८५९

६५. मैलेसन उसकी प्रशसा करते हुए कहता है कि स्थिति का चुनाव करने में वह बहुत कुशल था और स्थानों के पहचानने की उसकी शक्ति अद्भुत थी। "उसने एक या दो बार से अधिक राजपूताना और मालवा का भ्रमण किया और इन दोनों देशो का क्षेत्रफल मिला कर एक लाख इकसठ हजार सात सौ वर्गमील है।" "जिन गुणों का का उसने प्रदर्शन किया वे और भी अधिक प्रशसनीय होते, यदि उनके साथ-साथ उसमे एक सेनानी की शक्ति और आक्रामक सिपाही का साहस भी होता।" मैलेसन, उद्धृत ग्रन्थ जिल्द ३, पृ० ३८१-८२

सियालकोट का डिप्टी कमिश्नर मि० मिकनैब उसे गिरफ्तार करने के लिए एकदम जम्मू की ओर बढा और बिना किसी परेशानी के उसे गिरफ्तार कर लिया। अपने वक्तव्य मे राव साहब ने इस बात का निषेध किया कि अग्रेज प्रजा-जनों की हत्या मे उसका कोई हाथ न था।[६६] कर्नल विलियम्स ने कानपुर की घटनाओ के बारे मे जो जाच की, उसमे ६१ गवाहो मे से किसी ने भी राव साहब पर हत्या करने या उसकी उत्तेजना देने का अभियोग नहीं लगाया। ऐसा कोई साक्ष्य नहीं था, जिससे उसे मध्यवर्ती-भारत मे भी इस प्रकार के किसी अपराध का भागी माना जा सके। परन्तु बीबीगढ़ का बदला लिया जाना था और राव साहब को दूसरो के पापो का भी प्रायश्चित करना था। नये गवाह उसके अपराध को प्रमाणित करने के लिए सामने आए और पाण्डुरग सदाशिव, उर्फ राव साहब अपराधी पाया गया और उसे फासी पर लटका दिया गया।

सिरोंज के जगल को छोडने के बाद राव साहब की यात्रा उत्तर-भारत तक ही सीमित रही थी। वह एक तीर्थ-स्थान से दूसरे तीर्थ-स्थान मे यात्रा करता रहा और अन्त मे चेनानी पहुचा, जहाँ उसे गिरफ्तार कर लिया गया। वह सिरोज से उज्जैन गया था और वहा से उदयपुर गया, और यहीं उसकी पत्नी उससे मिली। उसको साथ लेकर वह दिल्ली गया, सम्भवत इसलिए कि अत्यधिक भीडवाले इस शहर मे उसे छिपने का सबसे अधिक सुरक्षित स्थान मिल सकता था। बाद मे वे थानेश्वर, ज्वालामुखी और कांगडा मे गए, जहां उनके होने की कभी सम्भावना ही नहीं की जा सकती थी। अन्त मे वह चेनानी पहुचा, जहा वह पकड़ लिया गया।

फीरोज शाह ने भारत मे ठहरना ठीक नहीं समझा। उसकी घुमक्कड वृत्ति उसे पहले भी समुद्रो के पार ले गई थी और वह अब भी अपनी प्रारम्भिक तरुणावस्था मे था, जीवन और आशा से परिपूर्ण। यह पता लगा कि सन् १८६० मे वह कन्धार मे था। स्पष्टत उसने सिन्ध मे होकर यात्रा की थी। इसके बाद उसकी गतिविधि अग्रेजी गुप्तवार्ता विभाग के लिए कोई रहस्य नहीं रही। जहा भी वह जाता था उपर्युक्त विभाग के एजेंटों की सतर्क आखें उसकी निगरानी करती थीं। सन् १८५६ मे वह बुखारा चला गया। वह बडी आर्थिक कठिनाई मे था और उसे स्थानीय राजकुमारो की कृपा पर रहना पडा। सन् १८६३ मे वह वापस लौटा और वह तेहरान चला गया। सन् १८६३ के प्रारम्भ मे यह पूछ-ताछ की गई कि क्या उसके पकडने के लिए कोई इनाम रखा गया है। भारत सरकार ने एक विदेशी राज्य मे उसके साथ हस्तक्षेप करना और उस राज्य की क्षेत्रीय प्रभुता को भग करना उचित नहीं समझा। बाद के वर्षो मे वह हिरात और बुखारा के बीच घूमता रहा और सन् १८६८ मे स्वात की घाटी मे वह भारतीय सीमान्त के सन्निकट आ गया। स्वात से उसने काबुल की यात्रा की। अमीर ने उसे एक असुविधाजनक अतिथि पाया। उसकी राजधानी मे फीरोज शाह की उपस्थिति उसके अपने अग्रेज मित्रो और पडोसी भारतीयो के हृदय मे सशय और बेचैनी ही पैदा कर सकती थी। इसलिए अमीर ने अनुरोध किया कि वह बदख़शा चला जाए। परन्तु वहा भी वह देर तक नहीं ठहरा और

६६ फारेन डिपार्टमेण्ट प्रोसीडिंग्स, सख्या २२८-२६, अप्रैल १८६२

उसके बाद उसे समरकन्द मे देखा गया। किस उद्देश्य को लेकर वह एक मुस्लिम दरबार से दूसरे मुस्लिम दरबार की यात्रा कर रहा था, इसके बारे मे अस्पष्ट अनुमान ही लगाया जा सकता है। परन्तु यदि उसे भारत पर आक्रमण करने की कोई आशा भी थी तो उसे अफगानिस्तान, फारस या मध्य-एशिया से कोई सहायता नहीं मिली। अक्तूबर सन् १८७२ के कुस्तुनतुनिया-स्थित महामहिम सम्राज्ञी के राजदूत ने सूचना दी कि फीरोज शाह वहां रह रहा है। तुर्की की राजधानी मे फीरोज शाह अकेला ही राजनीतिक शरणार्थी नहीं था। कुस्तुनतुनिया ने अनेक अंग्रेज विरोधी भारतीय मुस्लिमो को आकृष्ट किया था, परन्तु फीरोज शाह उनका नेता नहीं था। अभाव, चिन्ता और कठिनाइयो ने उसके स्वास्थ्य को बिगाड़ दिया था और वह बुड्ढा हो चला था। जुलाई १८७५ मे हंटर ने लिखा, "इस्तम्बूल मे साधारणत. यह खबर है कि फीरोज शाह कुछ महीने पूर्व मिर्जा मुहम्मद बे के साथ मक्का चला गया है। वस्तुत· तथ्य यह है कि वह यहीं है और इस बात की जानकारी केवल हिन्दुस्तानियो को या ऐसे तुर्को को है जो उससे व्यक्तिगत रूप से परिचित हैं।...जिस आदमी ने मुझे सूचना दी है उसे सुल्तान इब्राहीम फीरोज शाह को दिखाने ले गया था और वह उसके पास कुछ समय तक बैठा। उसने फीरोज शाह का वर्णन करते हुए कहा है कि वह बिगड़े हुए स्वास्थ्य का आदमी दिखाई पड़ता था, अन्धा या करीब-करीब एक आख का अन्धा और लंगड़ा।"[६७] उस समय उसकी अवस्था ४५ वर्ष से अधिक की न होगी। जून १८७५ में वह मक्का गया और वहा १७ दिसम्बर, १८७७ को उसे चिर शान्ति मिली।" "ऐसा लगता है कि वह बड़ी दरिद्रता की अवस्था मे था और प्रायः उस भत्ते पर आश्रित था जो उसे मक्का के प्रधान शरीफ (प्रशासनाधिकारी) की ओर से मिलता था। समय-समय पर उसे भारत के शेखो और आदमियो से भी सहायता मिलती रहती थी। मक्का मे उसने अपना एक मात्र जो सम्बन्धी छोड़ा, वह उसकी पत्नी है।"[६८]

इस प्रकार की निराश्रयता की अन्तिम अवस्था मे फीरोज शाह की मृत्यु हुई। युवावस्था मे ही वह बुड्ढा हो गया था। अपरिचितो के बीच वह अपरिचित था। वह अपने देश से बहुत दूर था, जिसके लिए उसने इतने कष्ट सहे। यदि रावर्ट्स ब्रूस एक देशभक्त था तो फीरोज शाह भी निश्चय ही देशभक्त था। अकेले ही उसने मक्का से बम्बई की और बम्बई से मध्यवर्ती भारत की यात्रा की, जिससे कि वहां विद्रोह का संगठन किया जा सके। अनुयायियो या आर्थिक साधनों के बिना इस तरुण पुरुष ने एक सेना का सगठन किया और विषम परिस्थितियों मे उसने दो वर्ष तक युद्ध किया। उसके हाथ बेगुनाह लोगों के रक्त से रंजित नहीं थे। उसे अपने उद्देश्य की अन्तिम सफलता मे विश्वास था, परन्तु उसे यह शका थी कि निरीह स्त्रियों और बच्चो की हत्या से उसमे कुछ काल के लिए बाधा पड़ गई है।[६९]

---

६७. फारेन डिपार्टमेण्ट, सीक्रेट प्रोसीडिंग्स, सख्या ५-१० और के० डब्ल्यू, सितम्बर १८७७

६८. फारेन डिपार्टमेण्ट पोलिटिकल प्रोसीडिंग्स, नं० ३६-४२, जनवरी १८७६

६९. अपनी दिनाक १७ फरवरी, १८५८ की घोषणा मे वह कहता है, "अंग्रेज़ो को

अन्य किसी विद्रोही नेता ने हत्याकाण्डो की इतनी खुलकर और स्पष्ट शब्दों में निन्दा नहीं की। तरुणावस्था, पवित्रता और शाही वश मे पैदा होने से वह एक सन्त वीर बन गया और यह उचित ही था कि उसकी मृत्यु मक्का मे हुई, जिसके लिए प्रत्येक धार्मिक मुस्लिम उत्सुक रहता है। यह एक दु:ख की बात है कि उसने अपने भ्रमणो का कोई वर्णन नहीं छोडा है, क्योकि उसने अपने देश-निकाले के समय मे मध्य-पूर्व के अधिकाश भाग और मध्य-एशिया की यात्रा की। इससे भी अधिक दु:ख की बात यह है कि उसके थोडे से देशवासी ही आज उसे याद करते हैं।

फीरोज शाह की विधवा पत्नी ने भारत सरकार से एक दयापूर्ण भत्ते के लिए प्रार्थना की। नवम्बर १८८१ मे उसे केवल पाच रुपये मासिक की पेंशन इस शर्त पर दी गई कि वह कभी दिल्ली नहीं लौटेगी। लार्ड रिपन ने इस तुच्छ रकम को बढ़ाकर १०० रु० प्रति मास कर दिया गया और उसे पिछले सारे समय से लागू किया गया। यह स्पष्ट कर दिया गया कि यह बेगम के लिए व्यक्तिगत पेंशन है और इसे पैतृक नहीं समझना चाहिए।[७०]

पराजित करने में देर इसलिए हुई है कि आदमियो ने मासूम स्त्रियों और बच्चों को अपने नेताओं की बिना किसी अनुमति के मारा है और उनके आदेशों का उन्होंने पालन नहीं किया है। हमें चाहिए कि हम ऐसे कार्यों को छोड़ दें और तब हमें एक पवित्र युद्ध की घोषणा करनी चाहिए।" फारेन सीक्रेट कन्सल्टेशन्स, सख्या १२२, ३० अप्रैल, १८५८

७० फारेन डिपार्टमेंट, फाइनेन्शियल प्रोसीडिंग्स, बी०, सख्या ३२-३३ अप्रैल १८८२ और सख्या १२२-२३, जून १८८३

परिशिष्ट १

विदेशी राजनीतिक परामर्श, सख्या ३०२२, ३१ दिसम्बर, १८५८ बिरजिस कादर के नाम से बेगम के द्वारा जारी की गई घोषणा

इस समय कुछ निर्बल मस्तिष्क वाले मूर्ख लोगो ने यह खबर फैला रखी है कि अंग्रेज लोगो ने हिन्दुस्तान के आदमियों के दोषों और अपराधो को क्षमा कर दिया है। यह बड़ी आश्चर्यजनक बात है क्योकि अंग्रेजों का तो यह कभी न बदलने वाला रिवाज है कि वे किसी दोष को कभी क्षमा नहीं किया करते, चाहे वह बड़ा हो या छोटा, यहां तक कि यदि अज्ञानवश या प्रमादवश भी कोई छोटा-सा अपराध हो जाए तो उसे भी कभी क्षमा नहीं करते।

१० नवम्बर, १८५८ की घोषणा जो हमारे सामने आई है, बिलकुल स्पष्ट है और चूंकि कुछ मूर्ख आदमी, इस घोषणा के वास्तविक उद्देश्य को न समझ कर इससे बहक गए हैं, इसलिए हम जो कि चिरस्थायी सरकार हैं और अवध के लोगो के माता-पिता हैं, बहुत ध्यानपूर्वक इस वर्तमान घोषणा को आगे रखते हैं, ताकि इसकी मुख्य बातो का वास्तविक उद्देश्य खुल जाए और हमारे प्रजा-जन सावधान हो जाएं।

१—घोषणा मे यह लिखा हुआ है कि हिन्दुस्तान का देश न्यास के रूप मे कम्पनी के अधिकार में था और अब रानी ने उसे ले लिया है तथा भविष्य में रानी के कानूनों का ही पालन किया जाएगा। हमारे धार्मिक प्रजा-जनों को इस पर विश्वास नहीं करना चाहिए। इसका कारण यह है कि कम्पनी के कानून, कम्पनी का प्रबन्ध, कम्पनी के अंग्रेज नौकर, गवर्नर-जनरल, कम्पनी का न्यायिक प्रशासन, ये सब तो अपरिवर्तित हैं। फिर इसमे नई बात कौन सी है जिससे जनता को लाभ हो सकता है या जिस पर वह आश्रित रह सकती है?

२—घोषणा में यह कहा गया है कि कम्पनी ने जो भी शर्तनामे या समझौते किए हैं, उन्हें रानी स्वीकार करेगी। जनता को यह चालाकी भली प्रकार समझ लेनी चाहिए। कम्पनी ने सारा हिन्दुस्तान छीन लिया है और अब यदि इस समझौते को स्वीकार किया जाए तो इसमे नया क्या है? कम्पनी ने भरतपुर के सरदार के साथ पुत्रवत् व्यवहार करने की घोषणा की, परन्तु उसके बाद उसके राज्य-क्षेत्र को हड़प लिया। लाहौर का सरदार लन्दन ले जाया गया और अभी तक भी वह नहीं लौट पाया है। एक ओर उन्होंने नवाब शमशुद्दीन खा को फांसी पर लटकाया और दूसरी ओर उन्होने अपने टोप उतार कर उसे सलाम किया। पेशवा को उन्होने पूना सितारा से बाहर निकाल दिया और बिठूर मे आजन्म कारावास मे डाल दिया। सुलतान टीपू के साथ उन्होंने जो विश्वासघात किया

वह सुविदित है। बनारस के राजा को उन्होने आगरा मे कैद कर लिया। ग्वालियर के सरदार के देश का प्रशासन करने के बहाने उन्होने वहा अग्रेजी रीति-रिवाज प्रचलित कर दिए। उन्होंने बिहार, उडीसा और बगाल के सरदारो का नामोनिशान भी बाकी नहीं छोडा है। फर्रुखाबाद के रईस को उन्होने एक थोडा-सा मासिक भत्ता दिया और उसका राज्य-क्षेत्र ले लिया। उन्होने हमारे अधीन पुराने जिले शाहजहापुर, बरेली, आजमगढ, जौनपुर, गोरखपुर, इटावा, इलाहाबाद और फतेहपुर इत्यादि को वेतन बांटने के बहाने हमसे ले लिया। घोषणा के सातवें अनुच्छेद मे उन्होने शपथपूर्वक लिखा कि वे अब हमसे और कुछ न लेंगे। यदि कम्पनी के द्वारा किए गए प्रबन्ध स्वीकार किए जाने वाले हैं तो पहले और अब की वस्तुस्थिति मे अन्तर ही क्या है? खैर, ये तो पुराने मामले हैं। उन्होंने अभी हाल मे सन्धियों और शपथो की अवज्ञा कर और इस बात के बावजूद कि उन पर हमारा लाखो रुपया कर्जा है, बिना किसी कारण, बुरे शासन का और हमारी जनता मे असन्तोष का बहाना लेकर, हमारे देश को और लाखों के मूल्य की हमारी सम्पत्ति को ले लिया। यदि हमारी जनता हमारे शाही पूर्वज वाजिद अली शाह से असन्तुष्ट थी तो वह हमसे सन्तुष्ट कैसे है और हमारी प्रजा अपने तन-मन-धन से हमारे लिए जितनी वफादार रही है उतनी वह किसी और शासक के लिए कभी नहीं रही? फिर ऐसी क्या कमी है जिससे वे हमे हमारा देश हमें वापस नहीं देते।

फिर घोषणा मे यह लिखा हुआ है कि वे अपने राज्य-क्षेत्र मे वृद्धि करना नहीं चाहते। परन्तु फिर भी वे दूसरे राज्यो को अग्रेजी राज्य मे मिलाने से विरत नहीं होते। यदि रानी ने शासन ले लिया है तो महामहिम सम्राज्ञी हमारे देश को हमे वापिस क्यों नहीं कर देती, जबकि हमारी जनता यह चाहती है। यह सुविदित है कि किसी राजा या रानी ने विद्रोह के लिए अपनी सारी सेना और जनता को सजा नहीं दी, बल्कि सबको क्षमा कर दिया। बुद्धिमान लोग सारी सेना और हिन्दुस्तानी जनता को दण्ड देने का अनुमोदन नहीं कर सकते। जब तक "सजा" शब्द विद्यमान है, उपद्रव नहीं दबाए जा सकते। मसल मशहूर है, "मरता क्या न करता।" यह असम्भव है कि एक हजार लोग एक लाख पर आक्रमण करें और वे हजार के हजार बच निकलें।

३—घोषणा मे यह लिखा हुआ है कि ईसाई धर्म सच्चा है, परन्तु किसी धर्म पर अत्याचार नहीं किया जाएगा और सबके प्रति कानून सम्मत बरताव किया जाएगा। न्याय के प्रशासन को किसी धर्म के सच या झूठ होने से क्या करना है? वही धर्म सच्चा है जो एक ईश्वर को मानता है और किसी दूसरे को नहीं जानता। जिस धर्म मे तीन ईश्वर हों उसे न केवल मुसलमान और हिन्दू ही बल्कि यहूदी, सूर्योपासक और अग्नि के उपासक भी कभी एक सच्चा धर्म नहीं मान सकते। सूअर खाना, शराब पीना, चर्बी लगे कारतूसो को दात से काटना और सूअर की चर्बी को आटे और मिठाइयों मे मिलाना, सडक बनाने के बहाने हिन्दू और मुसलमानो के पूजा-स्थानों को नष्ट करना, गिर्जे बनवाना, ईसाई धर्म का उपदेश देने के लिए पादरियो को सडको और गलियो मे भेजना, अग्रेजी स्कूल खोलना और अग्रेजी प्रार्थनाए सीखने के लिए आदमियो को मासिक वृत्तिया देना जबकि हिन्दू और मुसलमानो के पूजा स्थान आज तक पूर्णत उपेक्षित पडे हैं, यह सब होते हुए जनता

किस प्रकार विश्वास करे कि धर्म के बारे मे हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा ? विद्रोह धर्म के कारण शुरू हुआ और इसके लिए लाखों आदमियो की जान गई। हमारे प्रजा-जन धोखे मे न आवें। उत्तर-पश्चिम मे हजारो को अपने धर्म से वंचित किया गया और हजारो ने अपने धर्म को छोडने की वजाय फासी पर लटकना स्वीकार किया।

४—घोषणा मे यह लिखा हुआ है कि जिन लोगो ने विद्रोहियो को आश्रय दिया या जो विद्रोहियो के नेता थे, या जिन्होने लोगो से विद्रोह करवाया, उनका जीवन नहीं लिया जाएगा, परन्तु सोच विचार के वाद सजा दी जाएगी। हत्यारो और हत्या के उकसाने वालो के प्रति कोई दया नहीं दिखाई जाएगी, परन्तु और सब को क्षमा कर दिया जाएगा। एक मूर्ख आदमी भी यह देख सकता है कि इस घोषणा के अनुसार कोई भी नहीं बच सकता, चाहे वह अपराधी हो या निरपराध। हर एक चीज लिखी हुई है, परन्तु कुछ भी नहीं लिखा हुआ है। फिर भी उन्होने यह साफ तौर पर लिख दिया है कि वे किसी भी ऐसे आदमी को नहीं छोड़ेंगे जिसे वे अपराधी पाएंगे और जिस किसी गाव या रियासत मे सेना ठहरी होगी तो वहा के निवासी नहीं बच सकेंगे। इस घोषणा को पढ़कर, जो स्पष्टतः शत्रुता से भरी पडी है, हमे अपनी जनता की दशा के बारे मे गहरी चिन्ता हो गई है। इसलिए अब हम एक स्पष्ट और विश्वसनीय आदेश देते हैं कि हमारे जिन प्रजा-जनो ने गांवो के मुखियाओ के रूप मे मूर्खतावश अंग्रेजो के सामने अपने को उपस्थित किया हो, उन्हे चाहिए कि पहली जनवरी से पूर्व वे हमारे शिविर मे आएं। नि सन्देह उनके दोष क्षमा कर दिए जाएगे और उनके गुणो के अनुसार उनके साथ व्यवहार किया जाएगा। अंग्रेजो की घोषणा मे विश्वास करने से पूर्व यह याद रख लेना जरूरी है कि हिन्दुस्तानी शासक पूर्णत. दयालु और कृपालु होते हैं। हजारो ने इसे देखा है, लाखो ने इसे सुना है। परन्तु किसी ने कभी स्वप्न मे भी यह नहीं देखा होगा कि अग्रेजो ने किसी अपराध को क्षमा किया हो।

५—इस घोषणा मे यह लिखा हुआ है कि जब शान्ति पुनः स्थापित हो जाएगी तो लोगों की दशा सुधारने के लिए सार्वजनिक निर्माण-कार्य शुरू किए जाएंगे, जैसे कि सड़कें वनवाना और नहरें खुदवाना। यह विचार योग्य है कि हिन्दुस्तानियो को उन्होने सडकें वनाने और नहरें खोदने से अधिक अच्छे किसी काम मे लगाने का वचन नहीं दिया है। यदि जनता स्पष्टत· यह नहीं देख सकती कि इस सब का क्या तात्पर्य है, तो उसे कोई नहीं वचा सकता। इस घोषणा से किसी प्रजा-जन को धोखे मे नहीं आना चाहिए।

परिशिष्ट २

विदेशी राजनीतिक परामर्श, सख्या ८, १८ मार्च १८५९ शेख खैरुद्दीन और मुहम्मद हसन खा के बीच पत्र-व्यवहार

खैरुद्दीन की ओर से मुहम्मद हसन को—दिनाक १३ नवम्बर, १८५८

शिष्टाचार के बाद।

अग्रेज सरकार बहुत शक्तिशाली है और उसने बहुत से विद्रोहियों को समूल नष्ट कर दिया है। अब अधिक खून न बहाने की दृष्टि से वह दया दिखा रही है। हिन्दुस्तान की सरकार चाहती है कि विद्रोही अपने (वर्तमान) अल्पदर्शी व्यवहार को, जो उनका विनाश करके रहेगा, छोड दें। इस समय यह गलत विचार फैला हुआ है कि जो लोग समर्पण कर देंगे, उन्हें फासी दे दी जाएगी, लोगों को यह गलत धारणा छोड देनी चाहिए। मैं आपके पास महामहिम सम्राज्ञी की घोषणा की एक प्रति भेज रहा हू जो इसी महीने जारी की गई और जिसमे सब को क्षमा-दान की घोषणा की गई है। इससे तुम देखोगे कि सिर्फ वही लोग दण्डनीय समझे जाएगे जो अग्रेज अधिकारियों या प्रजा-जनों की हत्या के अपराधी होंगे। जो विद्रोही नेता इस प्रकार के अपराध से मुक्त होंगे उनका जीवन नहीं लिया जाएगा। इन परिस्थितियों मे तुम्हें गम्भीरतापूर्वक सोचना चाहिए कि विद्रोहियों के साथ बने रहना तुम्हारे लिए किस हद तक व्यर्थ है। यदि तुम उन्हीं मे बने रहोगे तो या तो तुम पकडे जाओगे या मारे जाओगे। तुम्हारे लिए यह अच्छा होगा कि तुम मेरे पास या किसी यूरोपीय अफसर के पास जाकर समर्पण कर दो, जिसे भी तुम पसन्द करो। मैं जानता हूं कि तुमने किसी अफसर या प्रजा-जन की हत्या नहीं की है। इस प्रकार के किसी अपराध के सशय मात्र से भी तुम मुक्त हो। इसलिए यदि तुम वास्तविक रूप मे इस दया से लाभ उठाना चाहते हो तो गोडा के राजा जैसे अन्य सरदारो को भी तुम इसी प्रकार की सलाह दो और सिपाहियों से कहो कि उनमे से प्रत्येक को अपने घर चला जाने दिया जाएगा। उनके मार्ग को कोई नहीं रोकेगा, शर्त यही है कि उन्होंने किसी यूरोपीय या प्रजा-जन के रक्त बहाने का अपराध न किया हो। युद्ध मे किसी को मारना अपराध नहीं समझा जाता है।

संख्या २, दिनाक सोलहवीं रबी उल सनी—

मोहम्मद हसन खा की ओर से खैरुद्दीन को

मुझे आपका मित्रतापूर्ण पत्र मिला, जिसके अभिप्राय से मुझे बडा सन्तोष हुआ है। साथ मे रानी की घोषणा की प्रति भी, जिसे आपने अपने पत्र के साथ सलग्न कर भेजा है, मिली है। इसके दयापूर्ण उपबन्धों को, जैसा आपने मुझे आदेश दिया है, मैं सबको बताऊगा और उन पर इसका प्रभाव डालने का यत्न करूगा। भविष्य में हर एक व्यक्ति अपने कार्यो

के लिए उत्तरदायी होगा। मैं भी महामहिम सम्राज्ञी के न्याय का इस प्रकार आश्वासन प्राप्त करने के बाद अपने को अपराधों से मुक्त समझूंगा। आपके पत्र के शब्दों से भी मेरी निष्पापता सिद्ध होती है। मैं बहुत हर्षित हूं क्योंकि मैंने कभी किसी अफसर या प्रजा-जन की हत्या नहीं की है, यद्यपि यूरोपीय अफसरों और उनके सिपाहियों ने हजारों निष्पाप और नगण्य आदमियों को मारा है, जिनमे स्त्रियां, बच्चे और भिखारी भी सम्मिलित हैं। इन अफसरों और सिपाहियों ने लोगो के घरो को जलाया है और उनकी सम्पत्ति को लूटा है। महामहिम सम्राज्ञी की घोषणा के न्याय उपबन्धो के अनुसार जो लोग भी इस प्रकार की हत्या के अपराधी हैं, वे दण्डनीय हैं। मैं उन लोगों में से एक हूं जिन्होंने सिपाहियों के ग़दर शुरू होने के समय यूरोपीय अफसरों की जानें बचाईं। वह समय ऐसा था जब सिपाहियों ने निर्दयतापूर्वक अपने अफसरो की हत्या की और यदि कोई उस समय किसी प्रकार यूरोपीय लोगो की सहायता करने का साहस करता था तो उसे उनके साथ मार दिया जाता था या उनकी सम्पत्ति लूट ली जाती थी या नष्ट कर दी जाती थी। उस समय मैंने निर्भयतापूर्वक अपने कुछ व्यक्तिगत सिपाही भेजे और दो कर्नलों की जानें बचाईं, जिनमे से एक की पत्नी और पुत्री भी साथ थीं। मैंने उनको घर पर कुछ समय के लिए रखा और फिर गोरखपुर के अधिकारियो के पास उन्हें सुरक्षापूर्वक भिजवा दिया। इसके बाद जब मैंने अपने सरदार के आदेश पर, ईश्वर की कृपा से, गोरखपुर को अवध के राज्य को लौटा दिया, जिससे पूर्व काल मे यह सम्बद्ध था, तो मैंने सब देशी अधिकारियो को लूटे जाने और मारे जाने से बचाया और अनेक ईसाइयो की भी हानि से रक्षा की और उन्हें सुरक्षापूर्वक अन्यत्र भेज दिया। इसलिए मैं अपने आप को न्यायपूर्ण अंग्रेज अधिकारियों की प्रशंसा का अधिकारी समझता हूं। आपने मुझे डराने के लिए अंग्रेज सरकार की शक्ति के बारे मे जो कुछ लिखा है उससे मैं पूर्णतः सहमत हूं। इतने अधिक विद्रोहियो के समूल नष्ट कर दिए जाने के सम्बन्ध में और विद्रोहियो के साथ रहने से मेरा भी कोई लाभ न हो सकने के सम्बन्ध मे आपने जो कुछ लिखा है उसे मैं मानता हूं। महामहिम सम्राज्ञी की जो भयभीत कर देने वाली शक्ति और साधन-सम्पन्नता है, और वे अधीश्वरो की भी अधीश्वरी हैं, इस बात को देखते हुए उनके सफलतापूर्वक विरोध की सम्भावना नहीं की जा सकती। फिर भी सर्वशक्तिमान ईश्वर, जो महान है और जो सबका रक्षक है, उनसे भी अधिक शक्तिशाली है। यदि वह चाहे तो बलवान को कमजोर और कमजोर को बलवान कर सकता है। जिसको वह चाहे ऊपर उठा सकता है और जिसको चाहे नीचे गिरा सकता है। संभ्रम के समय मे यह सबको विदित हो गया है। ईश्वर की आज्ञा के बिना न कोई मार सकता है, न जला सकता है। यदि अंग्रेज सरकार के पास ईश्वर की शक्ति होती तो उसने सिपाहियों से बदला लेते हुए हिन्दुस्तान के प्रत्येक निवासी को मार दिया होता और हजारों ईसाई, जिन्हे खून के प्यासे सिपाहियों ने मार दिया है, बचा लिए गए होते। यदि आपने विश्व के इतिहास मे सत्ता को पलटने वाली इस जैसी क्रान्तियो के बारे में पढ़ा है तो आपको मालूम होगा कि वे सब सोहक और लुहार की गाय की कहानी के समान थीं। यह देखने में आया है कि जो आदमी हत्या को अपना सिद्धान्त मान कर चलता है वह अपने आप को तो पहले ही मरा हुआ समझ लेता है। इसलिए मुझे न पकड़े जाने का भय है और न मारे जाने का।

यदि मैं वन्दी बना लिया जाऊ (ईश्वर न करे कि मुझे वन्दी वनना पडे) तो मैं समझता हू कि मैंने ऐसा कोई अपराध नहीं किया है जिसके कारण, घोषणा के अधीन, मुझे दण्डनीय समझा जा सके। महामहिम सम्राज्ञी की अनुकम्पा से मुझे मुक्त कर दिया जाएगा। यदि दूसरी ओर अपने धर्म और पार्थिव प्रभु के लिए लडते हुए मैं मारा भी जाऊ तो मुझे दोनों लोको की समृद्धि मिलेगी। जिस प्रकार आप और सरकार के दूसरे नौकर अंग्रेजी सरकार की ओर से दृढ सकल्प के साथ लडकर सासारिक लाभ और पार लौकिक समृद्धि की कामना करते हैं, उसी प्रकार मैं भी अपने धर्म के सिद्धान्तो के लिए तथा अपने प्रसिद्ध अधीश्वर के उद्देश्य की पूर्ति के लिए लडना और मारा जाना एक वडे गौरव की बात समझता हू और इससे मुझे इहलोक और परलोक दोनों मे लाभ होगा। चूकि यूरोपीय अफसर अपने अधीनस्थ लोगो की बातों को सोच विचार के साथ सुनते हैं और वे वास्तविक योग्यता का ठीक निश्चय करने मे समर्थ हैं, इसलिए मैं समझता हू कि वे मेरी अविचलता और स्वामिभक्ति से अवश्य प्रभावित होगे। घोषणा की वाक्य रचना, जहा वह अपराधों की क्षमा का आश्वासन देती है, कुछ अस्पष्ट और अनिश्चित है। इसमे कोई ऐसी बात नहीं है जिसे इस प्रकार की क्षमा का असदिग्ध आश्वासन मान लिया जाए। उदाहरणत यह कहा गया है कि वे सब सामान्य जन, जिन्होने इस विद्रोह के अशान्तिकारी समय मे राज्य को हानि पहुचाने वाले अपराध किये हैं, कुछ विशिष्ट शर्तो पर क्षमा कर दिए जाएगे। अब सोचिए—सभी किए गए अपराध "राज्य को हानि पहुचाने वाले अपराध हैं।" इसलिए इस दृष्टि से उन सव को समान रूप से एक वर्ग मे रखना पडेगा। इसके अलावा "सामान्य" शब्द का प्रयोग और "शर्तो" का एक निश्चित रूप मे उल्लेख न करना, ऐसी बातें हैं जो लोगो के दिलो मे सन्देह और अविश्वास पैदा करती हैं। अग्रेज शासको ने भारतीय राजाओं के साथ जो अवश्यपालनीय समझौते किए थे, उनसे वे हट गए हैं और जिन उपवन्धों को नहीं तोडा जाना चाहिए था उनके प्रतिकूल उन्होंने कार्य किया है। फिर भला कौन ऐसे अस्पष्ट शब्दों से भरे हुए समझौतो को, जिन्हें अग्रेज लोगो को करने की आदत है और जिनकी विल्कुल विभिन्न रूप से व्याख्या की जा सकती है, वास्तविक रूप से माननीय समझेगा। अग्रेज लोगो ने अपनी प्रतिज्ञाओ को तोडने मे सव सीमाओं का उल्लघन कर दिया है—इसके लिए वे वदनाम हैं—उन सन्धियो को देखिए जो उन्होने लाहौर के राजा, पेशवा और दूसरे राजाओ के साथ कीं और जिनकी सख्या इतनी अधिक है कि उनका यहा उल्लेख नहीं किया जा सकता। मेरा सम्वन्ध केवल अवध के वादशाह से है। सारा ससार उन वन्धनकारी समझौतो और सन्धियो के वारे मे जानता है जो अवध के वादशाह और अग्रेज सरकार, इन दो महान शक्तियों के वीच की गई थीं। इनके अनुसार अग्रेजों को अपने आप को अवध मे स्थापित करने का कोई अधिकार न था। इस राज्य के शासक सदा अपने साधनो और सिपाहियो से अग्रेजो की सहायता करते रहे हैं और उन्होंने उनके साथ सदा मित्रतापूर्ण और भाई-चारे का व्यवहार किया है। उन्होनें कभी कोई ऐसा कार्य नह किया जिसे स्वामिभक्ति का भग कहा जा सके, वल्कि वे इस हद तक अधीन रहे कि उन्होंने अग्रेजो को वलपूर्वक अवध को अंग्रेजी राज्य मे मिला लेने दिया। अग्रेजों ने उनके घरो और सव प्रकार की सम्पत्ति ले ली। तव भी उनका कोई प्रतिरोध नहीं हुआ।

अवध का बादशाह कभी उनको शत्रु मानकर उनसे नहीं लड़ा, वल्कि उसने पहले रेज़िडेंट से याचना की और फिर गवर्नर-जनरल से; और जब उन्होने उसकी ओर कुछ ध्यान नहीं दिया तो अन्त मे उसने अपने भाई और मां को रानी के पास अपने पक्ष का समर्थन करने के लिए भेजा। कम्पनी ने अभी कोई ध्यान नहीं दिया है। इन समझौतो के तोड़ने और अन्य प्रकार की कृतघ्नता को देखकर भारतीय राजा दांतो तले उंगली दवा रहे हैं। धोखे से अवध का राज्य उस राज-वंश से छीन लिया गया है, जिसने अंग्रेजों का कभी विरोध नहीं किया, वल्कि जिन्हें सदा सन्तुष्ट ही किया। उन पर सव प्रकार के अत्याचार किए हैं। अव अंग्रेज लोगो मे किसी को भी विश्वास नहीं रह गया है। संक्षेप मे मैं यह कहावत कहना चाहता हूं, "किसे अपने कर्मों का फल नहीं मिला ?" इस धोखे भरे अत्याचार को देख कर हिन्दुस्तान मे राजाओ और जनता ने अवसर पाकर सेना मे विद्रोह करवा दिया (जो अंग्रेज सरकार के अपने कृत्यो का ही फल था) और ग़दर हुआ, जिसमे खुदा के हजारो वेगुनाह वन्दो की जानें गईं और लूट-पाट मची। अंग्रेज सरकार पहले रक्तपात के जिन दरवाजो को बन्द करवाने का प्रयत्न करती रहती थी, उन्हें अंग्रेजो ने अव अधिक दृढ़ संकल्प के साथ खोल दिया है। यह विद्रोह पूर्णतः अवध को अंग्रेजी राज्य मे मिलाने के कारण हुआ। यदि अवध को न मिलाया जाता तो रक्तपात न होता, क्योकि उस हालत मे सरदार अंग्रेजो के विरुद्ध न होते, वल्कि उन्होने ग़दर मे भाग लेने वाले सिपाहियों को दण्ड दिया होता। यदि अव भी महामहिम सम्राज्ञी न्याय से काम करें और अवध का राज्य उसके बादशाह को वापस दे दें, तो यह उपद्रव समाप्त कर दिया जाएगा और पृथ्वी के सप्त खण्डों मे रानी की न्यायिकता और दया उद्दीप्त तथा प्रशंसित हो उठेगी और हिन्दुस्तान के सव सरदार पुन. उनकी अधीनता स्वीकार कर लेंगे तथा इस युद्ध और अराजकता को समाप्त कर देंगे। महामहिम सम्राज्ञी की घोषणा से यही वात निकलती है कि अन्त मे वह यही करना चाहती हैं, क्योकि यह इच्छा व्यक्त की गई है कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने जो समझौते किए हैं या उसके अनुमोदन से जो समझौते किए गए हैं, उन्हें रानी स्वीकार करेगी और उनका पालन करेगी। इसी प्रकार यह भी कहा गया है कि सम्राज्ञी देशी राजाओ से भी यह आशा रखती है कि वे भी अपनी ओर से उन वायदो को पूरा करेंगे जो उन्होंने किए हैं और सम्राज्ञी ने यह भी इच्छा व्यक्त की है कि वह वर्तमान सीमाओ के परे अपने राज्य-क्षेत्र को वढाना नहीं चाहती। इसलिए इन वचनो के अनुसार अव महामहिम सम्राज्ञी को चाहिए कि वह न्यायवद्ध होकर उस समझौते को पूरा करे जो शुजाउद्दौला और कम्पनी की सरकार के वीच हुआ था और इस प्रकार अवध के राज्य को उसके पैतृक शासको को वापस दे दे। ऐसा करते हुए उसे उन वाद की सन्धियों पर ध्यान नहीं देना चाहिए जो वाद मे रेज़िडेंटो ने जवर्दस्ती उस समय राज्य करने वाले शासको से करवाई थीं। क्योकि मौलिक समझौते मे सदा के लिए अवध के वादशाह के वंशजों और कम्पनी के उत्तराधिकारियो का उल्लेख था, अतः इसका उल्लंघन कर वाद मे रेजिडेंटो ने राजाओं से वलपूर्वक जो समझौते करवाए, वे अन्यायपूर्ण और वेकार हैं। अवध का राज्य इस समय वादशाह के अधिकार में है और इसके वे भाग जो समय-समय पर अंग्रेज लोगो द्वारा वलपूर्वक ले लिए गए हैं, उनके

शासन से मुक्त कर दिए गए हैं। इस प्रकार जिन क्षेत्रों को बलपूर्वक हथिया लिया गया है उन पर ध्यान नहीं देना चाहिए। यदि इस समय 'अधिकार में' शब्द का तात्पर्य उन राज्य-क्षेत्रों से है, जो इस घोषणा के लिखे जाने के समय वास्तविक रूप मे अंग्रेजों के अधिकार मे थे, तब फिर ऐसे बहुत से भाग जो उस समय उनके अधिकार मे नहीं थे, अब उन लोगों वापस दे दिए जाने चाहिए जिनके हाथ मे वे पहले थे। मैंने जो कुछ लिखा है, उसका तात्पर्य यह है अवध के बादशाह के सेवक और आश्रित हम लोग दोनो लोकों मे अपनी समृद्धि के लिए यह आवश्यक समझते हैं कि इस राज्य की रक्षा मे हम निष्ठा प्रदर्शित करें और जो आक्रमणकारी इस पर अपने पैर जमाना चाहते हैं उसका विरोध करें। यदि हम ऐसा करने मे प्रमाद करते हैं तो हम राजद्रोही सिद्ध होंगे और दोनो लोकों मे हमारे मुह पर कालिख लगेगी।" "मैं अपने हाथ को तब तक नहीं हटाऊगा जब तक यह अभिष्ट प्राप्त नहीं कर लेता, जिसे वह चाहता है। मैं अपने अभीष्ट को प्राप्त करूंगा या मर जाऊगा।" यदि रानी हिन्दुस्तान के निवासियो की अवस्था का ध्यान कर और हत्या के दरवाजों को बन्द करने के लिए या केवल न्याय के विचार से अवध को उसके बादशाह को लौटा दे तो हम लडाई और मार-काट बन्द कर देंगे और महामहिम सम्राज्ञी और उसके अधिकारियो की अधीनता मे पुन आ जाएगे। भारत मे उपद्रव समाप्त हो जाएगे और सब जगह शान्ति स्थापित हो जाएगी। इसलिए मेरी प्रार्थना है कि आप कृपा कर इस पत्र को गवर्नर-जनरल के विचार के लिए भेज दें और यदि वह घोषणा की शर्तों को पूरा करना उचित समझे और अवध को हानि पहुचाना छोड दे तथा शुजाउद्दौला के साथ जो सन्धि हुई है, उसके उपबन्धो के अनुसार समझौता करे, तो मैं एक वकील की तरह काम करूंगा और इसके सब मुद्दो को ईमानदारी से क्रियान्वित करवाऊगा। मैं शीघ्र उत्तर की प्रतीक्षा में हू।

खैरुद्दीन की ओर से मुहम्मद हसन को—२८ नवम्बर

शिष्टाचार के बाद।

आपने मेरे पत्र का जो उत्तर भेजा है वह मुझे मिल गया है। इससे मैं देखता हू कि आप अब भी मूर्खता मे पडे सो रहे हैं। मैं तो केवल आप के मन पर, घोषणा के अर्थ की व्याख्या कर, यह जमाना चाहता था कि यदि आप शीघ्र ही समर्पण कर देंगे तो यह आप के लिए भला ही होगा। आपने इसकी ओर ध्यान न देकर उत्तर मे एक लम्बी अर्थहीन शब्द-माला लिख डाली है, जिसमे आपने यूरोपीय सिपाहियों और अधिकारियों के बारे मे अनुचित और निन्दात्मक बातें कही हैं। उदाहरणत आप कहते हैं कि अंग्रेज सेनाओं ने हजारो असहाय आदमियों, अन्धो, अपाहिजो और भिखारियो तथा स्त्रियो और बच्चों को मारा है। इस प्रकार का अभियोग बिल्कुल झूठा और निराधार है। आपने और आप के निजी सिपाहियो ने सचमुच ऐसे दुष्कृत्य किए हैं और आज भी कर रहे हैं। साधारणत जब कभी आपके आदमी अरक्षितो को लूटते हैं, तो अंग्रेज लोग बाहर निकल कर उन्हे बचाते हैं। आप लिखते हैं कि आपने कभी किसी अंग्रेज अधिकारी या

प्रजा-जन को नहीं मरवाया है। तब फिर यह कैसे हुआ है कि आप ने बाला राव को बुलाया, उसके साथ एक सहायक के रूप मे सहयोग किया और उसका समर्थन किया, जब कि इसी बाला राव ने अपने भाई नाना से मिलकर कई सौ निर्दोष यूरोपीय स्त्रियो और बच्चो को बन्दी बनवाया और कत्ल करवाया। निर्दोष व्यक्तियों के ऐसे हत्याकाण्ड बहुत से स्थानो पर हुए हैं और किसी धर्म के अनुसार ये न्याय संगत नहीं कहे जा सकते। फिर भी आप कहते हैं कि आप अपने धर्म के लिए लड़ रहे हैं। मुझे एक भी ऐसा धर्म बताओ जो ऐसे कामों की अनुमति देता है। सम्भवत. आप की आखें बन्द हैं, इसीलिए आप यूरोपीय सिपाहियो और अधिकारियो पर उन अपराधो का अभियोग लगा रहे हैं, जिन्हें वास्तव मे विद्रोही सेनाओ तथा बदमाशो ने किया है और आज भी कर रहे हैं। जिस युद्ध का आप समर्थन करते हैं, उसे आप 'जिहाद' कहते हैं। आप मुझे बताए कि स्त्रियो और बच्चो के ऐसे हत्याकाण्ड किस प्रकार न्याय सगत ठहराये जा सकते हैं और किस सिद्धान्त के अनुसार लूट की अनुमति दी जा सकती है। अवध के राज्य को वापस दिए जाने के बारे मे आपने प्रस्ताव किया है और कहा है कि उसके बाद ही आप अधीनता स्वीकार कर सकेंगे। यह अर्थहीन बात है। सरकार ने एक बार जो भूमि ले ली है उसमे से वह एक बीघा जमीन भी कभी नही छोड़ेगी। और फिर आपको इस प्रकार के वाद-विवाद से क्या करना है ? आप जो कुछ चाहें, अपने बारे मे लिख सकते हैं, परन्तु राज्य के सम्बन्ध मे नहीं। सक्षेप मे आपको यह समझा देना चाहता हूं कि यदि आप अपने जीवन को बचाना चाहते हैं तो तुरन्त समर्पण कर दें। नहीं तो निश्चित समझो कि अंग्रेज सेनाएं चारो ओर से आप पर आक्रमण करेंगी, गोडा और बहराइच पर अपना अधिकार करेंगी और उस जगल को घेर कर, जिसे आप अपना शरण-स्थल समझते हैं, आपको अपनी बन्दूको के बल से उड़ा देंगी। विद्रोही लोग सिपाहियो और अफसरो के लिए शिकार के निशाने बनेंगे। तब आप देखेंगे कि सरकार के प्रति आपकी स्वामिभक्ति के कथित कार्य किस काम आयेंगे। सरकार को इस बात की चिन्ता नहीं है कि आप समर्पण के लिए प्रेरित हो। मेरे लिखने का उद्देश्य आपके सामने घोषणा की शर्तो की व्याख्या करना था ताकि जब आप पकड़े जाएं तो आप यह न कह सकें कि आपने तो इसे देखा ही नहीं था वरना आप एकदम समर्पण कर देते। आप घोषणा की भाषा को अस्पष्ट करार देते हैं। मेरी राय मे यह बिल्कुल साफ है। यदि आप ध्यानपूर्वक इसे पढेंगे तो यह आपकी पूरी तरह समझ मे आ जायगी। यदि आप इस बात पर निर्भर करें कि चूकि आपने कर्नल, उसकी पत्नी और बच्चो की जान बचाई थी, इसलिए आप पकड लिए जाने के बाद भी फिर छोड दिए जाएगे तो आपको यह ध्यान मे रखना चाहिए कि अब से लेकर केवल एक महीने और दस दिन तक ही दया का समय है। इसकी समाप्ति के बाद इस पर ध्यान नहीं दिया जायगा और पकड़े जाने के बाद आपको और अन्य विद्रोहियो के साथ इस घोषणा के होने के पहले के समान व्यवहार किया जायगा। आपके लिए यह अच्छा होगा कि आप इस अवधि के अन्दर ही आ जाएं, नहीं तो आपको एक स्थान से दूसरे स्थान को भागने के बाद जंगलो मे मरना होगा। उत्तर देने से पूर्व इस पर पूर्ण विचार कर लीजिए और बाला राव पर तथा आपके पास जो विद्रोही सेना है उस पर भरोसा

मत कीजिए, क्योकि जब भी युद्ध मे सामना हुआ है यह सेना यूरोपीय सिपाहियो के सामने से सदा भाग गई है। आप यह आशा कैसे कर सकते हैं कि ये लोग आपके आदेशों का पालन करते हुए युद्ध करेंगे जबकि अपने भूतपूर्व स्वामियो के प्रति, जिनका उन्होंने २० या ३० साल तक नमक खाया, ये कृतघ्न सिद्ध हुए। यह भी सम्भव है कि अपनी बन्दूकों की गोली का लक्ष्य बनाकर वे कहीं आपको ही समाप्त न कर दें। यदि आप मे कुछ भी बुद्धि है और जीवन के कुछ और वर्ष आपके बाकी हैं तो मैं जो कुछ कहता हू उस पर ध्यान दो।

परिशिष्ट ३

विदेशी राजनीतिक परामर्श, सख्याए ६३-६६, २७ मई १८५६
नाना साहब और बाला साहब के पत्र

गोरखपुर,
दिनांक, २७ अप्रैल, १८५६

महोदय,

मैं आपकी सेवा में माननीय लेफ्टिनेंट-गवर्नर की सूचनार्थ बिठूर के नाना के भारतीय भाषा में लिखे गए एक इश्तहारनामे की प्रति भेज रहा हूं जिसे एक ब्राह्मण घुकेडी मे कर्नल पिकने के शिविर में लाया था और जिसे बंगाल योमेनरी कैवेलरी के समादेशक अधिकारी मेजर रिचर्डसन को दिया गया था। इस के साथ मैं इसके अनुवाद और मेजर रिचर्डसन के द्वारा दिए गए इसके उत्तर को, जिन्हें ब्रिगेडियर रोक्राफ्ट सी० बी० ने मेरे पास भेजा है, आपकी सेवा में भेज रहा हूं।

गोरखपुर,
कमिश्नर का कार्यालय,
२७ अप्रैल, १८५६

भवदीय,
(ह०) ऐलन स्विटन
स्थानापन्न कमिश्नर

महामहिम सम्राज्ञी, पार्लियामेट, कोर्ट आफ डायरेक्टर्स, गवर्नर-जनरल, लेफ्टिनेंट-गवर्नर और असैनिक और सैनिक अधिकारियों के नाम इश्तहारनामे का अनुवाद।

आपने सम्पूर्ण हिन्दुस्तान के अपराधों को क्षमा कर दिया है और हत्यारो को क्षमादान दे दिया गया है। यह आश्चर्य की बात है कि आपके ही सिपाहियो ने आपकी स्त्रियों और बच्चों को मारा है। आपने मम्मू खां और फर्रुखाबाद के उच्च वर्गीय आदमियों को, जो सचमुच हत्यारे हैं, क्षमा कर दिया है। आपने जंग बहादुर को लिखा है कि वह बेगम और राजाओं को अपनी संरक्षा मे उनके देश भेज दे। यह आश्चर्यजनक है कि आपने मुझे, जिसने असहायावस्था मे विद्रोहियो से गठबन्धन किया, अभी क्षमा नहीं किया है। मैंने कोई हत्या नहीं की है। यदि जनरल हौला (व्हीलर) ने मुझे बिठूर से न बुलाया होता, तो मेरे सिपाही विद्रोह न करते। फिर उसने मेरे परिवार को खाइयो में नहीं बुलाया। मेरे सिपाही मेरे देश के नहीं थे और मैंने पहले ही अनुरोध किया था कि मेरे जैसा गरीब आदमी अंग्रेजो की कोई वास्तविक सेवा नहीं कर सकेगा। परन्तु जनरल हौला (व्हीलर) ने मेरी कुछ नहीं सुनी और मुझे खाई मे बुलाया। जब आपकी सेना ने गदर

किया और वह खज़ाने पर अधिकार करने के लिए आगे वढी, तो मेरे सिपाही उससे मिल गए। इस पर मैंने सोचा कि यदि मैं खाइयो मे गया तो मेरे सिपाही मेरे परिवार को मार देंगे और अग्रेज लोग मेरे सिपाहियो के विद्रोह के लिए मुझे दण्ड देंगे। इसलिए मैंने सोचा कि मेरे लिए मर जाना ही ठीक है। मेरे प्रजा-जन वहुत जल्दी कर रहे थे, इसलिए मुझे विवश होकर सिपाहियों मे शामिल होना पडा। लगातार दो या तीन वर्ष तक मैंने सरकार से याचना की, परन्तु इसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। कानपुर मे सिपाहियों ने मेरी आज्ञा का उल्लघन किया और उन्होने अग्रेज स्त्रियो और प्रजा-जनों को मारना शुरू कर दिया। जिस किसी उपाय से मैं बचा सकता था, मैंने सवको वचाया और जव वे खाइयों से बाहर आए तो मैंने उन्हें नावें दिलवाई, जिनमे बैठाकर उन्हें इलाहावाद भेजा। आपके सिपाहियों ने मुझ पर आक्रमण किया। मैंने अपने सिपाहियों से अनुनय-विनय कर उन्हें रोका और २०० अग्रेज स्त्रियों और बच्चो की जानें वचाई। मैंने सुना है कि जव मेरे सिपाही कानपुर से भाग आए और मेरा भाई घायल हो गया, तो आपके सिपाहियों और वदमाशों ने उन्हें मार डाला। इसके बाद मैंने उस इश्तहारनामे के बारे मे सुना, जिसे आपने प्रकाशित किया था और मैंने आपके साथ लडने की तैयारी की। तब से मैं आपके साथ लड़ता रहा हू और जव तक जीवित हू, लडता रहूगा। आप अच्छी प्रकार जानते हैं कि मैं हत्यारा नहीं हू, न मैं अपराधी हू और न आपने मेरे सम्वन्ध मे कोई आदेश पारित किया है। मेरे अलावा आपका और कोई शत्रु नहीं है और मैं जब तक जीवित हू, लडूंगा। मैं भी एक आदमी हूं। मैं आप से दो कोस की दूरी पर रहता हूं। यह एक आश्चर्य की वात हैं कि आप जैसा एक महान और शक्तिशाली राष्ट्र दो वर्ष से मेरे साथ लडता रहा है और मेरा कुछ नहीं विगाड सका है, विशेषत तब जब कि मेरे सैन्यदल मेरी आज्ञा का पालन नहीं करते और मेरे अधिकार मे कोई देश नहीं है। आपने सबके अपराधों को क्षमा कर दिया है और नेपाल का राजा आपका मित्र है। इस सबके होते हुए भी आप कुछ नहीं कर सके हैं। आपने सवको अपनी ओर मिला लिया है। मैं ही केवल वचा हू, परन्तु आप देखेंगे कि जिन सिपाहियों को मैं दो वर्ष से वचाकर रख रहा हूं, वे क्या-क्या कर सकते हैं ? हम मैदान मे मिलेंगे और फिर मैं अधिक खून को वहाऊगा जो घुटनो तक गहरा होगा। मैं मरने के लिए तैयार हू। यदि अग्रेज जैसे शक्तिशाली राष्ट्र के लिए मैं अकेला ही शत्रु होने के योग्य हू, तो यह मेरे लिए एक बडे सम्मान की वात है। मेरे हृदय की प्रत्येक इच्छा पूरी हो चुकी है। मृत्यु तो एक दिन आनी ही है, फिर मुझे किसका डर है ? परन्तु आप यह समझ लें कि जिन लोगों को आपने अपनी ओर मिलाया है वे ही नियत दिन पर आपके विरुद्ध हो जायेंगे और आपको मार देंगे। आप वुद्धिमान हैं, परन्तु अपनी वुद्धिमत्ता के कारण ही आप गलती कर गए हैं। मैंने चन्द्रनगर एक पत्र भेजा था, परन्तु वह नहीं पहुचा। इससे मुझे निराशा हुई। यदि वह वहा पहुच जाता तो आपको पता चल जाता कि मैं क्या कर सकता हूं। फिर भी मैं चन्द्रनगर पहुचने का प्रयत्न करूंगा।

यदि आप उचित समझें तो इसका उत्तर दीजिए। एक मूर्ख मित्र की अपेक्षा एक वुद्धिमान शत्रु कहीं अधिक अच्छा है।

दिनाक १६वीं रमज़ान १२७५ हिजरी। या २० अप्रैल १८५९।

बिठूर के महाराजा की मुहर लगे हुए दिनाक १७ रमजान १२७५ हिजरी के इश्तहार के सम्बन्ध मे बंगाल येपनरी कैवेलरी के समादेशक अधिकारी मेजर जे० एफ० रिचर्डसन द्वारा प्रेषित उत्तर की प्रतिलिपि ।

बिठूर के महाराज की मुहर लगा हुआ इश्तहार, जिसे एक ब्राह्मण के हाथों भेजा गया, यूरोपीय घुड़सवार सेना के समादेशक अधिकारी मेजर रिचर्डसन को मिल गया है और उसने इसकी बातो से अपने को अवगत कर लिया है। अब मै यह लिखता हूं कि इंग्लैंड की रानी महामहिम सम्राज्ञी ने जो घोषणा निकाली थी, वह किसी एक दल या व्यक्ति के लिए नहीं थी, बल्कि सबके लिए थी। फर्रुखाबाद और बादा के नवाबो तथा अवध के दूसरे सरदारो और राजाओ ने जिन शर्तो पर हथियार डाले हैं और सरकार के प्रति समर्पण किया है, वे ही शर्ते आपके लिये तथा उन सबके लिए, जो समर्पण करना चाहते हैं, खुली हुई हैं। जैसा आप लिखते हैं आपने स्त्रियो और बच्चों (मेम और लड़को) का वध नहीं किया है। इस लिए यह आपके लिए उचित ही है कि आप निर्भय होकर समर्पण करें। इसके उत्तर के लिए प्रार्थना है।

शिविर घुकुरिया
२३ अप्रैल, १८५९

(ह०) जे० एफ० रिचर्डसन
समादेशक वी० वाई० सी०

सरकारी सन्देश

प्रेषक मि० वीडन, कलकत्ता, २ मई
प्रेषिति लेफ्टिनेंट-गवर्नर, इलाहाबाद

सपरिषद्-गवर्नर-जनरल को आपका इस महीने की ३० ता० का सन्देश मिला। उन्हें नाना के पत्र की प्रति और उस पर मेजर रिचर्डसन का उत्तर भी मिल चुका है। वह पत्र का अनुमोदन नहीं करते। नाना की ओर से या किसी दूसरे विद्रोही की ओर से, जिसे सरकार ने दण्डनीय घोषित कर दिया है, या जिस पर हत्याओ मे भाग लेने का सन्देह है, यदि कोई समझौते का प्रस्ताव आता है तो उसका उत्तर केवल सम्राज्ञी की घोषणा का निर्देश करते हुए देना चाहिए और कुछ नही लिखना चाहिए। मेजर रिचर्डसन को तार से सूचना दो कि भविष्य मे वह इस सम्बन्ध मे अनुदेश प्राप्त किये बिना नाना के किसी पत्र का उत्तर न दे और यदि उन्हें नाना के कोई पत्र मिलें, तो वह उनकी प्रतियां [illegible] और भारत सरकार के पास भेजें।

इलेक्ट्रिक टेलीग्राफ विभाग,
३ मई, १८५९

प्रेषक ब्रिगेडियर एच० रोक्राफ्ट, समावेशक अधिकारी, जिला गोरखपुर
प्रेषिति मेजर जनरल बर्च सी० बी०, सचिव, भारत सरकार, सैनिक विभाग, कलकत्ता।

दिनाक गोरखपुर, ७ मई, १८५९

महोदय,

हाशिये* में अकित सलग्न कागजात मे वायसराय तथा भारत के गवर्नर-जनरल के समक्ष रखने के लिए भेज रहा हू।

२. मैं आपको सादर सूचना देता हू कि कर्नल पिंकने को आदेश दिए हैं कि वह किसी नीचे के अधिकारी को इस प्रकार के पत्र-व्यवहार के करने या उस पर हस्ताक्षर करने की अनुमति न दे। इस प्रकार के मामले को वे पूर्णत. अपने हाथों मे ले और जहां तक सम्भव हो उसे शिविर मे सार्वजनिक रूप से ज्ञात न होने दें। वे इस काम मे मेजर रिचर्डसन या किसी अन्य विश्वस्त अधिकारी की सहायता ले सकते हैं। मैंने कर्नल पिंकने को यह भी आदेश भेज दिया है कि भविष्य मे विद्रोही नेताओं की ओर से जो भी पत्र या समझौते के प्रस्ताव आए, तो उनके उत्तर मे केवल महामहिम सम्राज्ञी की घोषणा का निर्देश कर दिया जाए और उन पत्रों को बिना विलम्ब किए सरकार के पास पहुचाने के लिए भेज दिया जाए। सम्बद्ध पक्षों को यह सूचना भी दे दी जाए कि उनके पत्र सरकार की सेवा मे भेज दिए गए हैं।

भवदीय,
एच० रोक्राफ्ट,
ब्रिगेडियर,
समादेशक अधिकारी, जिला गोरखपुर

नाना से प्राप्त एक पत्र का अनुवाद

मेजर रिचर्डसन ने मेरे इश्तहार का उत्तर भेजा है, जो मुझे २३ अप्रैल, १८५८ को मिला है। इस उत्तर मे मेजर रिचर्डसन ने मेरे पत्र मे उल्लिखित अनेक विषयों मे से केवल एक पर ध्यान दिया है। इसे मैं स्वीकार करता हू, परन्तु इस ढग से मैं समर्पण नहीं कर सकता। यदि एक पत्र महामहिम सम्राज्ञी के द्वारा लिखा गया हो और उस पर उनकी मुहर लगी हो तथा फ्रासीसी सेना का समादेशक अधिकारी या उससे निचले पद का अधि-

---

*अनुवादों सहित नाना और बाला राव से प्राप्त दो पत्र अपने मूल रूप में, दिनाक २५ और २६ अप्रैल, १८५९

सैनिक दस्ते के समादेशक अधिकारी कर्नल पिंकने सी० बी० की स्वीकृति से बी० वाई० कैवेलरी के समादेशक अधिकारी मेजर रिचर्डसन के द्वारा प्रेषित उत्तरों की प्रतिलिपिया।

कारी उसे लेकर मेरे पास आए तो मैं इन अधिकारियो मे विश्वास कर विना किसी संकोच के शर्तों को स्वीकार कर लूंगा। आपने हिन्दुस्तान मे जो कुछ 'दगावाजी' की है वह सब मुझे ज्ञात है। फिर मैं आपसे क्यो मिलूं ? यदि आप देश के संकटों को समाप्त करने के लिए हृदय से इच्छुक हैं तो मुझे महामहिम सम्राज्ञी के हाथ का लिखा पत्र, जिसे फ्रांसीसी सेना का समादेशक अधिकारी लावे, दें। मैं उसे स्वीकार करूंगा। कुछ वर्ष पूर्व मैंने एक एलची को लन्दन भेजा था जिसके द्वारा महामहिम सम्राज्ञी ने स्वयं अपने हाथ से लिखकर एक पत्र मुझे भेजा जिस पर उनकी मुहर लगी थी। यह पत्र अब तक मेरे पास है। यदि आप चाहते हैं तो यह चीज इस ढंग पर हो सकती है और इस पर मेरी सहमति है। परन्तु यदि आप ऐसा नहीं करते, तो जीवन तो एक दिन जाना ही है। मै फिर असम्मानित होकर क्यो मरूं ? जब तक मै जीवित हूं, आपके और मेरे बीच युद्ध जारी रहेगा, चाहे भले ही मैं मारा जाऊं, या बन्दी बनाया जाऊं या फांसी पर लटका दिया जाऊं। जो कुछ मै करूंगा, तलवार से ही करूंगा। परन्तु यदि उपर्युक्त रूप से वर्णित महामहिम सम्राज्ञी का पत्र मेरे पास आता है, तो मैं अपने आपको उपस्थित कर दूंगा। यदि आप उचित समझें तो कृपया इसका उत्तर अवश्य दें।

दिनांक, देवगढ़
२२वीं रमजान
२६ अप्रैल, १८५९

प्रेषक बालाराव

"अंग्रेजो को दी गई याचिका" का अनुवाद

मैं नाना का भाई हूं। अंग्रेजो के समय से मैं उसके साथ रहा हूं। उसने मुझे अपने आदेशों के विना कहीं जाने की अनुमति नहीं दी और यह धमकी दी कि यदि मैंने ऐसा न किया तो वह मुझे उत्तराधिकार से वंचित कर देगा। इसलिए मैं उसके अधीन रहा और उसके पास जो अंग्रेज मिलने आते थे, उनमे से किसी से मैं परिचित नहीं था। इसलिए मैं असहाय रहा। फिर भी मैं अपने सम्मान को बचाने का इच्छुक था और सबसे अलग रहा। किसी ने मेरे विरुद्ध शिकायत नहीं की है। यदि ऐसी कोई "रूबकारी" उपस्थित की जा सकी, तो मैं दोषी हूंगा। जब उसने कानपुर मे विद्रोह किया तो वह मुझे धोखा देकर वहां ले गया और मेरी पत्नी को अपनी स्त्रियों मे रख दिया जहा वे अब तक एक साथ हैं। जब सिपाहियों ने खजाना लेने के लिए अभियान किया, तो मैंने अपनी असहायावस्था का अनुभव किया, क्योंकि मैं "साहब लोगों" मे से किसी को नहीं जानता था। सिपाहियो ने मुझे अपने पास से नहीं जाने दिया। मेरे भाई ने भी मुझे उनसे अलग होने की अनुमति नहीं दी। इसलिए मुझे आवश्यक रूप से अपने भाई के आदेशों के अनुसार कार्य करना पड़ा। मैंने ९ या १० साल की एक बच्ची की जान बचाई है, जो फतेहपुर के जज की पुत्री थी। मैंने उसे अपनी पत्नी के पास छिपा रखा और उसे जनरल बद्री नरसिंह को भी दिखाया है।

जब ग्वालियर का जियाजी सिन्धिया (वह अभी जीवित है) बिठूर आया, तो मैंने अपनी ओर से उससे याचना की, परन्तु उसने उत्तर दिया कि बिना गवर्नर या भाई की अनुमति के वह मुझे उनसे अलग नहीं रख सकता। इस प्रकार मैं बेबस बना रहा। मैं निरपराध हू और जाच से भी यही बात सिद्ध होगी। यदि आप उत्तर भेजें तो मैं आप के पास आऊ और हर बात आप से कहू। यह आपकी शक्ति मे है कि आप जैसा चाहें मेरे साथ व्यवहार करें। आप मुझे जेल मे बन्द कर सकते हैं, मार सकते हैं, या फांसी पर लटकवा सकते हैं। जो कुछ भी हो, मैं अपनी वर्तमान चिन्ताओं से मुक्त हो जाऊ गा। यदि आप मेरे साथ नहीं हैं, तो दुनिया भी नहीं है। जो कोई मरता है, अकेला ही मरता है। यही होता है। आपके उत्तर के अनसार मैं कार्य करू गा।

दिनाक ८, वैशाख,
सवत् १६१६
अथवा
२५ अप्रैल, १८५६

(ह०) एच० रोकफाट, ब्रिगेडियर,
समादेशक अधिकारी,
जिला गोरखपुर

बाला राव को मेजर रिचर्डसन का उत्तर

बाला राव, आपका प्रतिवेदन, दिनाक ६वीं बदी, सवत् १६१६ का, जिसे आपने एक ब्राह्मण के हाथ भेजा, मुझे कल शाम मिला। मैंने इसे पढ़ लिया है और इसके उत्तर मे मैं नागरी लिपि मे लिखी हुई इग्लैण्ड की रानी की घोषणा की एक प्रति भेज रहा हू जिस पर महामहिम सम्राज्ञी की राजकीय मुद्रा लगी हुई है। इस घोषणा की शर्तें ऐसी हैं जिन्हें एक महान और अच्छी रानी ही पेश कर सकती है। इसे ध्यान से पढ़कर मुझे अपना उत्तर दें। यदि आप इसे नहीं समझ सके, तो आप की सूचना मिलने पर, जहा तक मुझसे हो सकेगा, मैं इसकी व्याख्या कर दू गा। या यदि आप किसी विश्वसनीय आदमी को भेजें तो मैं यह आश्वासन देता हू कि उसे इधर-उधर आने मे मैं पूरी स्वतन्त्रता दू गा और मैं उससे उन बातों की व्याख्या कर दू गा, जिन्हें आप न समझ सके हों। इग्लैण्ड की रानी की घोषणा को गलत मत समझिए। आप ने कहा है कि आप के पास एक ईसाई बच्ची है। आप यह याद रक्खें कि आप एक मानव हैं और एक मानव के रूप मे आपका यह कर्तव्य है कि आप उस बच्ची को हानि से बचाए। महामहिम सम्राज्ञी के इश्तहार मे जो शर्तें दी गई हैं, उनके अतिरिक्त कोई और शर्तें पेश करने का मुझे कोई अधिकार नहीं है। चूकि मेरे पास ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो सस्कृत अच्छी तरह पढ़ सके, इसलिए आपके प्रतिनिवेदनों को पढने मे मुझे कठिनता रही है। यदि आप उर्दू या नागरी मे उत्तर दें तो अच्छा रहेगा।

अध्याय ११

उपसंहार

हम देख चुके हैं कि किस प्रकार १८५७ के आन्दोलन का सूत्रपात हुआ, कैसे उसका जोर बढ़ा और अंत में किस प्रकार वह समाप्त हुआ। क्या वह सिपाहियों के असन्तोष का एक सहज विस्फोट था या कुशल राजनीतिज्ञो द्वारा नियंत्रित एक पूर्व-विचारित विद्रोह? क्या वह सेना तक ही सीमित एक ग़दर था या उसे विस्तृत रूप से जनता का समर्थन भी प्राप्त था? क्या वह ईसाइयो के विरुद्ध एक धार्मिक युद्ध था या सर्वोच्च सत्ता के लिए काले और गोरे लोगों का एक जातीय सघर्ष? क्या इस गदर मे नैतिक प्रश्न अन्तर्हित थे और क्या लड़ने वाले लोग अनजाने में अपनी सभ्यता और संस्कृति के लिए लड़ रहे थे? ये कुछ प्रश्न हैं जिनका उत्तर उचित ढंग से और साफ-साफ देना ही होगा।

चपातियो की कहानी पूर्व तैयारी, प्रचार और षड्यन्त्र के सिद्धान्त को कुछ बल प्रदान करती है। जनवरी १८५७ मे उत्तर-भारत में बहुत से जिलो मे गेहूं के आटे की छोटी-छोटी रोटियां एक गांव से दूसरे गांव मे भेजी गई थीं। बाद मे लोगों ने इसमे एक दुष्ट अभिप्राय निहित बताया, परन्तु यह संदिग्ध है कि ये रहस्यात्मक चपातियां किसी अपशकुन की सूचक थीं। जिला अधिकारियो ने स्वाभाविक रूप से इस मामले मे रुचि ली और जांच करवाई। मथुरा के थार्नहिल ने लिखा है, "यह घटना इतनी विशिष्ट थी कि इसने सरकार का ध्यान आकृष्ट किया और जांच का आदेश दिया गया। परन्तु सम्पूर्ण प्रयत्नो के बावजूद यह निश्चित नहीं हो सका कि चपातियां बांटने की सूझ किसकी थी, कहां बांटना शुरू हुआ और इसका अभिप्राय क्या था। कुछ दिन तक तो यह आश्चर्य का विषय रहा पर फिर लोगों ने इस पर बातचीत करना छोड़ दिया और वे कुछ समय के लिए इसे भूल गए, सिवाय उन लोगो के जिन्हे यह याद था कि गत शताब्दी के अन्त में चपातियो की ऐसी ही बटाई मद्रास मे हुई थी, जिसके बाद वेल्लोर का ग़दर हुआ था।[1] गांव के चौकीदार, जिनके द्वारा चपातिया बटवाई गई थीं, सम्भवतः वेल्लोर के बारे में कुछ नहीं जानते थे, और गाव के लोग भी, जिनमे चपातिया बांटी गई थीं, सम्भवतः उतने ही अनभिज्ञ थे। मेरठ के वैलेस डनलप का कहना है कि चौकीदारो का यह ख्याल था कि ये चपातियां सरकार के आदेश से बाटी जा रही हैं। "हिन्दू लोग समझते हैं कि एक जिले से दूसरे जिले को ऐसी छोटी रोटियो का बाटा जाना व्यापक रोग को हटाने के लिए है।"

---

१. थार्नहिल, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २-३

मेरठ के जिले मे चपातिया फरवरी के अन्त मे और मार्च के शुरू में वटती हुई देखी गईं। वैलेस डनलप कहता है, "उस समय सिपाहियों मे उत्तेजना का फैलना और उसके वाद ही ग़दर का होना, इस बात से प्रभावित होकर वहुतों ने चपातियो के वाटे जाने को हमारे उपद्रवों से सम्वद्ध कर दिया है। परन्तु ऐसा कहने के लिए पर्याप्त आधार नहीं हैं। यह सम्भव है कि यदि कोई सम्बन्ध रहा हो, तो वह आकस्मिक ही हो। इन दोनो के वीच जिस सम्वन्ध को फितरती लोगो ने या अनभिज्ञ व्यक्तियो ने स्वीकार किया, वह रोटियों के बाटे जाने के वाद ही स्थापित किया गया, वह आन्दोलन का कारण नहीं था और न वह आन्दोलन के पहले स्थापित ही किया गया था। उसके मतानुसार चपाती कोई भयकर दुर्घटना की सूचक नहीं थी। अन्त में वह कहता है, "इसका वास्तविक मूल एक मिथ्या विश्वासमय प्रयत्न था जिसे व्यापक हैजे को रोकने के लिए किया गया था। गत वर्ष ही एक भयकर हैजा फैला था जिसने उत्तर-पश्चिमी प्रान्त को बरबाद कर दिया था और जिसका प्रकोप कहीं कहीं अभी भी विद्यमान था। यह हैजा दुबारा न फैले, इसलिए यह किया गया।"[२] दिल्ली के सर थियोफिलस मेटकाफ ने भी यही अभिसाक्ष्य दिया कि चपातिया बांटने का कुछ सम्बन्ध बीमारी से था और जो आदमी उन्हें लाए, वे इस खयाल मे थे कि सरकारी आदेश से बाटी जा रही थीं।[३] बहादुरशाह के मुकदमे की सुनवाई के समय एक गवाह जटमल ने वताया कि "भिन्न-भिन्न आदमियों के लिए चपाती के भिन्न-भिन्न अर्थ थे। कुछ कहते थे, किसी आने वाली विपत्ति को टालने के लिए यह देवताओं को प्रसन्न करने की क्रिया है।" दूसरे लोग इसमे ईसाइयों के समान खाना खिलवाने की सरकारी चाल देखते थे। चपातिया हिन्दू और मुसलमानों मे कोई भेद-भाव किए बिना समान रूप से बाटी गई थीं।[४] हकीम अहसानुद्दौला ने साक्ष्य दिया कि कोई नहीं कह सकता था कि चपातियों के वांटे जाने का उद्देश्य क्या है।[५] बदायूं के एडवर्ड्स ने निश्चयपूर्वक कहा कि सब वर्गों की ग्रामीण जनता, जिनमे चपातिया वटीं, इसके वास्तविक उद्देश्य के बारे मे अनभिज्ञ थी।[६] उत्तर भारत के एक अज्ञातनाम निवासी ने निश्चयपूर्वक वताया कि चपातिया "किसी वीमारी की प्रगति को रोकने के लिए केवल चलावा थीं और राजनीतिक चाल कभी नहीं थी।"[७] सर सैयद अहमद खा ने निर्देश किया कि जिस समय चपातिया वांटी गई थीं उस समय हैजा फैला हुआ था और चपातिया इस वीमारी को रोकने के लिए एक प्रकार का जादू-टोना थीं। "तथ्य यही है कि आज भी हम नहीं जानते कि उन चपातियों के वाटे जाने का क्या कारण था।"[८]

---

२ डनलप, सर्विस एण्ड एडवेंचर विद दि खाकी रिसाला, पृ० ३-२६

३ प्रोसीडिंग्स आफ वहादुरशाह ट्रायल, पृ० ८५

४ वही, पृ० ७८

५ वही, पृ० १६५

६ एडवर्ड्स, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १५

७ दि थाट्स आफ ए नेटिव आफ नार्दर्न इण्डिया आन दि रिबेलियन, इट्स काज़ेज एण्ड रेमेडीज, पृ० ११

८ सैयद अहमद, दि काज़ेज़ आफ दि इण्डियन रिवोल्ट, पृ० ३

ऐसे दुर्बोध और अनिश्चित माध्यम के द्वारा किसी षड्यन्त्र का संचालन नहीं हुआ करता क्योकि इससे बेहतर उपाय ढूंढ निकालने के लिए असाधारण प्रतिभा की आवश्यकता नहीं थी। यदि चपातियो के पीछे कोई राजनीतिक उद्देश्य होता, तो सरकार उसके साक्ष्य का कुछ-न-कुछ पता लगाए बिना नहीं रह सकती थी।

चपातियां मध्य प्रदेश मे भी बाटी गई थीं। परन्तु वहा भी उनके बाटे जाने मे किसी राजनीतिक चाल का सन्देह नहीं किया गया। निमाड़ के कैप्टन कीटिंग ने सर राबर्ट हैमिल्टन को लिखा, "निमाड़ मे १८५७ के वर्ष का प्रारम्भ कुछ चपातियो के एक गाव मे बांटने से हुआ। मैं जानता हूं कि ऐसा ही समस्त भारत मे हुआ। इसके बारे मे कहा गया है कि यह उन उपद्रवों का संकेत था जो बाद मे इसी साल हुए। जब ये रोटियां निमाड़ मे बंटती देखी गई, तो वे सब जगह इन्दौर की दिशा से लाई जा रही थीं। यह शहर उस समय हैजे की बीमारी से पीडित था और काफी संख्या में निवासी प्रति दिन मर रहे थे। उस समय निमाड़ के लोगो ने यह समझा और आज भी वे ऐसा ही विश्वास करते हैं कि गेहूं के आटे की चपातिया मन्त्र पढ़ कर भेजी गई थीं ताकि जहां वे रोटियां जाएं, बीमारी भी वहां से निश्चय ही चली जाए।" इस प्रकार मध्य-प्रदेश में चपातिया बीमारी की वाहक समझी गई, न कि राजनीतिक संकटों की सन्देशवाहक।

सन् १८५८ मे, निःसन्देह प्रत्येक असाधारण वस्तु संशय के साथ देखी जाती थी। इसी साल, सितम्बर के महीने मे गुड और युली से मिश्रित आटे के छोटे-छोटे गोल पिण्ड बरार मे बाटे गए थे। यह सन्देह था कि वे बम्बई से आए हैं। वे किस प्रकार बाटे गए यह ज्ञात नहीं था, परन्तु एक अधिकारी ने उनका आरोपण नाना और उसके साथियो पर किया।[९] गेरुए रंग की झण्डियो का एक जोड़ा और उसके साथ मे एक नारियल, एक सुपारी और एक हरा पान का पत्ता, ये चीजें सन् १८५८ के अक्तूबर मास मे छिन्दवाडा जिले मे एक गांव से दूसरे गाव मे बाटी जा रही थीं। यह समझा जा रहा था कि यह नाना की भलाई के लिए किया जा रहा है और इसमे कुछ हेतु का आभास भी है क्योकि शिवाजी का झण्डा भी गेरुए रंग का था। परन्तु कोई धार्मिक संगठन भी इसे ग्रहण कर सकता था। कुछ भी हो, आटे के गोल पिण्ड और गेरुए रंग का झण्डा, ये दोनो चीजें ग़दर के बाद आई, पहले नहीं।

चपातिया क्यो बाटी गई, इस सम्बन्ध मे एक हिन्दू सन्यासी बाबा सीताराम ने एक नया विचार रखा और जिसकी जाच मैसूर के जुडीशियल कमिश्नर एच० बी० डेवरो और कैप्टन जे० एल० पियर्स ने की। सीताराम से लगातार कई दिनों तक (१८ जनवरी से २५ जनवरी, १८५८ तक) मैसूर मे प्रश्न किए गए। उसने बीस वर्ष पूर्व ग्वालियर की बैजाबाई के द्वारा प्रारम्भ किए गए एक षड्यन्त्र की अजीब कहानी कही जिसमे सभी मुख्य राजा सम्मिलित थे। बैजाबाई इस षड्यन्त्र से उस समय अलग हो गई जब जयाजीराव के लिए राज्य प्राप्त करने का उसका उद्देश्य पूरा हो गया। जब बैजाबाई अलग हुई तो नाना

---

९ नागपुर के डिप्टी कमिश्नर मेजर जे० ए० स्पेस की ओर से चएडा के डिप्टी कमिश्नर कैप्टन डब्ल्यू० एच० क्रिचटन को, ३ सितम्बर, १८५८

उसकी जगह पर आगया। दस्स बाबा नामक एक जादूगर की विलक्षण शक्ति मे उसका विश्वास था और जम्मू के राजा गुलाबसिंह और मथुरा के सेठ लक्ष्मीचन्द उसकी आर्थिक सहायता करते थे। हैदराबाद का मन्त्री जिसके नाम के अन्त मे चद जा जग आता था, इस षड्यन्त्र में सम्मिलित था। दस्स बाबा ने कमल के बीजों की एक छोटी-सी मूर्ति बनाई और फिर उसे छोटे-छोटे टुकडों मे विभक्त कर दिया। प्रत्येक टुकड़े को एक-एक चपाती मे रख कर उसने कहा कि जितनी दूर ये चपातिया जाएगी, उतनी ही दूर तक नाना का प्रभाव बढ़ता चला जाएगा। कहा जाता है कि रात्रि को भारत के सब सैनिक स्थानो पर एक साथ आक्रमण करने की योजना भी बनाई गई। सब अंग्रेज लोगो को मार दिया जाता था, परन्तु स्त्रियों और बच्चो को हानि नहीं पहुचानी थी। रीवा के राजा को बनारस पर अधिकार करने के बाद बगाल पर आक्रमण करना था। सीताराम बाबा ने बताया कि इस देश व्यापी षड्यन्त्र का मुख्य सचालक दस्स बाबा पजाब मे था, परन्तु उसके एक शिष्य को बैरागी के वेष मे दक्षिण आना था। मैसूर के महाराजा पर यह अभियोग लगाया गया था कि वह गुप्त रूप से षड्यन्त्र मे सम्मिलित था और इसी प्रकार दक्षिण के और बहुत से राजाओ पर भी। फोरजेट ने इस कहानी को एक अनुमान से अधिक महत्व नहीं दिया।[१०] गवर्नर-जनरल का विचार था कि सीताराम बाबा के कथनों की जाच होनी चाहिए, यद्यपि उसका वक्तव्य झूठा और गलत बयानों से भरा था। इसलिए मध्यवर्ती-भारत और हैदराबाद मे गवर्नर-जनरल के एजेंटों के पास तथा बम्बई और पंजाब की सरकारों के पास प्रतिया जाच के लिए भेजी गईं, परन्तु ऐसा नहीं लगता कि इस मामले पर कहीं गम्भीरता से विचार किया गया हो।[११] अत सीताराम बाबा की मनगढ़न्त कहानी यह सिद्ध नहीं करती कि भारत व्यापी विद्रोह के लिए कोई षड्यन्त्र पहले से सम्मिलित प्रयत्न के द्वारा किया गया था।

इसके बाद झासी की रानी लक्ष्मी बाई के एक कथित पत्र पर विचार करना है, जो अभी हाल में पुरी मे प्रकाश मे आया है। इस पत्र का अभिप्राय पुरी तीर्थ के रानी के कुल-पुरोहित को सम्बोधित किया गया है। पत्र हिन्दी मे है और इस पर दिनाक मार्च, १८५६, अकित हैं। यह लेख सच्चा है तो इससे यह विदित होता है कि मेरठ के उपद्रव से पूरे एक वर्ष पूर्व रानी एक विद्रोह का सगठन करने मे लगी हुई थी। परन्तु इस पत्र की भाषा और लिपि आधुनिक जान पडती है। सर रावर्ट हैमिल्टन को लिखे गए रानी के खरीते मे दिनाक लिखने की मुस्लिम शैली बरती गई है परन्तु इस पत्र मे, जो एक ब्राह्मण को सम्बोधित है, अग्रेजी शैली का अनुमान है। उन दिनों की भारतीय पद्धति के विपरीत रानी ने अपने पण्डे को "माननीय पण्डा जी" कह कर सम्बोधित किया है और अत मे अपने लिए लिखा है, "आप का लक्ष्मी बाई" जो अशुद्ध हिन्दी है। जिस मुद्रा का प्रयोग किया गया है, वह भी प्रामाणिक पत्रो मे व्यवहृत मुद्रा से भिन्न है और पत्र के अन्त मे चर्बी लगे कारतूस का भी उल्लेख है। यह कारतूस भारत मे नवम्बर १८५६ से पहले नहीं आए थे

---

१० फोरजेट, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ५०

११ फारेन सीक्रेट कन्सल्टेशन्स, सख्याए ३४४-३४६, २८ मई, १८५८

रानी लक्ष्मी बाई की मोहर

रानी लक्ष्मी बाई के तथाकथित हिन्दी पत्र की मोहर

और आगामी जनवरी तक सम्भवत' सिपाहियो ने इसके बारे मे कुछ नहीं सुना था। ऊपर से यह मालूम पड़ता है कि पत्र मेरठ से लिखा गया था परन्तु इस प्रकार का कोई साक्ष्य नहीं है कि मार्च १८५६ मे या अन्य किसी समय रानी मेरठ मे थी। स्पष्टतः यह रचना एक भद्दी नकल है और इसका लेखक, चाहे वह कोई भी पुरुष या स्त्री हो, अंग्रेजी मे पत्र-व्यवहार करने का अभ्यस्त रहा है।

कर्नल विलसन को यह विश्वास हो गया था कि भारत के सब सैनिक-स्थानो पर एक साथ विद्रोह करने के लिए एक तिथि और समय निश्चित कर दिया गया था, परन्तु अपने इस निष्कर्ष के समर्थन मे उसने किसी साक्ष्य का उद्धरण नहीं किया है। ज्ञात तथ्य उसके सिद्धान्त के विपरीत है। हम देख चुके हैं कि मेरठ का विद्रोह पूर्व विचारित नहीं था। लखनऊ मे एक रेजीमेंट ने मई के प्रारम्भ मे कारतूस को दातो से काटने से इन्कार किया, सामान्य ग़दर इस मास के अन्त मे हुआ और पुलिस-सेना ने इसके भी वाद विद्रोह किया। मेरठ और दिल्ली के गदर के बाद दो सप्ताह तक पूर्ण शान्ति रही। सीतापुर और सियालकोट, इन दोनो जगहो पर भिन्न-भिन्न रेजीमेंटो ने भिन्न-भिन्न प्रकार से व्यवहार किया। मेडले ने बताया है, "जिन रेजीमेंटो को बचने का अवसर नहीं था, उन्होंने ग़दर किया और वे टुकड़े-टुकड़े काट डाले गए। दूसरे लोग जो किसी समय बिना किसी रुकावट या विघ्न के विद्रोह कर सकते थे, उस समय तक वफादार बने रहे जब कि सफलता ही असम्भव हो गयी। तब उन्होने विद्रोह किया और उनका भी वैसा ही भाग्य हुआ। जैसा कि विदित ही है, अनेक उदाहरण इस इस बात के हैं कि सिपाहयो ने अपने अधिकारियो को परेड मे मार दिया, या उनके घरो मे उन्हे मार डाला। कुछ ऐसे उदाहरण भी पाए गए हैं कि सिपाहियो ने अपने अधिकारियो और उनके परिवारो की रक्षा की, उन्हे पैसा दिया और उनसे विदा लेते समय आंसू बहाए। यह बात नहीं है कि बरताव की यह विभिन्नता स्वय अधिकारियो के चरित्र की विभिन्नता पर ही आधारित रही हो।"[१२] कहीं भी सिपाहियो का व्यवहार एक जैसा नहीं था और इससे स्पष्टतः निष्कर्ष यह निकलता है, उनके पास कोई पूर्व विचारित सम्मिलित योजना अनुगमन के लिए नही थी। बहुत-से लेखको ने इस असगति को जांच के अयोग्य समझ कर उसे निरर्थक ठहरा दिया है। उनका कहना है कि सिपाही एक बालक के समान था और उससे संगत व्यवहार की आशा करना व्यर्थ था। यह ठीक है कि अधिकतर सिपाही अशिक्षित थे और दुनिया की खबरो से अनभिज्ञ थे, परन्तु उनका सोचने का अपना ढग था और उनके ऊपर से असंगत व्यवहार की व्यवस्था की जा सकती है। सरकार के सुरक्षा-उपायो ने अक्सर उनसे गदर करवाया और उन्होंने आत्म रक्षा के लिए विद्रोह किया। मध्यवर्ती-भारत मे नीमच और नजीराबाद मे, पंजाब मे झेलम और सियालकोट मे, उत्तर-पश्चिमी प्रान्त मे इलाहाबाद और फतेहपुर में और अवध मे फैजाबाद और सिकरोरा मे, इन सब स्थानो मे यूरोपीय सैन्य दलो के आने या उनके आने की खबर मिलने से खतरे की घण्टी बज उठी। जैसा सर जान लारेंस ने बताया है, हथियार डलवाने और घोड़े ले लेने से भय फैला और

१२ मेडले, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २००-२०१

भय ने विद्रोह उत्पन्न किया। जब एक अज्ञात भारतीय लेखक से पूछा गया कि कुछ सिपाहियो ने सितम्बर और अक्तूबर तक क्यो विद्रोह नहीं किया तो उसने भी इसी आशय का उत्तर दिया। वह लिखता है, "महोदय, मैंने आप को बताया कि यह एक सम्मिलित योजना नहीं थी। बहुत से सिपाही देर तक यह सोचते रहे कि सरकार उन सैन्य दलों को, जो हाथ से निकल चुके थे, निरस्त्र करके पूर्ण सन्तुष्ट हो जाएगी, परन्तु उन्हें दिनोंदिन यह विश्वास हो रहा है कि सरकार केवल यूरोपीय सिपाहियों के आने की प्रतीक्षा कर रही है और उसके बाद वह बगाल सेना को समूल नष्ट कर उससे अपना पल्ला छुडाएगी, या तो उसके सिपाहियों से हथियार डलवा कर या उन्हें बन्दूकों की गोलियो से उडा कर।"[१३]

सर सैयद अहमद ने बताया है कि सम्भवत सिपाहियो मे चर्बी लगे कारतूस के सम्बन्ध मे कुछ पत्र-व्यवहार तो चल रहा था, परन्तु प्रतिरोध की कोई आम योजना नहीं बनी थी। कोई रेजीमेंट घृणित गोला-बारूद का पहले उपयोग करने के लिए प्रस्तुत नहीं थी। ये सैनिक यह प्रतीक्षा कर रहे थे कि दूसरे क्या करते हैं। कर्नल कार्माइकेल स्मिथ के जान-बूझ कर किए हुए अविवेक ने मेरठ मे विद्रोह करवाया। एक सैनिक स्थान से दूसरे सैनिक स्थान पर खबर फैल गई और बाकी काम उन रेजीमेंटों के हथियार डलवाने ने पूरा कर दिया जिन्होंने न केवल कोई रुष्ट करने वाला कार्य ही नहीं किया था, बल्कि जो क्रियात्मक रूप से राजभक्त भी थे। यदि दूसरे सिपाहियों को भी वही अवसर दिया गया होता जो नासिरी रेजीमेंट को दिया गया था, तो सम्भवत उन्होंने भी अपने आप को उतना ही विश्वसनीय सिद्ध किया होता। परन्तु अधिकारियों ने जो एहतियाती कार्रवाई की, दण्ड देने की जो नीति बरती और खुले तौर पर उनके प्रति जिस अविश्वास का प्रदर्शन किया, उससे सिपाहियो के पास सशस्त्र विद्रोह के अलावा और कोई चारा ही नहीं रह गया। पजाब मे सिपाही अपने अधिकारियो की ईमानदारी मे विश्वास नहीं कर सकते थे। निकल्सन ने ५९वीं देशी पैदल सेना को जहां एक दिन यह विश्वास दिलाया कि मुझे इस बात की खुशी है कि सिपाहियों से हथियार डलवाने का मैं कोई कारण नहीं देखता वहा दूसरे दिन ही सवेरे सिपाहियो से हथियार जमा करा लिए गए, यद्यपि इस बीच उन्होंने किसी किस्म की हरकत नहीं की थी।

सिपाही या उनके नेता किसी विदेशी सत्ता से भी मिले हुए नहीं थे। इस प्रकार का कोई साक्ष्य नहीं है जिससे कहा जा सके कि ग़दर की प्रेरणा रूस ने दी। बादशाह के मुकदमे मे यह कहा गया था कि उसने अपने दूत फारस भेजे थे। एक ऐसे समय मे जब कि फारस के लोग इंग्लैंड के साथ युद्ध मे रत थे, वे भारत मे सकट उत्पन्न करके निश्चय ही प्रसन्न होते। यह सत्य है कि शाह की ओर से निकाली गई एक घोषणा एक बार जामा मस्जिद मे प्रदर्शित की गई थी, परन्तु इसे शीघ्रता से हटा दिया गया और दिल्ली की आम जनता का ध्यान इस ओर नहीं गया। इतने बडे देश मे ऐसे व्यक्तियो का अभाव

---

१३ दि थाट्स आफ ए नेटिव आफ नार्दर्न इण्डिया आन दि रिबेलियन, इट्स काजेज़ एण्ड रेमेडीज, पृ० २२

नहीं था जो विदेशी शासन से अपमान अनुभव करते थे, और यह सम्भव है कि ऐसे ही किसी व्यक्ति की ओर से उपर्युक्त लेख आया हो। कुछ भी हो, अकेली एक घटना षड्यन्त्र को सिद्ध नहीं करती। बादशाह के मुकदमे की सुनवाई के समय मुकुन्दलाल नामक एक गवाह ने साक्ष्य दिया कि मिर्ज़ा सुलेमान शिकोह के पौत्र लखनऊ से दिल्ली के बादशाह और ईरान के शाह के बीच समझौता करवाने के लिए आए। मिर्ज़ा सुलेमान शिकोह, जो शाह आलम द्वितीय का पौत्र था, लखनऊ में शरणार्थी था। उसके वंशजों ने अपने शिया संरक्षक से आत्मीयता बढाने के लिए शिया धर्म अंगीकार कर लिया था। यह अत्यधिक संदिग्ध बात है कि अंग्रेज रेज़िडेंट की सतर्क निगाह बचाकर और उसके बिना सूचना पाए ये लोग एक विदेशी सत्ता से पत्र-व्यवहार करते रहे हों, जबकि उनका दिल्ली आना छिपा नहीं था। मुकुन्दलाल के अनुसार सिदि कम्बर नाम का एक आदमी बादशाह के पत्रो को लेकर ईरान गया। परन्तु उसने स्वयं स्वीकार किया है कि बादशाह की गुप्त बातो तक उसका प्रवेश नहीं था और गोपनीय पत्र-व्यवहार इसी नाम के एक दूसरे सचिव को सौंपा गया था। हकीम अहसानुल्ला को सन्देह था कि मिर्ज़ा हैदर (सुलेमान शिकोह के पुत्र) ने बादशाह से शिया बन जाने का अनुरोध किया था। और उस धर्म के पार्थिव प्रधान शाह से पत्र-व्यवहार करे। परन्तु इस सन्देह की अभी पुष्टि नहीं हो सकी और हर हालत मे मिर्ज़ा हैदर अवध के अंग्रेज़ी राज्य मे मिलाए जाने से पूर्व दिल्ली आया, अतः उस समय यह सम्भव नहीं था कि अवध का राजा ऐसे कार्य को अनुकूल दृष्टि से देखता, क्योंकि उस समय उसे अपने अनेक अंग्रेज़ मित्रों के विरुद्ध कोई शिकायत नहीं थी। यह कभी सिद्ध नहीं किया जा सका है कि सिदि कम्बर अपने साथ कोई पत्र शाह के लिए ले गया। यह कथन केवल अनुमान पर आश्रित था। मेजर हैरियट ने यह तर्क दिया कि शाह ने भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों की सूबेदारी का वचन अपने दरबारियों को दिया था और हिन्दुस्तान का ताज बहादुरशाह के लिए सुरक्षित रखा गया। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि दिल्ली के बादशाह का ईरान के शाह के साथ कोई समझौता हुआ था, परन्तु यह तो उस शासक की दिल्ली के बादशाह का समर्थन प्राप्त करने के लिए और उसके द्वारा उन भारतीयों का समर्थन प्राप्त करने के लिए, जो उसे अब भी हिन्दुस्तान का न्याय सम्राट मानते थे, एक कुशल कूटनीतिक चाल ही थी। फिर यह भी सिद्ध करना आवश्यक है कि ११ मई से पूर्व बहादुरशाह सिपाहियो से पत्र-व्यवहार करता रहा था। सर जान लारेंस ने ठीक ही संकेत किया है कि "यदि शाह का वास्तविक रूप मे यह इरादा होता कि भारत मे ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए हिंसात्मक प्रयत्न किया जायगा तो यह समझना कठिन हो जाता है वह उस समय हमारे साथ शान्ति-सन्धि क्यो करता जब हमारे भाग्य का संकटमय समय था। ऐसा करके तो उसने भारत के लिए उन सैन्य दलो को मुक्त कर दिया जो अन्यथा फारस मे उलझे रहते। फिर यदि शाह को सचमुच ऐसे किसी प्रयत्न का पता होता तो क्या उसने अपने दूत पेशावर और पंजाब मे नहीं भेजे होते? यदि उसने ऐसा किया होता तो षड्यन्त्र के कुछ लक्षण अवश्य दिखलाई पड़ जाते, परन्तु ऐसे किसी लक्षण का पता नहीं लगा। तथ्य तो यह है कि बादशाह और उसके दल की अभिसन्धियो के बारे मे जो कुछ भी पता हमे लगा है उससे यही प्रकट होता

है कि भारत मे किसी षड्यन्त्र या सगठन की ओर उसकी दृष्टि नहीं थी, फारस और रूम का तो कुछ कहना ही नहीं।[१४] श्री कृष्णलाल ने फारस मे अंग्रेज राजदूत मरे द्वारा लौर्ड कैनिंग को लिखे गए एक पत्र का उद्धरण देते हुए इन तर्कों का प्रतिवाद किया है। उपर्युक्त पत्र में ब्रिटिश राजदूत ने कहा है कि फारस के एक उच्च पदाधिकारी ने यह स्वीकार किया है कि उसने उत्तर-भारत के मुस्लिम सरदारों को विद्रोह करने के लिए उत्तेजित करते हुए पत्र लिखे।[१५] इस स्वीकारोक्ति से केवल एक इरादे का संकेत मिलता है, इससे अधिक कुछ नहीं। किसी भी षड्यन्त्र के लिए कम से कम दो पक्ष चाहिए। सदरे-आज़म अपनी ओर से किए गए एक एक पक्षीय कार्य का उल्लेख करता है, परन्तु उसके पत्रों की क्या प्रतिक्रिया रही इसका कोई उल्लेख नहीं करता। बहादुर शाह ने ग़दर के दौरान इसी प्रकार के पत्र पटियाला के राजा और उत्तर-भारत के दूसरे राजाओं के पास भेजे, परन्तु हम निश्चित रूप से जानते हैं कि उन्होने उसके उद्देश्य की पूर्ति नहीं की। प्रथम महायुद्ध के समय कैसर विलियम द्वितीय ने कई पत्र राजा महेंद्र प्रताप के द्वारा भारत के राजाओं को लिखे, परन्तु वे लोग जर्मनी से मिले हुए नहीं थे। हम यह भी नहीं जानते कि जिन पत्रो का उल्लेख मरे के प्रेषण-पत्र मे है, वे जिन लोगो के पास भेजे गए थे उनके पास पहुचे भी या नहीं।

केवल एक मात्र विदेशी सत्ता, जिसके पास विद्रोही पहुचे, नेपाल थी और यह ग़दर के बाद ही सम्भव हुआ, पहले नहीं। इससे पहले प्रश्न का ठीक उत्तर मिल जाता है। सन् १८५७ का आन्दोलन पूर्व आयोजित नहीं था और न तो यह भारत मे किसी राजनीतिक दल द्वारा नियोजित था और न इग्लैड विरोधी किसी विदेशी सत्ता द्वारा ही नियत्रित था। सिपाहियो के असन्तोष से इसका जन्म हुआ और असैनिक जनता मे विस्तृत रूप से फैले असन्तोष से इसने शक्ति ग्रहण की। सेना को निरुपद्रवी बनाने की सतत नीति ही सेना के उपद्रव का कारण हुई।

आन्दोलन ने बहुत से स्रोतों से अपने लिए रगरूट प्राप्त किए। इग्लैंड मे चार्टिस्ट आन्दोलन मे भाग लेने वालों की पक्तियों मे मुद्रा-प्रणाली के सुधारक तथा अन्य कई ऐसे तत्व विद्यमान थे उनके राजनीतिक सिद्धान्तो को नहीं मानते थे। यदि एक बार किसी राज्य के विरुद्ध क्रियात्मक असन्तोष को अभिव्यक्ति का एक सगठित साधन मिल जाता है तो उस राज्य के वैध अधिकारियो के विरुद्ध विभिन्न विचार रखने वाले विभिन्न दल एक साथ मिल जाते हैं। यही बात सन् १८५७ मे भारत मे हुई। आन्दोलन एक सैनिक ग़दर के रूप मे शुरू हुआ परन्तु हर जगह वह सेना तक ही सीमित नहीं रहा। यह ध्यान रखना चाहिए कि सेना समग्र रूप से कभी विद्रोह मे शामिल नहीं हुई, बल्कि उसके एक काफी बडे भाग ने सरकार की ओर से क्रियात्मक लडाई तक लडी। उसकी वास्तविक

---

१४ सेलेक्शन्स फ्राम पजाब गवर्नमेंट रिकार्ड आफिस, जिल्द ७, भाग २ पृ० ४०५

१५ पजाब गवर्नमेट रिकार्डस्, दिल्ली डिवीज़न राजनीतिक १८५८ फाइल सख्या १६, कृष्णलाल के 'पर्शियन इन्ट्रीग एट देलही', (१८५५-५७) मे उद्धृत

शक्ति का हिसाब लगाना आसान नहीं है। हर एक रेजीमेंट, जिससे हथियार डलवा लिए गए थे, आवश्यक रूप से विद्रोही नहीं थी और न सेना को छोडकर भागने वाला प्रत्येक व्यक्ति ही आवश्यक रूप से गदर करने वाला था।[16] कांगडा और नूरपुर मे चौथी देशी पैदल सेना की स्वामिभक्ति पर कभी संदेह नहीं किया गया और जिन सिपाहियो से आगरा मे हथियार रखवा लिए गए थे उन्हें ऊटरम के अनुरोध पर फिर सेवा के लिए बुलाया गया।[17] छठी देशी पैदल सेना इलाहाबाद में विद्रोह करने के बाद शान्तिपूर्वक तितर-बितर हो गई और अपने घर चली गई। मोटे तौर पर लगभग ३०,००० आदमी अन्त तक राजभक्त बने रहे और करीब इतनी ही संख्या मे सिपाहियो से या तो हथियार डलवा लिए गए या वे सेना को छोडकर भाग गए। करीब ७०,००० आदमी विभिन्न समयो पर विद्रोह मे शामिल हुए। यदि इन सब लोगो ने एक साथ उपद्रव किया होता तो विद्रोह ने एक भयंकर रूप धारण कर लिया होता।

विद्रोहियों में देश की जनसंख्या के सभी वर्गों के लोग शामिल थे।[18] यदि दिल्ली की संकरी पहाड़ी के पास सिख थे तो शहर के अन्दर भी सिख थे, यदि सीमा प्रान्त के कबायली लोग पुरबियो से लड़ने के लिए भर्ती किए गए थे तो धार और मन्दसौर की विद्रोही सेना मे विलायती या अफगानो की अधिकता थी। एक समय गदर को एक मुस्लिम आन्दोलन समझने का फैशन चल पड़ा था, एक दूसरे समय इसी प्रकार उसे हिन्दू आन्दोलन समझने का फैशन चल पड़ा, परन्तु सब अवस्थाओ मे दोनो ही जातियो का विद्रोही सेना में अच्छा प्रतिनिधित्व था। नाना के पास उसका विश्वासपात्र अजीमुल्ला था, खान बहादुर खा के पास सोभाराम और झासी की रानी के पास उसके विश्वस्त

---

१६. गदर के प्रारम्भिक दिनो में सेना को छोड़कर भागने वाला प्रत्येक सिपाही एक विद्रोही के रूप में दडित किया जाता था। फोरजेट एक सिपाही के मामले का उद्धरण देता है जिस पर सेना को छोड़कर भागने का आरोप था। जब इस सिपाही से पूछा गया तो उसने उत्तर दिया, "मैं कहा जाता ? सारी दुनिया तो यह कह रही थी कि अंग्रेजी राज्य समाप्त हो गया है। मैं एक भोला-भाला आदमी था। मैंने यही सोचा कि सबसे अच्छी जगह जहा मैं शरण ले सकता हु मेरा घर ही है।"

१७. इस सम्बन्ध में एक दूसरा उदाहरण सफर मैना की दो या तीन टुकड़िया थीं। सफर मैना रुड़की से बुलाये गये थे और वे प्रसन्नतापूर्वक चले आ रहे थे, जबकि उनसे उनके रेजीमेट के बारूदखाने को लेने का प्रयत्न किया गया, जिसके कारण उन्होंने खुला विद्रोह कर दिया। वे भागे, उनका पीछा किया गया, बहुत से काट डाले गए और शेष तितर-बितर होकर दिल्ली भाग चले और वहा गदर करने वालों के पास पहुंचे। सैनिक स्थान के एक दूसरे भाग मे दो या तीन टुकड़ियो से शान्तिपूर्वक हथियार डलवा लिए गए थे और जब ब्रिगेडियर विल्सन की सेना दिल्ली के लिए चली तो उन्हें फिर हथियार दे दिए गए और वे उस छोटे सैनिक दस्ते के साथ गए। तब से उन्होंने अद्भुत रूप से अच्छा व्यवहार किया।" मेडले, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ५४-५५

१८ पारसी एक अपवाद थे।

अफगान पहरेदार थे। ग़दर के प्रारम्भिक दिनो मे यह कहा गया था कि उपद्रव ऊंची जाति के हिन्दुओं ने करवाए हैं, इसलिए उनके सन्तुलन के लिए नीची जातियो से तथा आदिम जातियो से सिपाहियों को भर्ती करने का निश्चय किया गया। परन्तु पासी लोगों ने अवध मे विद्रोही पक्तियों को भर दिया और राजपूताना और मध्य-भारत मे भील भी विद्रोहियो से मिल गए। सन्थालों ने तो एक बार और महाजनो को सरक्षण देने वाली सरकार के विरुद्ध लडने का निश्चय किया। कोई सम्प्रदाय, वर्ग या जाति विशेष पूर्ण-रूपेण सरकार के पक्ष या विपक्ष मे नहीं थी। कुछ छिट-पुट अग्रेज भी विद्रोहियों के पक्ष में पाए गए थे।[१९] "१५" और "४५" के स्काटलेंड के भूस्वामियो के समान रईसी परिवार अपनी सहानुभूतियों और विद्वेषों मे विभक्त थे।[२०]

इसलिए इस सबध मे सावधानी वरती जानी चाहिए कि कहीं कार्य और कारण तथा विद्रोह और अराजकता को न गडबडा दिया जाय। कानून को तोड़ने वाला प्रत्येक व्यक्ति आवश्यक रूप से देशभक्त रहा हो ऐसा तो नहीं था। जब प्रशासन अस्त-व्यस्त हो गया तो कानून विरोधी तत्वों की वन पडी। गूजर लोगों ने दोनो पक्षो को बिना भेद भाव के लूटा, यद्यपि उन्हें उस समय की राजनीति मे कोई दिलचस्पी नहीं थी। पुराने झगडे फिर जीवित हो गए और राजनीतिक सम्बन्धों का ध्यान किए विना एक गाव दूसरे से लडने लगा।[२१] देहातों मे और भी छोटी-मोटी घटनाए हुईं जो मुख्य आन्दोलन की शाखा-प्रशाखाए मात्र थीं, जिनसे उसे कुछ भी शक्ति प्राप्त नहीं हुई। सहारनपुर मे बजारो ने अपना एक अलग राजा बना लिया और गूजरों ने भिन्न-भिन्न क्षेत्रों मे अपने भिन्न-भिन्न राजा बना लिए।[२२] मथुरा जिले मे देवीसिह का एक विचित्र ही मामला था। उसके पूर्वजो के अधिकार में कुछ थोडे से गाव थे और उसने इस ख्याल मे आकर कि अग्रेजी शासन समाप्त हो चुका है अपने को "चौदह गावों का राजा" घोषित कर दिया। जब थार्नहिल इस विद्रोही सरदार को

---

१९ कूपर कहता है कि २८वीं देशी पैदल सेना विद्रोही सेना का एक सार्जेन्ट-मेजर ग़दर करने वालो से दिल्ली में मिल गया। कूपर, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १९७ ९८। जनरल गफ ने दिल्ली में गदर करने वालों की पक्तियों में गोर्डन नामक एक यूरोपीय के होने का उल्लेख किया है। गफ, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १०८-११०। रीज़ ने भी कुछ ऐसे लोगों का निर्देश किया है जिनमें एक तरुण पुरुप भी था जिसका नाम वह नहीं लेना चाहता था। रीज़, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ७५-७६, ११६

२० मैनपुरी का राजा तेजसिंह भी विद्रोह में शामिल हो गया। उसका चाचा राव भवानीसिह अग्रेज़ों के पक्ष में था। अकबराबाद के दो राजपूत जमीदार अग्रेज़ों से लड़े जब कि उनका तीसरा भाई अग्रेजी सेना में नौकरी करता था। गफ, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १२५-२६

२१. एडवर्ड्स ने ऐसी पुकारों का या एक गाव या गावों के गिरोह-के द्वारा दूसरे गाव या गावों के गिरोह पर आक्रमण करने का उल्लेख किया है। गाव वालों को हथियारबन्द रह कर आत्मरक्षा के लिए निगरानी रखनी पड़ती थी। एडवर्ड्स, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ४३

२२ सहारनपुर जिले मे फतुवा नामक एक आदमी गूजरों का राजा घोषित कर दिया गया था। रावर्टमन, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १२०

पकड़ने गया तो उसे पता चला कि भयंकर राजा तो अधिक हानि करने मे असमर्थ एक साधारण उजड्ड व्यक्ति मात्र था।[२३] गूजर और बंजारे राजा तथा चौदह गांवो का अधिपति, ये सब विद्रोह के उप-परिणाम थे। आंदोलन के द्वारा प्रदत्त अवसरों का उन्होंने अपने लाभ के लिए उपयोग किया, परन्तु उनके उद्देश्यो के साथ उन्होंने अपने आपको एकाकार नहीं किया। लूट-मार करने वाली जातियां अपने आप तो लूट-पाट करती ही थीं, ऐसे उदाहरणो की भी कमी नहीं है जबकि बदमाश और अभावग्रस्त आदमी लूट के माल को पाने के आकर्षण में विद्रोही सेना मे मिल गए। महिमजी वाडी एक डकैत था और जब वह तात्या के सैन्य दलों मे शामिल तो हुआ, लेकिन देश भक्ति की भावना से प्रेरित होकर नहीं।[२४] बैलसरे नामक एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण दक्षिण में अपने गाव-घर को इसलिए छोड़कर आया था कि वह अपनी तकदीर बना सके लेकिन अंततः वह विद्रोहियो के शिविर में आ पहुंचा।[२५] इन अनिश्चित तत्वों के लिए काफी गुंजाइश रखते हुए भी हम यह कह सकते हैं कि युद्ध के मुख्य क्षेत्रो में विद्रोह को साधारण जनता का समर्थन विभिन्न मात्रा में प्राप्त था और उसका विस्तार मोटे तौर पर पश्चिमी बिहार से लेकर पंजाब की पूर्वी सीमा तक था।[२६]

मद्रास की प्रेसीडेंसी आदि से अन्त तक आन्दोलन से अप्रभावित रही, यद्यपि सेना मे बेचैनी के कुछ हल्के से लक्षण अवश्य देखे गए।[२७] शिक्षित समाज ने निर्बाध रूप से अपने को शान्ति और सुव्यवस्था के पक्ष में रखा और स्पष्ट शब्दो मे उपद्रव की निन्दा की। बंगाल में सिपाहियों ने अपने स्थानों मे उपद्रव किए, परन्तु उन्हें स्थानीय जनता से कोई सहानुभूति प्राप्त नहीं हुई। इसके विपरीत केवल एक साक्ष्य है जो एक पत्र के रूप

---

२३. थार्नहिल कहता है, "वह एक बहुत साधारण दिखाई देने वाला आदमी था जो दूसरे ग्रामीणों से सिर्फ इस बात मे भिन्न था कि वह पीली पोशाक पहने हुए था।" फिर भी उसने एक स्वतन्त्र सर्वोच्च शासक का खिताब ग्रहण किया। "दयानिधान, अन्नदाता, वैभवागार, करुणानिधि, गरीब-निवाज, तेजस्वी, राजपुत्र, राजा महाराजा देवीसिंह, चौदह गांवों का अधिपति, युद्ध-विजयी।" थार्नहिल, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १०२-१०३

२४. पेशेवर डकैत महिमजी वाडी की कहानी वाई० के० देशपांडे ने अपने संस्मरणों में कही है।

२५. इस साहसिक व्यक्ति के पाण्डुलिपि-निबद्ध वर्णन के लिए मैं महामहोपाध्याय डी० वी० पोतदार का ऋणी हूं।

२६. मुलतान के क्षेत्र को छोड़कर।

२७. ११ ता० को शहर (हैदराबाद, दकन) और बाजार अफवाहों से विचलित हो रहे थे, जिनमें एक यह था कि सिकन्दराबाद का एक रेजीमेंट निश्चयत अंग्रेज सरकार के विरुद्ध किसी विद्रोह में शामिल हो जाएगा। यह सकेत पहली मद्रास पैदल सेना की ओर था जिसने गत सहायता पहुंचाने के समय अभियान करने से इन्कार कर दिया था जब कि उसे ऐसा करने का आदेश दिया गया। इस समय उसके चाल-चलन की जाच हो रही थी।" फारेन सीक्रेट कन्सल्टेशन्स, संख्याएं २५१-२५४, १८ दिसम्बर, १८५७

मे, जिसे ढाका के दो महत्वपूर्ण व्यक्तियो काली नारायण चौधरी और मुग़ल आग़ा गुलाम अली की ओर से भेजा गया बताया जाता था, प्राप्त है। इस पत्र मे इन लोगों ने दावा किया है कि उन्होंने रेजीमेंटो की आर्थिक सहायता की है। परन्तु लेफ्टिनेंट-गवर्नर ने इसे एक फितरती आदमी के द्वारा की गई चालाक जालसाजी समझा, जिसका उद्देश्य "वर्तमान उपद्रवों से लाभ उठाकर अपनी शत्रुता का बदला लेने के लिए झूठे अभियोग लगाना अथवा जबर्दस्ती पैसा वसूल करना था। "इस बात की सूचना देने वाला आदमी भी कहीं चुप-चाप छिप गया और उसका पता लगाना कठिन हो गया।"[२८] कलकत्ता के शिक्षित नागरिक और बगाल के भू-स्वामी रईस भी अपने वर्ग के मद्रासी लोगों के समान ग़दर की और ग़दर करने वाले लोगों की खुली निन्दा करने में पीछे नहीं रहे। उनकी राय में विद्रोह केवल सेना तक सीमित था और यह केवल मात्र सेना का एक ऐसा ग़दर था जैसे कि समय-समय पर प्रत्येक देश मे अक्सर हुआ करते हैं।[२९] आसाम मे मणिराम दत्त को फांसी दे दी गई और मधु मल्लिक नामक एक बंगाली को दस वर्ष की कैद की सजा दी गई। मधु मल्लिक के विरुद्ध यह अभियोग था कि उसने अन्तिम अहोम राजा के पौत्र कन्दर्पेश्वर सिंह के साथ राजद्रोहात्मक पत्र-व्यवहार किया और सिपाहियों की सहायता लेकर अपने पूर्वजों के राज्य को पुन प्राप्त करने के लिए उसे उत्तेजित किया। जोरहाट के डिप्टी कमिश्नर मेजर हेलरायड के मणिराम से अच्छे सम्बन्ध नहीं थे और जिस साक्ष्य के आधार पर उस पर अभियोग लगाया गया था, वह यदि असन्तोषजनक नहीं तो कम से कम अपर्याप्त अवश्य था, विशेषत उस हालत में जब कि हेलरायड अभियोक्ता और न्यायाधीश दोनों की हैसियत से काम कर रहा था।

उडीसा मे सम्भलपुर के दो राजकुमार, सुरेन्द्र शाही और उदवन्त शाही, जो उस समय नजरबन्द थे, भाग निकले, परन्तु वे इस शर्त पर समर्पण करने को तैयार थे कि उन्हें बिना दण्ड दिए क्षमा कर दिया जायगा। उडीसा के सरदार साधारणत: सरकार के पक्ष मे रहे। पोरहाट के राजा ने सकट उत्पन्न किया क्योंकि वह इस कारण रुष्ट था कि उसके ऊपर सरायकेला के राजा को तरजीह दे दी गई थी। बिहार एक अधिक सावधान विश्लेषण की अपेक्षा रखता है क्योंकि बिहार के कुवर सिंह विद्रोह के एक अत्यन्त प्रमुख नेता थे।

---

२८ बगाल सरकार के सचिव की ओर से भारत सरकार के विदेशी विभाग के स्थानापन्न सचिव को, दिनाक २५ मार्च, १८५८। फारेन सीक्रेट कन्सल्टेशन्स सख्याए ३७६-७९ तथा के० डब्ल्यू०, ३० अप्रैल, १८५८

२९ "विद्रोह मूल रूप से एक सैनिक विद्रोह है। यह एक लाख सिपाहियों का विद्रोह है।" दि म्यूटिनियर्स, दि गवर्नमेंट एण्ड दि पीपुल, पृ० ४। २२ मई, १८५७ को ब्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन की समिति ने एक सकल्प पारित किया जिसमें मेरठ और दिल्ली के भारतीय सिपाहियों के अपयश से पूर्ण गदर करने वाले व्यवहार की निन्दा की गई थी। दिल्ली के पतन के बाद बर्दवान के महाराजा तथा २५०० दूसरे हस्ताक्षरकर्ताओं ने अंग्रेजी राज्य के लाभों का विस्तृत वर्णन करते हुए एक राजभक्तिपूर्ण अभिभाषण प्रस्तुत किया था।

शाहाबाद को छोडकर शेष प्रान्त राज भक्त रहा। मुजफ्फरपुर, छपरा, मोतीहारी और बढ को वस्तुत: यूरोपीय अधिकारियों ने छोड़ दिया था, परन्तु ये सभी जिले शान्त रहे। कमिश्नर सैमुअल्स के मतानुसार भारत के निवासियो ने अद्‌भुत रूप से अच्छा व्यवहार किया। उसने सूचना दी है कि "बिहार के जिले मे आवादी के एक बहुत बड़े भाग ने सोचा कि अंग्रेजी शासन समाप्ति पर आ गया है और अव हमे अपना प्रवन्ध स्वयं करना है, इसलिए वे लूट करने चल दिए।" वड़े-वड़े जमीदार न केवल अवैध कार्यवाहियों से दूर रहे बल्कि उन्होने सरकार की धन और जन से सहायता भी की। सोनपुर का वड़ा मेला शान्तिपूर्वक सम्पन्न हुआ और उसमे लेफ्टिनेंट-गवर्नर ने कहा, "विद्रोह करने के लिए कोई संगठित षड्यन्त्र नहीं हुआ। इन्हीं जिलों से भर्ती किए हुए सिपाहियो ने वस्तुतः ग़दर करने वालों का सामना किया है और उन्हें परास्त किया है।" छोटा नागपुर मे आदिम जातियों के एक छोटे और असन्तुष्ट भाग और उनके मुखियाओ तक उपद्रव सीमित था और अंग्रेजों के प्रति विमुखता के कारण जितने उपद्रव हुए उतने ही व्यक्तिगत शत्रुता के कारण हुए। केवल कुंवर सिंह के क्षेत्र मे ही विद्रोहियो को जनता की विश्वस्तता से संरक्षण मिला। यह अन्दाज लगाना कठिन नहीं है कि शाहावाद का किसान इस राजपूत वीर के प्रति अपने व्यक्तिगत भक्ति-भाव से जितना प्रेरित था, उतना संभवतः आंदोलन के उद्देश्य से नहीं।

बम्वई प्रेसीडेंसी मे सतारा, कोल्हापुर, नरगुंड मे और सावन्तवाडी जिले मे विद्रोह हुए। यह लक्ष्य करने योग्य है कि सतारा में विद्रोह के लिए आह्वान किसी उच्चकुलीन मराठा की ओर से नहीं वल्कि एक हिन्दुस्तानी चपरासी की ओर से आया।[३०] वम्बई में पुलिस कमिश्नर फोरजेट ने एक षड्यन्त्र का पता लगाया और उसे वहीं समाप्त कर दिया। इस प्रकार कहीं-कहीं असन्तोष व साधारण प्रदर्शनो के वाद महाराष्ट्र फिर अपनी अभ्यस्त शान्ति की अवस्था मे आ गया। यह वास्तव में एक आश्चर्य की वात थी कि पेशवा को अपने प्रान्त में ही इतना कम समर्थन मिला।

उत्तर-पश्चिमी प्रान्त, अवध और रुहेलखण्ड मे, विद्रोह को सवसे अधिक सफलता मिली। परन्तु रुहेलखण्ड मे, जहां करीव एक साल से अंग्रेजी शासन नहीं था, आंदोलन को विजनौर और मुरादावाद में कोई ठोस समर्थन नहीं मिला। हम देख चुके हैं कि किस प्रकार नजीवावाद का नवाव हिन्दू जमीदारो द्वारा विजनौर से निकाल वाहर किया गया था और जिला कुछ समय तक अंग्रेजों की ओर से सैयद अहमद के हाथो मे रहा। इस समय मे वहां उनकी सैनिक शक्ति लगभग नहीं के वरावर थी। इससे यह निष्कर्ष निकालना अनुचित न होगा कि इस जिले की साधारण जनता विद्रोह के पक्ष मे न थी

३०. बम्बई देशी पैदल सेना की २२वीं रेजीमेंट को विद्रोह के लिए फुसलाने के प्रयत्न के अभियोग मे जिस हिन्दुस्तानी चपरासी को फासी पर लटकाया गया, उसने फासी के तख्ते से दर्शकों को सम्बोधन करते हुए कहा, "यदि वे हिन्दुओ और मुसलमानो की सन्तान हैं तो वे विद्रोह करेंगे। यदि वे ईसाइयो की सन्तान हैं तो चुपचाप बैठे रहेंगे।" फारेन सीक्रेट कन्सल्टेशन्स, संख्या ६३४, २५ सितम्बर, १८५७

और वहां आंदोलन ने बिगड कर एक साम्प्रदायिक झगडे का रूप ले लिया था। मुरादाबाद लगभग पूरी तरह रामपुर के राजभक्त नवाब के नियन्त्रण मे था। प्रान्त के शेष भाग मे भी नया शासन लोक-प्रिय नहीं हो सका, यद्यपि खान बहादुर खा ने हिन्दुओं को प्रसन्न करने के लिए ईमानदारी से प्रयत्न किए। यह ठीक है कि उसने चालीस हजार सैनिक भर्ती लिए थे परन्तु दुर्गादास बद्योपाध्याय का कहना है कि रगरूट काम पर लगने की आशा से आकृष्ट हुए थे और किसी उद्देश्य विशेष के लिए उनमे उत्साह नहीं था। हजारों आदमियों के झुण्ड काम मिलने की आशा से ही अग्रेजों के शिविर के पास भी इकट्ठे हो गए थे। साधारण आदमियों को जहा कहीं काम मिलने की आशा होती थी, वे वहीं चले जाते थे। उत्तर-पश्चिमी प्रान्त मे बहुत से प्रभावशाली जमींदारों ने ग़दर करने वाले लोगों के साथ समान उद्देश्य बना लिया जबकि उनके बहुत से साथी अपने विदेशी स्वामियों के प्रति वफादार बने रहे। यदि मैनपुरी का राजा हानि की भावना से पीडित होकर विद्रोह मे शामिल हो गया तो पृथ्वीपाल सिह (रसेल का प्रेटी पोल) भी अपनी सेवाए सरकार को समर्पित करने के लिए उतना ही तैयार था। मेरठ और सहारनपुर के जिलों से अग्रेजों का पूर्ण नियत्रण कभी नहीं हटा। पोलव्हील की पराजय के दो दिन बाद आगरा के धनवान नागरिकों ने लेफ्टिनेंट-गवर्नर की सेवा मे उपस्थित होकर अपनी सद्भावनाओं का प्रदर्शन किया। अपनी राजभक्ति के प्रदर्शन मे वे भले ही ईमानदार न रहे हों, परन्तु यह निश्चित था कि वे दूसरे पक्ष मे सम्मिलित नहीं थे। यदि शहर के मुख्य व्यापारी जोतीप्रसाद ने सहायता न की होती तो सरकार के लिए आवश्यक सामग्री का प्राप्त करना असम्भव हो जाता। दिल्ली के समीप के गावों की निष्ठा विभक्त थी। रेक्स का दावा था कि उसे "मई, १८५७ मे मैनपुरी के लोगों की सद्भावनाओं मे विश्वास था।" उसने आगे लिखा है, "मिस्टर फिलिप्स और मिस्टर आमले ने, जो दोनों काफी बडे रुतवे और अनुभव के असैनिक अधिकारी थे, दोआब में फर्रुखाबाद और एटा से तथा रुहेलखण्ड मे बदायू से केवल तीन या चार घुडसवारों के रक्षक-दल के साथ यात्रा की और वे १० जून को आगरा पहुचे।" "इसी जून के पूरे महीने के अन्दर मैनपुरी के न्यायाधीश मि० आर्थर काक्स, अलीगढ के मैजिस्ट्रेट मिस्टर वाटसन, डा० क्लार्क, असैनिक सेवा के तरुण मिस्टर ऊटरम, मिस्टर हर्बर्ट हैरिंगटन और कुछ अन्य थोडे आदमियों ने अलीगढ मे या उसके आस-पास ग़दर मे उस सैनिक-स्थान के विनष्ट कर दिए जाने के बाद भी वीरतापूर्वक अपनी स्थिति को बनाए रखा। देश के लोग चूकि हमारे साथ थे, हमारे विरुद्ध नहीं, इसीलिए मुट्ठी भर इन स्वयसेवक घुडसवारों के लिए यह सम्भव हो सका कि वे उन झुण्ड के झुण्ड विद्रोहियों के बीच अपनी स्थिति को कायम रख सके जो दिल्ली को जाने वाली ग्राड ट्रक सडक पर होकर चले जा रहे थे।"[३१] ग़दर के प्रारम्भिक दिनों मे कैप्टन सैनफर्ड ने मेरठ से अम्बाला तक की यात्रा और हाडसन अम्बाला से मेरठ तक घोडे पर चढ कर गया और इन लोगों के साथ बहुत थोडे से ही अनुचर-वृन्द थे। इससे यह सिद्ध होता है कि इन स्थानों के बीच का समस्त क्षेत्र अग्रेजों के विरुद्ध नहीं था।

---

३१ रेक्स, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १५६-५७

सन् १८५८ के प्रारम्भिक महीनो मे मेडले ने दिल्ली से कानपुर तक की यात्रा की और उसे कोई हानि नहीं हुई, "यद्यपि सडक सुरक्षित नहीं थी क्योंकि नाना का भाई और उसके करीब ५०० अनुयायी कालपी जाने के लिए उसे पार कर रहे थे।" उसने दिल्ली से मसूरी तक और मसूरी से आगरा तक भी पूर्ण सुरक्षित रूप से यात्रा की थी।[32] परन्तु इससे रेक्स के समान इस परिणाम पर आना उचित न होगा कि चूंकि अंग्रेज लोगो की छोटी टोलिया ग्रामीण क्षेत्र को अपने लिए अरक्षित नहीं पाती थीं, इसलिए उस क्षेत्र के निवासी आवश्यक रूप से सरकार के प्रति राजभक्त थे। जिस निष्कर्ष पर हम निर्भय रूप से पहुंच सकते हैं, वह यह है कि लोग इतने अधिक उदासीन और उपेक्षावान थे कि वे किसी एक ओर निश्चयपूर्वक अपने आपको बद्ध करना नहीं चाहते थे। बंगाल और मद्रास जैसे प्रातो मे भी, जहां उपद्रव नहीं हुए, लोगो मे एक निष्क्रिय विद्रोह की भावना थी, जो अंग्रेजों की पराजय की प्रत्येक खबर को सुनकर प्रसन्न होती थी। यही कारण था कि क्रीमिया और फारस की खबरों ने भारत में इतनी उत्तेजना और रुचि उत्पन्न की। डा० अलेक्जेंडर डफ शिक्षित भारतीयो से घनिष्ठ रूप से मिला-जुला था। उन्होंने भारतीयों की भावनाओ का सही रूप से विश्लेषण करते हुए लिखा है, "बंगाली लोगों की एक बहुत बडी संख्या अब भी इस मामले को एक अहेतुक उदासीनता के साथ देखती है। उनके बारे मे यह नहीं कहा जा सकता कि वे राजभक्त हैं या राज-विरोधी, यद्यपि उनमे से लाखों के हृदय में असन्तोष गहरे रूप से घर किए हुए है। इसमे सन्देह नहीं कि इसके साथ ही उसमें से बहुत से लोग हमारे शासन की ओर अच्छी दृष्टि रखते हैं, परन्तु इसे हम यदि अनुराग कहें तो भ्रामक ही होगा।"[33]

सन् १८५७ के आन्दोलन की लोक-प्रियता का आकलन करने मे हमें यह नहीं भूल जाना चाहिए कि किसी विद्रोह या क्रान्ति में एक संकल्पवान अल्प संख्या ही क्रियात्मक भाग लेती है जबकि प्रचुर बहुसंख्या उदासीन रहती है और निहित स्वार्थ वाला एक भाग कदाचित वर्तमान व्यवस्था के साथ अपने को खुले रूप में एकाकार कर लेता है। किसी विद्रोह को कहीं भी सम्पूर्ण समर्थन नहीं मिला। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने जब स्वाधीनता प्राप्त की तो वहा राजभक्तों का एक शक्तिशाली दल था जो कनाडा चले जाना अधिक पसन्द करता था। क्रान्तिकारी फ्रास मे भी राजभक्तो की कमी नहीं थी। "१५" और "४५" मे स्टुअर्ट राजाओं के उद्देश्य ने ब्रिटिश द्वीप-समूह मे कोई अपर्याप्त समर्थन नहीं प्राप्त किया था। यदि एक सारवान बहुसंख्या किसी आन्दोलन के मुख्य उद्देश्य से सहानुभूति रखती है तो वह आन्दोलन एक राष्ट्रीय स्थिति का दावा कर सकता है, फिर चाहे उसे सार्वत्रिक क्रियात्मक समर्थन प्राप्त न हो। अवध और शाहाबाद के बाहर ऐसी सामान्य सहानुभूति का कोई साक्ष्य नहीं मिलता, जिससे ग़दर को एक राष्ट्रीय युद्ध की गरिमा से युक्त किया जा सके। इसके साथ ही इसे केवल एक सैनिक विद्रोह कह कर समाप्त कर देना भी गलत होगा। ग़दर एक विद्रोह हो गया और उसने उस समय एक राजनीतिक

३२ मेडले, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १२०-२४, १४६

३३ डफ, दि इण्डियन रिबेलियन, इट्स काजेज एण्ड रिजल्ट्स, पृ० १८०

स्वरूप धारण कर लिया। जब मेरठ के ग़दर करने वालो ने अपने आपको दिल्ली के वादशाह् के अधीन रख दिया और भू-स्वामी रईसों तथा असैनिक आबादी के एक भाग मे उसके पक्ष मे घोषणा की। जिस आन्दोलन का प्रारम्भ धर्म के लिए लडाई के रूप मे हुआ था, उसी का अन्त स्वाधीनता के लिए युद्ध के रूप मे हुआ और इसमे रच मात्र भी सन्देह नहीं है कि विद्रोही विदेशी शासन से मुक्ति प्राप्त करना चाहते थे और वे उस पुरानी व्यवस्था को पुन सस्थापित करना चाहते थे, जिसका दिल्ली का वादशाह् न्यायपूर्ण प्रतिनिधि था।

अवध मे विद्रोह ने राष्ट्रीय स्वरूप प्राप्त कर लिया, यद्यपि इस शब्द का प्रयोग एक सीमित अर्थ मे ही समझना चाहिए; क्योंकि भारतीय राष्ट्रीयता का विचार अभी अपनी प्रारम्भिक अवस्था मे ही था। एक पजावी के लिए एक हिन्दुस्तानी अभी अपरिचित ही था और वहुत कम वगाली यह अनुभव करते थे कि वे उसी राष्ट्र के हैं जिसके महाराष्ट्रीय लोग। इसी प्रकार मध्यवर्ती-भारत और राजपूताना के लोग दक्षिण भारत के लोगों के साथ किसी प्रकार की बन्धुता का सम्बन्ध नहीं मानते थे। हां, दासता की एकता ने विभिन्न प्रकार की अस्पष्ट एकता को एक अवश्य उत्पन्न किया था, परन्तु इस विचार ने अभी समान्यतः समाज मे जडें नहीं जमाई थीं। परन्तु फिर भी जातीय, धार्मिक और भाषात्मक भेदों के होते हुए भी भारतीय जनता यह अनुभव अवश्य करती थी कि अग्रेजो के विपरीत उसमे कुछ साम्य है। यही कारण है कि एक राजपूत चारण को भरतपुर की जाट-विजय मे अपनी कविता के अनुरूप एक विषय मिला और बुन्देले लोगों ने नेपाल मे अग्रेजों की विपत्ति पर प्रसन्नता मनाई। राज्यक्षेत्रीय देशभक्ति के अभाव मे धर्म एक महान वल है, यही कारण है कि सन् १८५७ मे सभी जीवन-क्षेत्र के लोगो ने धर्म की रक्षा मे सिपाहियों का साथ दिया। अवध के सामन्तों ने अपने काश्तकारों को न केवल धर्म के नाम पर वल्कि उनके राजा के नाम पर भी बुलाया। उनके राजा को गद्दी से अन्यायपूर्वक हटा दिया गया था और उनके देश को वलपूर्वक अग्रेज़ी राज्य मे मिला लिया गया था। इस प्रकार उन्हें न केवल एक राजनीतिक शिकायत दूर करने का उपाय करना था वल्कि एक नैतिक अन्याय का भी प्रतिकार करना था। जैसा मुहम्मद हसन ने वताया, अवध के सरदारों की दृष्टि मे अग्रेज आक्रमणकारी थे और सामन्त लोग अनुभव करते थे कि वे अपने धर्म के साथ-साथ अपने राजा के लिए भी लड रहे हैं। सामन्ती भक्ति एक समय देशभक्ति का काम करती थी और लोगों की एक प्रचुर वहुसख्या की भावनाए प्राय' वही होती थीं जो उनके मुखिया लोगों की। यह सत्य है कि इसमे अपवाद भी थे। उदाहरणत वलरामपुर और शाहगज के राजाओ के ऐसे सरदार भी थे, जो या तो अपने नए स्वामियो के प्रति स्वामिभक्ति की भावना के कारण या इस विश्वास के कारण कि वे अन्त मे जीतेंगे, सरकार का साथ देना ही अपने लिए अनुकूल समझते थे। उन्हें उनके व्यवहारिक ज्ञान के लिए प्रभूत पुरस्कार भी दिए गए। वेणी माधव, देवीवख्श जैसे देशभक्त नेता दृढ़तापूर्वक कर्तव्य-मार्ग पर चले, भले ही उनका अन्त मृत्यु मे हुआ हो। इन नेताओं के प्रति जनता जो आदर-भाव रखती थी उसके असन्दिग्ध साक्ष्य को रसेल ने शकरपुर के पतन के वाद "चारो ओर के ग्रामीणों के उदास चेहरों मे" देखा।

अवध के देशभक्त अपने राजा और देश के लिए लड़े, परन्तु वे स्वतन्त्रता के समर्थक नहीं थे, क्योंकि वैयक्तिक स्वतंत्रता की कोई धारणा उनके सम्मुख नहीं थी। इसके विपरीत यदि उनका वश चलता तो वे पुरानी व्यवस्था को पुनर्जीवित करते और उस सबको प्रस्थापित करते जिसकी कि वह व्यवस्था प्रतिनिधि थी। अंग्रेज सरकार ने अदृश्य रूप से एक सामाजिक क्रान्ति कर दी थी। उसने स्त्रियों की कुछ असमर्थताओं को हटाया था, उसने कानून की दृष्टि मे मनुष्यो की समानता स्थापित करने का प्रयत्न किया था और किसान और आसामी के भाग्य को सुधारने का भी प्रयत्न किया था। ग़दर के नेता किये धरे पर पानी फेर देते। नई व्यवस्था के साथ वे नए सुधारो को भी समाप्त कर देते और उन पुराने दिनो की व्यवस्था पर वापस चले जाते जब एक साधारण आदमी एक उच्च कुलीन व्यक्ति के साथ बराबर न्याय पाने की आशा नहीं कर सकता था, जब काश्तकार ताल्लुकेदारो की कृपा के भिक्षुक बन कर रहते थे और जब चोरी का दण्ड अंगच्छेदन था। सक्षेप मे, ये लोग एक प्रति-क्रान्ति चाहते थे। सैनिक विजय से यह उन्हें निश्चय ही प्राप्त हो जाती या नहीं, यह एक दूसरा ही प्रश्न है।

ग़दर गोरे और काले लोगों के बीच एक युद्ध भी नहीं था। भारत में सभी गोरे अपने मूल देश का विचार भेद किए बिना निश्चय ही एक ओर पंक्तिबद्ध थे, परन्तु काले लोगो में ऐसा नहीं था। जैसा कि मेडले ने बताया है, "वस्तुतः (शिविरानुचरो की गिनती करके) शिविर में प्रत्येक गोरे आदमी के पीछे बीस काले आदमी थे"[३४] और शिविर-अनुचरों की सहायता के बिना गोरे सैन्य दल बिल्कुल निष्क्रिय हो गए होते। भयंकरतम आग मे गोरे सिपाही के लिए भोजन लाने वाला बवर्ची भारतीय ही होता था और प्रगाढ लड़ाई मे भारतीय भिश्ती ही उसे पानी लाकर पिलाता था। खतरे के क्षेत्र मे घायल हुए सिपाहियों को वहा से डोली में रख कर ले जाने वाला भी भारतीय होता था और उनके साधारण आराम की देखभाल भी भारतीय सेवक ही करते थे।[३५] यदि उन लोगों को हम छोड दें, जिन्होंने युद्ध मे भाग नहीं लिया था, तो भी जिस सेना ने गदर को दबाया उसमें भारतीय सिपाहियों का एक ऊंचा अनुपात था। दिल्ली के सामने ११,२०० क्रियात्मक सैन्य दलों के जवानो मे से कम से कम ७,९०० भारतीय थे।[३६] इस प्रकार यह एक ऐसा युद्ध

---

३४. मेड्ले, उद्धृत ग्रन्थ पृ० ६५

३५. मेडले कहता है, "कुछ हालतों में अंग्रेज सिपाही एक भव्य साथी है। उसे अच्छा खाना खिलाओ, अधिक काम न लो, अधिक मार्च न कराओ और उसे खुले मैदान में ले जाओ तो उसके विरुद्ध चाहे जितनी सख्या में शत्रु हो वह उन्हे मार भगायेगा, जब तक कि अवस्था उसके बिल्कुल ही विपरीत और निराशाजनक न हो जाए, मगर उस अवस्था में भी वह अपना सर्वोत्तम प्रयत्न करेगा। परन्तु एक लम्बे और थकाने वाले युद्ध मे, जो एक विदेश मे और एक आजमाने वाली जलवायु में हो रहा हो, वह बहुत असहाय अनुभव करने लगता है।" मेडले, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० २०६

३६. इनस, 'दि सिपाय रिवोल्ट, पृ० १४६। लार्ड क्लाइड के अन्तिम युद्ध के समय उसकी कमान के नीचे अंग्रेज़ी सैन्य दलों के ८०,००० जवान थे "परन्तु इस समय

था जिसमे एक ओर काले विद्रोही थे और गोरे शासक जिन्हे दूसरे काले लोगो का समर्थन प्राप्त था। यह एक ऐसा मामला था जिसमे अपने समान स्वामी के निरीक्षण मे एक दास अपने साथी दूसरे की बेडियो को दृढ़तापूर्वक बाध रहा हो।

१८५७ के युद्ध मे नैतिक प्रश्न सन्निहित नहीं थे। जैसा दूसरे युद्धों मे होता है, सत्य सबसे पहले हत हुआ और दोनो पक्ष झूठे प्रचार के लिए अपराधी थे। इतना समय बीत जाने पर हमारे लिए यह निश्चय करना आज सम्भव नहीं है कि यह जान-बूझकर किया गया था या उत्तरदायी पक्षों को यह ईमानदारीपूर्वक विश्वास था कि उनकी सूचना सच्ची थी। इस सघर्ष को, जैसा कि रीज़ का भी मत है, "ईसाइयों के विरुद्ध धर्मान्ध लोगों का युद्ध" कहा जा सकता है, परन्तु ग़दर के दौरान मे लडने वालों के ऊपर उनके अपने अपने धर्मों मे अन्तर्हित नैतिक सिद्धान्तों का कुछ भी प्रभाव न था। दोनों ही युद्धरत पक्ष नैतिक उल्लघनों को हल्का करने के लिए अपने-अपने शास्त्रों से उद्धरण दे रहे थे। ईसाई लोगों ने विजय प्राप्त कर ली थी, परन्तु ईसाई धर्म ने नहीं। हिन्दू और मुसलमान पराजित हुए थे परन्तु उनके अपने-अपने धर्म नहीं। पाश्चात्य विज्ञान के समान ईसाई धर्म ने भी भारतीयों के मन पर प्रभाव डाला, परन्तु ईसाई धर्मोपदेशकों को अपने धर्म-परिवर्तन के काम में कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली।

१८५७ का युद्ध बर्बरता और सभ्यता के बीच एक संघर्ष भी नहीं था, क्योंकि किसी भी पक्ष ने उस एक भी बन्धन का पालन नहीं किया, जिसे मानवता ने लगाया है और जिसका सम्मान करने के लिए पूर्वी और पश्चिमी राष्ट्रों ने मौन स्वीकृति दी है। घृणा और भय से उन्मत्त लोगों की यह एक अमानवीय लडाई थी। क्रुद्ध सिपाहियों ने युद्ध मे भाग न लेने वाले लोगों को भी उतनी ही दुर्गति की जितनी हथियार लेकर लडने वालों की। उस बर्बर निर्दयता से आयु अथवा स्त्री-पुरुष भेद कोई सुरक्षा प्रदान नहीं करते थे और मृत्यु भी जगली अपमान से मुक्ति नहीं दिलाती थी। उन बुरे दिनों की स्मृति को फिर से जगाना वाछनीय नहीं जान पडता, परन्तु इतिहास को इस बात का लेखा प्रस्तुत करना चाहिए कि किस प्रकार युद्ध मानवीय चरित्र को हीन करता है और सभ्यता का वह अवगुण्ठन, जिसे हम पहने हुए हैं कितना क्षीण है तथा कितनी सरलता से हमारी सोई हुई पाशविक वृत्तिया जाग पडती हैं और क्या हिन्दू, क्या मुसलमान तथा क्या ईसाई सब के सब समान रूप से उस आदिम युगीन बर्बरता के शिकार हो जाते हैं, जिससे धर्म और सभ्यता ने उनके पूर्वजों को प्रकट रूप से उबारा था।

यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि अग्रेज़ लोग अपने साथियों के वध, बच्चों की हत्या, और स्त्रियों के अपमान की निर्दय कहानियों से पागल हो उठे थे। इन भयकर कहानियों के स्रोतों की जांच के लिए वे नहीं ठहरे और असन्दिग्ध चरित्र के पुरुष भी अपनी क्षणिक भावना के अधीन हो गए और उन्होंने उन कहानियों के विस्तृत प्रचार मे सहायता दी। धर्म के पवित्र क्षेत्र में कार्य करने वाले लोग भी भूल गए कि बदला ईश्वर

तक अकेले पजाब से ही भर्ती किए गए जवानों की सख्या इससे मुकाबला करने लगी थी।" इनस, 'लखनऊ एण्ड अवध इन दि म्यूटिनी', पृ० ३०७

के हाथ मे था और वे मंच पर खड़े होकर बदले की माग करने लगे। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं थी कि गोरा आदमी बदले के लिए प्यासा था। गुड़गांव के सहायक कलक्टर क्लिफर्ड ने सुना था कि उसकी बहन को और कुमारी जेनिंग्स को "महल मे नंगा कर दिया गया और उसी अवस्था मे उनको तोपो को ले जाने वाली गाड़ियो के पहियो मे बांधा गया था और दिल्ली के चादनी चौक मे घसीट कर ले जाया गया था और वहा बादशाह के पुत्रो की उपस्थिति में उन्हे टुकड़े-टुकड़े कर काट डाला गया था।" क्लिफर्ड "के मन मे यह बात भी थी कि उसकी बहन का वध होने से पूर्व उसके साथ बलात्कार भी किया गया था।" इसलिए स्वभावतः वह बदले के अतिरिक्त और कुछ सोच भी नहीं सकता था और जब दिल्ली का पतन हुआ तो उसने ग्रिफिथ्स से कहा कि, "जो भी उसके सामने आया उसको उसने मरवाया और स्त्रियों और बच्चों को भी नहीं छोड़ा।"[३७] इससे भी एक बुरी कहानी बंगलौर से सुनी गई, परन्तु वह दिल्ली के सम्बन्ध मे थी। यह खबर दी गई थी कि ४८ स्त्रियो को, जिनमे से अधिकतर दस से चौदह वर्ष तक की लड़कियां थीं, नंगी कर दिल्ली की गलियो में घुमाया गया, उनके साथ दिन मे बलात्कार किया गया और फिर उन्हें निर्दयतापूर्वक मार डाला गया। बाद की खोजो से यह सिद्ध हुआ कि कुमारी क्लिफर्ड और कुमारी जेनिंग्स की हत्या महल मे उनके कमरे मे की गई थी,—और उनके साथ अपमान का कोई व्यवहार नहीं किया गया और लेकी ने ४८ स्त्रियो की कहानी को 'फिक्शन्स कनेक्टेड विद दि इंडियन आउटब्रेक' की काल्पनिक कहानियो मे शुमार किया रखा।[३८] विल्बरफोर्स ने एक ऐसी महिला की कहानी को दूसरे लोगो तक पहुचाया जो एक कप्तान की पत्नी थी और मेरठ और दिल्ली के गदर करने वालो ने जिसे जीवित अवस्था मे घी मे उबाल दिया था।[३९] मेजेण्डी ने बच्चो के सूली पर चढाये जाने के बारे मे लिखा है[४०] और इससे अधिक निर्दय अत्याचारो की दूसरी कहानियां इंगलैंड मे और भारत मे ब्रिटिश शिविर मे प्रचलित हो गईं।

जब अंग्रेज लोगो की विजय का अवसर आया तो जलाने और फांसी लगाने के लिए अभियान साधारण दिनचर्या बन गए और निरपराध और अपराधी मे कोई भेद नहीं किया जाने लगा। कैप्टन ओलिवर जोन्स ने कहा "इन विपत्तिग्रस्त किसानों पर गोली चलाना और उन्हें मारना एक दुखद काम है जबकि अधिक क्रियात्मक धूर्त जिन्होने अत्याचार किये थे, बच कर निकल जाते हैं। परन्तु नीच युद्ध सदा ऐसा ही होता है और ऐसी ही क्रूर उसकी आवश्यकताएं भी होती है।"[४१] रसेल ने रेनो के जवानो द्वारा बिना किसी भेद-भाव के की गई मार-काट के बारे मे उसके सैनिक दस्ते से सम्बद्ध एक अधिकारी से सुना।

---

३७. ग्रिफिथ्स, उद्धृत ग्रन्थ पृ० ६६-६७

३८. एडवर्ड लेकी, फिक्शन्स कनेक्टेड विद दि इण्डियन आउटब्रेक, पृ० १२३ से आगे।

३९. विल्बरफोर्स, एन अनरिकार्डेड चैप्टर आफ़ दि इण्डियन म्यूटिनी, पृ० २३

४०. मेजेण्डी, पृ० २२५

४१. जोन्स, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० ४६

"पंक्ति में चलते हुए देशी लोगो को फासी पर लटकवाना अन्तिम सीमा का अविवेकपूर्ण कृत्य था। जिस अधिकारी की कमान मे यह काम हो रहा था वह नील का अनुकरण कर रहा था और उसका विचार था कि इस कार्य को वह नील के समान ही उत्साहपूर्वक पूरा कर सकता है। दो दिन मे ४२ आदमी सडक के किनारे फासी पर चढ़ा दिए गए और बारह आदमियो को इसलिए फासी लगा दी गई कि जब वे चल रहे थे तो उनके चेहरे 'गलत दिशा मे मुडे हुए थे'। जो भी गाव उसके सामने आए उन्हें उसने पडाव डालते समय जला दिया। ये अत्याचार कानपुर के हत्याकाण्ड की बिनाह पर उचित नहीं ठहराये जा सकते थे, क्योंकि ये उस पैशाचिक कृत्य से पूर्व हुए।[४२] "रसेल जान-बूझ कर की गई नृशसता का एक और उदाहरण देता है, जो दिखाता है कि युद्ध एक आदमी को, जो सामान्य परिस्थितियों में एक सभ्य पुरुष के साधारण गुणों से रहित नहीं होता, किस प्रकर पशु बना देता है। यह घटना लखनऊ की है, "बन्दूकधारी सिपाहियों के दरवाजे तक चले जाने के बाद एक कश्मीरी लडका एक अन्धे और बुड्ढे आदमी को लेकर चौकी पर आया और अधिकारी के पैरों पर गिरकर उससे रक्षा की प्रार्थना करने लगा। उस अधिकारी ने, जैसा मुझे उसके साथियों ने सूचित किया, अपना रिवाल्वर निकाला और विपत्तिग्रस्त प्रार्थी के सिर पर उसे लगाया। आदमी चिल्लाकर उससे 'शर्म' कहने लगे। फिर उसने घोडा दबाया, परन्तु रिवाल्वर नहीं चला। तीन बार उसने प्रयत्न किया, परन्तु रिवाल्वर नहीं चला, मानो तीन बार उसे दया दिखाने का अवकाश था। चौथी बार वह सूरमा अधिकारी सफल हुआ और लडके का रक्त उसके पैरों पर बह निकला और उसके आदमी चिल्ला-चिल्लाकर अपना रोष प्रकट कर रहे थे।"[४३] मेजेण्डी यातना देने के एक ऐसे मामले के बारे मे लिखता है जिसे देखकर आत्मा विद्रोह कर उठती है और जिसके समान उदाहरण गदर के नृशस इतिहास मे नहीं मिलता। यह उस समय हुआ जब लखनऊ के पीले बगले पर अधिकार किया गया। इसी बगले मे एक सिख रेजीमेंट के लोकप्रिय तरुण अधिकारी एण्डरसन की जान गई थी। "अपने अधिकारी की मृत्यु से अत्यन्त क्रुद्ध होकर सिख (मुझे खेद है कि कुछ अग्रेज-लोगों ने भी इनकी सहायता की) इस अकेले अभागे से बदला लेने के लिए आगे बढे। उन्होंने उसकी दोनों टांगें पकड कर उसे दो भागो मे चीरने का प्रयत्न किया। इसमे सफल न होने पर उन्होने उसे पैरों से घसीटा और चलते हुए उन्होंने अपनी सगीनों को उसके चेहरे मे भोंका। मैंने उस गरीब अभागे को अत्यधिक पीडा मे तडपते देखा जबकि उस पर चोटें पड रही थीं। उसके कटे हुए और दबोचे हुए शरीर मे जब उसके पकडने वाले अपनी सगीनों को घुसेड रहे थे तो उसका कराहना मुझे सुनाई पड रहा था। जिस धरती पर वह घसीट कर ले जाया जा रहा था उसके रेत पर पडा हुआ उसका खून उसे रक्तवर्ण बना रहा था। परन्तु सबसे बुरी बात अभी होनी बाकी थी। यद्यपि अनेक घावो के कारण वह निर्बल और बेहोश था, परन्तु उसमे जान बाकी थी। इसी अवस्था मे उन्होंने उसे जान-बूझ कर सूखी लकडियों की

---

४२ रसेल, उद्धृत ग्रथ, जिल्द २ पृ० ४०२

४३ वही, जिल्द १, पृ० ३४८

धीमी आग के ऊपर रख दिया जिसे इसी उद्देश्य के लिये तैयार किया गया था। वे उसे आग के ऊपर लटकाए रहे और वह मृत्यु से संघर्ष करता रहा। ये संघर्ष प्रति क्षण निर्बल और धीमे पड़ते गए। उसमे बेहोशी और निष्फल हतोत्साह था और वह एक दर्दनाक दृश्य था। जब यह भयंकर कृत्य किया जा रहा था तो एक बार वह अभागा पीड़ा से उन्मत्त होकर अपने पीड़ादायको से भाग निकला और चूकि वह भयंकर रूप से जल चुका था इसलिये थोड़ी दूर ही भाग सका। वे उसे पकड़कर वापस ले आये और फिर उसे उसी आग पर रख दिया और तब तक रखे रहे जब तक उसके प्राण पखेरू उड़ नहीं गए।"[४४] विजित और विजेता के बीच इस युद्ध ने, जो जाति और धर्म के भेदो से और अधिक कटु बन गया था, भारतीय और अंग्रेज दोनों मे सभ्यता और मानवता के सब निशानो को मिटा दिया। रसेल कहता है कि लखनऊ मे स्त्रियां भी उन अन्यतम अपमानो से नहीं बच पाईं जो कि किये जा सकते हैं।[४५] परन्तु संतोष की एक बात यह थी कि दोनो शिविरों मे ऐसे भी आदमी थे जो इन बर्बरताओ से घृणा करते थे। मृत्युदण्ड प्राप्त विद्रोहियों के लिए नील की धार्मिकता ने एक घृणाजनक पोशाक निश्चित की थी जिसे क्लाइड ने बन्द करवा दिया। सेना का हेनरी मेटकाफ नामक एक व्यक्ति भी, जो सैनिक अधिकारी नहीं था, उन ग्रामीणो को जो हथियार छिपाने के स्थानों के संबध मे अपनी अनभिज्ञता प्रकट करते थे, कोड़े लगाये जाने का समर्थक नहीं था।[४६] शहजादा फीरोज शाह स्त्रियो और बच्चो के वध को अनुकूलता की दृष्टि से नहीं देखता था और उसे केवल एक जुर्म ही नहीं बल्कि पाप भी समझता था। इस असभ्य युद्ध की अमानुषिक क्रूरताओ की तुलना में दया, सेवामय वीरता, उदारता, साहस, धार्मिकता और निष्ठा के बहुत से कार्यों को भी लेख बद्ध किया जा सकता है और उन्हीं मे मनुष्य के भविष्य की आशा है।

जब ग़दर दबा दिया गया और पुनः शान्ति स्थापित हो गई तो जैक पाण्डे और टाम एटकिन्स अपने सामान्य काम पर लौट आए। परन्तु विद्रोह ने अधिक उत्तरदायी अंग्रेज और भारतीय लोगो को विचार करने पर विवश किया। ग़दर अवश्यंभावी था। कोई पराधीन राष्ट्र सदा के लिए विदेशी आधिपत्य के साथ समझौता नहीं कर सकता। एक निरंकुश सरकार को अन्त मे तलवार से शासन करना ही पड़ेगा चाहे वह तलवार भले ही मखमल के म्यान में रखी हुई क्यों न हो। भारत में तलवार प्रकट रूप से सिपाही सेना की अभिरक्षा में थी। सिपाहियों और उनके विदेशी स्वामियो के बीच जाति, भाषा और धर्म के कोई सामान्य बन्धन नहीं थे। भारतीय आदमी ब्रिटिश ताज के लिए सम्भवत. उस राजभक्ति का अनुभव नहीं कर सकता था जिसे एक अंग्रेज अपनी माता के दूध के साथ प्राप्त कर लेता है। नमक हलाली के दायित्व ने अब तक सिपाही और उनके मालिको को

---

४४. मेजेएडी, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १८६-८७

४५. "गरीब ढग के आदमी शहर मे वापस आ रहे हैं, परन्तु हम खेदपूर्वक सुनते हैं कि कभी-कभी स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार किया जाता है और हिन्दू लोगो का जब अपमान किया जाता है तो वे आत्महत्या कर लेते हैं।" रसेल, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द १, पृ० ३६०

४६. टकर, उद्धृत ग्रन्थ पृ० ७८

"पक्ति मे चलते हुए देशी लोगो को फांसी पर लटकवाना अन्तिम सीमा का अविवेकपूर्ण कृत्य था। जिस अधिकारी की कमान मे यह काम हो रहा था वह नील का अनुकरण कर रहा था और उसका विचार था कि इस कार्य को वह नील के समान ही उत्साहपूर्वक पूरा कर सकता है। दो दिन मे ४२ आदमी सडक के किनारे फासी पर चढा दिए गए और बारह आदमियों को इसलिए फासी लगा दी गई कि जब वे चल रहे थे तो उनके चेहरे 'गलत दिशा में मुडे हुए थे'। जो भी गाव उसके सामने आए उन्हें उसने पडाव डालते समय जला दिया। ये अत्याचार कानपुर के हत्याकाण्ड की बिनाह पर उचित नहीं ठहराये जा सकते थे, क्योंकि ये उस पैशाचिक कृत्य से पूर्व हुए।[४२] "रसेल जान-बूझ कर की गई नृशंसता का एक और उदाहरण देता है, जो दिखाता है कि युद्ध एक आदमी को, जो सामान्य परिस्थितियों मे एक सभ्य पुरुष के साधारण गुणों से रहित नहीं होता, किस प्रकर पशु बना देता है। यह घटना लखनऊ की है, "बन्दूकधारी सिपाहियों के दरवाजे तक चले जाने के बाद एक कश्मीरी लड़का एक अन्धे और बुड्ढे आदमी को लेकर चौकी पर आया और अधिकारी के पैरो पर गिरकर उससे रक्षा की प्रार्थना करने लगा। उस अधिकारी ने, जैसा मुझे उसके साथियो ने सूचित किया, अपना रिवाल्वर निकाला और विपत्तिग्रस्त प्रार्थी के सिर पर उसे लगाया। आदमी चिल्लाकर उससे 'शर्म' कहने लगे। फिर उसने घोडा दबाया, परन्तु रिवाल्वर नहीं चला। तीन बार उसने प्रयत्न किया, परन्तु रिवाल्वर नहीं चला, मानो तीन बार उसे दया दिखाने का अवकाश था। चौथी बार वह सूरमा अधिकारी सफल हुआ और लडके का रक्त उसके पैरो पर बह निकला और उसके आदमी चिल्ला-चिल्लाकर अपना रोष प्रकट कर रहे थे।"[४३] मेजेण्डी यातना देने के एक ऐसे मामले के बारे मे लिखता है जिसे देखकर आत्मा विद्रोह कर उठती है और जिसके समान उदाहरण गदर के नृशस इतिहास मे नहीं मिलता। यह उस समय हुआ जब लखनऊ के पीले बगले पर अधिकार किया गया। इसी बगले मे एक सिख रेजीमेंट के लोकप्रिय तरुण अधिकारी एण्डरसन की जान गई थी। "अपने अधिकारी की मृत्यु से अत्यन्त क्रुद्ध होकर सिख (मुझे खेद है कि कुछ अग्रेज-लोगों ने भी इनकी सहायता की) इस अकेले अभागे से बदला लेने के लिए आगे बढे। उन्होंने उसकी दोनो टागें पकड कर उसे दो भागो मे चीरने का प्रयत्न किया। इसमे सफल न होने पर उन्होंने उसे पैरों से घसीटा और चलते हुए उन्होंने अपनी सगीनों को उसके चेहरे मे भोका। मैंने उस गरीब अभागे को अत्यधिक पीडा मे तडपते देखा जबकि उस पर चोटें पड रही थीं। उसके कटे हुए और दबोचे हुए शरीर मे जब उसके पकडने वाले अपनी संगीनों को घुसेड रहे थे तो उसका कराहना मुझे सुनाई पड रहा था। जिस धरती पर वह घसीट कर ले जाया जा रहा था उसके रेत पर पडा हुआ उसका खून उसे रक्तवर्ण बना रहा था। परन्तु सबसे बुरी बात अभी होनी बाकी थी। यद्यपि अनेक घावों के कारण वह निर्बल और बेहोश था, परन्तु उसमे जान बाकी थी। इसी अवस्था मे उन्होंने उसे जान-बूझ कर सूखी लकड़ियों की

४२ रसेल, उद्धृत ग्रथ, जिल्द २ पृ० ४०२

४३ वही, जिल्द १, पृ० ३४८

धीमी आग के ऊपर रख दिया जिसे इसी उद्देश्य के लिये तैयार किया गया था। वे उसे आग के ऊपर लटकाए रहे और वह मृत्यु से संघर्ष करता रहा। ये संघर्ष प्रति क्षण निर्बल और धीमे पड़ते गए। उसमे बेहोशी और निष्फल हतोत्साह था और वह एक दर्दनाक दृश्य था। जब यह भयंकर कृत्य किया जा रहा था तो एक बार वह अभागा पीड़ा से उन्मत्त होकर अपने पीड़ादायको से भाग निकला और चूकि वह भयंकर रूप से जल चुका था इसलिये थोड़ी दूर ही भाग सका। वे उसे पकड़कर वापस ले आये और फिर उसे उसी आग पर रख दिया और तब तक रखे रहे जब तक उसके प्राण पखेरू उड नहीं गए।"[४४] विजित और विजेता के बीच इस युद्ध ने, जो जाति और धर्म के भेदों से और अधिक कटु बन गया था, भारतीय और अंग्रेज दोनो मे सभ्यता और मानवता के सब निशानो को मिटा दिया। रसेल कहता है कि लखनऊ मे स्त्रियां भी उन अन्यतम अपमानों से नहीं बच पाईं जो कि किये जा सकते हैं।[४५] परन्तु संतोष की एक बात यह थी कि दोनो शिविरों मे ऐसे भी आदमी थे जो इन बर्बरताओ से घृणा करते थे। मृत्युदण्ड प्राप्त विद्रोहियों के लिए नील की धार्मिकता ने एक घृणाजनक पोशाक निश्चित की थी जिसे क्लाइड ने बन्द करवा दिया। सेना का हेनरी मेटकाफ नामक एक व्यक्ति भी, जो सैनिक अधिकारी नहीं था, उन ग्रामीणो को जो हथियार छिपाने के स्थानों के सबध मे अपनी अनभिज्ञता प्रकट करते थे, कोड़े लगाये जाने का समर्थक नहीं था।[४६] शहजादा फीरोज शाह स्त्रियों और बच्चो के वध को अनुकूलता की दृष्टि से नहीं देखता था और उसे केवल एक जुर्म ही नहीं बल्कि पाप भी समझता था। इस असभ्य युद्ध की अमानुषिक क्रूरताओ की तुलना मे दया, सेवामय वीरता, उदारता, साहस, धार्मिकता और निष्ठा के बहुत से कार्यों को भी लेख बद्ध किया जा सकता है और उन्हीं मे मनुष्य के भविष्य की आशा है।

जब ग़दर दबा दिया गया और पुनः शान्ति स्थापित हो गई तो जैक पाण्डे और टाम एटकिन्स अपने सामान्य काम पर लौट आए। परन्तु विद्रोह ने अधिक उत्तरदायी अंग्रेज और भारतीय लोगो को विचार करने पर विवश किया। ग़दर अवश्यंभावी था। कोई पराधीन राष्ट्र सदा के लिए विदेशी आधिपत्य के साथ समझौता नहीं कर सकता। एक निरंकुश सरकार को अन्त मे तलवार से शासन करना ही पड़ेगा चाहे वह तलवार भले ही मखमल के म्यान मे रखी हुई क्यो न हों। भारत मे तलवार प्रकट रूप से सिपाही सेना की अभिरक्षा में थी। सिपाहियो और उनके विदेशी स्वामियो के बीच जाति, भाषा और धर्म के कोई सामान्य बन्धन नहीं थे। भारतीय आदमी ब्रिटिश ताज के लिए सम्भवत. उस राजभक्ति का अनुभव नहीं कर सकता था जिसे एक अग्रेज अपनी माता के दूध के साथ प्राप्त कर लेता है। नमक हलाली के दायित्व ने अब तक सिपाही और उनके मालिकों को

---

४४. मेजेण्डी, उद्धृत ग्रन्थ, पृ० १८६-८७

४५. "गरीब ढग के आदमी शहर मे वापस आ रहे है, परन्तु हम खेदपूर्वक सुनते हैं कि कभी-कभी स्त्रियो के साथ दुर्व्यवहार किया जाता है और हिन्दू लोगो का जब अपमान किया जाता है तो वे आत्महत्या कर लेते है।" रसेल, उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द १, पृ० ३६०

४६. टकर, उद्धृत ग्रन्थ पृ० ७८

साथ-साथ रखा था, परन्तु यह राजभक्ति और देशभक्ति का स्थानापन्न नहीं हो सकता था। सिपाही अपनी रोटी के लिए सेना मे भर्ती हुआ था। जल्दी या देर से उस पर अपनी कृत्रिम स्थिति के स्पष्ट अपमान की प्रतिकूल प्रतिक्रिया होनी अनिवार्य थी, क्योंकि एक सिपाही के रूप मे उसका यह कर्तव्य हो जाता था, कि वह अपने देश को विदेशी लोगो की एडी के नीचे रखे। वह सम्भवत' इतने स्पष्ट शब्दो मे नहीं सोचता था, परन्तु वह एक असमानता की भावना से पीडित था, जिसे वह नहीं भुला सकता था, क्योंकि एक विदेशी सरकार विजित जाति के दो व्यक्तियों के बीच मे भले ही सन्तुलन स्थापित कर दे परन्तु वह अधीन जाति के प्रति शासक राष्ट्र के विरुद्ध न्याय नहीं कर सकती। गदर सन् १८५७ मे अनिवार्य नहीं था परन्तु वह साम्राज्य की रचना मे अन्तर्हित था। सन् १८५९ में कुछ अग्रेज लोगो को विश्वास था कि भारतवर्ष को पुन जीत लिया गया है। इसी प्रकार उन्हें यह भी विश्वास था कि केवल तलवार से देश को अपने अधिकार मे रखा जा सकता था और सेना के पुनर्गठन पर तत्काल विचार आवश्यक था। रिकेट्स भारतवर्ष को एक अफ्रीकी सेना के द्वारा शासित देखना चाहता था। फोरजेट ने भारत को एक ब्रिटिश उपनिवेश बनाने का सुझाव दिया परन्तु उसकी योजना के अनुसार उपनिवेशको को और अधिक नई सेनाए इग्लैड से नहीं भेजी जानी थीं। उन्हें इस देश के निवासियो के साथ अन्तर्जातीय विवाह करने थे। जिससे एक ऐसी नई जाति उत्पन्न हो सके जो इगलैंड के साथ रक्त और सस्कृति के सम्बन्ध से बधी हो। हर्बर्ट एडवर्ड्स भारत मे ईसाइयत फैलाने का पक्षपाती था क्योंकि जिस समय हिन्दू और मुसलमानो ने अग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह किया, तो जिन लोगों ने धर्म-परिवर्तन कर ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया था केवल उन्हीं ने पूरी तरह शासक राष्ट्र के साथ अपने को एकाकार किया। अग्रेज लोग जानते थे कि भारत के लोगो का अपने शासको के प्रति कोई प्रेम न था, यद्यपि व्यक्तिगत रूप मे भारतीयों और अग्रेजों के बीच घनिष्ठतम मित्रता के सम्बन्ध हो सकते थे। एक सुझाव यह भी दिया गया था कि भारतीयों को सेना से बिल्कुल अलग रखना चाहिए और एक विशुद्ध रूप से यूरोपीय सेना को भारत मे रखना चाहिए। प्रारम्भ से ही यह अनुभव किया गया था कि एक यूरोपीय सेना, जो इतनी बड़ी हो कि सब आपत्तिक स्थितियो का सामना कर सके, भारतीय राजस्व पर एक बहुत भारी बोझ होगी और जैसा मेडले ने बताया है कुछ परिस्थितियों मे वह निष्प्रभ भी होगी जब तक कि उसे पर्याप्त भारतीय सेना के द्वारा अनुपूरित न किया जाए। इसलिए भारतीय सेना को जीवित रहने की अनुमति दे दी गई, परन्तु भारतीयो को तोपखाने से अलग रखा गया। वेतन और भावी उन्नति का भेद पहले के समान तो चलता रहा और जब तक प्रथम विश्व-युद्ध नहीं हुआ कोई भारतीय सेना मे कमीशन प्राप्त अफसर पदप्राप्त करने की महत्वाकाक्षा नहीं कर सकता था। अग्रेज लोग उन सकटो को नहीं भूल सकते थे, जो उन पर सन् १८५७ मे पडे थे, और अब उन्होने सकल्प कर रखा था कि भविष्य मे वे कमजोरी का अल्पतम लक्षण भी नहीं दिखाएगे। इससे कुका विद्रोह के बाद की गई सख्तियों की और अमृतसर मे डायर के द्वारा किए गए निर्दय गोलीकाण्ड की व्याख्या हो जाती है। स्त्रियों और बच्चों के वध को भुलाया नहीं गया था।

शिक्षित भारतीयो को पहले सशस्त्र विद्रोह मे विश्वास नहीं था और विप्लव की असफलता ने उन्हें अपने विश्वास मे पक्का कर दिया। उसने ब्रिटिश उदारता मे अपनी आशा रखी और उसे इसमे कोई सन्देह नहीं था कि जैसे ही वह अपने को अधिकारी सिद्ध करेगा हैम्पडन, मिल्टन और वर्क के देशवासी उसके जन्मसिद्ध अधिकार उसे वापस दे देंगे। परन्तु स्थगित आशा ने उसके हृदय को पीडित कर दिया और उसका विश्वास हिल गया। इसके वाद एक नई पीढी पैदा हुई जिसे वैधानिक आन्दोलन के ढग की वजाय इटली के कार्बोनरी और रूस के निहिलिस्ट जैसे हिंसात्मक ढंगो मे अधिक विश्वास था। उसने गदर को स्मृति से भी प्रेरणा ग्रहण की और दो विश्व-युद्धो के दौरान भारतीय क्रान्तिकारियो ने एक और सैनिक विद्रोह के संगठन करने मे ढील नहीं की। भारत में अग्रेज सरकार भी अधिकाधिक सुनिश्चित होती गई कि राष्ट्रीय भारत के साथ अपने राजनीतिक संघर्ष मे वह केवल अपनी सेना पर निर्भर नहीं कर सकती। महात्मा गाधी के अहिंसक असहयोग आन्दोलन ने देश से एक नए दर्शन को स्वीकार करवाया और अंग्रेज नौकरशाही के ऊपर एक और चोट की। इग्लैड भारत से शोभा के साथ और अपनी प्रतिष्ठा की हानि किए विना चला गया। जिस स्वतन्त्रता के लिए १८५७ के वीर लड़े थे, भारत ने उससे वहुत अधिक प्राप्त कर लिया। उसने स्वतंत्रता भी प्राप्त की है और स्वाधीनता भी।